

प्रकाशन कार्य को शीघ्र और सुचारु रूप से सम्पादन करने में पूरा सहयोग दिया है। अगर उनकी यह निरन्तर सहायता प्राप्त नहीं होती तो प्रकाशन इतना शीघ्र और इस रूप में कदाचित् संभव नहीं होता अतः उनको भी धन्यवाद है।

जिस अभिलाषा से मैं इस ग्रन्थ को प्रकाशन करवा रहा हूँ वह सभी सार्यक होगी अब कि बिदम्-वग इसको अपनाकर कुछ लाभ उठावेंगे। ~

प्रार्थी—

इस्तिमख सुगाशा

(पाक्षी मारवाड़)



७७ प्रबन्धक के दो शब्द ७७

पूज्य श्री हस्तिमल्लजी महाराज साँहव कृत भाषाटीका तथा विशिष्ट परिशिष्ट सहित यह प्रश्न व्याकरण सूत्र, जो बन्ध और मोक्षके तत्व का पथ प्रदर्शक है, प्रकाशित हो गया। पुस्तक कैसी बनी तथा इसकी कैसी उपयोगिता और विशेषता है? आदि विविध प्रश्नों का समाधान तो इसको अत्र ही तरह अवलोकन करने वाले विद्वानों को अनायास ही होजायगा, मगर जहातक मेरी जानकारी है मैं भी इतना निस्संकोच कह सकता हूँ कि यह एक ऐसे उज्ज्वल व्यक्तित्वकी गवेषणापूर्णकृति है, जिनका अनवरत समय विविध शास्त्रावलोकन, गंभीर चिंतन और तत्वगवेषण तथा तदनुकूल आचरण में ही बीतता है। वर्ष महीने और दिन का ही नहीं जहा घटे, मिन्ट और सैकेण्ड का भी ज्ञानपुरस्सर कभी दुरुपयोग नहीं होता। मात्र मेरे इतने निवेदन से भी विद्वानों को प्रस्तुत पुस्तक की प्रबल प्रामाणिकता को हृदयङ्गम कर सकते हैं।

इस पुस्तकके प्रकाशनमें आवश्यकतासे अधिक देर हुई। वि०स० १९६३के अजमेर चातुर्मासमें ही समिति सम्पादित प्रति के आधारपर पूज्यश्री ने इसका कार्यारम्भ कर दिया किन्तु उसी बीच पूज्य श्री रत्नचन्द्रजी महाराज के सम्प्रदाय पूर्ववर्ती धर्माचार्यों की जीवनी कारण विशेष से तैयार हुई, जो इन दिनों जयपुर में छपी है। इसके साथ ही बृहत्कल्प सूत्र का अनुवाद तीर्थङ्करों के जीवनचरित्र तथा तत्त्वार्थाधिगम सूत्र का पद्यानुवाद हुआ। इसतरह पूज्यश्री का ध्यान भिन्न भिन्न आवश्यक कार्यों में घट गया फिर भी पूर्वार्थ प्रश्न व्याकरण की प्रेस कापी भी तैयार की गई। वि० सं० २००२ के जयपुर चातुर्मास में सातारा के दीवान बहादुर श्रीमान् शेट मोतीलालजी मुथा की इच्छा इसको पूना के आर्य भूषण प्रेस में छपवाने को हुई किन्तु किसी कारण से ऐसा नहीं हो सका। इस तरह कई वर्ष तक इसका मुद्रण कार्य स्थागत रहा। इसी बीच बड्डू चातुर्मास में पं० रत्नकुमारजी से इसका

राष्ट्र कोप लिखवामा गया। व्यापक आनुमांस में दिल्ली विराजमान उपाध्याय कवि भी अमरबन्धुजी म० सा को इसकी प्रेस कापी लिखायी गयी।

वि० सं० २००६ का आनुमांस पाली में हुआ। वहाँ पर देवगुरु घम में मद्रा भक्ति सम्पन्न भीमान् रोठ हस्तिमङ्गजी सुराणा ने अपन अभिप्राय प्रकट किए कि इस आनुमांस की स्मृतिका अमिट बनानेके लिए पूम्पमी की कोई कृति मिल तो घम प्रकाशित करूँ। आनुमांस पूरा होने पर आवा वा, फिर भी दुर्गा प्रेम अममेर में सुदृश्य का कार्य प्रारम्भ किया गया, किन्तु एक तो प्रेस में टाइप की कमी थी दूसरे बास्कातिक संशाषक भीमार होकर बेरा चले गए, जिससे कार्य अघस्थित रूप में आगे नहीं बढ़ सका। मध्य में पं० घमपालजी ने कार्य भार उठाया किन्तु अल्पकाल में अशुद्धियाँ रह जाने के कारण कार्य को रोक दिया गया।

इस वर्ष पीपार आनुमांसमें वह अस्तव्यस्त कार्यभार मरे माये आया, और भारकृष्णमें अजमेर आकर मैंने उसदृष्टी पुरानी श्रद्धाको जोड़कर कार्यवाही प्रारम्भ करदी। कार्यकी अधिकता और समय की कमी तथा पूम्प भी एक बुराबन्धित होन के कारण मुख्यबोम्ब आवरयक द्वातम्पादेरा भासिसे मैं बन्धित रहा फिर भी किसीतरह और जिस किसी रूप में उस विघ्नारम्भ आय का इति कर पाया इससे भी मुझ कुछ कम सम्भोष नहीं। विशेष विरलेपण तो नीरसीरविषकी शिक्षा पावक ही करेगे।

अन्त में हम अपन कृपालु पाठकों को बिना किसी संकोच के यह बतलाने को प्रस्तुत हैं कि इस पुस्तक की सारी अच्छाइयों का एकमात्र भेष परम प्रतापी पूम्प भी का है तथा इसकी शुद्धियों तथा अस्तव्यस्तता आदि समस्त दोषों का एक मात्र भेष प्रबन्धक और संशाषक होने के नाते मुझ पर और अरा रूप में दुर्गा प्रेस के जीर्णोद्धार शीशकाचरों पर भी हैं, अतः सहयोग से शुद्धियों की मात्रा चाहते हुए भी कम नहीं हो पायी।

मुझे हर तरह का सहयोग देकर मरी प्रबन्धकता को कायम रखनेवाले अथवा रूप अरुण भी जीठमलाजी सुराणा व भी अमरावमल्लजी साहब इत्यादि अजमेर को मैं नहीं भूल सकता। साथ ही दुर्गा प्रेस के कर्मठ मैनेजर बाबू भूपेन्द्रसिंहजी का आभार-मानता ही पड़ेगा जिन्होंने रात दिन एक बनाकर नियत समय पर इस विशाल कार्य को पूरा किया। शिवमिति।

प्रार्थी—

शुशिकान्त झा "शास्त्री" व्या व्या



श्रीमान शेठ हस्तिमल्लजी 'सुराणा' पाली (मारवाड)

प्रकाशक का संक्षिप्त परिचय



मारवाड का अतिशय प्राचीन नगर "पाली" चिरकाल से व्यापार का केन्द्र रहा है। वहाँ 'फतेहचन्द मूलचन्द्र' नामका फर्म सौ वर्षसे भी अधिक समयसे आज तक अपनी व्यवसाय प्रामाणिकता और नीति कुशलता तथा धर्म प्रमुखता के साथ चलता आ रहा है। फर्म के आदि संस्थापक फतेहचन्द्रजी के देवलोक वासी होने पर उनके सुपुत्र मूलचन्द्रजी साहव फर्म के अधिष्ठाता बने और जीवन पर्यन्त व्यवसाय में वृद्धि के साथ साथ धर्मवृद्धि में भी जी खोलकर हाथ बटाए। स० १९५१ में मूलचन्द्रजी ने पाली निवासी वस्तीमलजी को गोद लिया तथा व्यवसाय का सारा काम उनके जिम्मे कर दिया। आपने भी देव गुरु धर्म में निष्ठा रखते हुए व्यापार को आगे बढ़ाया और पूर्वजों की परम्परा कायम रखने में रती भर भी कसर नहीं की। स० १९७५ में वस्तीमलजी साहव ने श्रीमान् हस्तिमल्लजी साहव को जिनका जन्म स्थान "आउआ" है गोद लिया। श्रीमान् हस्तिमल्लजी साहव का स्वभाव वचन से ही धार्मिक तथा वृद्धि व्यवसायात्मिका थी, फलतः उन्नति के साथ साथ ख्याति फैलने में कोई विशेष ढेर न लगी। कार्य दक्षता और व्यवहार कुशलता एवं अदम्य उत्साह तथा अटूट लगनसे सफलता आपकी दासी बनी और देखते २ आप एक बड़ी धनराशि के अध्येक्ष बन गए। कपड़ा, कमीशन, ऊन और आढत के कामों में आपकी गहरी दिलचस्पी है। योंतो आपके व्यवसाय मारवाडके छोटोबड़े अधिकतर शहरों में किसी न किसी रूप में प्रसारित हैं ही लेकिन प्रमुख रूप में पाली और बम्बई दो जगहों में प्रचलित है जिसमें पाली फर्म का नाम 'फतेहचन्द मूलचन्द्र' तथा बम्बई का 'मूलचन्द्र वस्तीमल' ताम्बाकाटा हनुमान विल्डिंग २ फ्लोर बम्बई है।

अधिकतर देखा जाता है कि लोग लक्ष्मीपात्र बनकर धर्म के प्रति विमुख हो जाते हैं किन्तु आप बराबर इस नियम के अपवाद रहे। जैसे जैसे व्यापार चलता जैसे जैसे धार्मिक लगन भी बढ़ती गयी और यही कारण है कि आज आप के एक प्रमुख व्यापारी ही नहीं किन्तु समाज के कुशल एवं अग्रगण्य व्यक्ति हैं। पाली में सभव ही ऐसा कोई पारमार्थिक काम होगा जिसे आप बंटाया है। आत्म कल्याण के लिए व्रत, तप के साथ

प्रमाद नहीं करते और जब जहाँ जैसा आवश्यक समझते हैं मुक्त हस्त होकर दिया करते हैं। विभिन्न संस्था और समाज को बड़ी बड़ी रकमें दान आपने अनुप्राणित किया है। वि० २० १ में पूज्य श्री हस्तिमल्लजी व पूज्य श्री गणेशीलासजी महाराज का पत्नी सम्मिलन में भी आपन बहुत बड़ा हाथ बटाया था।

आपका हृदय स्वच्छ, सुल्लाकृति प्रसन्न तथा अस्तिष्क सूक्त भूक्त से भरा हुआ है। स्पष्टवाचिता, मिलनसारिता तथा निरभिमानता एक सद्बुद्धता आपमें कूट कूट कर भरी हुई है। जो बात हृदय में अँध जाब उसको पूरी करने में शायद ही कसर करते हैं।

परिवारके प्रति भी आपका प्रेम सराहणीय है और इसीकारणसे आपके परिवार तथा व्यवसायिक कार्यकर्ता आपमें पूर्ण भ्रष्टा रखते हैं। आप छोटे छोटे बच्चों के साथ भी अक्सर विलोद किया करते हैं जिसमें आपकी विलोद प्रियता की मल्लक स्पष्ट दिखाई देती है। आप अपने छोटे भाई श्री करारीमल्लजी साहब को विल से चाहते हैं और हर छोटे बड़े कामों में उनकी सम्मति का सम्मान करते हैं। आपका यह भाव-प्रेम बलकर राम और मरुत का स्मरण हो आता है।

धर्म और गुरु के प्रति आपकी आस्था बसीमें है। गत वर्ष आपने पूज्य गुरुदेव श्री हस्तिमल्लजी महाराज साहब का आनुमांस पत्नी में करवाया और उसको जिस सुन्दर ढंग से निभाया वह फिर स्मरणीय रहेगा। आनुमांस की स्मृति को अमर पतानक लिए प्रस्तुत पुस्तकका प्रकाशन किया है तथा भविष्यक लिए भी आरंभान दिया है कि एही कृतियों का अिनसे समाज का अख्याण संभव है लोकोपयोगी बनाने में यादग्रीवस बल विश्व रहेगा।

आपका भविष्य महान है। समाज को आपसे बड़ी बड़ी आशाएँ हैं। आपकी उम्र अभी केवल ४० वर्ष की है अतः उस पर कुछ अधिक कहना सम्भव नहीं लेकिन आपके वर्तमान व्यवहार का बलकर काइ भी आशा कर सकता है कि समाज का उन सभी बिच्छलाओं का सुधार आपका कर कमसों से होता निश्चित है जिस पर आपकी दिव्य दृष्टि एक बार पड़ जायगी। शासन एवं आपकी धर्म निष्ठा, सक्षिपक आरंभियन का दीपठम एवं सफल बनाए रहें।

इसी अमर कामना का संग—

शुशिकान्त 'म्हा'

“आगमज्ञ मुनिराजों से आवश्यक निवेदन”



तीर्थङ्करों व अतिशयज्ञानियों के अभाव में आज समस्त श्वेताम्बर जैन सङ्घ का आधार प्रमुख रूप से आगम ही है। हमारे मन्दपुराण के कारण प्रथम तो आगमों का पूर्ण अंश ही प्राप्त नहीं। फिर यथा तथा करके पूर्वाचार्यों की कृपा से जो भी अंश हमें प्राप्त हैं उसमें लेखन व सशोधनों के प्रमाद ने बहुत से स्थलों में बुद्धि भेद के कारण उत्पन्न कर दिए हैं। प्रश्न व्याकरण का काम करते समय हमें भी ऐसा ही अनुभव हुआ है। इतने पाठ भेद अन्यत्र कम मिलेंगे। इस कार्य में संस्कृत टीका के अलावा आगम मन्दिर से प्रकाशित प्रति का भी पाठनिर्णय में हमने साहाय्य लिया जो आगम के विशिष्ट अभ्यासी स्वर्गीय सागरानन्द सूरि द्वारा सशोधित है। इसमें कई स्थल ऐसे हैं जिनकी संगति नहीं होती। विद्वानों के ज्ञानार्थ वैसे पाठों की तालिका प्रस्तुत करके आशा की जाती है कि आगमज्ञ विद्वान् इनका उचित समाधान करेंगे।

(१) प्रथम आस्रव सूत्र १० २ में हिंसा के नामों में 'धिणासो, शब्द प्रयुक्त है, प्रसंगानुसार इसका अर्थ नाश होने से यह सगत है, किन्तु आ० म० में यहाँ 'चिणासो, पद छपा है, इसकी सगति कैसे होगी ?

(२) सूत्र ३ 'सरीसृप के प्रकरण में 'वाउपिय, पाठ आता है जिसका संस्कृत नाम वायुप्रिय बन सकता है। आ० म० ने 'वाउपइय' ऐसा पाठ माना है। यह किस तरह ?

(३) सूत्र ७ द्वितीय आस्रव के मृषावादी प्रकरण में—'भणति अलियाहि सधि सन्नविट्ठा' के स्थान पर आ० म० की प्रति में—'भणति अलिया हिंसति सन्नविट्ठा, पद प्रयुक्त है, पहिले के वाक्य में 'अलियाहि सधि सन्नविट्ठा, पद मृषावादीका विशेषण होने से सङ्गत है किन्तु 'अलिया हिंसति सन्नविट्ठा; पद में 'हिंसति' क्रिया के साथ इसकी सगति कैसे होगी ?

(४) इसी प्रकरण में 'गामधातुयाभ्यो के स्थान पर गामधातुयाभ्यो आ० म० में प्रयुक्त है प्रसगा से इसकी संगति कैसे होगी ?

(५) सूत्र १५ चतुर्थ आस्रव द्वार के युगलिङ्ग धातु प्रकरण में 'रुद्रल निद्रनक्षा' ऐसा पठ है। इसके लिये आ० मं की प्रति में 'रुद्रल निद्रनक्ष्णा' प्रयुक्त है या अरुद्र श्राव होता है, क्योंकि 'नक्ष्णा' में द्वित्व विधान लाक्षणिक नहीं है।

(६) सूत्र १९ में प्रथम आस्रव के परिग्रह संज्ञय प्रकरण में अस्व मत्स्य इत्स्वच्छरुपवाय, के स्थान में आ० म० न 'अस्व इत्स्वच्छरुपवाय' माना है, सा क्या 'सत्स्य पद् कूटा है ? या इसी पठ को संगत माना गया है ?

(७) सूत्र २३ प्रथम संबर् द्वार के भावना प्रकरण में 'मयेय्य पावण्यं' के स्थान पर आ० मं की प्रति में 'मयेय्य अपावण्यं' प्रयुक्त है। इसी प्रकार तीसरी भावना में 'वतीते पाविषाते' के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'वतीते अपाविषाते' पाठ प्रयुक्त है। तो किस तरह ?

(८) प्रथम संबर् के भावना प्रकरण में 'निक्लिष्येष्वं' पद् आया है आगम मन्त्र पर में इसके स्थान पर 'निक्लिष्येष्वं' प्रयुक्त है। पहला प्रयोग अहाँ स्वार्थ में है वही दूसरा प्रेरणार्थ में प्रयुक्त है प्रसगा धातु से पहला प्रयोग तो उचित माना होता है किन्तु दूसरे प्रयोग की संगति कैसे हो सकती है ? इसका आराय स्पष्ट करें।

(९) द्वितीय संबर् द्वार के सत्स्य निरूपण प्रकरण में 'आरण्यस्य समय सिद्ध विम्बं' पद् आया है इसके स्थान पर आ० मं में 'आरण्य समय समय सिद्ध विम्बं' प्रयुक्त है। अर्थ दृष्टि से पहला पाठ ही सङ्गत है। टीकाकार न भी ऐसा ही माना है। फिर आ० मं में 'आरण्य समय के बीच में 'गमय' पद् का प्रयोग किस आराय से किया गया है ?

(१०) तृतीय संबर् द्वार के चतुर्थ भावना प्रकरण में—'अहिजा दाण्य वय निबम वरमय्यं एवं के स्थान पर आ० म० की प्रति में अहिजा दाण्य (विरमय्य वय निय मय्यं वय निबम वरमय्यं पा०) एवं' प्रयुक्त है। दोनों पाठों में अर्थ अस्पष्टता रहता है। इनमें संगत और शुद्ध कौन पाठ है ?

(११) सूत्र २५ में चतुर्थ संबर् द्वार—ब्रह्मार्थ्य अपमा निरूपण प्रकरण में—'हिमवतो वेव औसदीयं, के स्थान पर आ० म० की प्रति में—'हिमवतो वेव नगाय्यं, वम्भी औसदीयं पक्षा पाठ प्रयुक्त है। इत लक्षित प्रति में हिमवत को औपधिओं के

स्थान मे उत्तम मानकर आठवीं उपमा मे इसको माना है और रथिको मे सांग्रामिक महारथी को ३२ वीं उपमा में प्रयुक्त किया है। आ० सं० की प्रति के अनुसार हिमवान पर्वतो में उत्तम और ब्राह्मी औषधिओं में उत्तम मानकर पृथक् दो उपमार्ये दी गई हैं। इस प्रकार महारथिक की अन्तिम उपमा अधिक होती है। इसलिये इसकी संगति किस प्रकार करनी चाहिए ?

(१२) सूत्र स० २७ चतुर्थ संवरद्वार ब्रह्मचर्य निरूपण प्रकरणमे 'वेलंबक जाणिय' के स्थान पर आ० म० की प्रति मे 'वेलंबकजाणिय, प्रयुक्त है। ह० लि० प्रति में 'वेलंबक, को स्वतन्त्र मानकर आगे 'यानिच, माना है, आ० म० की प्रति मे 'वेलंबक, को कार्य मानकर 'वेलंबक जाणिय' प्रयोग किया हो ऐसा संभव है।

(१३) सूत्र सख्या २६ के पञ्चम संवर द्वार 'अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण मे 'गय गवेलग च न जाण जुग' आदि के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'गय गं छ । कवल जाण जुग, प्रयुक्त है। प्रथम पाठ प्रसंगानुसार उचित मालूम होता है, किन्तु आ० म० की प्रति मे 'गवेलग कवल, पाठ माना है। गवेलग और कवलको पृथक् मानना प्रसङ्ग से उचित नहीं दीखता, लेकिन 'गवेलगक और वल इस प्रकार क को स्वार्थ में मानकर 'वल, पदका सैन्य अर्थ मे प्रयोग माना जाय तो किसी तरह संगत हो सकता है।

(१४) सू० सं० २९ पञ्चम संवरद्वार के अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण मे 'वेडिम वर सरकः चुन्न' के स्थान पर आ० म० की प्रति मे 'वेडिम वसरक चुन्न, प्रयुक्त है। ह० लि० प्रति का प्रयोग जहा वेष्टिम वर सरक चूर्ण रूप खाद्य पदार्थ के अर्थ मे प्रयुक्त है, वहा आ० म० की प्रति मे 'वसरक चूर्ण मानने पर अर्थ क्या माना जायगा।

(१५) सू० सं० २६ के पञ्चम संवर द्वार अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण मे 'वल विउल कक्खड पगाढ दुक्खे के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'वल विउल तिउल कक्खड पगाढ दुक्खे, प्रयुक्त है। यहां 'तिउल पदका प्रयोग किस अर्थ मे किया गया है ? विपुल के साथ अर्थ संगति कैसे ?

(१६) सू० सं० २६ के पञ्चम संवर द्वार के भावना प्रकरण में 'एवमादिणु फासेसु, के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'एवमादित्तिसु गिज्झियव्व न फासेसु,

प्रयुक्त है। यहाँ 'गिम्फियन्व', का प्रयोग अस्थानीय है, इसका प्रयोग मुम्बियन्व आदि क्रिया पदों के साथ होना चाहिए।

(१६) सू० सं० ६ के पञ्चम संवर द्वार क भावना प्रकरण में 'मणुम महप्सु' क स्थान पर आ० सं० की प्रति में 'मणुम महप्सु' अनुपयुक्त है। ज्ञात होता है कि म के स्थान पर भूल से म प्रयुक्त हो गया है।

(१७) सू० सं० ७ द्वितीय आक्षेप के इसी प्रकरण में 'गाम पाठिषाभा क स्थान पर आ० सं० की प्रति में 'गाम पाठिषाभा' ऐसा प्रयुक्त है। प्रसंग के अनुसार अर्थ में इसकी सगति कैसे होगी ?

(१६) सू० सं० ७ द्वितीय आक्षेप क इसी प्रकरण में "दासी दास मयक भाइ झका" क स्थान पर आ० सं० की प्रति में 'दासिदास मयक भाइझका' प्रयुक्त किया है 'इसमें दासि को ह्रस्व विधान किस नियम क अनुसार होगा।

विद्वान् मुनिराजा और भागनाम्बासी अमखोपासकों से नियेवम है कि उपराल पाठ में अहाँ असगति है एक क्षिये अपनी युधि और धारणा का उपयोग करें इससे ज्ञानावरणीय दमक अपोपरामके घाव ही मइती आगम सेवा भी होगी। तथा हानवाले प्रकारान भूल सं वजेंगे और मुद्रित संस्करणों में संशोधनार्थ मार्ग दर्शन होगा। अतएव एम आगम सेवा क कार्य को उपेक्षा की वस्तु नहीं समझें। आशा है एव म् और एये० स्था० दोनों समाज के आगम रसिक इस ओर लक्ष्य देंगे।

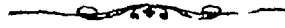
सुश्रेष्ठ पद्मवितेनालम्

अमुबादक



प्रति परिचय

संशोधन में प्रयुक्त प्रतियां



श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र के संशोधन में निम्न लिखित मुद्रित एवं हस्त लिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है।

१--श्री वर्द्धमान जैन आगम मन्दिर पालीताणा द्वारा प्रकाशित एवं आगम मन्दिर के शिलालेखों की प्रतीक स्वरूप जो कि तपोगच्छीय श्री सागरानन्द सूरिज द्वारा संशोधित है। यह लम्बे साईज पत्राकार में मुद्रित पृष्ठ संख्या १९ है। 'त' श्रुति का विशेष प्रयोग है। अनवधानता एवं मुद्रण दोष से कई स्थलों पर पाठस्खलन दृष्टि गोचर होती है।

२--आगमोदय समिति, सूरत से प्रकाशित सटीक प्रति पत्राकार रूपमें मुद्रित यह प्रति प्रायः शुद्ध है।

हस्त लिखित प्रतियां—

३--प्रश्न व्याकरण हस्त लिखित 'अ' प्रति इसमें १०४ पत्र हैं। सार्थ होने प्रत्येक पत्रके दोनो बाजू ६-६ पक्तियां हैं। इसकी लम्बाई करीब १० इंच और चौड़ाई प्रायः ४ इंचकी है लिपि सुवाच्य होनेपर भी पूर्ण शुद्ध नहीं है। इसकी प्रशस्ति 'सर्व १८४६ ना भाद्रपद मासे कृष्ण पक्षे सप्तमी शृगुवासरे। लिपिकृत सा जोद्धतादा मेवासा ज्ञाती पोरवाड वृध सारत।

४--प्रश्न व्याकरण हस्तलिखित 'ब' प्रति का लेखन दो हिस्सों में समाप्त किया गया है। प्रथम हिस्से में पांच आस्रवद्वार का वर्णन है। सार्थ होने में प्रत्येक पत्र दोनो बाजू ६-६ पक्तियां हैं। पत्रों की लम्बाई लगभग १० इंच और चौड़ाई प्रायः ४ इंच है। लिपि सुवाच्य है एवं पाठ प्रायः शुद्ध है। प्रथम हिस्से की पत्र संख्या ३ और द्वितीय हिस्से की २८ है। द्वितीय हिस्से में सप्तद्वार का वर्णन है। इतः

लेखन कार्य मेरुता नगर में पूर्ण किया गया है। इसकी प्रशस्ति निम्न प्रकार स है—
 “संवत् १८१६ रा वर्षे मिति आसोज सुव द्वादसमी बुधवार तिथि कृत्वा बहुमांस
 रिप बुरग हासेण आत्मार्ये ।” निम्न लिखित तीन प्राचीन हस्त लिखित प्रतिषां श्री
 श्वे० स्या० जैन मन्थ मण्डार, जयपुर से प्राप्त हुई। इन प्रतिषों क संकेत क स और
 ग प्रति रक्खे हैं। इन प्रतिषों का उपयोग अन्य प्रतिषों में विशेष पाठ भेद दृष्टिगत
 होने पर किया गया है।

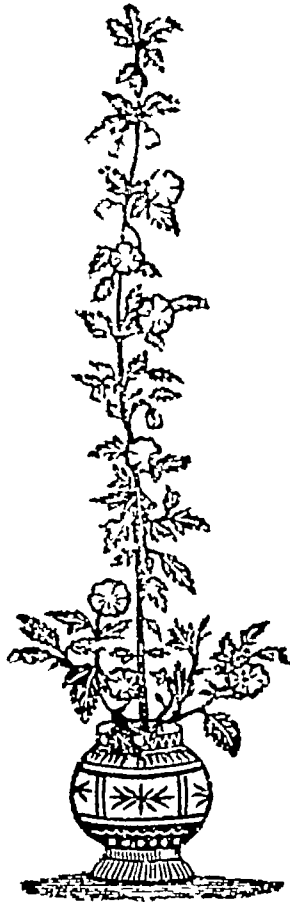
५—हस्त लिखित ‘क’ प्रति—इस प्रति में अणुचरोत्ववाद् के उपसहार-पाठ के
 वाक् ,यमो अरिहंताय’ से सूत्रारम्भ किया गया है। यह मात्र मूल पाठ की प्रति
 है। पत्र सं० २१ है। प्रति पृष्ठ में प्राय १६-१७ पंक्तियां हैं। लिपि सुभाष्य और कई
 अगद् पढ़ि मात्रा के प्रयोग वाली है। स्थान स्थान पर पद् विभाग के चिन्ह किए
 हुए हैं। अंतक क प्रमाद् की स्मरना के अलावे प्रति बहुत कुछ प्रमाण में सने
 योग्य है। इस प्रति का प्रशस्ति लेख निम्न प्रकार है ‘संवत् १६०० वर्षे कातिक सुषी
 पंचमी रवियासरे श्री त्याठ पुत्र तावला हासन लिखित गौडम्ये ।’

६—हस्त लिखित ‘ख’ प्रति—यह प्रति संवत् १६२० की लिखी हुई है। इसमें
 मात्र मूल पाठ है। लिपि सुन्दर सुभाष्य एव पढ़ि मात्रा की हासे हुए भी प्राय शुद्ध
 है। कहीं कहीं अर्थ सम्बन्धी टिप्पणियां अंकित की हुई हैं। पत्र संख्या ५६ है।
 प्रति पृष्ठ में ११ पंक्तियां हैं। अंतक की प्रशस्ति निम्न प्रकार है—“संवत् १६२० वर्षे
 शाके १४८६ मघर्षमाने महा मांगल्य पद् । वैशाख सुषी ११ शनि दिने । महा अयि
 अपिराय अपि श्री नानडी प्रसादात् भावर मुनि पठनार्थं । वीरजी मुनिना लिखित ।
 श्री शुभं भवतु लेखक पाठकयो । कल्याण मस्तु श्री रस्तु ॥

७—हस्त लिखित ‘ग’ प्रति—यह प्रति सटीक और सर्व भेद्य है। लिपि की
 सुन्दरता क साथ साथ पाठ प्राय शुद्ध है। त्रिपाटी होने से प्रति पृष्ठ में मूल पाठ
 और ऊपर नीचे टीका लिखी गई है। पत्र संख्या ६२ है। प्रति पृष्ठ में ४-६ और
 कहीं यूनाधिक मूल पाठ की पंक्तियां हैं। पत्र की लम्बाई चौड़ाई प्राय १०×४
 इंच है। अंतिम पृष्ठ नहीं होने से प्रशस्ति लेख नहीं माहूम किया जा सकता फिर
 भी प्रति का पढ़ि मात्रा में लेखन एव कीट कवकित हास देखते हुए लेखन-समय
 कम से कम ४००-२०० वर्ष पूर्व प्राप्त होता है।

सुत्रिन प्रतिषों में एक ज्ञान विमल सूरि कठ टीका की सटीक प्रति है जो
 मुक्ति विमल जैन मन्थमाला के मन्थाद् ७ में अडमहावाद् स प्रकारित है। अमब

देव सूत्र की टीका में हममें विशेषता है कि प्रति शब्द देकर कुछ सहूलियत की गई है। मूल पाठ आगमोदय समिति के आधार पर है। केवल उसको छोटे छोटे विभाग कर के प्रकाशित किया है। हमके दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में पांच आस्रय और दूसरे भाग में मंत्र इस प्रकार दो भागों में छपा है। कहीं २ टिप्पण में वटिन शब्द का गुजराती नामान्तर भी दिया है। इति।



श्रीगुरुभरणा प्रसीदन्तु

प्राक्कथन—

श्रुतसेवा—

यह एक निर्दिष्ट सत्य है कि श्रुत सेवा बड़े पुण्य का कार्य है। माण्डूक्य के बिना श्रुत सेवा का अवसर प्राप्त नहीं होता। मंत्रा अतिशय शुभोच्य है कि गुरु कृपा से मुझे ऐसा अवसर प्राप्त हुआ तथा कृपि एक भद्राके साथ विद्वानों का भी सहयोग मिलता रहा जिससे प्रस्तुत कार्य में बड़ा फल मिखा है। मैं अनुभव करता हूँ कि श्रुत सेवा ससार के तापत्रय से सन्तप्त प्राणिमों को शान्ति प्रदान करमेवाली है। आ रोग, शोक एवं दुःख को मूलना चाहें उनको अचरय विधि पूर्वक श्रुतारामन करना चाहिए। शास्त्र ने इसी को बंधन मुक्ति का प्रधान कारण कहा है। जैसे कि—ज्ञान का प्रकाश होने पर अज्ञान एव मोह सूर्य किरण में अन्धकार की तरह विक्षीन हो जाते हैं और मोह के अभाव से जब राग, द्वेष का विच्छेद हो जाता तब एकान्त सुख रूप मोह की प्राप्ति होती है। यह महिमाशाली ज्ञान प्रकाश श्रुत सेवा का ही परिणाम है। स्वर्गीय विष्णु वैमथ का प्रत्यक्ष ज्ञान, भयङ्कर यमयातना का रोमाञ्चकारी वर्णन तथा निगूढ गुहामिहित सम आत्मतत्त्व, सिद्ध गति आदि का प्रदर्शन सिवाम श्रुत सेवा क दूसरा कौन कर सकता या करा सकता है? बिना श्रुत सेवा क पसा ज्ञान प्रकाश सुलभ नहीं।

श्रुत मन्थ या शास्त्र किसी काम से बड़े, इसके दो प्रकार हैं। एक सन्धक् श्रुत और दूसरा मिथ्या श्रुत। अन्धों के द्वारा जो स्वेच्छापूर्वक केवल बुद्धि और कल्पना क बल पर लिखे गये हैं। जिनको पढ़ने व सुनने से काम, क्रोध, मोह की वृद्धि हो जैसे कामशास्त्र अक्षरात्मक या कथा उपन्यास आदि सगु शास्त्र नहीं है। इनको पढ़ने या सुनने से श्रुत सेवा का लाभ नहीं जाता क्योंकि ये राग द्वेष की वृद्धि क कारण होन स करार हैं। लौकिक ज्ञान और अंधन विषय की जानकारी क अनिश्चित इनस का आत्मिक लाभ प्राप्त नहीं जाता। क्योंकि प्रत्येक पढ़ लेनेपर भी

१. गायस्त्रि सन्ध रस पगासगाण अभाण्य मोहस्त विषयव्याप।

रागत्म इ सन्धय संलपयं १ राग साक्षरं समुच्य मे क्वं। २० ३२।२।

ये सुशास्त्र के एक श्लोक के बराबर भी नहीं होते। कहा भी है--'श्लोकोवरं परम-
तत्त्व पथ प्रकाशी, न ग्रन्थ कोटि पठनं जनरंजनाय । सजीवनीति वरसौषधमेकमेव,
व्यर्थश्रमस्य जननो न तु मूलभार. ॥१॥ अर्थात् परम तत्त्व को प्रकाशित करनेवाला
एक श्लोक भी अच्छा किन्तु जनरञ्जन के हेतु करोड़ों ग्रन्थों का पठन अच्छा नहीं।
संजीवनी जड़ी का एक टुकड़ा अच्छा परन्तु व्यर्थ श्रम देनेवाला मूला गाड़ी भर भी
अच्छा नहीं। सुशास्त्र की कितनी महिमा है? मनोरंजक साहित्य करोड़ों भी सुशास्त्र
के एक पद की तुलना में नहीं आ सकते। सुशास्त्र का वह एक श्लोक आत्म-जागरण
करता है, जो अन्य साहित्यों से नहीं होता। ऐसे परम पदों का पठन मनन ही
मंगलमय श्रुत सेवा है।

जैन साहित्य में आगम—

यो तो अविंश जैन साहित्य ही 'परमतत्त्व पथ प्रकाशी, इस उक्ति के अनु-
सार त्याग विराग की शिक्षा देनेवाला है, क्योंकि इनके प्रणेता प्रायः त्यागी साधु
थे। अतः इनको सुशास्त्र कह सकते हैं, फिर भी इन सब साहित्यों में आगम का
स्थान बहुत ऊँचा है। वैदिक साहित्य में वेद और इस्लाम साहित्य में कुरान शरीफ
की तरह जैन साहित्य में आगम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आगम का अर्थ है विधि-
पूर्वक जीवादि तत्त्वों को समझानेवाला प्रामाणिक शास्त्र। अन्यत्र कहा गया है--
'आप्तवचन मागम, आगमश्चोपपत्तिश्च सम्पूर्णं दृष्टिलक्षणम् । अतीन्द्रियाणामर्थाना
सद्भाव प्रतिपत्तये ॥१॥ आगमोह्याप्तवचन--माप्तं दोपक्ष्याद्विदुः । वीतरागोऽनृतं
वाक्यं न ब्रूयाद्धेतुत्वसमवात् ॥२॥ दश० । अर्थात्—अतीन्द्रिय पदार्थों की सत्ता
समझने के लिये आगम और उपपत्ति ही सम्पूर्ण दर्शन का लक्षण है ॥१॥
आप्त वचन को आगम कहते हैं और जिनके दोषों का क्षय हो चुका वे आप्त हैं।
दोष नहीं रहने से वीतराग असत्य वचन नहीं बोलते, क्योंकि वहाँ असत्य का कोई
कारण नहीं रहा ॥२॥ उपरोक्त विचार से पाठक समझ गये होंगे कि वीतराग वाणी
को आगम कहते हैं। अतीन्द्रिय विषयों का प्रामाणिक निर्णय आगम से ही हो सकता
है। अतः धर्म मार्ग में * इसी को प्रामाणिक पद प्राप्त है। समस्त साहित्य में
आगम ही विशिष्टता इसलिये है कि--“आगम युक्ति विरुद्ध नहीं होता और सद्-

* जम्हा न धम्ममग्गे, मोत्तूणं आगम इह पमाण
विज्जइ छउमत्थेण, तम्हाएत्थेव जइयव्व ॥

युक्ति भी आगम से विमुक्त नहीं जातो। एक-दूसरे का अनुगमन करते हुए आगम और युक्ति ये दोनों सत्य के ज्ञान को स्थिर करने में समर्थ होते हैं। जैसे कि—
 जुष्टीए अविच्छिन्नो सद्वागमो, सावि तप भिरुच्छि। इय अय्योएय्यानुगर्ण, उमर्ण
 पडिवसि हेउसि। पंचारक्त ॥४५॥

इस प्रकार का गुणसम्पन्न आगम बीतराग बचन ही हो सकता है अन्य नहीं।

शास्त्र का नाम

प्रमथ्याकरण्यानि—पय्यावागरण्याई वा पय्यावागरण वसा है। नही और समवायाङ्ग सूत्र में पय्यावागरण्याई नाम रक्खा गया है। प्रम का अर्थ पूछना और व्याकरण का अर्थ उचर है। बहुतसे प्रभोत्तर ज्ञान से इसका नाम प्रम व्याकरणानि ऐसा बहुवचनान्त पद रक्खा गया। जैसे कि टीकाकार अभयदेव सुरि ने लिखा है—प्रम प्रतीत, तन्निर्वचन-व्याकरणम्। प्रमानाञ्च व्याकरणानाञ्च योगात् प्रम व्याकरणानि, (सम० १४५) नन्वी और प्रमव्याकरण के टीकाकार ने भी इसी अर्थ को माना है।

दूसरा नाम है पय्या वागरणवसा, इसका प्रयोग स्थानाङ्ग में मिलता है। स्थानाङ्ग के दशम खान में कहा है कि पय्यावागरण वसा के दश अभ्ययन हैं, “टीकाकार भी इसी नाम से अर्थ करते हैं, जैसे—प्रम व्याकरण दशा इहोक्त रूपा न। दोनों नाम प्राचीन हैं फिर भी ज्ञात होता है कि प्रम व्याकरण दशा यह नाम प्रम व्याकरणानि से कम भसिद्ध वा। कारण भगवती समवायांग और नन्वी में प्रम व्याकरण नाम का ही उल्लेख मिलता है। इसके ५ आक्षय और ५ संवर रूप से दश अभ्ययन मिलत हैं। अतः इसका नाम प्रम व्याकरण दशा अधिक ठीक लगता है किन्तु श्वेताम्बर परम्परा के भाष्यों में प्रायः प्रम व्याकरण नाम ही प्रामाणिक माना है। अधिकारा शास्त्रीय प्रयोग और शिगम्बर साहित्य में भी ‘पय्य वापरण’ नाम उल्लेख है, अतः प्रम व्याकरण नाम ही अपयुक्त समझना चाहिए। आप कहेंगे कि इसमें प्रम विद्या का सम्बन्ध नहीं है, फिर प्रम व्याकरण यह नाम कैसा? उत्तर यह है कि सुधमा स्वामी ने अपन शिष्य जम्बू के प्रम पर आक्षय, संवर का प्रतिपादन किया है, इसलिए इसको प्रम व्याकरण कहने में बाधा नहीं है। दशिय—गाम्मटसार की टीका में भाष्यार्थ न लिखा है कि—शि वप्रनानुत्पत्तया कपारणुर्बिधा व्याकियन्त परिमन्—उग-प्रम व्याकरणम्।

प्रश्न व्याकरण का स्थान

प्रस्तुत प्रश्न व्याकरण शास्त्र में उपरोक्त आगम लक्षण मिलते हैं इसलिये इसको आगम कहने में कोई बाधा नहीं है। अब यह विचारना है कि प्रश्न व्याकरण का आगम में कौनसा स्थान है ? वह कितना महत्त्व रखता है ? (दशवैकालिक सूत्र की भूमिका में यह बतला दिया गया है कि) श्वे० सम्प्रदाय की मूर्ति पूजक और अमूर्ति-पूजक दोनों सम्प्रदायों के मान्य आगम ३२ हैं। आवश्यक से अतिरिक्त अङ्ग, उपाङ्ग, मूल और छेद के विभाग से ३१ आगम होते हैं। उनमें अङ्ग का स्थान सर्व प्रथम है। सामान्य रीति से देखा जाय तो सभी आगम अङ्ग प्रविष्ट और अङ्ग बाह्य इन दो भेदों में आ जाते हैं। कालिक एवं उत्कालिक रूप से अङ्ग बाह्य शास्त्रों को दो श्रेणियों में विभक्त कर नन्दी सूत्र में अङ्ग प्रविष्ट १२ कहे गये हैं। जैसे कि--से किं त अग प्रविष्टं २ दुवालसविह ५० त०--“आयारो १ सूर्यगडो २ ठाणं ३ समवाओ ४ विचाहपन्नत्ती ५ नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अतगडइताओ ८ अरुणुत्तरोववाइयदसाओ ९ पण्हावागरणाइ १० विवगसुय ११ दिट्ठिवाओ १२” इनमें प्रश्न व्याकरण का स्थान दशम है। गणपति के मङ्गलमय शब्दों में तीर्थंकर भगवान् की वाणी का इसमें संग्रह है। इसका मूलरूप समवाय-अङ्ग सूत्र और नन्दी में द्वादशाङ्गी का परिचय देते हुए, प्रश्न व्याकरण का भी वर्णन आता है--

प्रश्न व्याकरण सूत्र के दो रूप हैं एक प्राचीन और दूसरा अर्वाचीन। समवाय-अङ्ग और नन्दी आदि सूत्रों में द्वादशाङ्गी के अन्तर्हित जो प्रश्न व्याकरण का परिचय मिलता है वह इसका प्राचीन रूप है। पूर्वकाल में अङ्गुष्ठ आदि प्रश्न विचार्यों और दिव्य संवाद इसमें दहे गये थे। जिसके लिये नन्दी सूत्र में कहा है कि १०८ प्रश्न पूछे हुए और १०८ अप्रश्न बिना पूछे तथा १०८ प्रश्नाप्रश्न-पूछे या बिना पूछे दोनों तरह से शुभाशुभ कहनेवाली विद्या है। अङ्गुष्ठ प्रश्न, बाहु प्रश्न और आदर्श प्रश्न विद्या कही गईं। ऐसे अन्य भी विविध अतिशय विद्यार्थों और नागकुमार सुपर्ण कुमार आदि के साथ दिव्य संवाद बताये गये हैं। परिमित वाचना और इसका एक ही श्रुत स्वरूप है। ४४ अध्ययन और ४५ ही उद्देश व समुद्देशकाल कहे गये हैं। उसका पद परिणाम ६२ लक्ष १६ हजार लिखा है। समायाङ्ग में कुछ विचार्यों और आचार्यों भाषित, प्रत्येक बुद्धभाषितादि का विशेष उल्लेख मिलता है। इन दोनों में ४५ अध्ययन बताये गये हैं, किन्तु स्थानाङ्ग सूत्र के दशम स्थान में प्रश्न व्याकरण

इं दश अध्ययनों का चरहंख मिलता है इसिए—'पण्ड्यावागरणं दसाणं वस अन्त
 दशा प त० उपमा सखा, इतिभासिगाई, आयरिय भासिगाई, ओमग पसिगाई,
 कामल पसिगाई, अहाग पसिगाई, अंगुट्टपसिगाई, बाहुपसिगाई ।" उपरोक्त दश
 अध्ययनों में म प्रथम दश का द्वाइकर रोप न विषय और नाम की दृष्टि से सम
 पायाज्ञ के साथ मल खाते हैं । फिर भी यह प्रम खड़ा रहता है कि मन्दी और मन्-
 पायाज्ञ में इसके १५ अध्ययन बहे हैं और स्थानाज्ञ में दश । विषय की समानता
 शन पर भी यह अन्तर कैसे ? टीकाकार ने इसका कोई समाधान नहीं किया, कथक
 न्त बरूप वाला प्रम व्याकरण बरा यहाँ नहीं है, इतना ही लिखा है । जैसे कि—
 न्त व्याकरणं दशा इहोकरुपा न, स्वा० १० टा ॥ उपलब्ध प्रमव्याकरणं क अउ
 म र्गित्ता गया है कि—पण्ड्यावागरणे यं णो मुयकर्मणो वस अन्तपया पण्ड्यरागा
 म्गु धय विवस्तसु उरिसिगति,—प्रमव्याकरणं में एक कुत रूध और दश
 अध्ययन हैं दश विनों म ही इसका उद्वेरा हाता है । आवि ।

मसे निष्पत्त यह निकलता है कि प्रम व्याकरण हा है । इन दोनों म वलें
 मान काल में दश अध्ययनवाला प्रम व्याकरण ही उपलब्ध है । आखर एव संवर
 वा नमें प्रतिपादन किया गया है । ४५ अध्ययन पर व्याख्या करते हुए टीकाकार
 भाष्यनयदेव मूर्ति लिखते हैं—'यद्यपीहाध्ययनानां वरात्वाद् वरीवोदशनकाला
 भर्ति नवार्पणानन्तराज्येषया पञ्चवर्षादिर्शावित संभाव्यते, इति पठयाकी
 स च विकल्प ।

मान में अध्ययन दश होने से उद्वेरा काल भी दश होते हैं,
 की अपरा ४५ का कथन सम्भव होता है । उपरोक्त विवरण
 कि टीकाकार के समय में प्रम विद्यावाला सूत्र वाचनान्तर माना
 इन व्याकरण का दूसरा रूप है ।

[में खेताम्बर सम्प्रदाय की तरह दिगम्बर सम्प्रदाय भी द्वाइ
 शास्त्री का मानती है । इनो क नाम भी कुछ विराष्टता
 के साथ विषय मिलान-जुगत हैं । अल्पमात्र ही अन्तर
 म कहा के स्थान पर 'प्याइ यम्म कहा' 'उवासग दसा' क स्थान
 और 'पण्ड्यावागरणाई के स्थान में पण्ड्यावरणां, नाम मिलता
 प्राय मिलती है । स्थानाज्ञ और समवायाज्ञ आदि की पर संख्या
 किन्तु यामें सत्यन एव अनुश्रुतिमें प्राप्ति स्थान कारण ठाठ होता

है। अन्तु, हमे यहाँ प्रश्न व्याकरण के लिये ही विचार करना है। प्रश्न व्याकरण के लिए श्री वीरसेनाचार्य अपनी धवली टीका में निम्न परिचय देते हैं—‘परमार्थ-रणाणाम अंगं तेणार्जदत्तकख सोलह सहस्स पदेहि ६३१६००० अक्खेवणी, निक्खेवणी, संवेयणी, सिंवेयणी चेदि चउविंहाओ कथाओ वणोदि। तथा अक्खेवणीणाम छद्दव एवपयत्थाण सख्व-दिगन्तर-समया-तर णिराकरण सुद्धि करेती परुवेदि। उक्त च—‘आक्षेपणीं तत्त्वविधान भूता’ विज्ञपणीं तत्त्व-दिगन्तशुद्धिम्। संवेगिणीं धर्मफल प्रपञ्चा, निर्वेगिणीं चाह कथा विराणाम। ७२। ५५हादो ददणद्ध-मुद्धि-चिन्ता-ल ह लाह-सुह दुक्ख-जीविय-मरण-जय-पराजय-ण म-दव्वायु-सखच परुवेदि। अर्थात् प्रश्न व्याकरण नाम का अंग तेरा नवे लाख स लह हजार पदों के द्वारा आक्षेपणी, विज्ञेपणी, सवेदनी, निर्वेदनी इन चार कथाओं का तथा (भूत, भविष्यत् और वतमान काल सम्बन्धी धन, धन्य, लाभ, अलाभ, जीवित मरण, जय और पराजय सम्बन्धी प्रश्नों के पृष्ठों पर उनके) उपय का वर्णन करता है, जो नाना प्रकार की एकान्त दृष्टियों का और दूसरे समयों (सिद्धान्तों) का निराकरण पूर्वक शुद्धि कर के छ द्रव्य आर नों प्रकर के पदार्थों का प्ररूपण करती है उसे आक्षेपणी कथा कहते हैं। कहा भी है—तत्त्वों को निरूपण करनेवाली आक्षेपणी कथा है। तत्त्व से दिशान्तर को प्राप्त हुई दृष्टियों का शोधन करनेवाली अर्थात् परमत की एकान्त दृष्टियों का शोधन करके स्वसमय की स्थपना करनेवाली विज्ञेपणी कथा है। विस्तर से धर्म के फल का वर्णन करने-वाली संवेगिणी कथा है और वैराग्य उत्पन्न करनेवाली निर्वेगिणी कथा है। यह प्रश्न व्याकरण नाम का अंग प्रश्न के अनुसार हत-नष्ट-मुष्ट-चिन्ता-लाभ-अलाभ-सुख, दुख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु और सख्या का भी प्ररूपण करता है। धवलापृ० १०४ से १०६।

उपरोक्त धवला के उल्लेख से प्रकट होता है कि प्रश्न व्याकरण में आक्षेपणी आदि चार कथाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन था और प्रश्न के अनुसार हत, नष्ट, मुष्ट, चिन्ता, लाभ, अलाभ, सुख, दुख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु और सख्या का भी प्ररूपण किया गया था। इसमें प्रधानता से चार कथाओं को कह कर उन्हीं के साथ प्रश्न-विद्या का भी होना कहा गया है। किन्तु गोपट-सार में प्रश्न-विद्या को मुखार्थ मान कर पचान्तर में शिष्य प्रश्नानुरूप से चार कथाओं का वागरण माना गया है। जैसे कि—‘प्रश्नस्य दूतवाक्य नष्ट मुष्टि चिन्ता, दि

रूपस्यायत्निकान्त गोपरो धनधान्यादि सामाज्यम सुखदुःख जीवित मरण जय परा
 खयादि रूपो व्याक्रियते—व्याख्यायते यस्मिन् तन्-प्रत्यय व्याकरणम् । अथवा शिष्य
 प्रत्ययानुरूपतया अथक्षेपणी विक्षेपणी, संवेपनी, निर्वहनी अति कथाश्रुतिर्धिषा
 व्याक्रियन्ते यस्मिस्तत् प्रत्यय व्याकरणम् नाम । गाम० जीष-हाय० जी० प्र० टी०

प्रथमतो नष्ट मुष्पादि प्रथम का सामाज्यम आदि रूप फल जिसमें कहा जाय
 वह प्रत्यय व्याकरण है । अथवा शिष्य के प्रत्ययानुरूप जिसमें अथक्षेपणी आदि अर
 कथार्ये कही जाय वह प्रत्यय व्याकरण है । उपरोक्त विचार से फलित हवा है कि
 विगम्भर परम्परा में भी प्रत्यय व्याकरण के दो रूप मान गये हैं ।

सूत्र का वर्तमान रूप कथ से और क्यों ? प्रत्यय व्याकरण का परिचय पढ़ कर पाठक विचारेंगे कि
 इसमें से प्रत्ययविद्या क्यों आरंभ कर ली गई ? और यह
 इस रूप में कथ से है ? यद्यपि इस प्रत्यय का व्योरेवार
 समाधान करना हमारा शक्ति और उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री से बाहर की बात
 है तथापि क्याकथासूत्र सप्त साधनों से कुछ विचार किया जाता है । नन्दा
 और समवायाङ्ग के उल्लेख से प्रतीत होता है कि इनके जन्म काल में
 प्रत्यय विद्यावाले प्रत्यय व्याकरण की ही प्रतिष्ठित हैं । पालक संस्कार का प्रतिपादन
 कर बाबा यह सूत्र यदि शाक्येयन के समय हुआ तो अक्षय उसका प्रादुराङ्ग के
 परिचय में उल्लेख होता किन्तु नन्दी से समवाय का सूत्र परिचय में कुछ बातें
 विशेष बता कर भी अक्षय संस्कार का वर्णन की नहीं दिखाया गया । विगम्भर
 परम्परा के अक्षय सप्तम में जैसे प्रत्यय विद्या के साथ अथर्वविद्य कथाओं का प्रत्यय
 व्याकरण में परिचय दिया गया, वैसा ही वा यहाँ निर्बेरा नहीं । इससे हमारे जैसे
 छात्र विचारक की ता यही धारणा होती है कि ऐतिहासिक के द्वारा जोर निर्वाण
 ९- में जो शास्त्रों का पुस्तकाकार लेखन कराया गया उसमें समवायाङ्ग के लेखन
 तक ता प्रत्यय विद्यावाला प्रत्यय व्याकरण का किन्तु उसका ज्ञान सप्तवाधारण को
 सुत्रम नहीं था । केवल परम्परा से परिचय मात्र सब का था । जब शास्त्रों का सङ्ग
 बन तथा सङ्ग मशिन किया गया तब अनुसंगधारी आचार्यों ने आश्रय के
 स पुत्रों का अतिशय ज्ञान के योग्य न जान कर अंगुष्ठ आदि प्रत्ययों का विकास
 दिया । जैसे कि टीकाकार आचार्य अभयदेव सूत्र लिखते हैं—“इदानीं त्वाक्षय
 पंचम संस्कार पञ्चक व्याकृतिरेवोपलभ्यते । अतिशयानां पूर्वानार्यैरेतुमुगीनानाम
 पुत्रालम्बन प्रतिपत्ति पुठपापेक्षोत्तारितत्वात्-इति ।” अतएव अंगुष्ठ आदि प्रत्ययों के

स्थान में आस्रव एवं संवर के विचार को रक्खा हो। कारण यह कि प्राचीन समय में गुरु शिष्य परम्परा से श्रवणानुश्रवण ही शास्त्र रक्षा का साधन था। जब विशिष्ट ज्ञान के धारक गुरु अपना ज्ञान किमी को बिना दिये ही स्वर्गवासी हो जाते तब उनका गूढ़ ज्ञान उन्हीं के साथ विलीन हो जाता था।

टीकाकार अभय देवसूरि के प्राप्त प्रश्नव्याकरण की दूमरी पुस्तक में जो उपोद्घात ग्रन्थ हैं, उससे अवश्य प्रश्नव्याकरण में पांच आस्रव और पांच संवर का वर्णन ज्ञात होता है। उसमें प्रश्न विद्या का नाम ही नहीं है, जो मुद्रित उपोद्घात ग्रन्थ में देख सकते हैं। इस पर से अनुमान होता है कि पुस्तकान्तर में उपोद्घात के साथ मिला हुआ प्रश्नव्याकरण वाचनान्तर का हो। समवायाङ्ग में जिमका परिचय दिया गया वही वाचना लेखन काल में अधिक मान्य हो और गौण मानकर वाचनान्तर के प्रश्नव्याकरण का परिचय उसमें नहीं लिया गया हो। जो कुछ ही इतना तो सत्य है कि देवर्दिगणी के वाद् और टीका विधान से बहुत पूर्व ही वर्तमान का प्रश्नव्याकरण भी लिपिवद्ध होकर प्रकट हो चुका था।

ग्रन्थ कर्ता—

शास्त्र के मूल प्रणेता श्रमण भगवान् महावीर हैं, क्योंकि उन्होंने अर्थ रूप से इसका प्रथम कथन किया है। जैसे कि कहा है—“अथ्य भासइ अरहा, सुत्त गंथत्ति गणहरा निउण । सासणस्स हियट्ठाए, तत्रो सुत्त पवत्तर” अर्थात्—तीर्थङ्कर भगवान् के वहे हुए अर्थ को गणधर कुशलता से सूत्र रूप में ग्रथन करते हैं। आदि। अतः अर्थ दृष्टि से प्रश्नव्याकरण के कर्ता भी महावीर हैं किन्तु सूत्ररूप से शब्द रचना करने वाले गणधर कहे जाते हैं। दिगम्बर परम्परा में माना गया है कि गणधर इन्द्रभूति ने अन्तर्मुहूर्त मात्र काल में द्वादशाङ्ग की रचना की और फिर उन्होंने दोनों प्रकार का श्रुत सुधर्माचार्य को दिया। अतः गौतम गणधर ही द्रव्य श्रुत के

१ पुणो तेणिंदभूदिणा भाव सुद पज्जय परिणदेण बार हंगण चोइस पुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चैव सुहुत्तेण कमेण रयणा कदा । तदो भाव सुदस्स अथ्यपदाण च तित्थयरो कत्ता ॥ धवला १ । १ । १ । पृ० ६५ ।

तद्यथा—तदोत्तेण गोजम गोत्तेण इदभूदिणा अतो सुहुत्तेणावहारिय दुवाल सगत्थेण तेणेव कालेण कय दुवालसग गथ रयणेण गुणेहि सगसमाणस्स सुहुमारि-
यस्स गथो वक्खाणिदो । जय ध० अ० पृ० ११ ।

पना है, विन्नु गनाम्बर परम्परा का मत है कि भगवान् महावीर स शिखी को मुनिकर सभा गणधरी न चतुर्दश पूर्व की रचना की। इन इगारद गणधरी के द्वारा नव पापनाएँ हुई क्योंकि वा बचनाये समान हुई थीं। इस मायता म बतमान आगम सुधम पापना के समक जात है। अथ उपलब्ध बद्ध-शास्त्री के कर्ता सुधर्मा पाय है तब परनक्याकरण के भी सूत्ररूप स सुधमा स्वामी ही कर्ता समझने पाटिए। जैमाकि अमय १३ मूत्रि कहत है—“अस्य च भी मन्महावीर वर्तमान स्वामि मन्मर्धी पद्मम गण नायक भी सुधम स्वामी सूत्रता जम्पुरवादिन प्रति प्रणयन पिच्छिनु राख-पाडमिधयप्रवाजन प्रतिपादनपरं जम्भु ? इत्यामग्रण पूर्ण गापामाह”।

इसमें सुधमा वागो गूय रूप म अम्पू का शास्त्र का कथन किया, यह बताया गया है।

शास्त्र की भाषा अत्यन्त भाषा यद्यपि अर्धमागपी है, तथापि आचार्य का भाषा अदि म इसकी भाषा शैली में अथर्व अगार है इसकी भाषा वाग्बरी का मन्त्र प्रकृत्यायुक्त और गादिरिक है। वर्धो रीति का प्याग टान म इसमें समान का कटुता है। कियेव सर्वापवागी हाट्ट भा भाषा की बन्दिता म गण गाथागत के अन्व गुनम नहीं है। सामान्य प्राकृत के ज्ञान मात्र म इसमें प्रवेश मला टा मकता है। अदा जा मकता है कि प्राकृत म शास्त्र निर्माण का यह प्या टा अर्थ— अणुपणाय रक्वर्धे गिद्वान्तः प्राकृतं कृतं—अनुवाद करना है। तब इसमें जमा दुर्धीर बने बनावता मग ? १० शास्त्रकार का मभी प्रकारक भाषाओं का मन्त्र वागो है। अन्वमोरी मन्त्र बुद्ध पिच्छनीवा भी विद्वाना का मगापाह मिन, मन्त्रक है इगक निमाल में परी अर्थ मदाग। मन्त्रदान का गादिरिक मभाष भी वागग टा मकता है।

शास्त्रकार के भाषा गुणना यद्यपि प्रान्त वहाकरण आचार्य और संवर को बरतवाजा अनी शैली का एक ही है अथर्व जमा मन्त्र विचार मदी मिनगा कि भी यह शास्त्र इगदी आंशिक गुणना मकता है। प्रथम अन्वय में वागह मन्त्र अन्वयवादि अणुधो का मामापी और अन्वय अन्विका बकवता के प्रथम पाद में अधिवाता मिन्या है। अन्वय आति के वागो में बुद्ध हाकत है। जग मन्त्र के अन्व बकवता म अन्वय और मोह मिन्या है। अन्व विवाह है। अन्व हाकिह के अन्व म अन्वय इरमित आर विग्रह के, जिसे

चिह्नल है। अरोस को पन्नवणा मे हरोस और पोक्षण के लिये बोक्षण लिखा है। रोम मास के लिये रोम पास रोस ऐसा पाठ दिया है। वकुस को पहुम और चुंचुयाके स्थान पर वंधुयाय ऐसा पाठ है। चूलिका के स्थान पर सूयलि और महुर के स्थान मगर है। मरहट्ट मुट्टीय और आरव के स्थान पर केनल मोंढ इतना ही है। डोविलग के स्थान पर डोविलग लओस और प ओस है। केकय के स्थान ककोस और ऋक्खाग तथा रुठ के स्थान मे भरु पाठ भेद है। मृपावादी दार्शनिको का वर्णन सूत्रकृताङ्ग के प्रथम अध्ययन से मिलता जुलता है। युगलिक नरनारिओ का वर्णन जो चतुर्थ आस्रव में है, जीवाभिगम के युगलिकाधिकार के समान है। अहिंसा के वर्णनमे जिन मुनिओका परिचय है उस पाठकी उववाई से तुलना होती है। सवराध्ययन की पच्चीस भावनार्यो आचाराग के भावनाध्ययन में संक्षिप्त कही गई है। पद्धम संवर में एकविध असंयम से लेकर तेंतीस आसातना तक जो उल्लेख मिलता है उनका स्पष्ट परिचय समवायांग में और कुछ दशाश्रुतस्कन्ध मे मिलता है। ये शास्त्र प्रश्न व्याकरणगत त्रिपय के पूर्तिरूप हैं।

देश और अनार्य जाति का महाभारत में भी विशद वर्णन है। नारक वर्णन सूत्रकृताङ्ग और उत्तराध्ययन के नरक वर्णन से भावत. साम्य रखता है।

प्रतुत शास्त्र परिचय—

मुख्य त्रिपय भेद के अनुसार इस शास्त्र को हमने दो खण्ड में विभक्त कर लिखा है। प्रथम खण्डमें ५ आस्रव अर्थात् हिंसा, भूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह का वर्णन है। प्रत्येक आस्रव को स्वरूप, नाम करने का प्रकार, कर्ता और फल के भेद से ५ द्वारों में बताया है। फिर उत्तर खण्ड में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाच संवर का कथन है प्रत्येक व्रत को पाच भावनाओं से सुरक्षित बताया गया है। इसमें सर्व प्रथम मूल, फिर सस्कृत और पश्चात् अन्वयार्थ एवं भावार्थ लिखा गया है। पाठान्तर मूल मे कोष्ठक से और अधिकाश, विशिष्ट स्थलो के टिप्पण से बताये गये हैं ॥ पीछे परिशिष्ट में शब्द कोश, विशिष्ट स्थलो के टिप्पण ऐतिहासिक नाम, पाठान्तर और कथा भाग दिया गया है।

अन्तरङ्ग परिचय—

प्रथम आस्रव मे पहले हिंसा का रूप बताकर उसके ३० नाम कहे गये हैं, फिर हिंसकों के वर्णन में कहा है कि वे असयमी अतिरिती एव चंचल परिणाम वाले तथा पर दु ख देने में तत्पर होते हैं। मारे जाने वाले जन्तुओं की गणना में १३ जलचर ३२ चतुष्पद ८ उरग १६ भुज परिसर्प और पक्षियों की

जातियाँ ४७ गिनाई गई हैं। इसके बाद प्रसन्नोर्ध्व की हिंसा के विविध कारणों को बताकर पाँच स्वावरो की हिंसा के भी पृथक् पृथक् कारण बतलाए हैं। चैत्य, देव कुब और मठ आदि धर्म साधन छोड़े जाने वाले भी प्रथम आत्मव में पृथ्वी की हिंसा के कारण बताये गये हैं। हिंसा पद स्वपरा, परपरा या धर्म एवं अनर्ध स की जाय, हास्य, रति, धैर से हो अथवा क्रोध, क्षाम, मोह से हो, सभी प्रकार की धर्म, अथ या काम निमित्त से होने वाली हिंसा अधर्म का द्वार है। उस करने वाले इत सुखि व निष्प हैं।

हिंसकों में विविध प्रकार के शिष्टारी, पारधी, और मञ्जीमार आदि अनर्ध गिनाये गये हैं। हिंसा प्रधान १२ श्रेष्ठ जातियाँ और पशु पक्षी मत्स्य आदि जीव इस हिंसा के आस कर्ता कह गये हैं।

अन्त में हिंसा के फलस्वरूप मित्रनवाली मरक गति की रोमाञ्चकारी यम यातनायें विस्तार से कही गई हैं। यमयातना सुगत कर मरक स निकलनेवाले मार कीय बीच पशुगति में जाकर ३ से भी अधिक प्रकार की पराधीन यतनायें भोगते हैं फिर पंचेन्द्रिय स चतुरिन्द्रिय वेदन्द्रिय आदि क्रम से पञ्चेन्द्रिय तन्त्र के मयमय दुःखों का वर्णन किया गया है। हिंसकों के क्रिय मनुष्य अस ऐमा दुर्लभ हो जाता है कि किसी किसी को तो अनन्त काल जैसे सुधीर्ष काल के पश्चात् मनुष्य मय का क्षाम होता है। मनुष्य लोक में जो कुछे रुगड, स्रष्ट, पामन वहेरे, फाये तथा गूमे हैं ये तमाम भिरूप हिंसा के कारण स ही हात हैं। रोग, व्याधि, बिन्ता और अह्यायु तथा अकाल मरण हिंसा के ही दुष्परिणाम हैं। हिंसा मे ही जीव निर्धल, कुप्य और सुय साभाग्यहीन होता है। इस प्रकार हिंसा के कुकृत पीर प्रसु ने बताया है।

द्वारे अधम द्वार में मूठका वर्णन पाँच प्रकार स है। प्रथम मूठ का स्वरूप और फिर उमक ३० नाम हैं। आध क्षाम, भय चार हास्य स मूठ बोलनवाले चार आदि २७ कवीय अगावहारिक पुरुष गिना कर फिर एकान्तवादिभों का परिष्प किया गया है। नास्तिकवादी आदि उनमें प्रधान हैं। कुछ लोक फाल स्वभाव या भवितव्यता को ही कर्ता मानत हैं तो कोई यम या इधर या ही कर्ता बता हर्ता मानत हैं। य सभी एकान्त बधन शास्त्र में सिध्या कह गये हैं। अयहारवाद, तिधय बाद और ज्ञानवाद एव क्रियावाद य भी एसा ही समझना चाहिए। निम्ना, पैशुन्य के अतिरिक्त कन्याशोक, अयशोक, मृष्यशोक तथा गयालीक का बड़ा मूठ और

दुर्गति का कारण कहा है। हिंसाकारी वचन सत्य होकर भी मृषा के समान है। पशुओं का दमन करो, अश्वदि खरीदो, और बेचो, खेत जोतो, आदि ३० प्रकार के मावद्य उपदेश सत्यव्रती मुनि के लिये बाधक कहे गये हैं। इसकी जीविका बन्द कर दो तथा कुछ भी दान मत दो यह भी भूठभा है।

भूठ बोलनेवाला दुर्गति में भटकता है। शरीर और वचन से विकल होता है। पराधीन नीच वी सेवा करनेवाला धर्म-श्रवण से वञ्चित रहता है। सत्सेप में समझना चाट्टिण दि दु ख, दौर्भाग्य, अधीर्ति और तिरस्कार भूठ के मुख्य फल है। तीसरे अध्ययन में चोरी का वर्णन है

बिना दिये तथा ग्यामी की अनिच्छा से किसी पदार्थ को ले लेना चोरी है। चोरी का स्वरूप और नाम कह के फिर चोर एवं चोरी के प्रकारों का कथन है। सामने आनेवाले को मारनेवाले १ शृणु लेकर नहीं देनेवाले २, सन्धि को तोड़नेवाले ३, राजनिषिद्ध कार्य को करनेवाले ४, ग्राम घातक-पुर घातक पन्थ घातक ५, राजकीय हासिल लेनेवाले अधिकारी आदि अनेक प्रकार के चोरकहे गये हैं। चोरी के प्रकार-लोभी राजा लोग सैन्य बल से लूट कर दूसरों का द्रव्य हठात् हण करते हैं। वैसे कुछ चोर समूह बना कर अटारी में पथिकों को और दुर्गिया चलनेवाले जहाज एवं सार्थ को लूटते हैं। ग्राम नगरादि में निर्दयता से लूट मचाते हैं। यहा युद्ध और समुद्र का विस्तृत वर्णन किया गया है। काल विकाल में घूमते हुए चोर, पर्वत, नदी, श्मशान अथवा वन के शून्य स्थानों में क्लेश सहते रहते हैं। ये लोग स्वजन जनों में दूर और अशन वसन के अभाव से विकल निन्दित जीवन से जीते हैं। जब कभी पकड़े जाते हैं तब राज्य-पुरुषों द्वारा विभिन्न प्रकार के बध बन्धन शूलारोपण आदि नरकतुल्य दु खों को एक ही साथ भोगते हैं। यहा पूर्वकाल में दिये जानेवाले अनेक प्रकार के दण्डविधान बताये गये हैं। परलोक में तथा नरक तिर्यञ्च योनि में और मनुष्य भव में चोरी के लिये दुर्गति दिखाई गई है। चोरी के फल में मनुष्य होकर भी जीव अनार्य क्रूर एवं वर्म रहित जीवन बिताता है। परिणाम स्वरूप संसार समुद्र में वह दीर्घ काल तक भटकता रहता है। संसार समुद्र का यहा सर्वाङ्ग पूर्ण वर्णन किया गया है।

चौथे अध्ययन में मैथुन का वर्णन है-

यह तप सयम का विघ्न और रोग, शोक, जरा, मरण का हेतु है। चिरपरिचित होकर इसका परिष्कार महा दु खदायी है। इसके ३० नाम गिनाकर फिर सेवन

करने वालों का परिचय दिया गया है। जैसे—४ ज्ञाति, ४ वय, मनुष्य और पन्धे-
न्द्रिय तिर्यग्य इसका सामान्य रूपसे आसबन करने वाले हैं। अत्यन्त शुभ लक्षणों
से विराजमान और ब्रह्म स्रष्टा की विशाल राग्य लक्ष्मी के भोक्तृ बनकर भी प्राक-
वर्ती भोगों से अतृप्त रह जाते हैं।

मैथुन सद्मा में आसक्त मनुष्य परस्पर लड़ते हैं। वैभव नारा और स्वजन नारा
को प्राप्त करते हैं। इस मैथुन क आचरण से मित्र भी शत्रु बन जाते हैं, और शत्रु
का नारा होता है। इस दुराचार के द्वारा कीर्तिमान् भी अकीर्ति के अधिकाारी होते,
सर्वथा स्वस्थ भी शीर्षरोगी बन जाते। कुरीत से उभय लोक विगड़ते हैं। मैथुन क
निमित्त से जनसहायकारी वक्त्र २ संग्राम हुए हैं। यह लोकोक्ति स्यात है कि—“वैर
तरु धी क्षियां हो जब हैं। इन हुए संग्रामों में सीता, श्रौपदी, पद्मावती आदि ८-१०
क नामों का उल्लेख किया गया है। अतृप्त संसार में सुदीर्घ काल तक भवभ्रमा
इस विकृत कुरीत मनन का बुरा फल है। लोकशास्त्र दानों से निन्दित है। भ्रम
शास्त्र तो निषेध करता ही है। साथ ही नीति भी इसे गद्दित करती है। पंचम अध्या
यन में परिग्रह का बखन है। ममता क साथ वस्तुओं के संग्रह करने को परिग्रह
कहते हैं। इसका मूल है तुष्या और काम भोग है फलफूल। बुरा के रूपक से बला
कर प्रकृत सूत्र में इसके ३० नाम कहे हैं। चारों जालि के दब इसको अपनाते हैं
और विशालतम बनराशि का पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होते। अश्वर्था से लेकर माघा
राग्य धनरति और मन्त्री ये सब परिग्रह का संभव करते हुए दुःखमय संसार गर्भ में
हूयते हैं। इसी परिग्रह क लिय विविध कलाकलाप की कल्पना और उसकी चारा
पना की जाती है। इसी के लिय सङ्गम कष्टकारी तपस्यायें, समुद्र लंपन, सुदूर
प्र १९ भयङ्कर युद्ध आदि किय जाते हैं। इस विषय का कह कर तदुत्तर अन्तरङ्ग
परिग्रह क रूप से दण्ड, शाल्य, कपाय और क्षेपण आदि दुर्वासनायें प्रवर्तित की
गई हैं। परिग्रह रूप प्राइ स प्रसित प्राणी पतुगतिक संसार सागर में उल्ला, हूबला
और भ्रमकता है। यह परिग्रह रूप विष बुरा का विषमय बटु फल है।

अपमहार में आश्रवां क फलों का विगृहीत कराने के बाद कहा गया है कि
दिमा आदि पांच आसनों का छोड़कर या अदिसादि संवरों का पाकन करते हैं।
व ही मय प्रकार क कर्मों का चपकर हीण्डमा अद्य मुखास्थ सिद्धपद के भागी
बनते हैं।

ब्रह्मअध्यायनमें अदिसाफा बखन है, जो पदुमपुर मनोहर व हरपद्मकरने योग्य है

यह सूत्र के उत्तर खण्ड का पहला अध्यायन है। स्पष्ट कहा गया है कि ये अहिंसादि पञ्च महाव्रत अविश्रान्त चिरसञ्चित कर्मरजो का प्रमार्जन कर भय-मय भव प्रपञ्च से जीवको पृथक् कर देते हैं और भव भ्रमण को समूल मिटा देते हैं। महा महिमशाली इन पञ्च महाव्रतों में अहिंसा का प्रथम स्थान है, यह भव सागर में द्वीप के समान है। अहिंसा के ६० नाम बताकर इसकी महिमा दर्शाई गई है, जैसे— यह त्रिलोकी पूजित तीर्थङ्करों से कथित है। वैसे ही बड़े ज्ञानी, त्रिपुलध्यानी, तप-शाली, लब्धिधारी और क्रियाधिकारी सन्तों से पाली गई है। इसकी रक्षा के लिये मुनिगण भिक्षा के विभिन्न दोषों को टालते हैं। सब जीवों की रक्षा रूप दयाके लिये भगवान् ने यह प्रवचन कहा है। इसकी रक्षा के लिये पाच भावनाये कही गई हैं जो बहुत माननीय हैं।

दूसरा व्रत सत्य है—इसको जगत् का आधार-धर्म का मूल और भगवान् पदसे भाषित किया है। सिद्धियों का स्थान और इन्द्रों से भी पूजित है। इसके महत्त्व में शास्त्र का उल्लेख मनन पूर्वक पढ़ने योग्य है, सत्यव्रती के लिये अपनी थाप (आत्म-प्रशंसा) और पर निन्दा निषिद्ध है। सत्य वचन की पूर्णता के लिये व्याकरणज्ञान से शब्द शुद्धि की आवश्यकता दिखलाई गई है। असत्य वचन से आत्मरक्षाके लिये भगवान् ने यह प्रवचन कहा है। इसकी पाच भावनार्यें, विस्तार पूर्वक कही गई हैं। जो ध्यान से पठनीय हैं।

तीसरे संवर में अद्रुता दान विरमण व्रत का कथन है। अल्प या बहुत, छोटा या बड़ा, सचित्त अथवा अचित्त कोई भी द्रव्य चाहे गाव में हो या अरण्य में, पड़ा हुआ, गिरा हुआ एव खोया गया हो बिना दिये न लेना, यह अचौर्य व्रत रूप है। इसीलिये पञ्च महाव्रतियों को प्रति दिन अनुज्ञा लेना कहा है। निन्दा करना दूसरे के नाम से लाभ उठाना और दान में अन्तराय एव दान का लोप करना, एक प्रकार की चोरी है। अत अचौर्य व्रत में वैसे अप्रीतिकारी व्यवहारों का निषेध है। जो पाई हुई चीजों का अपने परिवारों में सविभाग नहीं करता हो वैर शिरोध और असमाधि करने वाला हो वह इस व्रत की आराधना नहीं कर सकता। अचौर्य व्रत साधक को यह आवश्यक है कि वह शक्ति पूर्वक बाल, वृद्ध एव रोगी की सेवा करे। दूसरे के लिए जो अप्रीतिकारक हो वैसे कोई भी आचरण नहीं करे। आदि। इसकी पञ्चम भावना स्वधर्मियों में विनय करना है। यहां के सभी विचार पूर्ण मननीय हैं।

पतुर्ष्य संवर ब्रह्मचर्य है। तप, नियम, एवं ज्ञान, वरान आरित्र का यह मूल है। इस एक आराधना में मय की आराधना है। शील विनयादि गुण और यशस्कीर्ति आदि सभी इस पर प्रतिष्ठित हैं। इसकी ३२ उपमायें हैं। इसकी शुद्ध आराधना करनेवाला ही प्रमथ ब्राह्मण या मुसाधु है। ब्रह्मचर्य के साधक को राग द्वेष और माह वदानवाह विमूषा आदि शोभाषडक व्यवहार निषिद्ध हैं। उसकी लीवनचर्या और साधनार्थों का विचार हृदयप्राप्ति परम गमोर है। पंचम सवर में अपरिग्रह का वर्णन है। यागराज्य क शत्रुओं में जिस यम कहा है जैन शास्त्र की माया में यह संवर है। कर्मों के अणु को भी अन्तःकरण में नहीं आन देना यही सवर का निष्कर्ष है।

अपरिग्रही सायु आरम्भ परिग्रह से दूर और काच मास माया लाभ से विरत हात हैं। एक विध असंयम से लेकर ३३ आशासना तक के सप्त भाषों पर शंका, कांक्षा छोड़ कर प्रती मन्दक मद्धा करता है। फिर अपरिग्रह का वृक्ष क रूपक से निराल किया है। सबया परिग्रहत्यागी मुनि हिरण्य मुत्र्यादि बहुमूल्य और दूमर को लवणानवाली वस्तुओं को ग्रहण नहीं करते। फल फुल और विविध प्रकार क धान्य औषध के निमित्त भी सम्पूर्ण परिग्रह त्य गी मुनि ग्रहण नहीं करे। इसको सयुक्ति मसमाया इ। कल्पनीय भोजन आदि का भी मुनि को समह नहीं करना चाहिए। इसके बाद निष्ठा ग्रहण करने की विधि बताई गई है। रोगादि कारण की स्थिति म भी औषध और आहार पानो का रात्रि में संग्रह निषिद्ध कहा गया है। आश्रयकता सं गृहीत भण्डापकरण भी संयम रक्षा के लिये राग द्वेष रहित धारण करना चाहिए। अपरिग्रहव्रती का स्वरूप और विविध उपमाओं से उसके गुण बताये गये हैं। फिर पाँच भयनाओं क साध अम्बरम की समाप्ति की गई है। अन्त म शास्त्र का उपरुहार और वाचन विधि के साथ शास्त्र की समाप्ति की गई है।

विभिन्न सस्वरण और हमारा प्रयत्न—

यह सत्य है कि विविध शास्त्रों की तरह प्रत्येक व्याकरण के भी कई संस्करण निकल चुके हैं जिसमें सब प्रथम राय पतपि सिद्ध बहादुर मरमुदापाद का सटीक। दूसरा आगमाशय समिति सूरम म प्रकाशित सटीक। तीसरा ज्ञान विमल टीका सद्धि मुक्ति विमलत्री जैन प्रथम म म अहमदापाद। चौथा पूष्य अमाकर अवित्री महाराज इन भाषामुपाद सद्धि और पाँचवाँ गुजराती भाषान्तरवाला इन पाँच

के अलावे रतलाम से प्रकाशित केवल अनुवाद और आगम मन्दिर का मूल संस्करण भी विद्यमान है, किन्तु हिन्दी भाषा के पाठकों को शुद्ध पाठ के साथ भाव का पूर्ण बोध इनसे प्राप्त नहीं होता, क्योंकि इनमें तीन तो संस्कृत रहे और एक हिन्दी व एक गुजराती पदार्थ मात्र ही। अतएव पाठकों को सुलभता से बोध प्राप्त होने के साथ मूल पाठ भी शुद्ध मिले एतदर्थ हमारा यह प्रयत्न है। पाठ शुद्धि के लिये ४ हस्त लिखित १ सटीक छोर १ आगम मन्दिर पालीताणा से प्रकाशित मूल इस प्रकार ६ प्रतिष्ठों का उपयोग किया गया है। अशुद्ध और भिन्न पाठों के संशोधन में टीका का आधार लिया है, और पाठान्तर सूची में प्रत्यन्तर के उपयुक्त पाठ भेद भी बतला दिये हैं।

हमारे ध्यान से प्रश्न व्याकरण जितनी संशोधन में जटिलता अन्यत्र क्वचित् ही हो। आगम मन्दिर जैसी प्रामाणिक प्रति जो शिलापट्ट और ताम्र पत्र पर अङ्कित हो चुकी है, वह भी अशुद्धि से दूषित देखी गई है। इसके लिये १७ पाठों की एक तालिका बनाई गई जिनमें कुछ तो ऐसे हैं जिनकी अर्थतः रगति नहीं बैठती और कुछ हैं स्वतन्त्रस्थल। गीतार्थ एव तज्ज विद्वान् इसमें कुछ मार्ग प्रदर्शन करें ऐसी आशा से पाच स्थान पर तालिका भेजी गई। १ व्यवस्थापक आगम मन्दिर पालीताणा। २ पुण्य विजयजी महाराज जैसलमेर। ३ भेरोंदानजी सेठिया बीकानेर। ४ जिनागम प्रकाशक समिति और उपा० श्री अमर मुनि व्यावर। ५ सम्यग् दर्शन में प्रकाशनार्थ सैलाना। पांच में से ३ की ओर से पहुँच के अतिरिक्त कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। पुण्य विजयजी म० ने पीछे उत्तर देने को लिखा किन्तु पत्र देने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला। आगम मन्दिर से तो पत्र की पहुँच भी नहीं। अस्तु। पाठों की तालिका सम्यग् दर्शन (सैलाना) प्रथम वर्ष के ११ वें अंक में देख सकते हैं।

इस प्रकार साधन और सहाय हीन दशामें हमने जो यह महान् प्रयत्न किया, वह केवल आगम सेवा की भावना से ही।

कृतज्ञता प्रदर्शन

सर्व प्रथम जैनाचार्य पूज्य जैन धर्म डिवाकर आत्मारामजी म० जिनका कि समय २ पर हमें सहयोग मिलता रहा उपकार मानना आवश्यक है। उपाध्याय कवि श्री० अमरचन्द्रजी म० ने दिल्ली विराजते समय प्रश्नव्याकरण के कुछ पत्र देखे और सुभाष्य प्रस्तुत किये।

इसके उपरान्त आगम सेवामें जिसनेका परिभ्रम उठाने वाले विद्वान् और सहायक सब बिनकी सेवा के सहयोग में यह कार्य पूर्ण हो सका है तथा जिन २ ग्रन्थों से सहयोग लिया है उन सभी ग्रन्थ र्कार्यों के और सहायकों के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ। संशोधन और पदार्थ की सुलभ करने में यादत-शक्य प्रयत्न किया गया है।

इस सूत्र के संपादन में आ कुछ पुस्तक सहाय्य हुआ हो उसके फल स्वरूप सब भ्रष्टाचार-में हमें आगम सेवा सुलभ हो तथा मध्यम जन सभ्यज्ञान का लाभ प्राप्त करें वही सदिच्छा है।

समय की अल्पता और साधन की दुर्लभता से अनार्य देश आदि पर चाहे हुए भी कुछ आवश्यक विचार नहीं कर पाया। अस्तु, इसमें विवशतासे आ त्रुटि रह गई हों उनके लिये " भिक्षामि दुष्कृतं " वता हूँ।

अन्तिम अभ्यर्थनां है—

अशेषो जैको भतिरतिपला चंपलतर
मनभात पद्माऽपरिषित ममा प्राकृतगवी
नयोना दानाऽयं दुरधिगम जेनाऽऽगमनिषी
त्रुटि सन्तु याग्या कृतकर पुत्रोवस्मिदितयात्

निधरको मुनिव्रती

इन्दिमद्य



संशोधन सम्पादन में प्रयुक्त ग्रन्थों का परिचय ।

- १ प्रश्न व्याकरण सूत्र-अभयदेव सूरिकृत टीका-अ.गमोदय समिति प्रकाशित ।
- २ " " " -ज्ञानविमल सूरिकृत टीका-मुक्ति विमल जैन प्रथमाला,
अहमदाबाद
- ३ " " " -मूल-शिलाकृत का-प्रतीक-आगम मन्दिर पालीनाना ।
- ४ " " " -हस्त लिखित टब्बा-प्राचीन मुनियों द्वारा लिखित ।
- ५ अभिधान राजेन्द्र कोष-राजेन्द्र सूरि-रत्नलाम से प्रकाशित ।
- ६ सृष्टिवाद और ईश्वर-भारतरत्न, प० मुनि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज
- ७ मनुस्मृति -भाषाटीका ।
- ८ समवायाग -अभयदेव सूरिकृत टीका ।
- ९ पत्रवर्णा -गुजराती अनुवाद अहमदाबाद से प्रकाशित ।
- १० षट्-खडागम -धवला टीका १।१।१-हीरालाल जैन-अमरावती प्रकाशित ।
- ११ सूयगडांग -सटीक आगम० समिति प्रकाशित ।
- १२ कल्याण -महाभारत अङ्क गीता प्रम गोरखपुर ।
- १३ जीवाभिगम सूत्र -सटीक-समिति से प्रकाशित ।
- १४ बोल संग्रह -भैरो दानजी सेठिया-त्रीकानेर से प्रकाशित ।



श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र की विषयानुक्रमणिका

गाथा व सूत्राङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
गा० १	प्रतिज्ञा	१
पद्यकृत्यञ्जिन्या	मंगलाचरख	१
श्लोक टीका	उपोद्घात	२
पाठशुद्धि टीका	पाठशुद्धि	३-४
गाथा- २	आक्षेप क परिभाष्य और नाम	५
गाथा- ३	प्राखातिपात क पाँच प्रकार	६
सूत्र- १	द्विसा का स्वरूप	७ ८
सूत्र- २	प्राणवच क तीस नाम	८ सं ११
सूत्र- ३	प्राणवच क चारख व प्रमाजन	११ सं २५
सूत्र- ४	प्राणवच को करनेवाले फट्ट द्वार का बिचार	२५ सं ३३
सूत्र- ५	नारकीय मोच्छरुप दुःख वर्णन	३१ से ४९
सूत्र- ६	द्विसा का परिणाम	४९ से ५३
१-१	असत्य का स्वरूप	५५ से ५६
२-६	असत्य क गुण निष्पन्न ३० नाम	५६ से ५७
३-७	असत्य भाषी जीव वर्णन	५८ से ७०
४-८	असत्य भाष्य का फल वर्णन	७० से ८२
१-६	चोरी का स्वरूप वर्णन	८२ से ८४
३-१०	चोरी के तीस नाम	८४ से ८६
३-१०	चोरों का वर्णन	८६ से ८८
४-११	चोरी का विराट् मखन	८८ से १०९
५-१२	चोरी का फल वर्णन	१०९ सं ११३

गाथा व सूत्राङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
६-१२	चोरी का परिणाम	११३ से १२४
१-१३	अब्रह्म का स्वरूप वर्णन	१२५ से १२६
२-१४	अब्रह्म के तीस नाम	१२६ से १२७
३-१५	अब्रह्म सेवियों का वर्णन	१२८ से १३४
४-१५	अब्रह्म सेवन का परिणाम	१३४ से १४२
५-१५	अब्रह्म सेवी माडलिक व युगलिक नरनारी वर्णन	१४२ से १५९
६-१६	मैथुन सेवन प्रकार	१५६ से १६४
१-१७	परिग्रह का स्वरूप	१६५ से १६७
२-१८	परिग्रह के तीस नाम	१६७ से १६६
३-१८	परिग्रह का सेवन	१६६ से १७५
४-१६	परिग्रह का सञ्चय	१७५ से १७७
५-२०	परिग्रह का परिणाम	१७७ से १८०
गा १-५ तक	पंच अधर्म द्वार का निगमन	१८० से १८२
गा १-३	प्रतिज्ञा	१८३ से १८४
१-२१	सवरूप अहिंसा का स्वरूप और नाम	१८४ से १८६
२-२२	अहिंसा का महत्व	१८६ से १६५
२-२२	अहिंसा की साधना	१९५ से २०१
३-२३	अहिंसा व्रत की पाँच भावना	२०१ से २११
१-२४	सत्य का स्वरूप	२१२ से २१८
१-२४	अप्रिय सत्य निषेध वर्णन	२१८ से २२०
१-२५	सत्य व्रत की पाँच भावना	२२० से २२९
१-२६	अस्तेय व्रत का स्वरूप वर्णन	२३० से २३३
१-२६	अस्तेय व्रत पालक वर्णन	२३४ से २३७
२-२६	अस्तेय व्रत की पाँच भावना	२३७ से २४६
१-२७	ब्रह्मचर्य व्रत निरूपण	२४७ से २५३
२-२७	” ” ”	२५४ से २५७
२-२७	ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावना	२५७ से २६८

गाथा व सूत्राह	विषय	पृष्ठाङ्क
१-२८	अपरिमह द्रत निरूपण	२६६ से २७२
२-२८	अपरिमह द्रत वर्णन	२७२ से २७७
३-२८	" " "	२७७ से २८८
१-२६	अपरिमह द्रत की पाँच भाषना	२८८ से ३१९
१-३०	सूत्र परिषय और वाचना विधि	३१६ से ३१०
श्लोक	प्रन्धान्त संग्रहापरणम्	३१०

आवश्यक निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशन मे समय की शीघ्रता तथा संशोधक की कार्यकालीन शारीरिक एवं मानसिक अस्वस्थता के कारण त्रुटिया कुछ अधिक मात्रा मे रह गयी जिनके लिए शुद्धि पत्र ही प्रमाण हैं। इसके साथ ही पुरातनशीशकाक्षरानुदृंकन दोष से भी कतिपय स्थानों मे मात्रा, अनुस्वार और रेफ की त्रुटिया खटकनेवाली हैं, पाठक ऐसे प्रसर्गों पर विवेक बुद्धि से काम लेंगे। उदाहरण के तौरपर मात्रा त्रुटि के आत्मरूप, छया, पक्षा, कित, सराश, अदि, भर्या, जल्दा, कठाण, प्ररणा, शारीरिक आदि को आत्मारूप, छाया, पक्षी, किते, साराश, आदि भार्या, जल्दी, कुठाण, प्रेरणा और शारीरिक समझना चाहिए, ऐसे ही अनुस्वार के सम्बन्ध में सश्रितान, मच, एव, बहुल, खडित, चचल, भाव, मूल, वश तथा चौर्य की जगह सश्रितान, मंच, एव, बहुलं, खडित, चचल, भाव, मूलं, वंश तथा चौर्य पढ़ना चाहिए। रेफ दोष से निमलै, र्पश, गभ, प्रार्थनीय, पूव, सहसै, धम, अथ, दृष्टि तथा आसव की जगह निर्मलै स्पर्श, गर्भ, प्रार्थनीय, पूर्व, सहस्रै, धर्म, अर्थ, दृष्टि तथा आस्रव समझना चाहिए। पाठक ऐसे स्थलों पर विषय स्थिति को समझ लेंगे। इसके अतिरिक्त खङ्ग की जगह खङ्ग तथा स्निग्ध की जगह स्निग्ध और प्रकार की जगह प्रकार एव ससान, ससाप्त की जगह समान और समाप्त तथा पराङ्ग की जगह पराङ्ग एव सहा की जगह महा समझेंगे।

प्रार्थी--

प्रबन्धक



शुद्धि पत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
१	८	कॅर	करें
२	से लेकर २३ तक सूत्र और प्रकरण का नाम	बूटा	बूटा
३	१३	संपत्ति	संपत्ति
११	१६	अव्य	अव्य
११	२६	संपत्तियाँ	संपत्तियाँ
२	१२	परिणाम	परिणाम
६	१७	प्राण	प्राण
८	१४	दुःख	दुःख
११	२०	गम	गम
६	१३	(इमानि)	य
१०	१	मच्छू	मच्छू
१५	१७	कुम्पा	कुम्पा
१५	२३	शास्त्रिक	शास्त्रिक
१२	२६	वेप	द्वेष
२१	५	तालपत्र	तालपत्र
२२	५	समूह	समूह
२४	१७	गन्धक	गन्ध
२४	१८	पावनकर	पावनकर
२६	१५	हेसं	हुस्वावेसुप
२७	२	शौकारिका	शौकारिका
२६	१	के	से
३३	२८	माञ्जरी	रोमाञ्जरी
३४	२३	लटको	लटका
३२	८	रोह	वेदि
३६	१२	केस्य	कश्य

पृ०	प०	अशुद्धि	शुद्धि
३८	५	यमाकथिका	यमकाथिका
३८	२७	सरद्	रसद्भीम
३९	१	गग	वरुगण
३९	१५	दना	चदना
४२	२१	हूए	हुए
४६	२३	फसि	फरिस
५१	४	अणतकलं	अनन्तकालं
५५	१५	मप्रमृत्य	मप्रत्यय
५५	१६	पर	परम
६३	२८	युक्ता	युक्त
६४	५	भदेक	भेदक
६४	१३	कतोपां	कपोतां
६४	१७	हंश	हस
६५	२३	वदन्तिः	वदन्ति
६६	७	गासी	गामा
६६	७	लकडी	लडकी
७१	२७	चमत्र	मन्त्र
७२	२१	परिज	परिजन
७३	२०	स्तपन	स्तपन
७४	११	जिविक	जीविक
७७	१४	तसय	तस्सय
७७	२४	वज्जिया	वज्जिया
७८	८	भयं	भयं
७८	१३	(त्तिवेमि) दारं	त्तिवेमि
७९	२	विष	चीर
७९	३	कथपिय	कथपिय्यति
७९	६	कारकं	कारकं

पृ०	प०	अशुद्धि	शुद्धि
७६	७	दुन्नमं	दुन्नत
७६	७	प्रथिमी	प्रथीमि
७६	६	पप	पल
७६	१६	रहीत	रहित
८०	१२	अमना राम	अगतारम
८०	१४	पर्यंतन	पयन्त
८०	१३	संयम्यी	सम्पधी
८१	२४	सूर्य	सुर्य
८२	१७	शप	शोम
८२	२१	शमिचं	शमितम्
८२	२३	बहुमत्तं	बहुमतम्
८३	१	द्वितीय	द्वतीय
८३	१६	विपस	विपम
८३	२०	शप	शोस
८४	३	अप्रिति	अप्रीति
८४	३	तस्य	तस्व
८४	६	लोकिककं	लोलिककं
८४	१६	अकस्येवो	अकस्यो
८५	२८	अपरच्छतिविय	अपरच्छतिविय
८५	१६	गात्वा	गत्वा
८५	१६	भावसिका	ओबीलका
८५	२१	कप	एक
८७	११	स्वके	स्वकं च
८७	२७	संपत्ता	संपषत्ता
८८	२०	अर्मात्	अर्मान्
८९	११	विष्णुजल	विष्णुजलि
८३	१६	इय हासप	इयं हेमिय

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
६०	२३	निरवलं	निरवलवं
६१	५	केहिं	तरकेहि
६२	१८	सीतकृष्ट	सीत्कृत
९२	२७	चित)	चिल्लित)
६३	३	न्धाकार	न्धकार
६३	७	सागरमूर्मि	सागरमूर्मि
६३	१०	गुण्यदुच्छलत्प्रत्यावर्त	गुण्यदुच्छलत्प्रत्यावर्त
६३	२५	ग्रह्णाति	गृह्णन्ति
९४	१०	ईव	इव
६५	४	मण्डताग्र खर्ग	मण्डताग्र खर्ग
६५	४	फैं	फैंक
६५	५	एहु	हुए
९१	१६	वगतर तुग	वगत तुरग
६८	२२	समुदा	समुद्राय
६६	३	निवतिन	निवतित
६६	-६	धुग्	धुग् धुग्
६६	१७	सायत्रिक	सायात्रिक
१००	१	मडव	मडव
१००	११	गिक्किषा	गिक्किवा
१०१	२६	काले	वाले
१०२	२	सैनिक	सेना
१०३	२४	दंडालउर	दंडलउर
१०५	-७	सयणस्य	सयणस्स
१०५	१२	च्छलनाना	च्छलना
१०५	१६	वरत्र	वरत्र
१०६	२	मोटित	मोटिता
१०६	१४	धाड्यमाना प्रेर्य	धाड्यमाना -प्रेर्यथा-

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
१०६	१८	मूर्धजा	मूर्धभा
१०७	१८	गुरुच्छलुसप्यया	गुरुच्छलुस्यया
१०८	२०		माहना
११	११	वैतभो	वैतकी
१०६	१	०	में
१	१३	प्रयालि	प्रयाली
११३	१४	बर्षण	बर्षन
११४	१	अपत्ति	अपतिट्टाय
११६	२३	मुप्य	गुप्य
११६	१४	समाहित	समाहत
११६	०७	वध	वध
११७	४	कारणा	कारणा
११७	२०	सुष्ठुपि	सुष्ठ्वपि
११७	२६	राज	रज
११८	१८	अनार्य	आर्य
११६	७	वध वन्धन	वध वन्धन
११६	२०	पिपासा	पिपासा
११९	२१	कलरो	कलरा
१२०	३	न्ध	मध
१२०	११	ऋ	दुऋ
१२१	११	निषा	निषास
१२५	४	०	
१२६	१	तिलोक्त	एक अपठ वाक्य कृता हे
१२८	६	महारेग	तिलोक्त
१२८	२२	नक्षत्र	महारेग
१२६	१६	सागर्त	नक्षत्र
१२६	२२	व्यस्य	सागर्त
			व्यस्य

पृ०	प०	अशुद्धि	शुद्धि
१३३	१६	उज्ज्वल	उज्ज्वल
१३४	२०	०	रस
१३५	१६	चंड	चन्द
१३७	१	ऽऽ०	ऽऽश्रम
१३७	२५	लजित	ललित
१३८	१०	वृत्त	अवृत्त
१३८	२४	सास	सस्स
१३८	२६	कर्बड	कर्बट
१३९	१३	गम्भीरध्व	मधुरध्व
१४३	१	सुप	सुप्प
१४३	२१	०	चक्रपाणिलेहा
१४६	८	सरित्च्छ	सरिच्छ
१४६	२२	सहता	सहताऽङ्गलीका
१४६	२७	व कनक	वर कनक
१४८	१८	पार्श्वी	पार्श्वी
१५०	६	गति	गती
१५०	११	निरुवले	निरुवलेबा
१५०	२४	भषोदरा	भषोदर
१६०	२६	गधा	गवा
१६२	२	पथण्णिज्जं	पत्यण्णिज्ज
१७२	२४	भूमिपू	भूमिसु
१७७	२१	होतो हैं	होते हैं
१७९	२६	कहेगा	कहेगे
१९०	२२	कुष्ठ	कोष्ठ
१९०	२५	उत्तिप्त	उत्तिप्त
१९२	११	श्लेष्ममेलदी	श्लेष्म और मेलही
१९६	२१	मणुट्टिट्टं	मणुट्टिट्टं

पृ०	प०	अशुद्धि	शुद्धि
१६६	६	कुक्षम	कुक्षप
२८१	११	सम	सम्भं
२०१	२४	गवसिपयच्छ	गवसिपच्छं
२१	टिप्पण्य	संषलिष्ट	संक्षलिष्ट
६०४	२०	पापतेख	पापतेखं
२०१	१७	मरु	क्षम
२०५	६	पपणाय	पसणया
२०६	२६	बाहन	वहन
२६	२४	अकरोव	अकरो
३६	२१	वय्यागु	वय्यागुगु
२७	१६	अकलुप्तो	अकलुप्तो
०८	१७	परिरक्ष्यण्ट	परिरक्ष्यण्ट
२०६	७	आमरणांत	आमरणांतप
१३	६	पयदेशक	पयदेशकं
२१७	१६	गंधामाख्याओ	गंधामाख्याओ
२२१	१७	तस्याम	यत्स्वत्स
२२३	९	पीतयन्	पीतये य,
२२४	१४	हाज	होत्र (हो बार)
२२५	२०	असंक्षलिष्टो	असंक्षलिष्ट
२३५	११	मनुष्य	मनुष्य
२३६	२५	अरठर्म	अरठर्म
३६	००	पञ्चधा	पञ्चधा



प्रश्नव्याकरणे प्रशस्तिश्लोकाः

आर्यावर्ते वर्तते धन्वभूमि-दृष्टे रम्या नैव सर्वं सहेयम् ।

धर्माऽऽधारा धार्मिकैराधृतापि सन्धत्ते तु प्रासुकी भावसुञ्चैः ॥ १ ॥

अस्य चोणितलस्य निर्मलगुणान् संवीच्य जैनो मुनि-

भ्रम्यन्नत्र समागतः समयतः शिष्यप्रशिष्यैर्युतः

वर्षावासमनेकमत्र शमतोऽनैषीत्स्वसङ्घौघत-

स्तस्माज्जैनजनानुगो जनपदो धन्वाभिधानोद्भूतः ॥ २ ॥

सद्धर्मोऽत्र समेधते समयते सद्धर्मशीलो जनः

स्थेमानं स्थितितोऽधितिष्ठति जने श्रामण्यभाजोऽनुगः

पार्थक्यं पृथुलं न चेज्जनपदे द्वात्रिंशता सङ्घके

स्वाधीनं जनतन्त्रशासनमियाज्जैनस्य हस्ते स्थितम् ॥ ३ ॥

श्रमणः स च योऽत्रजने सततं यतते निजसंयम शुद्धिविधौ,

तदनु प्रतिपूर्णं जिनागमतत्त्र सुबोध्यतयाऽधिगमैकनिधौ ।

व्रतपालनमात्रनिमित्ततया तनुगोपनकृत्यमतिं निदधौ

मनसा वचसा वपुषा समितः श्रमणः खलुसत्यतरः श्रमणः ॥४॥

अधि धन्वधरं श्रुतकेवलिकल्पसमाः श्रमणाः कतिचित्सुब्रह्मः

समितैरधिपालित सङ्घगणे मुनिरत्न समाह्वयमत्र दधुः ।

कति पूज्यवराः कुशलप्रमुखा व्यहरन्-जनतार्तिनिराकरणाः

अधुना खलु पूज्यवरः सुचकास्ति चरित्रचणोऽत्र गजेन्द्रमुनिः ॥५॥

पद वाक्यविधौ भ्रमशीलनतोऽध्ययन प्रतिपूर्णागवापदयं
 प्रमितावपतिष्ट मदेष्ट विधावपठत्कठिनं गुरुशास्त्रचयम् ।
 यत्तमान इहाध्ययने पदवी ममियाभिञ्ज सङ्गजनावष्टृता
 नयते नियतां भ्रमयै सहतां प्रगतौ यमसंपमत सहिताम् ॥ ६ ॥

निजतन्त्र चयेऽपरतन्त्रतया महजैऋमुषोषविधे सुप्रतिष्ठा,
 पद्धता वचने मनसो दमने प्रभुतादिगुणवितताऽऽगमनिष्ठा ॥
 गुणतो मुनिमानस धोपखतोऽवहदेय विशेष जनेषु प्रतीर्ति
 भ्रमशानुगतां भ्रमशामिमतां परिपालयते निजतन्त्रविभूतिम् ॥७॥

इह यत्र यदीय परिभ्रमणं विहितं खलु ऽत्रतदीय विधान
 मवतीति अगन्ति विदन्तिस्ततोऽभूतपूज्यदरो निजशास्त्रनिवान
 प्रथम दशकै—पर—कालिकयूत्र मयोऽपर मङ्गल न यमिधानं
 परसूत्रमदृशा परिशीलनतोऽररचत् सुविशुद्धि सुवृद्धि निदानम् ॥८॥

द्वितय तदिदं कृत चन्दनघ्नचय खलुमुद्रणतोऽनुगृहीत
 ततयं कठिनार्थकप्रश्नपुरस्मर व्याकरणं दशमाङ्गपरीतम् ।
 प्रतिपूर्णापुरातन पद्धतित प्रतिपाठमयोजयदात्मसुनिष्ठ
 कथयिष्यतिर्जनबुधो गुणमदिर सुन्दरमेतदतीवनिधिष्टम् ॥९॥

अनितेन जनन यदाचरितं जगदतदयस्यति सार्धमपूव
 प्रकृति स्वयशरलसाऽनलमै प्रशिघापयते कृतिवर्गमखर्दम् ।
 विरलन नरय निधीयत आत्मसमुन्नतितुङ्गपथेऽपि पदाव
 कुशसरिह शुद्धमनीषिर्ननिधीयत आत्महितार्थमर्वाच ॥ १० ॥

विरति समिति शुचिगुणित्योऽनुपमापरमा सुचकास्ति च यत्र,
 न च दापयये लयन्तश इह प्रथमं सुखशेषधिरात्मनि तत्र ।

सुसमीक्षित शास्त्र चयः स प्रतीक्ष्यवरः स्वसमः सुशमः स्वयमेष
प्रतिपालयते निजसङ्घमतन्द्र गजेन्द्रमुनिः सुगुणैः सविशेषः ॥११॥

प्रशास्ति सङ्घमात्मधुर्य धैर्य शौर्य योगतः
प्रतीक्ष्य हस्तिमल्ल साधुतल्लजो नियोगतः ।
प्रतीति-नीति शान्ति-कान्ति-रीति-कीर्ति-सद्भृति
व्रजैक सङ्घतिर्विराजतेऽत्र साधुता-नतिः ॥ १२ ॥

तत्पीपारपुरं सचापिजनकः श्रीकेवलेन्दुश्च सा,
धन्या मान्यगुणाऽजनिष्ट जननी रूपाऽनुरूपं सुतम् ।
ख्यातिं ख्यातगुणां सुसंयमधनां धत्ते स सत्तेजसा
निर्मानां च पिपतिं पूज्यपदवीं श्रामण्यपुण्यौजसा ।१३।

चिरञ्जीवतु जीवातुरूपः पट्काय जीवने ।
पञ्चाननायमानोऽयमार्हताऽऽगम कानने ॥ १४ ॥

पूज्यः श्रीहरितमल्लोऽयं महामुनि शिरोमणिः ।
समेधतां लसत्तेजा यथाराकानिशामणिः ॥१५॥

भवतोऽभ्युदयाऽऽसक्त हार्द मानसलोचनः ।
श्लोकैःपञ्चदशैर्वक्ति द्विजन्मा दुःखमोचन ॥ १६ ॥

प्रार्थी-अभ्युदयाभिलाषी

दुःखमोचन भ्रा, “मैथिल”

श्री प्रश्नव्याकरणसूत्रस्य

पूर्व-खण्डम्

पंच आश्रव द्वाराणि



श्रीः

अथ प्रश्नव्याकरणसूत्रं सञ्ज्ञायं भाषा-टीका-सहितम् ।

सूत्र—जंबू । इणमो अणहय-संवर-विणिच्छयं पवणस्स
निस्संदं । वोच्छामि णिच्छयत्थं, सुहास्सियत्थं महेसीहिं ॥१॥

छाया—(हे) जम्बू । इदमास्रव संवर-विनिश्चयं प्रवचनस्य निस्सन्दं ।
वक्ष्ये निश्चयार्थं सुभाषिताऽर्थं महर्षिभिः ॥ १ ॥

अथ मङ्गलाचरणम्

दोहा—केवल धी-किरणावली, आलोकित सब लोक ।

कैर हमारे केवली, मानसतल निश्शोक ॥१॥

कुरुडालिया—मानसतल निश्शोक बनादें केवल ज्ञानी,
महावीर गम्भीर दया सागर हितवाणी ।
निष्प्रमाद अषषान धीर होये भेरी धी,
साध्य साधिका सिद्धि दायिनी दो केवल धी ॥ १ ॥

भाषानुवाद—हे जम्बू ! - (इणमो) इस (अणहयसं०) आस्रव और संवर का
निश्चय अर्थात् ज्ञान कराने वाले, (पव-) प्रवचन के (निस्सं-) सार को (वोच्छा-)

कहूंगा (जो) महेसोहि तीर्थह्वर गणधरों के द्वारा (लिख) विषय के लिये (सुरा-) कहे हुए कार्य बाछा है।

दूसरी प्रति में इससे पहले निम्नलिखित उपोद्घात प्रत्य मिळता है, उस काष्ठ में अर्वात् सुधर्मा स्वामी के समय में अम्पा नामक नगरी थी, इसमें पूर्णभद्र चैत्य बनसह अक्षोकरवृक्ष और पूरबीशिखका पट्ट था। उस अम्पानगरी में कौण्डिन्य नाम का रासा था, धारिणी नामकी उसकी महाराणी थी। इसी समय में अमण भगवाम् महाबोर के अन्तेवासी—शिष्य आर्य सुधर्म नामके स्वधिर जो अति कुत्र अर्वात् मातृकुल व पितृकुल से निर्मल्य ये बलवाम् मुरूप और विनयशील थे। तथा विमय ज्ञान, दशन, चारित्र, उम्मा और आपव धर्म से युक्त थे। फिर भीइसो तेइस्वी, अचस्वी एवं यक्षस्वी थे। क्रोध, मान, माया लोभ और निद्रापर जिन्होंने विषय प्राप्त की थी, एवं शिरोश्रिय, जित परीयह ये तथा जीवन की आशा और मरण के भय से भी रहित थे। तपस्या गुण सुक्ति, विद्या, मन्त्र, ब्रह्मचर्यव्रत मय, नियम और उच्च शौच ज्ञान दर्शन तथा चारित्रगुण की मित्तमें प्रधानता थी, और जो चौइह पूर्वी व चार ज्ञान के धारक थे। ऐसे महा प्रमावी श्री सुधर्मा स्वामी पांचसौ साधुओं के साथ पूर्वार्जुपूर्वी अक्षते हुए एक गाँव से दूसरे गाँव में होते हुए क्रमशः अहाँ अम्पा नगरी है, अहाँ पहुँचे। और साधु के योग्य अचमह' को ग्रहण कर संयम व तप से अम्पा को भावित करते हुए विचरते जग। उस समय आर्य सुधर्म स्वामी के शिष्य आर्य जयू नाम के मुनि जो काश्यप गोत्री एवं सात हाथ जितने हँचे थे। यावत् बिलीर्ज तेसोछेयवा को संक्षिप्त करके रखते हुए थे। आय सुधर्म स्वधिर के पाम योग्य सीमा में ऊट्टू प जानु भादि प्रकार अ ध्यान मग य। संयम व तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। किसी समय आर्य अम्पू को अट्टा के साथ तास्विक संशय एवं कुतूहल हुआ फिर अट्टा संशय और कुतूहल प्रकट तथा विकसित रूप में उत्पन्न हुए। अट्टा संशय व कुतूहल से युक्त थे अत्यान से उठे और उठकर अहाँ आर्य सुधर्म स्वधिर थे अहाँ आय। और आर्य सुधर्म स्वधिर को तीनबार दक्षिण बाजू स प्रदक्षिणा करके अन्दन व नमस्कार किया फिर न अतिशय समीप और न अधिक दूर इस प्रकार योग्य आसन से उचित स्थान में बैठकर विमय पूर्वक हाथ जोड़कर सवा करते हुए इस प्रकार बोले-

हे भगवान् ! जब श्रमण भगवान् महावीर यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने नवमें अनुत्तरीप पातिक दशाङ्ग का पूर्वोक्त भाव वर्णन किया है । तब दशवें अथ व्याकरण अङ्ग के, श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर ने, क्या भाव फरमाये हैं ?

दूसरी प्रति में निरनलिखित पाठ अधिक मिलता है । (टीका)

“तेषु कालेषु तेण समएण चम्पा नाम नगरी होरया, पुयणभद्दे चेहए, षणसंढे, असोणवरपायके पुढविसिला पट्टए, तएण चम्पाए नयरीए कोणिए नाम राया होत्था, धारिणी देवी, तेषु कालेषु, २ समणस्स भगवओ महावीरस्स अतेघासी अज्जसुहम्मो नाम थेरे जाह-सपन्ने कुल-सपन्ने बलमपन्ने रूवसपन्ने विणयसपन्ने नाणसंपन्ने दसणसंपन्ने चरित्तसपन्ने छज्जासंपन्ने छाधवसपन्ने ओयसी तेयंसी वघमी जससी जियकोहे जियमाणे जियमाए जियतोभे जियनिहे जियहदिए जियपरीसहे जीवियास भरणभय विप्पमुक्के तवप्पहाये गुणप्पहाणे मुत्तिप्पहाणे विज्जाप्पहाणे मंतप्पहाणे वभप्पहाये वयप्पहाये नयप्पहाये नियमप्पहाये सच्चप्पहाये सोयप्पहाये नाणप्पहाये दसणप्पहाणे चरित्तप्पहाये चोदसपुब्धी चठनाणोवगए पंचहिं अणगारसएहिं साद्धिं संपदिबुढे पुब्बाणुपुट्टिव चरमाये गामाणुगाम दूइज्जमाणे जेणेव चवा नगरी तेणेव उवागच्छह, जाव अहापडिरूवं उरगह उरिगयिहत्ता सजमेण तवसा अप्पाय भावेभाणे विहरति । तेण कालेण तेषु समएण अज्ज सुहम्मस्स अतेघासी जज्जजवू नाम अणगारे कासवगोत्तेण सत्तुस्सेह जाव सखित्त-विपुल्लतेयत्तेस्से अज्ज सुहम्मस्स घेरस्म अदूर सामते उट्ठ जाणू जाव सजमेण तवसा अप्पाय भावेभाणे विहरह । तएण से अज्जजवू जायसद्धे जायसंसए जायकोउहत्ते, उप्पन्नसद्धे ३ सजायसद्धे ३ समुप्पन्नसद्धे ३ उट्ठाए उट्ठेह २ ता जेणेव अज्ज सुहम्मो थेरे तेयेवे उवागच्छह २ अज्ज सुहम्म थेरे तिकखुत्तो आयाहिण-पयाहिण करेह २ वदह नमसह, नल्लासन्ने नाहदूरे विणपण पजलिपुढे पज्जुवासमाये एव वेयासी-‘जइण मते ? समणेण भग० महा० जाव सपत्तेण णवमस्स अगस्म अणुत्तरोववाइय दसाण अयमट्ठे प० दसमस्स य अगस्स पण्हावागर णाय समयेण जावमपत्तेण के अट्ठे प० ? जवू ! दसमस्स अगस्स समणेण जाव सपत्तेण दो सुयक्खंधा पण्णत्ता-आसवदारा य सवरदारा य, पढमस्स ण मते ? सुयक्खंधस्स समयेण जाव सपत्तेण कह अज्जयणा पण्णत्ता, ? जवू ! पढमस्सण सुयक्खंधस्स समयेण जाव सपत्तेण पच अज्जयणा पण्णत्ता, दोच्चस्स य मते । सुय० एव चेव । एप्पसि ण मते ? अण्हय सवराय समयेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ? ततेण अज्जसुहम्मो थेरे जवू नामेण अणगा-रेण एव वुत्ते समाये जवू अणगार एव वयासी ‘जवू ! इणमो, इत्यादि ॥

उत्तर—हे बन्धु ! भ्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रसु ने वसमें जज्ञ के दो मुतस्कन्ध
करे हैं । जैसे—आस्रव द्वार और संवर द्वार ।

प्रश्न—हे पुण्य । प्रथम मुतस्कन्ध के भ्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त ने कितने अभ्यसन
करे हैं ?

उत्तर—हे बन्धु ! प्रथम मुतस्कन्ध के भ्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त ने पाँच अभ्यसन
करमाए हैं ।

प्रश्न—हे पुण्य । दूसरे मुतस्कन्ध के कितने अभ्यसन हैं ?

उत्तर—इसके भी पाँच अभ्यसन हैं ।

प्रश्न—हे गुरुदेव ! इन आस्रव और संवरों का भ्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त ने क्या
स्वरूप कहा है ? इसके बाद बन्धु नाम के मुनि से पूछे गए त्वविर आय सुषर्म
स्वामी बन्धु मुनि को उत्तर में इस प्रकार बोले—“बन्धु इजमो—इत्यादि ।”

विशेषण—सुषर्मस्वामी कहते हैं—हे बंधु ! आस्रव और संवर का निर्णय
करने वाले इस शास्त्र को कर्तृगा यो द्वादशाङ्ग रूप जिन प्रवचन का सार है ।

यहाँ आत्मरूप तात्त्वात् में जिन १ कारणों से प्राणातिपात आदि कर्म प्रवाह
जाता हो उसे आस्रव समझना चाहिए ।

वया आत्मरूप तात्त्वात् में जाता हुआ बहो कर्म जज्ञ जिन अहिंसा आदि
साधनों से बचता हो अर्थात् जिनसे कर्म प्रवाह का प्रतिरोध हो उनको संवर
कहते हैं ।

कर्म बन्ध और कम-अधरोध के हेतुओं—कारणों को समझना ही जिन प्रवचन
का सार है । क्योंकि कि इस शास्त्र में आस्रव और संवरों के त्याग व आसेवन का
विधान किया गया है ।

चरण रूप होने से वह प्रवचन का सार है । कहा गया है कि ‘—आमायिक
से छेकर बिन्दुसार पर्यन्त मुव ज्ञान है । उस मुव ज्ञान का सार चरण-चरित्र
है और चरित्र का सार मोक्ष है ।

शास्त्र का अभिप्रेय कह कर अब प्रयोजन बताते हैं—मयोचन कथन,—
प्र०—प्रस्तुत शास्त्र क्यों कहते हैं? त० “आस्रम आदि का निश्चय करने तथा कर्म बन्ध
से मुक्त होने के लिये प्रस्तुत शास्त्र कहा जाता है । आमायिकता दिखाने हैं—“सर्वज्ञ
और तीर्थ प्रवक्तृ महान् ऐसे ऋषिओं से याने तीर्थद्वारों से कहा हुआ है, अतएव

(एवं) यह राग द्वेष और संशय विपर्यय आदि दोषों से रहित होने से सुभाषितार्थ है। इस गाथा में सूत्रकारने सम्बन्ध, अभिषेय और प्रयोजन रूप तीन बातों का विचार किया है।

सम्बन्ध—‘नवमे भङ्ग में ऊँची साधुता की आराधना करने वालों के लिये अनुत्तर गति कही गई है और वह ऊँची साधुता, आस्रव के निरोध व संवर के पूर्ण आराधनसे प्राप्त होती है। इस लिये दशमे भङ्गमे आस्रव व संवर का वर्णन किया जाता है।

ऊपर की गाथा में कही गया है कि आस्रव और संवर का निश्चय कराने वाले प्रवचन के सार को कहूंगा, इस प्रतिज्ञा वाक्य में पहले आस्रव का उद्देश-कथन किया है। एक सामान्य नियम है कि उद्देश के अनुसार ही निर्देश वर्णन करना चाहिए। इस लिये यहाँ पहले आस्रवों पर विचार किया जाता है।

आस्रव के परिणाम और नाम—

गाथा—“पंच विहो पण्यत्तो, जिणेहिं इह अणहञ्चो अणादीञ्चो
हिंसा मोस मदत्तं, अब्बंभ परिग्गहं चैव ॥२॥

छाया—‘ पञ्चविधः प्रज्ञप्तो, जिनै-रिहास्र (स) वोऽनादिकः ।

हिंसा मृषाऽदत्त-मन्नह्य परिग्रहश्चैव ॥२॥

अन्वयार्थ—“ (जणेहिं) राग द्वेष आदि पर त्रिजय पाने वाले श्री जिनेन्द्र देव-तीर्थङ्करोंने (इह) यहाँ-इस आगममे अथवा इस लोकमे (अणहो) आस्रव (पंच विहो) पांच प्रकार का (पण्यत्तो) कहा है, जो (अणाइओ) अनादि याने प्रवाह रूप से सदा रहने वाला अर्थात् आदि रहित है। उसके पाँच भेद हैं जैसे— (हिंसा मोसमदत्त) हिंसा १ शूठ २ अदत्त का ग्रहण ३ (चैव) और इसी प्रकार (अब्बंभ परिग्गह) अन्नह्य विषय-खेवन ४ परिग्रह ५ ये आस्रव के पात्र भेद होते हैं।

विवेचन— वीत राग प्रभु ने आस्रव पाँच प्रकार का बताया है ! प्रवाह रूप से इसका हर समय में सद्भाव रहता है। इसलिये सामान्य रूप से यह अनादि है। सब जीवों की अपेक्षा से इसका कभी अन्त नहीं होता है। इसलिये आस्रव को अनन्त भी समझना चाहिए। एक जीव की अपेक्षा यह अनादि सान्त और जीव राशि की अपेक्षा अनादि अनन्त है। टीका करने अनादिक पद को ऋणातीत और

अणादि रूप से भी माना है। ऊर्ध्वोर्ध्व अक्षर पद का अर्थ पाप किया है और मिथ्यात्व आदि पाप आक्षेप का आदि कारण है इसलिये आक्षेप को अणादि भी कहा है। हिंसा १ शूद्र २ शोरो ३ मैथुन ४ और परिग्रह ५ ये पाँच भेद आक्षेप के हैं। दूसरी अणु आक्षेप के ४२ भेद भी किये हैं जो पाँच इन्द्रिय ४ कला ५ अभिरति हिंसा शूद्र आदि २५ क्रिया और तीम योग मिलाकर ४२ होते हैं।

आक्षेप का स्वरूप और उसके हिंसा आदि पाँच प्रकारों का वर्णन किया गया, अब पाँचों आक्षेपोंको क्रमशः वर्णन करने की इच्छा से शास्त्रकार प्रथम प्राणातिपात आक्षेप को कहते हैं।

हर एक आक्षेप द्वार पर केसा १ क्या नाम २ और किस प्रकार किया जाता तथा क्या फल देता है ३-४ और कौन उसको करते हैं ५, इस प्रकार पाँच बातों का विचार किया गया है। इन में से प्राणातिपात का पाँच प्रकार से वर्णन करने के लिये सूत्रकार कहते हैं—

मूत्र-१ जारिसओ २जनामा ३जहय कओ ४जारिस फळ देंति ।

५ जेपिय फरेंति पाषा, पाणवह त निसामेह ॥३॥

ध्या—यादृशको यन्नामा यथा च कुलो योदृशं फलं ददाति ।

येऽपिच कुर्वन्ति पापा, प्राणवध तं निसामयत ॥३॥

अन्व—“प्राणवध रूप पहला आक्षेप (जारिस ओ) कैसा है (जनामा) जिस नाम वाला है और प्राणियों के द्वारा (जहय कओ) जिस प्रकार किया गया है (जारिस फल देंति) दुर्गति में गिराने रूप जैसे वह फल को देता है (य) और (जेपिकरेंतिपाषा) जो भी पापी धोष उसको करते हैं (तं पाणवह) वन हिंसा रूप आक्षेप को है शिष्य ? तुम उन भजन करो ॥३॥

वि०—“सुप्रथम स्वामी महाराज अपने शिष्य जंबू से कहते हैं कि हिंसा रूप प्रथम आक्षेप द्वार कैसा है ? उसके क्या नाम हैं ? और किस प्रकार वह किया जाता है दुर्गतिरूप कैसा कटुफल देता है, तथा कैसे छाग उसको करते हैं यह सब मैं कर्तुंगा है शिष्य तुम उसको सुनो ।

एक नियम है कि तद्वत्तमेव च पर्यायों से व्याख्या होता है। इसके अनुसार यादृशक, इस पद से यहाँ हिंसा के स्वरूप याने तद्वत् को करने को प्रतिज्ञा का गई और यन्नामा, इस पद से पर्यायों का व्याख्यान किया गया है, बाँकी के तीन द्वारों से

आस्रव के भेद बताये गये हैं, इस प्रकार आस्रव प्रवृत्तिकर्ता, क्रिया और कारण व फल आदि के भेद से पांच प्रकार की कही गई है ।

उपरोक्त पांच विषयों में से प्रथम प्राणिवध-हिंसा का स्वरूप कहते हैं—

सूक्त—“ पाणवहो नाम एस निच्चं जिणेहिं भणिओ—“पावो चंडो रुहो खुहो साहसिओ अणारिओ णिग्घिणो णिस्संसो महवभओ पइभओ १० अतिभओ षीहणओ तासणओ अण-उजो उव्वेयणओ य णिरवयक्खो णिद्धम्मो णिप्पिवासो णिक्क-लुणो णिरयवासगमणनिधणो २० मोहमहवभय पयइओ, मरणवेमणस्सो २२ ॥ पढमं अधम्म-दारं ॥ (सू० १)

छाया—“प्राणवधोनाम एष नित्य जिनैर्भणितः—पाप., चण्डः, रुद्रः, भुद्रः, साह-सिक, अनार्थ, निर्घृण., नृशसः, महाभयः, प्रतिभय, १० अतिभयः, भापनक., प्रासनकः, अन्याय्य, उद्वेजनकश्च, निरपेक्ष, निर्द्धमं, निष्पिपासः, निष्करण, निर-यवासगमननिधनः, २०मोहमहाभय प्रवर्तकः, मरणवैमनस्य. ॥ प्रथममधम-द्वारम् ॥ ॥ सू० १ ॥

अन्वयार्थ—(पाणवहोनाम) प्राण वध याने हिंसा नामका (एस) यह प्रत्यक्ष कहा जाने वाला आस्रव (जिणेहिं) तीथेद्धरों ने (निच्च) सदा नीचे के विशेषणों से युक्त (भणिओ) कहा है,—(पावो) पाप कर्म के गन्ध का कारण होने से यह पाप है (चंडो) कषाय से उद्धत बने हुए प्राणियों से किया जाता है, इसलिये चण्ड है, (रुहो) हिंसा करते समय मनुष्य रौद्ररस में लीन होता है अतः रौद्र है, (खुहो) आत्मिक भाव की अपेक्षा नीच होने से और नीच, ज्ञान से तथा दुष्ट प्राणियों से सेवित होने के कारण यह भुद्र है, (साहसिओ) हिंसा करते समय प्राणी अच्छे बुरे का भाव छोड़कर दुस्साहसी होता है, इसलिये हिंसा साहसिक है, (अणारिओ) पाप रहित कर्म को आर्थ कहते हैं, उससे विपरीत होने से अथवा अनार्थ लोकों से क्री गई होने से हिंसा अनार्थ, है (णिग्घिणो) हिंसा करते समय पाप से घृणा-दुर्भावना नहीं होती इसलिये यह ‘निर्घृण, है, (णिस्संसो) निर्दयता का कार्य होने से अथवा प्रशंसा करने योग्य नहीं होने से हिंसा ‘नृशस’ है, (महवभ ओ) बड़े भय का कारण होने से यह (भयङ्कर) ‘महाभय’ है, (पइभओ) प्रत्येक प्राणी से हिंसक को भय रहता है, अतएव हिंसा को ‘प्रतिभय’ कहते हैं, (अइभओ)

हिंसा के समय हिंसक इस शोक व परशोक के मय को मूक जाता है इसलिये हिंसा 'असिमय' मयको मुकाने वाली है (बीहणभो) प्राणी की हिंसा भयभीत करने वाली है (वासपभो) दूसरे को कल्प व मन में झोम पैदा करने से यह हिंसा 'वासनक', है, (जणरुओ) हिंसा न्याय पुक्त नहीं होने से। अन्त्याप्य क्वाती है (लभ्येयणभो) जित्तमें छद्मेग को करने वाली है (य) धीर (निरवपनभो) हिंसा में दूसरे के प्राणों को व परशोक की अपेक्षा नहीं रखने वाली वास्ते हिंसा 'निरपेक्ष' है। (निधम्मो) मृत व पारित्र भर्म से हिंसा बहिर्भूत है, अर्थात् भर्म मृत्यु है, (निष्पिपासो) दूसरों के जीवन की व्याध इच्छा नहीं होने से निष्पिपास, है (निष्कृमो) कल्पामाष के बडे जाने से हिंसा 'निष्कल्प', है, (निरपवास गमक-भिवणो) बरक वास में जाने के बाहिर परिणाम वाली हिंसा है, (मोहमहम्मपयटभो) मोह-मूर्खता और बडे मय को मूक करने वाली तथा अज्ञान व मय को बढ़ाने वाली भी हिंसा है, (अरखावेमक्सो) मरण के द्वारा यह जीवों की वीमता का कारण होती है।।

(पदमं अम्मभारं) यह प्राण वय रूप पहला व्यासव भयर्म द्वारा हुआ।

भाव—यहाँ प्राणविपात को पाप बड रौद्र भावि' २१ विशेषणों से बताया गया है। यह मरक गति का कारण और मय व अज्ञान को बढ़ाने वाला है।

मृत्यु के द्वारा यह प्राणियों को वीम बना देता है दूसरे द्वार में प्राण वय के मान करते हैं—इस प्रकार प्रथम भयर्म द्वारा पूर्ण हुआ।

मूल—"तस्सय नामाणि इमाणि गोणणाणि होंति तीस, तजहा-पाणयहो १ उम्मूलणा सरीराओ २ अवीसभो ३ हिंस विहिंसा ४ तहा अकिरुष ५ ५ घायणा ६ मारणा य ७ वहणा ८ उहवणा ९ तिवायणा य १० आरम-समारभो ११ आउप कम्मस्तुपहवो, भेयणिद्वयण गालणा य सपहग सखवो १२ मरुधू १३ असजमो १४ क.डगमहण १५ वोरमण १६ परभव सकाम कारओ १७ दुग्गतिप्पवाओ १८ पावकोवो य १९ पावकोभो २० छविच्छेओ २१ जीवियत करणो २२ भयकरो २३ अणकरो य २४ वज्जो २५ परितायण अयइओ २६ विपासो २७ मिअयणा २८ छुपणा २९ गुणाण विराहणासि ३० विय, तस्स एममादीधि

णामघेज्जाणि होंति तीसं पाणवहस्स कलुखरस्स कड्डय फल-
देसगाहं ॥ सू० २ ॥

छाया- तस्य च नामानि इमानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत् । तद्यथा-“प्राणवधः १
उन्मूलना शरीरात् २ अविश्रम्भः ३ हिंस्य-विहिंसा ४ तथा अकृत्यच ५ घातना ६
मारणा च ७ हनन्म् ८ उपद्रवणम् ९ त्रिपातनाच १० आरम्भ समारम्भः ११
आयुः कर्मणोपद्रवो, भेद-निष्ठापन-गालना च संवर्तकसक्षेपः १२ मृत्यु. १३
असयमः १४ कटक मर्दनम् १५ व्युपरमणम् १६ पर भव-सक्रमकारकः १७ दुर्गति
प्रपातः १८ पाप-कोपश्च १९ पाप लोभः २० छवि च्छेदः २१ जीवितान्त करणः २२
भयङ्कर. २३ ऋण करश्च २४ वर्ज्यः २५ परितापनास्रवः २६ विनाशः २७ निया-
पना २८ लोपना २९ गुणानां विराधना ३० इत्यपिच, तस्यैवमादीनि नामधेयानि
भवन्ति त्रिंशत् प्राणवधस्य कलुषस्य कटु-फल देशकानि (सू०२)

अन्व-“(तस्सय) और पूर्वोक्त स्वरूप वाले उस प्राण वध के (नामाणि)
नाम (इमाणि) (गोणणाणि) गुणों से होने वाले (तीसं) तीस (होंति) हो ते हैं,
(तजहा) जैसे कि वे-(पाणवह) प्राणों का हनन होने से इसको प्राण वध कहते
हैं (उन्मूलणा शरीरात्) जीव को शरीर से अलग कर देने से इसको उन्मूलन
कहते हैं (अवीसभो) अविश्वास का कारण होने से इसे अविश्रम्भ कहते हैं,
(य आरंभ समारंभो) और जीवों का उप मर्द होने से अथवा पीड़ा पहुँचाने
के साथ जीवों को मारने से इस को ‘आरंभ समारंभ कहते हैं’ ।
(हिंस्य विहिंसा) जीवों की हिंसा अथवा प्रमादी जीवों से विशेष रूप में
होने के कारण इसे हिंस्यविहिंसा कहते हैं, (तहा अकिञ्चं) इसी प्रकार नहीं
करने योग्य होने से यह अकृत्य है (च घायणा) और प्राणों की घात करने से इसे
घातना, व (मारणा) मरण उत्पन्न करने से ‘मारणा’ कहते हैं (य वहणा) और
हनन करने से इसको ‘वधन’ भी कहते हैं (उद्वणा) दूसरे को दुख. पहुँचाने के
कारण इसको ‘उपद्रवणा’ कहते हैं, (त्रिपायणा) मन वाणी और कायका अथवा देह
आयु और इन्द्रिय रूप प्राणों से जोव का पतन कराने से इसको ‘त्रिपातना’ कहते
हैं (आस्य कम्मस्सुवह्वोभेयणिद्ववण गालणाय संवहण संखेवो) आयु कर्म का
उपद्रव, या उसी क्ला भेद या उस आयु का अन्त करना और आयु को गालना,
खुदाना व आयु को सक्षेप करना इन में एक कोई या सब मिलाकर प्राणि वध का

एक नाम होता है । क्योंकि आयु का क्षेपन करना सब में समान है । (मधु) मृत्यु (असंज्ञमो) समय भाव से हिंसा नहीं होती यास्ते इस को 'असयम' कहा है (कृत्वामर्ण) सैम्ब की तरह आक्रमण करके प्राण्य वध किया जाता है, इसलिये इसको कृत्क मर्दन भी कहते हैं (वोरमण) प्राणों से जीव का वध करने के कारण यह म्युपरमस्य कहाता है, (परमव संकामकारमो) प्राण से छूट जाने पर ही जीव का परमव में सक्रमण होता है, इसलिये इस को परमव में संक्रमण कराने वाला कहा गया है (दुग्गति प्पवामो) प्राणवध के कारण जीव दुग्गति में पड़ता है इसलिये 'दुग्गति प्रपाठ, कहते हैं (पावकोपो य) और पाप कर्म को बढ़ाने वाला व ज्ञेयित करने के कारण यह 'पाप कोप' कहाता है । (पावकोभो) प्राणिमों को पाप में लुभाता है इसलिये इसको 'पाप कोम' कहते हैं, (उवच्छेभो) हिंसा में वर्तमान शरीर का क्षेपन होता है इसलिये इसको 'उवच्छेव' भी कहते हैं, (जीविभंतकरजो) जीवन का भंग करने से वह 'जीविताम्य करण' कहाता है (मयको) मय छपन करने वाला है (अभकोय) श्रमकर जाने पाप रूप श्रम-कर्त को करने वाला है (बबभो) जीव को मारी बनाकर अयोगति-जीव गति में छेवाने के कारण प्राणिवध को 'बय कहते हैं' विवेकिमों से ब्रह्मिहाने के कारण 'बय' भी कहते हैं पाठाम्तर की अपेक्षा सावध नाम भी होता है (परितावण अण्भो) इसकी परिवापमासत्र भी कहते हैं (विपासो) प्राणों को मष्ट कर देने से इसको 'विमास' कहते हैं ('निग्गयणा) प्राणी के जाने में प्रेरक होने से इसको 'निर्यापना' भी कहते हैं (छुपणा) प्राणों के छोप करने से इसे 'छुपना' कहते हैं (गुणापे विराहणत्ति) मरने व मारने वालों के गुणों का विभावक होने से हिंसा को गुणों का विरापक भी कहते हैं (बिय, तस्य कहुसरस पाणवहरस) इस प्रकार पञ्चमस्तिन कम रूप प्राण वध के (एवमादिणि प्पामधेग्गाणि) इत्यादिक नाम (सोसं) तोस (होंति) दोते हैं, जो (कहुपकससैसगारं) कहु पञ्च को देने वाले हैं ॥ सू० २ ॥

भाव—'प्राणवध के गुण सम्पन्न तीस नाम होते हैं जैसे प्राणवध, १ अम्मूखना २; अविताम ३ हिंस (स्व) विदित्य ४, अहृष्य ५ पावता ६ मारणा ७ वध ८ अत्रवण ९ त्रिपातना १० अरम्म वमारम्म ११, आयु कूम-अत्रव, भेद भंग वा गाहान, संवतन अचवा संश्लेष करण १२ मृत्यु १३, असंयम १४, कृत्क

मर्दन १५, व्युपरमण १६ परभव सक्रम कारक १७ दुर्गति प्रपात १८ पापकोप १९ पाप लोभ २० छविच्छेद २१ जीवितान्तकरण २२ भयङ्कर २३ ऋणकर २४ वज्र वा वर्ण्य २५ परितापनास्रव २६ विनाश २७ निर्यापना २८ लुप्पना २९ और गुणों की विराधना ३० इस प्रकार इस पाप रूप प्राण बध के कटुफल बताने वाले तीस नाम कहे गए हैं ॥ सू० २ ॥

प्राण बध के कारण व प्रयोजन—

सूत्र ३ ग

मूल-तंच पुण करेति केह पावा असंजया अधिरया अण्डिहु-
य परिणाम दुप्पयोगी पाणवहं भयंकरं बहुविहं बहुप्पगारं
परदुक्खुप्पायणप्पसत्ता, इमेहिं तसथाबरोहिं जीवेहिं पडिनि-
विट्ठा, किंते ? पाठीण, तिमि, तिमिं गिल-अण्णगभस-बिबेह
जाति मंदुक्क-दुविहकच्छुभ-णक्क-मगर-दुविह गाहा-दिलि वेढय
मंदुय-सीमागार पुलुय सुंसुमार बहुप्पगार जलयर विहाणाकते य
एवमादी । कुरंग-खर-सरभ-चमर-संवर-उरवभ-ससय-पसय-गोण
रोहिघ-हय-गय-खर-करभ-खग्ग-वानर-गवय-विग— सियाल
कोल-मज्जार कोल सुणक-सिरियंदल गावत्त-कोकंति य-गोकण
मिय-महिम-विग्घ-लुगल—दीविया—साण-तरच्छु-अच्छु भंल्ल
सद्दूल-सीह-चिल्लल-वउप्पय-विहाणाकए य एवमादी । अयगर
गोणस-वराहि—मउलिका-उदरदवभ—पुप्फयासालिय-महोर-
गोरग-विहाणक कए य एवमादी । छीरल-सरंव-सेह—सेल्लग
गोधुंदर एउल-सरड-जाहग-मुगुंस-खाडहिल—वाउप्पइय-घीरो-
लिय सिरीसिधगणे य एवमादी । कादंथक-वक-बलाका सारस
आढासेतीय-कुलल-बंजुलपारिप्पव—कीव- सउण—पिपीलिय
दीविय हंस-धत्तरिट्ठग-भास-कुली कोस कुंच-दगतुंड-ढेणियाल्लग

१—उपरोक्त तीस नाम के अलावे भी प्राणातिपात, हिंसा आदि प्राणबध के नाम हो सकते हैं, किन्तु यहां सामान्य रूप से उदाहरण के तैरीके कुछ नाम गिनाए गये हैं, मूल का एवमादि शब्द भी अन्य नामों की सूचना देता है ।

सुईमुह कविष्ठ पिङ्गलकक्षग-कारकग चक्रवाग-उक्षोस-गरुड
 पिङ्गल-सुय-परदिण-मयससाक-नदीमुह-नदमाणग-कोरग
 भिंगारग-कोबाकग-जीवजीवक तिस्तिर-बटक-ठावक-कापिञ्जक
 कपोतककाग पारपयग विविग ष्टिक-कुक्कुड-वेसर-मपूरग
 अउरग-हय पोंडरीय-साकग-करक-वीरल्ल सेणवापसा य विहग
 भिणासि-चास विग्गुलि-धम्मट्टिक-विततपदिम्ब खहपर बिहा
 याकते य एयमादी । जल पल खग चारिणो उ पाँचिदिए पसु
 गये विय तिय अठारिदिए य विविहे जीये, वियजीविए, मरब
 दुफल पडिफूले वराए हणाति बहुसाकिलिट्टकम्मा । इमेहिं विवि
 हेहिं कारणोहें किंते ? धम्म वसा-मस मेय सोणिय-जग-किप्पिस
 मत्पुल्लिग हितयत पित्त-कोफस दतदठा अदिठ मिज-नह-नपण
 कणणयहाकणि मक्क-धमणि-सिंग-दादि पिच्छु विस-विसाण
 बाळहउ, हिसति य भमर मधुकन्निगणे रसेसु गिद्धा, तहेव
 तेदिए सरीरोवकरणदूयाए, किवण येदिए पहवे यत्थोहरपरि
 मरणदूठा, अण्णेदि य एवमाहएहिं पट्टहिं कारणमसादि अयुहा
 इह हिसति तसे पाण, इमे य एयिदिए पहवे वराए तसे य
 अण्णे तदस्मिए येय ताणुमररिरे ममार भति अत्ताण असरण अणाहे
 अवधये कम्मनियल्लयद्ध अकुसल्ल परिणाम मदयुद्धिजण बुद्धिय
 जाणए, पुढाविमये पुढाविसासिए, जलमए जलराए, अण्णाणिक
 तणपणस्सति णण निस्सिए य तम्मय तज्जिते चय तदाहारे
 तत्परिणत-अण्ण-अम-रम-कास धोदिरूय-अपपरुस अपपरुस
 य तमकाहए अमय, धापरकाए य सुट्टम-वापर-पत्तेय-सरीर
 नाम साधारण अण्त हणति अपिजाण्णो य परिजाण्णा य
 जीय इमेहिं विविहहिं कारणहिं, किंते ? करिसण पाण्णरणी
 वापि यप्पिणियुप सर-तल्लाग-पिति-येतिय-ग्गातिय आराम-विहार
 धूम-वागार-दार-चाउर अट्टाकग-चारिया-सेतु मकम पामाय
 विरूप भयण पर सरण-केण धायव-पतिप पयङ्गल विस्त-सभा
 पवा आपतयापसद मूभिपर मट्टवाय य कए, भायव भयो

वगणसस विविहसस य अट्टाए, पुढर्विं हिंसांते मंदबुद्धिया,
जलं च मज्जणय पाण भोयण वत्थ घोवण सोयमादिएहिं, पयण
पयावण जलावण विदंसणेहिं अगणिं, सुप्प वियण तालयंद
पेहुण सुह करयल सागपत्त वत्थमादिएहिं अणिलं, अगार
परिवा (या) र—भक्खभोयण—सयणासण—फलग—मुसल-
उग्वल—तत—वितता तोड़ज—वहण—वाहण—मंडव—विविह भवण-
तोणणा—विडंग—देवकुल जालयद्ध चंद—निज्जूग—चंदसालिय-
वेतिय—णिस्सेणि—दोणि—चंगेरि—खील—मेढक—सभा—पवा—
वसह—गंध—मल्ल णु वेवणंवर—जुय—नंगल—महय—कुलिय—संदण-
सीया—रह—सगड—जाण—जोग्ग—अट्टालग—चरिअ—दार
गोपुर—फलिहा—जंत—सूलिय—लउड—मुसंडि—सताग्घि—बहु
पहरणावरणुवक्खराण कते, अणणेहि य एवमादिएहिं बहुहिं
कारणसतेहिं हिंसांति ते तरुणणे, भणिता एवमादी सत्ते सत्त-
परिवज्जिया उवहणंति, दढमूढा दारुणमती कोहा, माणा, माया,
लोभा, हससरती, अरती, सोयवेदत्थी, जीयकामत्थधम्महेउं,
सवसा, अवसा, अट्टा अणट्टाए य तसपाणे थावरे य हिंसांति
मंदबुद्धी, सवसा हणंति, अवसा हणंति, सवसा अवसा दुहओ
हणंति, अट्टाहणंति, अणट्टाहणंति, अट्टा अणट्टा दुहओ
हणंति, हस्सा हणंति, वेरा हणंति, रती य हणंति, हस्सवेरारती य
हणंति, कुद्धा हणंति, लुद्धा हणंति, मुद्धा हणंति, कुद्धा लुद्धा मुद्धा
हणंति, अत्था हणंति, धम्मा हणंति, कामा हणंति, अत्था
धम्मा कामा हणंति ॥ सू० ३ ॥

छाया— 'तं च पुनः कुर्वन्ति के चित्पापा असंयता अविरता अनिभृत परिणाम-
दुष्प्रयोगाः प्राणवध भयङ्कर बहुविधं बहुप्रकार परदुःखोत्पादनप्रसक्ता',
एतेषु त्रसस्थावरषु जोबेषु प्रतिनिविष्टा, के ते त्रसस्थावरा ? पाठीन तिमि
तिमिङ्गिलाऽनेक-क्षय विविधजाति मण्हक—द्विविध कच्छप नक मकर द्विविध प्राह
दिल्लिवेष्टक मन्दुक सीमाकार पुलक सुसुमार बहु प्रकारान् जळचर विधान कृतांश्च
एवमादीन् कुरद्ग ख्खसरम-चपर-सम्भरोरभ्र शशक—प्रशय-गोणस-रोहित-इय-गज

खर-करम-झङ्ग-वानर-गवय-बृह शृगाळ-कोळ-माजूर कोडमुनक श्रीकृष्ण-
 कावर्त-कोकनिक गोऊर्ण-मृग-मक्षिप-म्याम-ज स-शोपिक-धान तरहाडकमज्ज-सावू स
 सिंह चित्तळ-बतुपपद विषाम कृताञ्जिवमादीम्, अजगर गोपस बराहि मुकसि काकोबर
 बर्मपुष्पाऽऽसाक्षिक-महोरगोरग-विधानकृताहचैवमादीम् क्षीरळ-अरम्ब-सेह-सत्यक
 गोधोम्बुर महुळ-अरट-भाइक-मुगुं-आडदिका-वातोत्पत्तिका-गृहकोकिलिका-सरीसृ
 पगण्यञ्जिवमादीम्; कादम्बक-वक-बलाका- सारस-भाडासेवीका-कुळ-बंजुळ
 पारिप्लव-कोव-शकुन-दीपिक पिपीलिका इस-घातरामूक-मास-कुतोकोळ
 कौश इकुण्ड देखि हाळक सूचीमुस कपिल पिङ्गलाक्षक कारणक बरुवाक कळकोस
 गरुड पिङ्गुळ छुक बहिं मबनराळ नम्बोमुस नम्बमानक कोरङ्ग सुत्तारक
 कोण्याळक बोबजीवक विस्तर वर्तक लावक कपिलळक कपोत्रक पारापवक चिटिका
 डिङ्ग कुकुंठ वेसर मयूरक चकोरक इवपुण्डरीक करक बोरङ्ग एमेस बायस विहङ्ग
 भेनारिख बाप पन्नुळो चर्मास्त्रिख विवतपक्षिण्य काचरविधानकृताहचैव
 मादीम्, अकाम्यकसचारिण्य अश्वेन्द्रियान् पद्मगण्यान् द्वित्रिचतुरिद्रियान्
 विविधान् बीवान् मियजीविताम् मरुय दुष्प्र प्रतिकृशान् बराकान् प्रमिष्ठ बहुसंज्ञिष्ठ
 कर्माण्य एनिर्दिबिधे कारणे; किन्तम् ? अम बला-मास-मेर-शोणित-पफुन्-फांल-
 स-मस्तुकिङ्ग इदयान्त्र-पिच-फेफस इत्याऽयम्, मरिष मळ नस नयन कर्ण छाया
 नाशिका-बमनी गृह-इष्ट-पिच्छ-विप-विपाण्य-बाळ हेतु । हिसमिष्ठ च अमर
 मनुकरी गण्यान् रतेपु गृहाः । तथैव शोम्निद्रियाम् क्षरीरोपकण्यायम् ! कृपस्याम्
 शोम्निद्रियाम् बहुम् वखीगृहपरिमगडनायम् । अन्येञ्जिवमादिभिर्बहुभिः कारण
 शतैरनुपा इह दिसन्ति प्रसात् प्राणान् इमोञ्जैकेन्द्रियाम् बहुन् बराकामत्रसांभ्या-
 म्यान् तदाभिवर्ज्यैव तमुक्षरीराम् समारमन्तेऽत्रायाम् अक्षरयाम् अनायानबाधवा-
 न् कर्मनिगडबद्याम् अकुसुमपरिणाममन्वजुकिअनबुर्दिशेषान् पृथुमपान्
 पूरकोसबिताम्-अळमपान् अळगावान् अनळाऽनिकदृष्यबनसवतिगण्यनिसृनाथ
 तन्मपनञ्जोषाम्-चैव तदापाठान् तत्परिणय-बण-गम्ब रस रशं बोम्निद्रियान्
 अथास्तुपान् चाधुर्वाथ प्रसकापिकान् असंख्यान् रथाबरकायान् सुहमवापूर प्रत्येक
 क्षरीरनामसाधारण्यम् अनन्तान् इत्येव अविज्ञानतम्य परिज्ञानतम्य बीवान्
 एतेर्दिबिधे कारणे; किन्तम् ? कण्य पुर्बत्त्यो बापो बरिणो (केदार) ह्य
 सारसहाग-पति-वेदिका-व्याविकाऽऽराम-बिहार स्तूप पाकार द्वार गोपुराऽऽश्रिका
 चरिका-सेतु संक्रम-प्राधाद-विद्वन् अवन गृह दारण-अयनाऽऽपण्य चैव देवकुव पित्र

सभा प्रपाऽऽयतनाऽऽवसथ-भूमिगृह-मण्डपानाश्च कृते, भाजन भाण्डोपकरणार्थं विविधस्य चाऽर्थाय पृथिवीं हिंसन्ति मन्दबुद्धयः ! जलं च मज्जन पान भाजन वस्त्र धावन शौचादिभिः, पचन-पाचन-ज्वालन-विदर्शनैश्चाग्निम्, शूर्पं व्यजन तालवृन्त पेहुन (मयूरपिच्छ) मुख करतल सर्गं शाकपत्र वस्त्रादिभिरनिलम्, आगार परिचार भक्ष्य-भोजन शयनाऽऽसन-फलक-मुसलोदूखल तत विततातोद्य वहन वाहन मण्डप विविध-भवन-तोरण विटङ्क देवकुल-जालकाऽर्द्धचन्द्र-नियूहक-चन्द्रशाजिका-वेदिका नि श्रेणि-द्रोणी-चङ्गेरी-कोल-मेठक (मुण्डक) सभा-प्रपाऽऽवसथ-गन्धमाल्यानुले-पनाऽऽस्त्ररूपलाङ्गल-मतिक-कुलिक-स्यन्दन-शिविका-रथ-शकट-यान-युगयाट्टालक चरिका-द्वार-गोपुर-परिधा-यन्त्र-शूलिका-लकुट (लगुड) मुशुण्डी (मुशुण्ढी) शतघ्नी बहुप्रहरणाऽऽवरणोपकरणानां (स्करणां ना) कृते, अन्यैश्चैवमादिकैर्बहुभिः कारणशतैर्हिंसन्ति ते तरुगणान् भण्डान् एवमादोन् सत्त्वान् सत्त्वपरिवर्जितान् उपघ्नन्ति, दृढा मूढा दारुणमतय क्रोधान्मानान्मायया लोभाद्-हास्य रत्यरति शोक वेदार्था, जीव (जीव) कामार्थं धर्महेतो स्ववशा, अवशा, अर्थाय अनर्थायच त्रसप्राणान् स्थावरश्च हिंसन्ति मन्दबुद्धयः, स्ववशा घ्नन्ति, अवशा घ्नन्ति, स्ववशा अवशाश्च द्विधा घ्नन्ति अर्थाय घ्नन्ति, अनर्थाय घ्नन्ति अर्थाय अनर्थार्थं द्विधा घ्नन्ति, हास्याय घ्नन्ति, वैराय घ्नन्ति, रतये घ्नन्ति, हास्यवैररतिभ्यो घ्नन्ति, क्रुद्धा घ्नन्ति, ब्रुधा घ्नन्ति मुग्धा घ्नन्ति, क्रुद्धा लुब्धा मुग्धा, घ्नति अर्थाथ घ्नन्ति, धर्माय घ्नन्ति कामाय घ्नन्ति, अर्थं धर्मं कामेभ्यो घ्नन्ति ॥ सू० ३ ॥

अन्वयार्थ—“ (तत्पुणो) और फिर उस प्राणवधको (करेंति) करते हैं (केई) कितनेही जीव जो (पावा) पापी (असजया) व असयम शील हैं (अविरया) पापसे अलग नहीं हुए या सत् क्रिया में नहीं लगे हैं (अणिदुष्य परिणाम दुष्पजोगो) भशान्त परिणाम वाले और मन बाणी व शरीर के अशुभ व्यापार वाले हैं (भयंकर) भयङ्कर और (बहुविह , शारिरिक मानसिक आदि बहुत प्रकार वाले (पाणवह) प्राणवध को (बहुपगार) बहुत-कई तरह से 'करते हैं' (परदुक्खुपायणपसत्ता) वे दूसरे को दुःख उत्पन्न करने में तत्पर तथा (इमेहिं तसथावरेहिं जोषेहिं पडिणि-विट्टा) इन आगे कहे जानेवाले त्रसस्थावर जीवों में अप्रीति शेष रखनेवाले हैं (किते) कौन जीव मारे जाते हैं या प्राणवध किसप्रकार किया जाता है ? मारे जाने योग्य जीवों के प्रकार— (पाठीन तिमि तिमिगिळ) पाठीन मत्स्यविशेष, तिमि व तिमिङ्गिल ये दो महामत्स्य हैं (अणेग सस विविह जाति मदुक्क) विविध मत्स्य

छोटे मत्स्य खलमत्स्य युगमत्स्य आदि, विविध आदि के मेढक (तुबिहकच्छम) दो प्रकार के कच्छप-मांसकच्छप और अस्त्रिकच्छप (पफर मगर तुबिह गाहा) मक, मकर-मगर-सुंढामगर यमत्स्य मगर के मेढ़ से दो तरह के होते हैं, । प्राइ अलबन्तु विशेष (विडिबेडव संदुयसीमागार पुल्लय) विडिबेड मन्तुक, सीमाकार, और पुत्रक ये सब प्राइके मेढ़ हैं (सुंसुमार बहुष्पगारा बळयर विहाणा कते) सुंसुमार, और अनेक प्रकार के बलयर के मेढ़ों को करने वाले (एवमादी) इधप्रकार के पाठोन आदि जीवों को तथा (कुंरंग-स्व-सरम-अमर-संवर दुरभम-ससय-पसय-गोवस रोक्षिप-)शुग स्व-शुगविशेष सरम-बडो देह वाले जंगली पशुविशेष को परासर नाम से भी कहे जाते हैं और वे हाथी को भी पीठपर उठा लेते हैं अमर अमरी गाय, संवर-सांवर, वरभ-अप-ऊनवाळे मेढ मेढक, छसा प्रथम-दो झुर वाले जंगली पशुओं का मेढ़, गोण-गायें रोहित चौपाय अन्तु विशेष (इस गम ऊर करम अग वानर गबय विग सियाळ) मोडा हाथी गवा, टांट अङ्ग-इसके दोनों बाजू पाँख की तरह अमड़ें छतफते हैं और फिर पर एक सीग होता है; वामर गबय मीलीगाय या रोड वृक-हिंसक जीव, शुगाळ-सियाळ और (कोळमग्मार कोळ सुणग सिरियं वृङ्गावत्त कोक टिय गोकुण्य मिय महिस विग्य छगळ होबिया साण तरच्छ अच्छ मल्ल सरस सीइ थिन्नळ अक्षय्य विहाणाकप) कोळ व फिर जैसा अन्तु मार्जाँ कोळ सुणग बडा सुमर, अथवा कोळ सुमर और शूनक-कुत्ता जीकन्वळक भावर्तक ये दोनों एक झुर वाले अन्तु हैं, कोकटिक छोमबी अथवा की की करके रात में बोहने वाला जीव विशेष, गोकर्ण दो झुर वाला अतुप्पद विशेष, शृग-सामाम्प्यहीरिण, पहले कई रूप कुंरग आदि सीग व वर्ण के मेढ़विशेषम से समझने जादिय, महिच-मैस क्याय, छगळ-पकरे की जाति, होविक-शीता ग्राम-जंगली कुत्ते तरह अक्षमद औरछा इड सिह-केसरो-विह, विशाल-नय बाढी पशु विशेष अथवा चित्रळ-हरिण का आकृति-वाला दिमुर पशुविशेष-कुंरंग आदि जिन विशेषणों से अतुप्पदों के मेढ़ किये गए हैं वनको (य) और (एव मादी) इस प्रकार के अन्य अतुप्पद जीवों को फिर (अपार) अन्नगर-बडा सांप (गोण्य) विना फल के सांप, (बरीह) दृष्टि विप धर्पे के फल करने में रथ दाते हैं (मबळ) मुकुली-फल वाले धर्पे विशेष, (कावर) काकोवर-एक जाति के धप, (दुमपुष्क) दम पुष्प-एक जाति का धर्पेकर सप (आसाजिय) आसाजिक-आसाजिया * (महोरग) बहुत बडा धर्पे, (एग विहाणक क्य) एग जाति के मेढ़ को करने वाले इन जीवों को (य) और (एवमादी)

इस प्रकार के दूसरे उरपरिसर्प-छातो के बल चलने वाले जीवों को तथा (छौरल-सरंव-सेह-सेहग) क्षौरल और शरम्ब वाहु के बल पर चलने वाले जीव विशेष, सेह-तीखेकांटों से भरे हुए शरीर वाला जीव जो शेला नाम से प्रसिद्ध है, शत्यक- जीव विशेष, (गोधुंदर णडल-सरह -) गोधा गोह, उदिर चूहा, नोला और शरट-कुकलास नामका जीव, (जाहग मुगुंस खाडहिळ वाउपिय घी रोतिय सिरोसिवगणे) जाहक-कांटे से ढके हुए शरीर वाला जीव, मुगुस मुगुस, खाड-हिला-टिलोडी-गिल्लोरी, वातोत्पत्तिका-लोकुरुडि से समझे घीरोतिय-गृहकोफिलिका-घर मे रहने वाली गोह, हाथ से सरक कर चलने वाले जीवों के भेद करने व ले इन जीवों को (य) और (एवमादो) इस प्रकार के अन्य भी मुज-परि सर्प जीवों को. तथा (कादवक) हस विशेष (वक) वगुला (बलाका) विसकण्ठिका, (सारस) सारस नाम के प्रसिद्ध पक्षी, (आडासेतीय) आडा सेतीक जिसको आड कहते हैं (कुलल) कुलल, (बंजुल) बंजुल (परिपव कीव सउण-दीविय (पोपीलिय) हस-) पारिप्लव-खदिर चञ्चु, कीव शकुन-और दीपिक ये पक्षि-विशेष हैं, पी पी बोलने वाले पक्षी को पीपीलिक कहते हैं, हंस-श्वेतहस (धत्तरिट्टग भास कुलीकोस कुच दगतु ड डेणियालग) धार्तराष्ट्र-कृष्ण मुख व चरण वाले हस, भास और कुटीक्रोश-पक्षि विशेष, क्रोंच, उदकतु ड, डेणिकालक (सूईमुह कविल पिंगलक्खग कारडग) सूचोमुख, कपिल, पिंगलाक्षक और कारडक-अप्रसिद्ध पक्षी/विशेष (चक्काग उक्कोस गरुल पिंगुळ सुय वरहिण मयणसाल) चक्रवाक, उत्क्रोश, कुरर, गरुड पिंगल-अप्रसिद्ध, शुक्र पोपट, बर्ही-पांखवाले मयूर-मोर, मदनशाता-मेना, (नदीमुह-नदमाणग-कोरग भिंगारग कोणालग) नदीमुख, नन्दमानक कोरक और भृङ्गारक-अप्रसिद्ध पक्षी विशेष, भृ गारिका रात में झंझ बोलने वाला छोटा पक्षिविशेष, कोणालक-पक्षिविशेष, (जीव जीवक तित्तिर वट्टक लावक कर्पिजलक कवोयक पारेवयग चिडिग ढिक कुकुड वेसर) जीव जीवक-चकोर, तित्तिर, वत्तक चर्तक-जिसको वतक कहते हैं

१ आसाक्षिया इसका शरीर उच्छृष्ट १२ योजन तक लम्बा होता है और यह खंडप्रलंब के समय बड़े शहर आदि की भूमि के नीचे उत्पन्न होता है।

२ महोरग-यह मनुष्य क्षेत्र के बाहर होता है, तथा इसका शरीर आक्षिर में हजार बोलन तक लम्बा होता है।

छात्रक-सवा नाम का पक्ष विशेष फणिसलक, कपाव-कपूर पारावत-कपूर
 का हो एक मेरु, चिटिका-कलिका-चीनी विशेष त्रिक-पक्षिविशेष, कुकुर-मुर्गा,
 वेसर-अपसिद्धपक्षी (मयूरग-अउरग-हय-पौंडरीय-करक-वीरक-सेण-बायसय
 विहंग मिणासि-वास-वग्गुठि-अम्मट्टिस-पितवपक्षि-अएर-विहाणाक्य)
 मयूरक-कछाप रहित भीर अकोर इह पुंडरीक भीर झालक या करक तथा वीरक
 ये कोई अपसिद्ध पक्षिविशेष हैं इयेन-वाज बायसविहङ्ग-काकपक्षी, मेनाशित
 पक्षीविशेष, अथवा कही वायस और विहंग भेद नाशित ऐसे नाम मिळते हैं।
 प्रापपक्षी, वल्लुली-बागलपक्षी चर्मास्थिज-अमगीवृक्ष या चर्म चिडी वित्त
 पक्षी यह मनुष्य क्षेत्र क बाहर होता है, लखर के मेद करन वाले इन पक्षियों
 को (य) और (पयमारी) ऐसे कावक भादि पक्षियोंको पूर्वोक्तमीनों का
 संभव वचन से कहते हैं- (अक्षयल-अगचारिणो त पक्षिदिप) अक्ष स्पष्ट-भूमि
 और आकाश मार्ग से चलने वाले पक्षेन्द्रिय (मयु गये) पशु भादि के प्राणियों
 को तथा (त्रिय त्रिय अत्रिदिप) दो तीन और चार इन्द्रिय वाले (विविहे जीये)
 अनेक प्रकार के जीव (प्रिय जीविप) प्रिय जीवन वाले व (मरण हुक्क पटिकु से)
 मृत्यु के दुःख को नहीं चाहने वाले (वराप) बेच दे कुत्र जीयों को
 (बहुसंकिच्छिद्धकम्मा) बहुत क्रोधयुक्त कर्मों को करने वाले हिंसक (हर्षति)
 मारते हैं। मय हिंसा के कारण करते हैं (पमेदि) इन (पिा रि) भागे कहे
 जाने वाले अनेक (कारभेदि) कारणों से (किन्ते ?) ये की-ये प्रयोजन हैं ?
 अम्म-वत्ता मंत मेय-सोलिय-अण-किरिक्स-) अमडा अमा-कारी मांस, मेड-
 वेद का वासु विशेष शोपित-अक्ष अकृत् पेट के शक्तिने वासु में रहने वाली
 मोममग्नि, फिटिकम-केकडा, (मत्तुल्ल ग-हितपठ-पिसा-फोफस-वंतहा) मत्तुल्ल-
 अरास का महा, इए-दिरे जा नाम अन्न-भात पित्त-शरीर का एक दोष,
 फोफस और हात के छिमे तथा- (अट्टि-मिज-नह-अयज-अण-आइवि-तल-अमपि
 मिग-दादि -विच्छ-विच-विषाय-बाळ देव) अस्थि-शुभो मज्जा नल नेत्र,
 कान, स्नायु-नमें नाक, अमनी-नडी सींग बाह विच्छ-पूछ-पंच निय सप
 भादिका विवाण-हायो का दाँठ और पाख-केण इन सब क निमित्त मारते हैं
 (य) और (दिगठि) मारते हैं (ममर मयुफरो एण) ममर और ममरिभा के
 समूह का (रसेमुगिडा) मयु भादि रस में शुद्ध-छाछपी सीव, (तदेव) इसी
 तरह (तैरिप) तीन इन्द्रिय वाले-नू भादि जीयों को (अरोरोकअण्डपाप)

शरीर के उपकरणों के लिये (किवणे) दया के पात्र-वेचारों को मारते हैं (बहवे) बहुत से (वेंदिए) दो इन्द्रिय वाले—लट भादि जीवों को, (वत्थोहर-परिमडणत्था) वस्त्र व घर की शोभा के लिये तथा वस्त्र के-लिये घर के लिये व शोभा के लिये मारते हैं (अण्णेहि य) और दूसरे (एबमाइएहिं) इत्यादि पूर्व कहे केश आदि (बहूहिं) बहुत से (कागणततेहिं) सैकड़ों कारणों से (अबुहा इह) इस संसार में अज्ञानी जीव (तसे पाणे) त्रस प्राणिओं को (हिंसति) मारते हैं (इमे य) और इन (एगेंदिए) एकेन्द्रिय-स्थावर जीवों को, तथा (बहवे वराए) बहुत से वेचारे (तसे) त्रस जीव (य) और (अण्णे) अन्य (तदस्सिए) उनके आश्रित रहने वाले (तणुसरीरे चेव) जो सूक्ष्म शरीर धारो हैं तथा (अत्ताणे) जिनके कोई रक्षक नहीं हैं, वैसे त्राण रहित (असरणे) हितैपी नहीं होने से जो अशरण हैं, (अणाहे) नाथ^१ नहीं होने से अनाथ (अबधवे) बान्धव रहित (कम्मनिगलवद्धे) कर्म के बन्धन में बंधे हुए (अकुसल परिणाम मदवुद्धिजणटुविज्जाणए) अशुभ परिणाम के उदय से जो मन्द बुद्धि हैं ऐसे प्राणिओं के लिये दुर्विज्ञेय—कठिन से जानने योग्य हैं, उन जीवों का (समारंभति) हनन करते हैं, फिर (पुढविमये) पृथ्वी कायिक (पुढवीससिए) पृथ्वी के आश्रित-अतितिया आदि त्रस जीवों को (जल्लमए) शपकाय के जीव (जल्लं गए) जल में रहे हुए कीड़े व सेंवाल आदि त्रस स्थावर जीव (अण्णला णिल तण वण-स्सतिगण निस्सिए) अग्नि वायु व तृण घनस्पति गण के आश्रयमें रहे हुए जीव (य) और (तम्मय तच्चित्ते) अग्निकायिक वायुकायिक और वनस्पति कायिक तथा उन योनिओं के जीव जो (तदाहारेचेव) पृथ्वी आदि के आधार वाले हैं या पृथ्वीआदिकाही आहार करने वाले हैं (तत्परिणत वण्ण गध रस फास बोदिस्सुवे) उन पृथ्वी आदि के वर्ण गन्ध रस और स्पर्श से परिणत—बने हुए देहाकार वाले अर्थात् जिन का शरीर पृथ्वी आदि के समान ही वण आदि वाला है । (अचक्खुसे) अचाक्षुष नजर में नहीं आनेवाले (य) और (चक्खुमे) दृष्टि में आने वाले-चाक्षुष (असखे तसकाइए) इस प्रकार असख्य त्रसकायिक जीव (य) और (थावर काए) स्थावर कायिक (सुहुम वायर पत्तेय सरोर नाम

१ अनाथ अबन्ध पत्तु का लाभ रूप योग और लब्ध वस्तु की रक्षा रूप क्षेम, इन दोनों योग क्षेमों को करने वाले नाथ कहे जाते हैं, जिसके वे नहीं हैं वह अनाथ है ।

साधारण अर्णव) सूक्ष्म बाहुर-रथुज, प्रत्येक शरीर^१ और साधारण अनन्त जीवों को (इर्षति) मारते हैं (अविजायम्) अपने बच को नहीं जानने वाले (य) और (परिजायम्) मुक्त हुआ बाधि से मरण का अनुभव करने वाले (जीवे) जीवों को (इमेहिं) इन मीचे कहे जाने वाले (विविहेहिं) अनेक प्रकार के (कारणेहिं) कारणों से (किते ?) वह प्रयोजन कौनसा है ? (करिष्य पोन्नरपी बाधि बाप्पिणि कूब धर लक्ष्म शिति वैतिय ज्ञातिय भाराम बिहार घूम पागार शर गोबर अट्टाळम शरिषा सेतु संकम पासाय विकल्प मलय धर सरण छेप नावय वैतिय देव कुळ शित्त सभा पदा आयत्तपावसद्द मुमिधर संहवाण्यक्य) श्वेती के छिये पुष्करिणी-कमळ वासी वा शौकोय वाचडी बापी-गोळ या बिना कमळ के बाळो, वमिपी-बेवार, कृमा, सरोवर लाछाव, शिति-मीप नाविका चपन-बमाना वा मृतक को बचाने के छिये बनाई गई शिता, वैदिका-बबूतरा, नाविका-बाई, भाराम-वगीचा; बिहार-बौद्ध नाविका मठ स्तूप-स्तुति चिन्ह विशेष, प्राकार-कोट, धार-बरवाजा गोपुर-नगर का मुख्य द्वार, अट्टाळक-कोट के ऊपर की बटारी शरिका-नगर और लक्षके कोठ के बीच का ८ हाथ छम्ब; घ्यागे सेतु-पाळ या पुष्पिा, संकम-विचम स्वाव से उतरने का माग प्रासाद-मण्ड-राजामों के भवन विकल्प-प्रासाद के भेद भवन जोसाळ बाधि गृह-सामान्य घर शरण-रथ-घास के घर, छय-पर्यंत में खोप कर बसाय घर बाण्य-दुकान, चैत्य-मूर्तिर्षो अथवा शिवाम्बान पर बना हुआ स्मारक देवकुळ-लिकर कुछ देवमन्दिर; शिवसभा-सचित्र मण्डप, प्रपा-पानी को व्याक, आयत्त-ईशराम, नावसव-परिजायकीका नावम, मूर्तिगृह-लक्षधर श्रौर मण्डप छाया बौरह के छिये बनाया गया कपडे का मण्डप, इन सबके छिये (य) और (भाष्य संज्ञोवगरणस्य विविहस्य अट्टाप) सोने भादि के भाजन और मिट्टी के भाण्ड अथवा किराये-सवगादि व उपकरण छळक भादि के और विविध-वस्तुओं के छिये (पुडविं) दुखी नाविक जीव की (विंसति) हिंसा करते हैं, (मवमुदिया) कम बुद्धि वाले लोग (अछं) और अछ काय के जीवों की

१ एक शरीर में एक जीव हो बसको प्रत्येक शरीरी करते हैं ।

२ एक औदारिक शरीर में साधारण कबडे रहने वाले जनेकों जीव बासी चरत्पति को साधारण करते हैं ।

(मञ्जुवैजय-पाण-भौयण-वत्थ-धोवण-सोयमादिएहि) स्नान भोजन, जलपान भोजन और वस्त्रों को धोने हाथ पैर धोने, शुचि करने आदि कारणों से हिंसा करते हैं (पयण पयोवण जलवण विदसणेहि अगणिं) पचन पाचन रसोइ बनाने—सिझाने, चावल सिझवाने जलावन खुद या दूसरे से आग को सुलगाने विदशनि दीपक जलाना आदि कारणों से अग्नि को (सुप्प-वियण-तालेयट—पेहुण मुह-करयल-सागपत्ते-वत्थमादिएहि) सूप सूपहा, व्यजन—वोजन तालवृन्त-पखा-पेहुण—मोर पीछी; मुख, करतल—हाथ, शाकपत्र—सागके पत्ते और वस्त्र आदि से (अणिलं) वायुकायिक जीवों को हिंसा करते हैं, (अगार परियार भक्ख भोयणा-सयणासण-फलक-मुसल-उखल-तत विततातोवज्ज—वहण—वाहण—मडव-विविहभवण—तोरणा—विडग—देवकुल—) घर; परिचार वृत्ति या तलवार आदि की म्यान, भक्ष्य मोदक आदि, भोजन—रोटी आदि; शयन—शय्या, आसन—विस्तर; फलक—पीठ व कुर्सी आदि, मूसल, ऊखल, तत—वीणा आदि वितत पटह—ढोल आदि, आतोद्य—बाजे, घहन—नौका आदि, वाहन—शकट गाड़ी आदि, मंडप, विविध भवन—अनेक प्रकार के चौशाले आदिभवन, तोरण; विटङ्क—कबूतरों के लिये बनाये हुए घर—कपोत पाली, देवकुल—देवल (जालयद्ध चद निज्जुग—चंद सालिय वेतिय णिस्सेणि दोणि-चगेरि—खील—मैठक—सभा—पवा—वसह—गंध मल्लाणुलेवण—वरजुय—नंगल—मइय—कुलिय—संदण—सीया—रह—संगह—जाण—जोग्ग अट्टालग—चरिंध दार—गोपुर—फलिहा—जंत—सूलिय—लंडड—मुसंठि—संतगि वहुपहरणावरणुवर्खराण कए) जालक—जाळियाँ, अर्द्धचन्द्र—सोपान या सौंध विशेष, निर्यूहक—दरवाजे पर घोड़े के मुह—की आकृतिवाली निकली हुई लकड़ियाँ, चन्द्रशालिका—प्रासाद के ऊपर की शाली वेदिका, निस्सरणो—चढने व उतरने की माल, द्रोणी—छोटी नौका, चगेरी—फूल डाली या वाद्य विशेष, कोल—खीलें, मैठक—मुंठे, सभा, पवा—प्याऊ, आवसंथ—परिव्रजकों का आश्रय, गंध—पावडर आदि; मालिय—फूलें माला, अनुलेपन—विलेपन, अम्बर—कपडे यूप—युग, जांगल—हल, मतिक—जमीन जोतने के षाद ढेला फोढने के लिये लम्बा काष्ठ, जिससे भूमि बराबर की जाय कुलिक—एक प्रकार का हल स्थन्दन—युद्ध और देव यात्रा में जाने के लिये दो प्रकार के रथ, शिविका—बड़ी पालकी, रथ, शकट—गाड़ी, यान—यानविशेष, युग्घ—वेदिकीयुक्त दो हाथ की जपान विशेष, अट्टालक—अट्टालिका, चरिका—शहर और कौंट के बीच में आठ हाथ का चौड़ा मार्ग, द्वार, गोपुर—नगर का मुख्य द्वार, परिघा—आगल, यत्र—अरहट,

भावि, मूखिका-शुद्धी पीचने का अत्र वा ललक-कौशलविशेष, ललुट मुहुटि-प्रहरण विशेष अत्रभी पडो छाठी पा लोप भावि और बहुत से प्रहरण—करवत भावि व भावरज अत्र विशेष उपकर—घर के उपकरण मच भावि इन सबके छिये (अण्पेहिय) और अल्प-इत्यादि (बहुहि कारणसण्दि) बहुत से सैकड़ों कारणों से (हिंसति ते लठगले) व अल्प अत्र मूख समूह-बनस्पति की हिंसा करते हैं (मज्जिताम०) ऊपर की गणना में कहे गए व बिना कहे (एवमादी) इत्यादि इस प्रकार के (सते) जीवों को (सत्परिधमिज्या) जो सत्त्व—मद्य से रहित हैं, पौंसों को (लवहर्षति) मारते हैं, (लवमूढा) लवमूढ-पक्षे मूल और (वाक्यमठी) कर बुद्धिवाले (कोहा) क्रोध से (माया) मान महद्धार से (माया) कपट से (ओमा) छोम से (हस्त रती भरती) हास्य—मजाक रति भरति—राग मा म्जानिसे (सोय वेह्यी) शोक और वेदानुष्ठान के लिये (सोय कामत्प धम्महेठं) भीष—जीवन या मर्णावा, धर्म अर्थ और काम-विषय के हेतु अपरोक्त हिंसा करते हैं, (सवसा) अपनी इच्छा से या (अवसा) कई पराधीनपने से (बहा) प्रयोजन से (अण्पेहिय) और बिना प्रयोजन से (लसपाले) तस प्राणी (धावरेय) और स्यावर—स्थिति शीघ्र पृथ्वी भावि के जीवों को (हिंसति मंच बुद्धि) मन्द बुद्धि वाले लोग मारते हैं। इसी बात को स्पष्ट करके कहते हैं—(सवसा हणति) अपनी इच्छा से कई मारते हैं (अवसा हणति) परतन्त्र होकर कुज मारते हैं (सवसा अवसा दुहभो हणति) स्वाधीन और पराधीन दोनों तरह से हिंसा करते हैं। (बहा हणति) अर्थ से याने प्रयोजन से मारते हैं। (अण्पेहिय हणति) निष्प्रयोजन हिंसा करते हैं (अण्पेहिय अण्पेहिय दुहभो हणति) सप्रयोजन व निष्प्रयोजन दोनों तरह से पक्ष करते हैं (हस्ता हणति) हास्य से मारते हैं, (वेरा हणति) वैर से मारते हैं, तथा (रतीय हणति) रति-अनुराग से मारते हैं (हस्त वेरा रतीय-हणति) हास्य वैर व झुंसी से मारते हैं (कुदा हणति) क्रोध वस मारते हैं (लुदा हणति) छोम के वश मारते हैं (मुदा हणति) मोह वस मारते हैं (कुदा लुदा मुदा हणति) क्रोध वस छोम वस व मोह वस वस करते हैं (अत्वा हणति) धम के छिये वस करते हैं (अत्वा हणति) धर्म के छिये कई हिंसा करते हैं (कामा हणति) विषय के कारण हिंसा करते हैं (अत्वा अत्वा कामा हणति) धन धर्म और सांसारिक विषय प्राप्त के छिये हिंसा करते हैं। १०५ ॥

भाव उपरोक्त तीसरे सूत्र में यह बताया गया है कि इस प्राण वध को कौन करते हैं व क्यों करते हैं तथा किन जीवों का वध करते हैं ? इन सन्देशों का समाधान इस प्रकार है—“जो जीव संयम और विरति से रहित व अशान्त हैं, जिन के विचार तथा आचरण बुरे हैं, वे ही दूसरे को दुःख देते हैं और इसमें खुद खुशी मनाते हैं। वे लोग ही इस भयङ्कर हिंसा-कार्य को अनेक प्रकार से करते हैं, निम्नलिखित त्रस स्थावर जीवों पर वे द्वेष रखते या अप्रोति वाले होते हैं, वे जीव ये हैं—‘पाठोन मत्स्य आदि अनेक प्रकार के जलचर जीव, मृग महिष आदि अनेक प्रकार के भूमिचर पशु जीव और अजगर सर्प व आशालिक आदि वरपरिसर्प—पेट के बल चलने वाले जीव, क्षोरल गोह उदिर (चूहे) आदि भुजासे सरककर चलने वाले भुजपरिसर्प जीव, और हंस काक आदि आकाश गामो-खेचर पक्षि जीव, इस प्रकार जल स्थल, और आकाश मार्ग से चलने वाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यग् जीव, इन में बहुत से नाम अप्रसिद्ध हैं जो रूढि से समझने चाहिये। दो तोन तथा चार इन्द्रिय वाले अन्य विविध जीव जिन्हें कि निज जाति समुचित जीवन परम प्रिय है और जो मरण से बहुत डरते हैं, हिंसा रक्षिक उन जीवों की अनेक कारणों से हिंसा करते हैं। वे हिंसा के ये कारण हैं— चमडा १ चर्वा २ मांस ३ मेद ४ रक्त ५ यकृत ६ फेफसा ७ भेजा ८ हृदय ९ आतें १० पित्त ११ फोफस १२ और दात १३ हड्डी १४ मज्जा १५, नख १६, आख १७, कान १८, स्नायु १९, नस २० नाक २१ घमनी नाडी २२, सींग २३, दाढ २४, पूंछ-पंख २५, काल कूट आदि विष २६, हाथी दाँत २७ और बाल इन सब वस्तुओं के लिये हिंसा करते हैं। ऐसे ही रसमें गृद्ध (जालघी) लोग भंवरे व मधु मक्खो को मारते हैं, शरीर व वस्त्र आदि के लिये जू आदि त्रीन्द्रियों का वध करते हैं। रेशमी आदि वस्त्रों के लिये और कीड़े और घर की शोभा के लिये शख आदि के चूने में सीप व शख आदि को हिंसा करते हैं। इनके सिवाय अन्य बहुत से कारणों से मूर्ख लोग त्रस जीव तथा वेचारे एकेन्द्रिय जीवों को हनन करते हैं, त्रसों को मारते व त्रसों के आश्रय में रहने वाले अनेक सूक्ष्म शरीरी जीवों को मारते हैं। जो अनिष्ट के निवारण में व इष्ट के साधन में असमर्थ हैं। जो अनाथ हैं, बन्धु विहीन हैं। तथा कर्म बन्धन में जकड़े हुए हैं और जो अशुभ विचार वाले मन्द बुद्धिओं से नहीं जाने जाते और जैसे बहुत से लोक इनको आज भी जीव नहीं मानते हैं। पृथ्वी कायिक तथा उनके आश्रित अन्य जीव, अप्कार्यायिक व जल में रहने वाले अन्य जीव, ऐसे अग्नि वायु और वनस्पति के

भावि, शक्ति-काम-मूर्च्छी-बीजने का भस्त्र वा शक-कौशविशेष, लङ्कट मुहुटि-प्रहरण
 विशेष घातप्रो पद्यो छाठी या घोष भावि और बहुत से प्रहरण—करवत भावि व
 आवरण भस्त्र विशेष उपकर—पर के उपकरण मन्त्र भावि इन सबके लिये
 (भण्डेद्वय) और अन्य-इत्यादि (बहुहि कारणसपरिहं) बहुत से सैकड़ों कार्यों से
 (हिंसति ते तरुणो) वे अस्पृश जोध पृथ समूह-वनस्पति की हिंसा करते हैं
 (भण्डिताम०) ऊपर की गल्पना में कहे गए व बिना कहे (एवमादी) इत्यादि
 इस प्रकार के (ससे) जीवों को (सत्तपरिभस्त्रिया) जो सत्त्व—यज्ञ से रहित हैं,
 वेदों को (उबहणति) मारते हैं, (एडमूठा) एडमूठ-पक्षे मूल और (दारुखमती)
 कूर पुदिवाले (कोहा) क्रोध से (माष्ठा) मान महद्भार से (माया) अपट से
 (सोमा) सोम से (हस्त रथी भरती) हास्य—सञ्जाक रति भरति—राग या रञ्जानिसे
 (सोय वेदस्थो) शोक और बेबानुष्ठान के लिये (जीय कामस्य धम्महेठ) भीत—
 जीबन या मर्यादा, धर्म अथ और काम-विषय के हेतु उपरोक्त हिंसा करते हैं,
 (सवसा) अपनी इच्छा से या (अवसा) कई पराधीनपने से (भट्टा) प्रयोजन
 से (अण्ट्याय) और बिना प्रयोजन से (तसपाये) त्रस प्राणी (धावरेय) और
 ग्यावर—स्थिति क्षील पृथ्वी भादि के जीवों को (हिंसति मंद पुदि) मन्द पुदि
 बाड़े लोग मारते हैं। इसी बात को स्पष्ट करके कहते हैं—(सवसा हणति)
 अपनी इच्छा से कई मारते हैं (अवसा हणति) परतन्त्र होकर कुछ मारते हैं
 (सवसा अवसा बुद्धो हणति) स्वाधीन और पराधीन दोनों तरह से हिंसा करते
 हैं। (भट्टा हणति) धर्म से याने प्रयोजन से मारते हैं। (अण्ट्या हणति)
 निष्प्रयोजन हिंसा करते हैं (भट्टा अण्ट्या बुद्धो हणति) सप्रयोजन व निष्प्रयोजन
 दोनों तरह से वध करत हैं (हस्ता हणति) हास्य से मारते हैं, (वैरा हणति)
 वैर से मारते हैं तथा (रतीय हणति) रति अनुराग से मारते हैं (हस्त घेर रतीय-
 हणति) हास्य घेर व सुगो से मारते हैं (बुद्धा हणति) क्रोध वध मारते हैं
 (लुद्धा हणति) सोम के बदा मारते हैं (मुद्धा हणति) मोह वध मारते हैं
 (बुद्धा लुद्धा मुद्धा हणति) क्रोध वध सोम घदा व मोह वध वध करते हैं
 (भत्या हणति) धन व लिये वध करते हैं (धम्मा हणति) धर्म के लिये कई
 गिना करत हैं (कामा हणति) विषय के कारण हिंसा करते हैं (भत्या धम्मा
 कामा हणति) धन धर्म और सांसारिक विषय साधन के लिये हिंसा
 करत हैं। सू० ३ ॥

और कोई दोनों प्रकार से मारते हैं । कोई हास्यवश, कई वैर वश और कोई एक रतिवश मारते हैं, कई इन तानों के चलते मारते । कई क्रुद्ध होकर हिंसा करते, कई लुब्ध होकर तो अन्य मोहसे मुग्ध होकर मारते हैं, कितने ही क्रोध, लोभ व मोह तीनों के वश हिंसा करते हैं । धन पाने के लिये हिंसा करते, धर्म के लिये हिंसा करते और कितने ही कामुक बनकर मारते । दूसरे कितने ही अर्थ धर्म व काम वश हिंसा करते हैं ॥ सूत्र ३ ॥

इस प्रकार अर्थ धर्म और काम इनमें से किसी भी हेतु से इच्छा पूर्वक हिंसा करना मदवृद्धि पन कहा गया है । प्राण वध का स्वरूप, उसके नाम और जैसे वह किया जाता है, ये तीन द्वार कहे गए । चौथे द्वार से प्रतिज्ञा के अनुसार हिंसा का फल कहना चाहिए । किन्तु कर्ता के अधीन में क्रिया होती है और दूसरे इस का वक्तव्यभी अल्प है, इस लिये प्रधानतासे पहले प्राण वध को करने वाले 'कर्तृद्वार' का विचार करते हैं—“

मूल—“कयरे ते ? जे ते सोयरिया, सञ्जुबंधा, साउणिया, वाहा, कूरकम्मा, वाउरिया, दीवितबंधणप्पअगेत्तप्पगल जाल वीरल्लगायसीदव्वम वग्गुरा कूड छेलिहत्था, हरिष्सा, साउणिया य, वीदंसग पासहत्था, वणचरगा, लुद्धय-महुघात पोत्तघाया, एणीयारा, सर-दह-दीहिच्च-तलाग-पल्लव-परिगालण-मलण-सोत्त-बंधण सलिलासयसोसगा, विसगरस्स य दायगा, उत्तण-वल्लर-दवग्गि—णिदय पलीवका कूरकम्मकारी, इमे य यहने मिलक्खु-जाती, केते ? सरु-जवण-सवर-वव्वर-गाय-मुळंडो-दमडग-तित्थिय-पक्कणिय-कुलक्ख-गोंड-सीहल-पारस्स कोंचंध-दाविल-विल्लव-पुलिंद—अरोसडोष-पोक्कण-गंधहारग वहलीय—जल्ल—रोम—मासव उस मलया-चुंचुया य-चूलिया कोंकणगा-मेत्त—पण्हव-मालव-महुर—आभासिया—अणक्क चीणत्थासिय—खस—खासिया—नेहुर-परहट्ट-मुट्ठिय—आरव डोविलग-कुहण-केकय-हूण-रोमग-रुह-मरुगा-चिलाय विसय-वासी य पावमतिणो । जल्लयर थल्लयर सणप्फत्तोरग-खहचर संडास-तोंड-जीवोवघायजीवी, सण्णी य असरिणणो य पज्जत्ता असुभलेस्सपरिणामा, एते अण्णे य एवमादी करेंति पाणाति-

मूछ जीव तथा उनके आश्रय में रहकर उन्हीं का आश्रय करने वाले जीव प्रस जीव हैं, पृथ्वी आदि आश्रय के अनुष्ठान ही विनके रंगरूप होते हैं। जैसे हरे घाँस पर हरे कोड़े और सुले पर पोड़े होते हैं कुछ जीव दिखने वाले और कुछ नहीं दिखने वाले हैं। ऐसे असेंध्य इस और सुक्ष्म बाहर, प्रत्येक व साधारण भेषाभे अनन्त स्वाधर जीव को मारते हैं। वे ज्ञान विज्ञेप से हीन होकर भी सुख दुःख को अनुभव करने वाले हैं। स्वाधर जीवों की हिंसा के कारण निम्नीक हैं—'खेती कृमा, बाँस डी, ताछाय, तथा शरोधर, चिता-वेदिका खाई, बाग मठ, स्तूप, कोट द्वार, नगर का मुख्य द्वार, अष्टाशिका सडक पुछ, संक्रम, अनेक प्रकार के मबन, साधारण घर, चैत्य—मन्दिर,—स्मारक सभा और लक्ष्मर व मण्डप आदि के क्षिये भानु व मिट्टी के पात्र और अन्य विविध उपकरणों के छिये मन्द बुद्धि लोग पृथ्वी की हिंसा करते हैं। मदाने बोलने और पीने तथा भोजन व शरीर भावि की शुद्धि के छिये जल—अपू कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। पकाने अकाने और रोशानो भादि कारण से अज्ञि कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। सूप, वाजने, पंटे और हाथ, मुख व वख आदि से वायु कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। पर परिपार भोजन समम, आसन पीठ इत्यन मूछ अनेक प्रकार के वायु नौका गाडी आदि बाहन मंडप, विविध मबन, शेरख कबूतर खाना, देबल, जाली, सीढी दरवाजे के आगे पोडडे, वेदिका, निसरखों, छोटी नौका, अगेरी, कील, सभा, प्याऊ, मठ, र्गक—पाठनबर, फूलमाछा, बिलेपन बख मूप, हड रोठ फोडने की छकडी, सामान्य हड, स्वन्द न—सामामिकरम, पालकी, गाडी—साधारण रथ, पान, पुगम, अष्टाशिका, अरिख—नगर व कोट के बीच का बाग, द्वार, गोपुर, परिपा, अठ यत्र—रैठ, शूको, छाठी मुठण्डी—बन्दूक, तोप की तरह का शर बिलेप, अन्य महरण, तथा घर के उपकरण—भादि के छिये ऐसे मट्टेरे अन्य कारणों स वृखों को अठते हैं। कहे हुए से अन्य भो बलहीन प्राणिमी को मूछ मति व क्षण्य विचार वाले डाग मारते हैं ! अन्तरण कारण भो कुछ हैं—झिसे कि ज्ञाप मान—माया छोम, हास्य और रति अरति, तथा शोक व धद बिदित अनुष्ठान व छिये। संक्षेप में वहा काय तो जीवन मर्वादा तथा धर्म व धम और काम के छिये दिछा हावी है। स्वधरा पा पर वस, प्रयोत्रन से या निष्प्रयोत्रन भी—मन्द बुद्धि लोग प्रस जीव तथा स्वाधर जीवों को मारते हैं। अर्थि गत विचार से कई स्वधरा मारते। कई परवस हाधर मारते हैं। और कई दानों तरह से। कोई अन्य—प्रयोत्रन से मारत है, दूसरा निष्प्रयोत्रन

और कोई दोनों प्रकार से मारते हैं । कोई हास्यवश, कई वैर वश और कोई एक रतिवश मारते हैं, कई इन तानों के चलते मारते । कई क्रुद्ध होकर हिंसा करते, कई लुब्ध होकर तो अन्य मोहसे मुग्ध होकर मारते हैं, कितने ही क्रोध, लोभ व मोह तीनों के वश हिंसा करते हैं । धन पाने के लिये हिंसा करते, धर्म के लिये हिंसा करते और कितने ही कामुक बनकर मारते । दूसरे कितने ही अर्थ धर्म व काम वश हिंसा करते हैं ॥ सूत्र ३ ॥

इस प्रकार अर्थ धर्म और काम इनमे से किसी भी हेतु से इच्छा पूर्वक हिंसा करना मदवृद्धि पन कहा गया है । प्राण वध का स्वरूप, उसके नाम और जैसे वह किया जाता है, ये तीन द्वार कहे गए । चौथे द्वार से प्रतिज्ञा के अनुसार हिंसा का फल कहना चाहिए । किन्तु कर्ता के अधीन में क्रिया होती है और दूसरे हम का वक्तव्यभी अल्प है, इस लिये प्रधानतासे पहले प्राण वध को करने वाले 'कर्तृद्वार' का विचार करते हैं—“

मूल—“कयरे ते ? जे ते सोयरिया, सच्छुबंधा, साउणिया, चाहा, कूरकम्मा, वाउरिया, दीवितबंधणप्पओगतप्पगल जाल वीरल्लगायसीदग्गं वग्गुरा कूड छेलिहत्था, हरिण्णा, साउणिया य, वीदंसग्गं पासहत्था, वणचरणा, लुद्धय-महुघात पोतघाया, एण्णियारा, सर-दह-दीहिअ-तलाग-पल्लव-परिणालण-मलण-सोत्त-बंधण सलिलासयसोसगा, विसगरस्स य दायगा, उत्तण-वल्लर-दवग्गि—ण्हय पलीचका कूरकम्मकारी, इअं य बहने मिलक्खु-जाती, केते ? सक्क-जवण-सवर-वणवर-गाय-मुसुंडो-दमडग-तित्थिय-पक्कणिय-कुलक्ख-गोंड-सीहल-पारस्स कोंचंध-दाविल-बिल्लव-पुलिंद—अरोसडोष-पोक्कण-गंधहारण बहलीय—जल्ल—रोम—मासव उस मलया-चुंचुया य-चूलिया कोंकणगा-मेत्त—पण्हव-मालव-अहुर—आभासिया—अणक्क चीणलहासिय—खस—खासिया—नेहुर-मरहट्ट-मुट्ठिय—आरब डोविलग-कुहण-केकय-हूण-रोमग-रुह-मरुगा-चिलाय विसय-वासी य पावमतिणो । जल्लयर थलयर सणप्फतोरग-खहचर संडास-तोंड-जीवोवघायजीवी, सण्णी य अण्णियण्णो य पज्जत्ता अण्णुभजेस्सपरिणामा, एते अण्णे य एवमादी करंति पाणाति-

धाय करण पावा-पावाभिगमा पावर्कै पाणवहकयरती पाण
 वहस्वाणुहाणा पाणवहकहासु अभिरमंता, तुष्टा पाव करत्तु
 ह्येति य पशुपगार । तस्स य पावस्स फलपियाग अयाणमाणा
 पद्धति महम्मय अविस्सामयेयण वीहकाळ बहुदुक्खसकड
 नय तिरिक्ख जोषि इथा आउफ्ठए शुया असुभकम्मयहुका
 ठववउजति नरएसु हलित महालएसु घपरामयहुवुहु निस्स-
 भिवार विरहिय निम्मइय मूमित्त म्वरामरिस पिसम णिरय घर
 चारएसु, महासिण सयावतत्त दुग्गवविस्मउन्वेपअण्णगेसु
 यो भच्छु वरिसाणिवजेसु मिथ दिमपट्ठसीयलेसु फाणोभासभु
 य भीम वामीर छोमहरिमणेसु णिरभिरामेसु निप्पायियारवाहि
 रोरा जरापीणिएसु अतीपनिषवकारातिमिस्सेसु पतिभएसु घ
 वगय गह वद सुग्गफ्ठत्त जोइसेसु मेयवसामस पत्थ पोवइ
 पूयइहिसिण विहीणविशणरासियावापण कुहियावेक्खल्ल
 कइमेसु कुपूलानलपाठित्तजाळमुम्मुर-असिपखुर करयत्त
 धारासु निस्सित विष्णुयश्कनिवातोपम्म-फरिस अतिदुस्सहेसै
 य अशाःणासरण-वडुव-दुक्ख गरितावणेसु अणुपद्द निरतर
 वयणसु जमपुरिससकुलेसु, तत्थ य अतो मुहुत्तवद्धि मव
 पवण मिव्वस्येति ठ ते सरीर, हुइ धी मच्छुवरिसाणिवज यीहणग
 अदिट्ठएणुवट्टरोमवस्सिय असुभ दुक्खविसइ, ततो य पत्तजात्त
 मुवगया इदिपहि पंचहि पदेति असुमाए वेयणाए उक्कळ पळ
 थिसल उक्कळ पत्थर फरुम पवट घोर वीइयग वाहयाए, किंत ?
 कंडु मएाकुमिय पयण पउळण तवग तळण भदठ भक्कयाणि
 य लोदकलाहुइह्ठयाणिय काइवतिफरय कोइयाणिय, सामाणि
 तिक्खण काइ कटक अभिसरण पसारणाणि, फाळय विदाळ
 याणिय, अर्धकोळक पयणाणि लदिठसय ताळयाणि य, गळग
 वल्लवयाणि सुलरगभेययाणिय आपत्तपययाणि विसण
 विमाळयाणि विष्णुदठपणिकयाणि पत्तमयमातिकीति य
 पत्त ॥ ३ ॥ ४ ॥

छाया—“कतरेते ? (कृष्णादिकारणै प्राणिनो घ्नन्तीति) प्रश्न उत्तर
 माह,—‘येते शौकारिका, मत्स्यबन्धाः, शाकुनिका, व्याधाः, क्रूरकर्मणो,
 वागुरिका. द्वीपिक बन्धन प्रयोग—नप्र गल जाल वीरल्लकाऽऽयसो दर्भवागुरा-
 कूटच्छेलिका हस्ता, हरिकेशाः, शाकुनिकाश्च विदंशक पांश हस्ता, वन चरका,
 लुब्धक-मधुघात पोतघाता, एणीचारा, प्रैणोचाराः सरोहद-दोषिका तडाग—
 पल्वळ-परिगा लन-मलन-स्रोतोबन्धन सलिलाऽऽशयशोषकाः, विषगरलस्य च
 दायकाः, उत्तूण-बह्लर-दावाग्नि निर्दय प्रदीपका, क्रूरवर्मकारिण इमे ये बहवो
 म्लेच्छजातीयाः, केते ? शक-यवन—शबर—वर्वर-काय—मुरुण्ड-उद—भडक-
 तित्तिक-पक्ष्णिक-कुलाक्ष-गौड-सिहल-पारस-क्रौञ्च-अन्ध- (आन्ध्र) द्राविड-वि-
 त्वल-पुलिन्द—अरोष-डौब-पोक्षण—गन्धहारक—बहलीक-जल्ल-रोम-माष—बकुश
 मलया. चुञ्चुकाश्च, चूलिकाः, कौंरुणका मेद-पल्लव-मालव-महुर—आभाषिक
 अणक-चीन—ल्हाषिक-खस—खासिकाः, नेहर-महाराष्ट्र-मौष्टिक-आरब, डोबिलक
 कुहण-केकय-हूण-रोमक-रुरु-मरुका, चिलात विषयवासिनश्च पापमतयः, जलचर
 स्थलचर सनख पदोरग खेचर सन्दंश तुण्ड जीवोपघातजीविनः, सजिनश्च अस्—
 जिनश्च पर्याप्ता अशुभ लेश्या परिणामा, एतेऽन्येचैवमादय कुर्वन्ति प्राणाति पात करण
 पापा पापाभिगमा पापरुचय प्राणवधकृतरतिका प्राणवधरूपाऽनुष्ठाना प्राणवधक
 कथासु अभिरममाणा. तुष्टा पापं कृत्वा भवन्ति । बहुप्रकारम् ।

तस्य च पापस्य फल विपाकमजानन्तो वर्द्धयन्ति महाभयामविश्रामवेदनाम्,
 दीर्घकाल बहु दुःखसंक्रदा नरकतिर्यग्योनिम्, इत आयुक्षये च्युता अशुभ कर्म
 बहुला उपपद्यन्ते नरकेषु लघुक शीघ्रं महालयेषु वज्रमय कुड्य रुद्र निरसन्धि द्वार
 विरहित निर्माद्वैच भूमितल खरामर्श विषम निरयगृह चारकेषु महोष्ण सदा प्रतप्त
 दुर्गन्ध विश्रोद्धेगजनकेषु वीभत्सदर्शनीयेषु नित्य हिमपटलशीतलेषु कालाऽवभा-
 सेषु च भीमगम्भीरलोमहर्षणेषु निरभिरामेषु निष्प्रतीकारव्याधिरोगजरा पीडितेषु
 अतोव नित्यान्धकारतमिस्त्रेषु प्रतिभयेषु व्यपगत ग्रहचन्द्र सूर्य नक्षत्र ज्योतिष्केषु,
 मेदोवसा मात-पटलातिनिविड पोञ्जर पूय रुधिरोत्तोर्ण विलोम चिह्नण रसिका
 व्यापन्न कुथित चिक्खल्ल कर्दमेषु, कुक्कुलाऽनल प्रदीप्त ब्वालमुर्मुर्ऽसि क्षुर
 कर पत्रधारासु निशित वृश्चिक डड्ढ निपातौपम्य स्पर्शातिदुस्सहेषु च, अत्राणाऽ
 शरण कटुक दुःख परितापनेषु अनुवद्ध निरन्तरवेदनेषु यमपुरुषसङ्कुलेषु
 तत्रचाऽन्तर्मुहूर्तलब्धि-भवप्रत्ययेन निर्वर्तयन्ति तु ते शरीर हुण्ड, वीभत्सदशनीय

भीजनकम् भस्मिपद्मायुनघ रोम विर्मितम्, अष्टम दुःख विपद्म् । ततश्च पर्याप्तिमुप
 गता हृदियै पद्मभिर्बेदयन्ति-मञ्जुमया येदनया चग्गयत्त दस विपुलात्फट् एर पदप
 प्रचण्ड घोर भीजनक दाव गथा । किन्तु ? कद्दु महा कुम्भी पचन प्रबोहन तबक
 तछन भ्राष्ट्रभजनानि च, लोह कटाक्षोत्फोषनानिच, कोटा कोट्ट पडिक्कण्य कोहन
 कानिच शोष्मलि तीक्ष्णाम लोह कष्ट काडमिसरणाऽपसरणानि, रक्कटन विदाऽपानि,
 भवफोटकबन्धनानि, पट्टिशव ताडनानिच, गच्छकपडोल्लङ्घनानि, दृष्टाय भेद
 नानिच शावेक्ष प्रबध्नानि, प्रिसन बिमानानि विपुटप्रप्यनानि यध्यसुव
 मापुकाणि चैवंते ॥ सू० ४ । ३ ॥

अन्वयाय— (कम्परे ते) ये हिंसा करने वाले कौन हैं ?

उत्तर— (जे) सो (ते) वे (सोयरिया) सुभरों के द्वारा शिकार करने वाले—श्री
 करिक (मच्छ वंघ) मत्स्य बन्ध—मच्छ्रे पकड़ने वाले (सावणिया) पक्षिर्मा की
 शिकार करने वाले—शायुनिक—पारधी (वादा) व्याप (कूर कम्मा) कूर कर्म
 करने वाले (वाठरिया) बाळ छेकर घूमने वाले बागुरिक तथा (वीविण वंघण प्प
 भोग सेण गळ बास बीरल्लगायसोइम्म यग्गुरा कूट्ट छेच्छिइभा) वी गूग मारने के
 लिये शोठा, वचन प्रयोग—पकड़ने का उपाय तम—मछली पकड़ने के लिये छोटी
 नोका गळ—मच्छीपकड़ने के लिये कटि पर आटा या गांस बाळ—मच्छो फसाने
 की बाळ, बीरल्लक—इयेन बाळ आयसो छेदमयबाळ दमवागुरा—इम को पा डारो
 की बाळ, धूट—पाळ और बकरी लथवा शोठा आदि छत्र से पकड़ने के लिये पाछमें
 रखी हुई बकरी इन सब साधनों को हाथ में लिये हुए हैं । फिर—(हरिपसा)
 चाण्डाल (सावणिया प) और पारधी (वृसरे पाठ से सेवक) (बीईसग पास
 इत्वा) इयेन आदि और पाछको हाथ में रखने वाले, (वण चरगा) जंगल में घूमने
 वाले—शवर्तमिद्ध (छुट्टय माहु पाप पोव पाया) सुम्पक—व्याप मधु लेने वाले कुरेरो,
 व पक्षिर्मा के बच्चे मारने वाले (पणोमारो) मृग पकड़ने के लिये हरिणी को छेकर
 घूमने वाले (पपणीपारा) विशेष रूप से हरिणियों की छेकर फिरने वाले
 (सर वइ होइल—तछाग पड्डक—परिगाळव मळण—सोत्तवपण—सखिळासच—ओस-
 गा) सरोवर, हृद बावकी, ताळाव परबळ—छोटा बलासय इम सब को मत्स्य शक,
 आदि छेने के लिये बाहर तक निकालने से, मछलने से और पानी के माग को
 रोझने से बलासय को सुकाने वाले (विसगरस्स प दायगा) और जो विष और
 गरळ—अन्ध वस्तु में मिछे हुए विष को देने वाले हैं । (उत्तम—बहुर इवमि—विर

यपलोवका) ऊरो हुए तृण और खेतों को दवाभि के निर्दयता पूर्वक जलाने वाले (क्रूर-कम्मकारी इमे य बहवे मिलम्बु जाती) और क्रूर कर्म को करने वाली ये बहुतसो म्लेच्छ जातियाँ हैं, (के ते ?) वे कौनसी जातीयाँ हैं ?

उत्तर—(सक-जषण-सवर-वन्वर-गाय-मुख डोद-भडग-तिरिय-पक्कणिय-कुलक्ख-गोड-सीहल-पारस-कौचध-दविल-भिल्लल-पुलिद-अरोस डोव) शक १ यवन २ शवर-भिल्ल ३ चर्वर ४ गाय-काय ५ मुख ड ६ उद ७ भडक ८ तिरिय ९ पक्कणिक १० कुलाक्ष ११ गोड १२ सिंहल १३ पारस १४, कौच १५ अंध १६ द्राविड १७ विल्वल १८ पुलिद १९ अरोष २०, डोव २१ (पोकण-गधहारग-बहलीय-जल्ल-रोम-मास-वत्स-मलया) पोकण २२ गन्ध हारक २३ बहलीक २४ जल्ल २५ रोम २६ माष २७ बकुश २८ और मलय २९ (चुंचुया य चूलिया) चुचुक ३० और चूलिक ३१ (कौकणगा) कौकणक ३२ (मेय-पण्हव-मालव-महुर-आभासिया) मेद ३३ पन्हव ३४ सालव ३५ महुर ३६ आभाषिक ३७ (अणक्क-चीण-ल्हासिय-खस-खासिया) अणक्क ३८ चीन ३९ ल्हासिक ४० खस ४१ खासिक ४२ (नेहुर-मरहट्ट-मुट्टिअ-आरब-डोविलग-कुहण) नेहुर ४३ मरहट्ट-मराठा ४४ मूह या मौष्टिक ४५ आरब ४६ डोविलक ४७ कुहण ४८ (केकय-हूण-रोमग-ख्ल-मखगा) केकय ४९ हूण ५० रोम ५१ ख्ल ५२ मख्ल ५३ और (चिनाय विसयवासी) चिल्ला-त देश के रहने वाले ५४ (पाव मतिणो) जो पाप बुद्धि वाले हैं (जलयर-थलयर-सणफ्तोरगखहचर-संडास-तौड-जीवोवगघाय जीवो) जलयर स्थलयर तथा नख युक्त चरण वाले सिंह आदि व चरग और खचर, संडास की आकृति के मुख वाले पक्षो और जीवों की हिंसा करके जीने वाले । ये कैसे हैं ? तो—(सन्नी) समनस्क-सन्नी (य) और (असणिणो) असंज्ञी-विना मन के जीव (य और (पज्जता) पर्याप्त-जीवनोपयोगी शक्तिओं को पूर्ण रूप से पाये हुए, (असुभलेस्सपरिणामा) अशुभ लेश्या के परिणाम वाले, (एते) पहले-ऊपर कहे हुए ये सब (अणो य) और दूसरे (एवमादी) इस प्रकार के जीव (करेति) करते हैं (पाणाति वाय करण) प्राण वध रूप कार्य को (पावा) पापो (पावाभि गमा) पाप कोही उपादेयमानने वाले (पावरुई) पाप में रुचि रखने वाले और (पाणवहकयरती) प्राण वध करके खुश होने वाले (पाणवहरूवाणुट्टाणा) प्राणवधही जिनका अनुष्ठान-नियत कर्म है ऐसे (पाणवह कहासु अभिरमता)

हिंसा की क्रियाओं में रमने वाले (पार्व करेत्तु) वे हिंसारूप पाप को करते (बहुष्मगारं मुक्ता ह्येति च) बहुत प्रकार से सन्तुष्ट होते हैं।

जो प्राण वध करने वाले हैं वे कहे गए अब प्राण वध से जो फल मिलता है उसे कहते हैं—(तस्य च पावसस) और उस प्राण वध रूप पाप के (फल विचारं) फल के समान विपाक—परिणाम को (अयाजमाया) नहीं जानते हुए पातक जीव (महम्मयं) महामय वाली (अविस्वामवेपथं) विभ्रान्तिरहित-निरन्तर वेदनावाली (शीह काष्ठ बहुदुक्ल संकष्टं) विरकात्मक शारीरिक मानसिक आदि अनेक प्रकार के दुःखों से व्याप्त ऐसी (नरय विरिक्कतोष्णि) नरक और विषमयोनि की (वदु वि) बढाते हैं फिर (इभो) वहाँ मनुष्य सबसे (आव वसप) आयु के क्षय होने पर (पुमा) मरे हुए (असुमकम्मबहुष्ठा) अक्षय कर्म की अधिकतावाले (उदवम्भवि मरपसु) नरक स्वामी में उत्पन्न होते हैं (दुष्किं) क्षीय। कैसे नरकों में उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर—(महात्तपसु) क्षेत्र परिमाण से ब स्थिति काष्ठ के प्रमाण से बडे तथा (अपरामय कुरु दर मिस्सिंदि दार विरद्वि निम्मद्व-भूमितल क्षरामरिस विक्षम-जिरथ-पर-वारपसु) अक्षयमीतवाले, विस्तीर्ण-विस्तार वाले, सम्भ्र और द्वार रहित अर्थात् जो बिना सुराक्ष और द्वार वाले हैं कोमलतारहित-कठोर-भूमितल वाले तथा कक्ष स्पष्टवाले विषम—इन्हे नीचे ऐसे मरक पर के जो चारक-स्वतित्त्वान हैं उनमें फिर (महोसिण-अयापतत-दुर्माब-विस्स तप्पेय-अस्योसु) अस्वन्त रूप सदा बढते हुए दुर्गन्ध और सही हुई गन्ध के कारण जो बहुरंग पैदा करने वाले हैं (-भीमच्छदरिसन्निजेसु) भीमस्थ-अस्यूर-दृश्यवाले तथा (निब हिमपडल जीयथेसु) अना हिमवर्ष के पटक की तरह सौतल (काठो मासेसु च) और काले रंग की कम्पिवाले (मीम गीमोर जोम हरिससेसु) अयसूर-अतिशय गम्भीर होने से रोमाञ्चकारी (विरभिरसोसु) सुन्दरता रहित होने से मम को परसब नहीं जाने वाले (निपविचार-बाद्धि-रोग-अरा-वीक्षियसु) चिकित्सा के अयोग्य अयसूर अबाधि रोग और अरा से पीडित (अरीब निब प्रकार तिम्बिस्सेसु) सधम अन्वकार से जो सदा विमिस्रगुहा की तरह अन्वकार पूर्ण हैं (मतिमपसु) प्रत्येक वस्तु में मय उत्पन्न करने वाले, (अवगय-अंइ-सूर-अकजरा जोइसेसु) अन्त्र सूर्य और मन्त्र व वारक रूप ज्योतिष्कों को प्रमा से होन हैं

१—(तस्य च वे वद्वेति) परन्तु अब वाक किसी किसी प्रति में ही देखा जाता है। शीर्ष-

अर्थात् जहाँ चन्द्र आदि की प्रभा भी नहीं पडती (खेय बसा मंस पडल पोचड पूय रुहिरुक्किण्ण-विलीण-चिक्कण रसिया वावरण कुहिय चिक्कल कदमेसु) मेद, चर्वा और मांस के पटल—समूह तथा अत्यन्त गाढ पीप व रुधिर से मिश्रित घृणाजनक और चिकना रस्सी से विनष्ट स्वरूपवाला इसीलिये सडा हुआ या फूला हुआ, कीचड और गाढ कीचड हैं जिनमें ऐसे (कुकूलानल-पलित्त-जाल-मुम्पुर-असिक्खुर-करवत्त—धारा—सुनिचित-विच्छुयडक-निवातोवम्म-फरिस—अतिदुस्स-हेसु य) और कोयले की अग्नि, प्रदीप्त ज्वाला, मुम्पुर—अग्निके कण, तलवार तथा अस्त्रों व करवत्त की अतिशय तीखी धारा एव विच्छु के डक का देह पर गिरना, इन सबके समान जो अत्यन्त दुस्सह स्पर्श वाले हैं (अत्ताणासरण कडुय दुक्ख परितावणेषु) अनर्थ की निवृत्ति और इष्ट को प्राप्ति कराने वाले सहायक से हीन वे जो व जहाँ दारुण दुःखों से सताये जाते हैं (अणुवद्ध निरतर वेयणेषु) अत्यन्त निरन्तर वेदना वाले (जमपुरिससंकुलेसु) अम्ब आदि असुर जाति के यमों से जो स्थान संकुल-व्याप्त हैं (तत्थय) और वहाँ-नरकावासों में उतार होकर (अतोमुहुत्तालद्धिभवपच्चण) अन्तमुहूते काल वैक्रियलब्धि और नरक गति में जन्मरूप कारण से (निव्वत्तंति उ ते सरोर) वे जीव शरीर को बनाते हैं, जो शरीर (हुड) सब प्रकार से योग्य सस्थान रहित और (बोभच्छ दरिसणि-ज्ज) भयङ्कर व देखने में बुरा (बीहणग) भय पैदा करने वाला तथा (अट्टिण्हारु ण्ह रोम वज्जिय) हड्डी, स्नायु, नख और रोम से रहित (असुभ दुक्ख विमह) अशुभ गन्धयुक्त और दुःख को सहने वाला होता है (ततोय पज्जत्तिमुवगया) शरीर बनने के बाद फिर इन्द्रिय, आसोच्छ्वास और भाषा मन रूप पर्याप्तियों से पूर्ण बने हुए वे जीव (इदिण्हि पंचहि वेदंति) पाच इन्द्रियों से दुःख को वेदन करते-भोगते हैं (असुभाए वेयणाए) अशुभ वेदना के द्वारा जो (उज्जल) सुखरूप विपक्ष के लेश से भी अकलङ्कित होने से उज्जल-उजली (वल विचल)-हटाना शक्य नहीं होने से बलवती और शरीर मात्र व्यापी होने से वह विपुल है (उकड) उकट—आखिरी सीमा तक पहुँची हुई (खर फरुस) खर-शिला आदि के समान कठोर पदार्थ के गिरने से होने वाली, परुष—कुष्माण्डी के पत्ते के समान कर्कश स्पर्शवाले पदार्थ से होने वाली-अति कठोर (पयड घोर वीह-णगदारुणाए) प्रचण्ड—जल्दी से शरीर में फैलने वाली और-शीघ्रही औदारिक शरीर युक्त जीवन का क्षय करने वाली या दूसरे के जीवन की अपेक्षा नहीं करने

बासी तथा मयानक पेसी वाष्पवेदना से दुःख का अनुभव करते हैं, (किते ?) वह कौनसा दुःख है ? (कंडु महाकुंभियण) कन्दु-छोही और महाकुंभो-बड़ो कुम्भी इन में भाव की तरह पकामा (पचण-वपगतक्षय-भट्टभरत्रयाणि) बूबा भादि की तरह पकाना, तबे पर पूढी की तरह तसना, तथा माड में बबे की तरह मू बना (य) और (लोहकडाहुचुपाणि) लोह के कडाहों में इक्षुरस के समान चकछना फिर (कोट्टवठि करय कोट्टपाणि) स्त्रीडा से चण्डिका भादि के धामने वस्त्र बगैरह की तरह पशु भादि की तरह भेंट धरना भयवा कोट्ट-प्रकार के छिये बठिबेना व कुट्टिख बनाना (य) और (सामठि विक्कगग लोह क्वग भमिसरण पसारणाणि) शास्मकी वृक्ष के मो लोह के कटि की तरह पीले अग्रभाग इन पर अपेक्षा से जाना और पोछे फिरना इससे (फलण विदाक-पाणि) फलना और अनेक प्रकार से देह का विदारण करना (य) और (भव कोडक वयणाणि) वाहु और शिरको पीछे से समेठ कर बांधना (छट्टिसयदाक-णाणि) सैकडों छाठी के प्रहार करना (य) और (गळग वल्लु वणाणि) गळक-बडोडवन-गळे में बांध कर वल्ल पूर्वक झाला पर झटका देना (सुळग मेक्काणि) शूकके अग्रभाग से मोदन करना और (भायसपवंचणाणि) झूठी भागा से ठगना (त्रिसण विमाणाणि) किसलाना निवा करना अपमान करना (विघुट्ट पणिस्रणाणि) ये पापी अपने किये हुए फलों को पाते हैं इस प्रकार धोकरते हुए यम पोम्य जीव को वप्य भूमि में डेजाना (बय्यसय माविकाठिय) और सैकडों यम्य जीव जिन दुःखों के मावस्थान-व्यस्तस्थान हैं (एयंते) इस प्रकार वे जीव प्राणवप के कटु फल को मोगते हैं ।

एयीकरय-“हिंसा कौन करते हैं ? इसका उत्तर यह है कि जो लोग सुमरो से शिकार करने वाले मच्छी पकडने वाले, पारधो और व्याध के समान झूठ कम करने वाले हैं । तथा बाळ छेदर घूमने वाले व धग भादि की पकडने के छिये चोटा, बाळ पंख छोटी मीका कांटा भाटा बाळ, पात्र छोह और मूत्र को वाळ कूटपाश व बफरी इन सब को साय में छेदर को फिरते रहते हैं व पारधो, शिकारी तथा चाण्डाल व हाकर लोग और इन्हीं के समान हिंसारथिक व हिंसोपजीवी जीव हिंसा में कूट कपट को जामने वाले तथा बलाशयों को सुग्रा देने वाले दूसरों को विप विद्वाने वाले एवं देव भादि को निर्वपना पूर्वक ज्ञान वाले, ऐसे पंचे झूठ कर्मों को करने वालों की मयान आविर्षो निम्नलिखित हैं- 'सक १ वचन २

शत्रु ३ बर्बर ४ गाय ५, मुखंड ६, उद ७ भटक ८ तिसिक ९ (भित्तिक) पक्कणि १० कुलाक्ष ११ गौड १२ सिंहल १३ पारस १४ क्रौंच १५ अंध (भान्द्र)-१६ द्राविड १७ विन्डव १८ पुलिन्द्र १९ अरोप २० डॉव २१ पोकग २२ गन्ध हारक २३ वहलीक २४ जल्ल २५ रोम २६ माप २७ वकुश २८ और मलय २९ चुचुक ३०, चूलिक ३१ फोक-एक ३२ मेद ३३ पन्हव ३४ मालव ३५ महुर ३६, आभषिक ३७ अणक ३८ चोन ३९ ल्हासिक ४०, खस ४१ खासिक ४२ नेहर ४३ मर हट्ट ४४ मूढ-मौष्टिक ४५ आरव ४६ ढोविलक ४७ कुहण ४८ केकय ४९ हूण ५० रोम ५१ खल ५२ मख क ५३ और चिलात देश वासी ये ५४ जाति के लोग हिंसा करते हैं। दूसरे जलचर, थलचर तथा नख वाले सिंह आदि जानवर, उरग-सर्प और खचर, सहास के जैसे मुख वाले पक्षी इत्यादि जीव भी हिंसा करने वाले हैं, हिंसा करने वालों में कई मन वाले-सजी और कई भसजी तथा अपने योग्य पर्याप्तियों से पूर्ण और अशुभ लेश्या के परिणाम वाले होते हैं। इस प्रकार ऊपर कहे हुए और इसी तरह के अन्य क्रूर जीव भी प्राण वध करते हैं। ये सब पाप की प्रधानता वाले, पाप को ही उपादेय मानने वाले तथा पाप क्रिया में श्रद्धा रखने वाले हैं। ऐसे जीव प्राण वध करके खुशी मनाते और प्राण वध को ही मुख्य कर्तव्य मानते हैं तथा ये हिंसाको कथाओं कोही कहते सुनते और हिंसा के कार्यों को करके सन्तुष्ट होते हैं। इस प्रकार घातक जीवों का स्वरूप बताया गया,

अब प्राण वध के फलों को दिखाते हैं—“वृक्ष की तरह उस हिंसा के फल को नहीं जानते हुए हिंसक जीव अपने लिये नरक व तिर्यञ्च योनिको बढ़ाते हैं, वे योनियों महाभय देने वाली तथा निरन्तर वेदनाओं से युक्त और विर काल तक शरीरिक मानसिक आदि विविध दुःखों से भरो होते हैं। यहाँ से आयुक्षय होने पर मरे हुए जीव अशुभ कर्म की अधिकता से शीघ्र नरक में उत्पन्न होते हैं। वे नरक स्थान इस प्रकार के हैं—‘क्षेत्र और स्थिति से जो विशाल हैं, वज्रमय दि-वाल युक्त बड़े और विना सन्धि व द्वार के हैं, जहाँ कठोर भूमितल वाले कर्कश-स्पर्शयुक्त और विषम-ऊँचे नीचे अनेक चारक-नरक घर हैं, बहुत ऊँचा सदा तपते हुए तथा दुर्गन्ध और सदान के कारण जो उद्वेग जनक हैं, दिखने में भयङ्कर हैं, सदा वर्ष के ढेर की तरह ठंडे और फाली कान्ति वाले हैं, भयङ्कर गहरे होन से माञ्चकारी मनके प्रतिकूल और प्रतीकार नहीं करने लायक व्याधि

रोग तथा जरासे पीटा पटुपाने वाले हैं। जहाँ सघन अन्धकार होने से प्रत्येक वस्तु में भय का प्रदर्शन होता है। अन्ध सूर्य नक्षत्र आदि ब्योतिष्कों की वहाँ प्रमा नहीं पटुपतो और मेघ 'बर्षा नीर' दधिर मांस पीप आदि की अधिकतासे जहाँ कीचड़ सा मन्था रहता है। वहाँ का स्पष्ट कोयले की अग्नि मुमुंर, घबकती ज्वाला और तलवार, अस्तुरे आदि की ठोखो धार व बिकरू के डंक लगने जैसा अत्यन्त दुस्सह है। वहाँ कोई इष्ट की प्राप्ति कराने वाले और अनर्थ को निवृत्ति कराने वाले सहायक नहीं हैं। जहाँ सिर्फ भयङ्कर दुःखों से जीव पीडित किये जाते हैं। निरन्तर अत्यन्त वेदना और यमजोकोंसे वे स्थान पूण रहते हैं। मरकावास में उत्पन्न होकर अन्तमुहूत जैसे स्वल्पकाष्ठ में वैक्रियकाष्ठ्य व नारक लम्ब के कारण से वे जीव शरीर को बनाते हैं, जो योग्य आकृतिस हीन और दिखन में मधुकर होता है, हाड मांस स्नायु लस व रोम के बिना वह भारक शरीर भयानक तथा अशुभ और दुःख सहने वाला हाता है। छगीर बनने के बाद फिर श्मिन्त्रय श्वास आदि सभी पर्याप्तियों पूण कर वे जोब पाँचों इन्त्रियों से दुःख का अनुभव करते हैं। अमातारूप अशुभ वेदना से दुःख भोगते हैं। वह वेदना साता के छेश से मो क्षुभ्य है। तथा नहीं हटाने लायक है और शरीर मर में कबने वाली होता है। जो बहुत छरकट, कटोर, परप और प्रपण्ड स्वरूप वाली व दूमरे के प्राणों की अपख्या नहीं करने से घोर और भय उत्पन्न करने वाली दारण है। जहाँ के दुःख जीव से हैं ? कुम्भो आदि में पकाना गूहा आदि की तरह सेकना और तछना भूसना तथा छोड़ के कड़ाह में उकाठना एवं देवी आदि के साधने मांस की तरह पछि चठाना देहको पोष देना या क्षारमळीक तीरे अममाग पर छे जाना व फिराना, देह का घोर फाड़ करना हाथों को व सिरको पोठ को जोर लीप कर बांध देना सिकहाँ छाटो के प्रहार मारना गळे में बांधकर पूसको साखामों में छटको देना मृक में बीधना, हठी भाशा देकर ठगना निम्ना और अपमान करना उनको वष्य मूनि पर छेजाना इन सब दुःखों क वे मारकी जीव माता के समान पलायक है। इस प्रकार वे मारक जोम जैसे दुःखों को भोगते हैं जहाँ दुःखों को जाने करत हैं।

१—औद्योगिक घटोर की तरह उनका शरीर जोहू मांस का नहीं होता। इसलिये जहाँ एक जोम आदि का उद्वेग वष्य प्रहार से परिगत वैदिक्य पुरगकों के द्विये समझना चाहिए।

मूल—“पुवकम्मकय संचयोवत्ता निरयग्गि-महग्गि-
 संपलित्ता, गाढदुक्खं महब्भयं कक्कसं असायं सारीरं मानसंच
 तिब्बं दुविहं वेदंति वेयणं, पावकम्मकारी बहूणि पत्तिओवम-
 सागरोवमाणि कलुणं पालेति ते अहाउयं जमकातियतासिता
 य सहं करेति भीया । किंते ? अविभाय, सामिभाय, वप्पताय
 जितव, सुय मे मरामि दुव्वलो वाहिपीत्तिओऽहं, किं दाणिऽसि ?,
 एवं दारुणाणिद्वय मादेहि मे पहारे, उस्सासेतं (एय) मुहुत्तयं
 मे देहि, पसायं करेहि, मारुस वीसमामि गेविज्जं सुयह मे
 मरामि, गाढं तण्हातिओ अहं देह पाणीयं, हंता पिय इमं जलं
 विमलं सीयलंति घेत्तूण य नरयपाला तवियं तउयं से देति
 कलसेण अंजलीसु, दट्टूण य तं पवेपि (वि) थंगोवंगा अंसुप-
 गलंतपप्पुयच्छाळ्ळिएणा तण्हाइयम्ह कलुणाणि जपमाणा,
 विप्पेक्खंता दिसोदिसिं अत्ताणा असरणा अणाहा अवंधवा
 बंधुविप्पहूणा विपलायंति य भिगा इव वेगेण भयुव्विग्गा,
 घेत्तूण बला पलायमाणं निरणकंपा सुहं विहाडेत्तं लोहडंडेहिं
 कलकलणहं वयणंसि ल्लुभंति, केइ जमकाइया हसंता, तेण दड्ढा
 संतो रसंति य भीमाइं विस्सराइं, रुवंतिय कलुणगाइं पारेवतगाव,
 एवं पलावितविलाव कलुणाकंदिय बहुरुत्त रुदियसदो परिवे(दे)
 वित रुद्ध बद्ध य नारकारव संकुलो णीसट्ठो रसिय भणियकुवि-
 उक्कूइय निरयपालतज्जिय गेणहक्कम, पहर, छिंद, भिंद, उप्पा-
 डेहुक्खणाहि, कत्ताहि, विकत्ताहि य भुज्जोहण, विहण, वि-
 च्छुभोच्छुवभ, आकड्ढ, विकड्ढ, किंण जंपसि ? सराहि पाव
 कम्माइ दुक्कयाइ एव वयण महप्पगवभो पडिसुया सहसकुलो
 तासओ सया निरयगोयराण महाणगर ढड्ढकमाण-सरिसो नि-

ग्धासो सुवप अणित्ठो तदिय नेरइयाण जाइजमाणं जाय
 णाहिं । किंते ? असिषण-वन्मषण-जत-पत्थर-सुइ-तत्तपस्वार
 वावि कत्तकत्त वेयरणि कत्तव बाळुयाजळिय गुइ निरुमण
 उणियणोसिय कटइत्त तुग्गम रइजोयण तत्तकोइ मग्ग गमण
 वाइयाणो इमोहं विधिहोहिं आयुहहिं, किंते ? मोग्गर-सुसुडि-
 करकय-सात्ति-इळ-गय-मुत्तक चक्क-कौत्त-तोमर-सुळ-उत्तल-नभे
 भाळ-सह (३) ल-पट्टिस चम्मेदठ-तुहण सुट्टिय-आसि, खेइग
 लग्ग-वाव नाराय-कण्ण-कप्पणि वासि परसु-उत्तकतिक्ख मिम्मळ
 अण्णोहिय एवमादिणहिं असुभोहिं वेठाब्धिणहिं पहरणसतोहिं
 अणुपट्ट तिब्बवेरा परोप्पर वेयण उदीरेति अभिइत्तता, तत्तय
 मोग्गर पहार सुणिय सुभुडि समग्ग महित वेहा जतोवपीत्तण
 फुरत कप्पिया केइत्त सचम्मका विगत्ता णिम्मू (४) पण्ण
 कयणादट्ठ्यासिका छियणइत्तपादा असिकरकपातिक्व कौत्त
 परसुप्पहार फणियपात्ती सताच्छित्तयमग्ग कत्तकयमाण स्वार
 परिसिच्चगाइ उज्ज्वलगत्त कुत्तग्ग भियण जउग्गरिय सव्ववेहा
 यिसाल्लति महीत्तळे निस्सुणियगमग्ग, तत्तय विय-सुणण-सियाल्ल
 काळ-मङ्गार-सरम-धीविय-विचण्ण सव्वुत्त सइ-दप्पिय
 सुइभिन्तेहिणिककाळमणसिणहिं घोरा रत्तमाण भीमरुबोहिं
 अक्कमित्ता दद दावा-गाइ उक्ककट्टिय सुत्तिक्ख नह फाळिय
 उद्धदेहा यिच्चिप्पते समत्तओ वित्तुक साधि वपणापियगमग्ग
 कक-कुरर-गिद-घोर-कट्टवायसगणोहि य पुणो खरधिर दद
 णक्कलोइ तुरेहि ओत्तित्ता पप्पसाइय तिक्कणक्कण यिच्चि
 उक्कभंछिय मपण निह (३) ओलुग्ग विगत वपणा, उप्पो

संता य उप्पयंता निपतंता भमंता पुव्वकम्मोदयोवगता
 पच्छाणुसयेण डज्झमाणा, णिंदंता पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं
 तहिं २ तारिसाणि ओसन्नचिक्खणाइं दुक्खातिं अणुभविता, ततो
 य आउक्खएणं उव्वट्टिया समाणा बहवे गच्छंति तिरियवसाहिं
 दुक्खुत्तरं सुदारुणं जम्मण मरण जरा बाहि परिउदणारहइं
 जल थल खहचर परोप्पर विहिंसणपवंचं इमं च जगपागडं
 वराका दुक्खं पावेंति दीहकालं । किंते ?, सीउरहतएशाखुहवेयण
 अप्पईकार अडवि जम्मण णिच्च भउव्विग्ग वास जग्गण वह
 बंधण ताडणंकण निवायण अट्टिभजण नासाभेयप्पहार दूमण
 छुविच्छेयण अभिओग पावणक संकुसार निवायदमणाणि
 वाहणाणि य मायापिति विप्पयोग सोय परिपीलणाणि य सत्थ-
 ण्णि विसाविघाय गल गवल आवलण मारणाणि य गलजालुच्छि
 पणाणि पउलण विकप्पणाणिय जावज्जीविक बंधणाणि पंजर-
 निरोहणाणि य सयूह निद्धाट्टणाणि धमणाणि य, दोहणाणि य
 कुदंढ गलबंधणाणि वाडगपरिवारणाणि य, पंक जल निमज्ज-
 णाणि, वारिप्पवेसणाणिय ओवायणि भंग विसमणि वडणदव-
 ण्णिगजालदहणाइं य, एवते दुक्खसय संपालित्ता नरशाउ आगया
 इह सावसेसकम्मा तिरिक्ख पंचेदिएसु पावेंति पावकारी
 कम्माणि पमाय-राग-दोस-बहुसच्चियाइ अतीव अस्साय-
 कक्कसाइ ॥ सू० ५ । ४ ॥

छाया—“पूर्वकर्मकृत सञ्चयोपतप्ता निरयाग्नि महाग्नि सम्प्रदीप्ता गाढदुखां
 महाभयां कर्कशाम् असातां शारीरीं मानसीं च तीव्रा द्विविधां वेदयन्ति वेदनाम्,
 पापकर्मकारिणो बहूनि पल्योपम सागरोपमानि वरुणं पालयन्ति ते यथाऽऽयुष्क
 यमकायिकत्रासिताश्च शब्द कुर्वन्ति भीता, किन्तत् ? (वद्यथा) द्वैभविभाव्य !
 हे स्वामिन् ! हे भ्रात ! हे पित ! हे तात ! हे जितवन् ! मुञ्च माम्, भ्रिये दुर्बलो
 व्याधि पोडितोऽहम्, किमिदानीमसि एव दाख्णो निर्दयो, मा देहि महा प्रहारान् उच्छ्व
 सनमेक सुहृत्तंक मे देहि, प्रसाद कुर्व, मा रु षस्व, विश्राम्यामि, प्रवैयक मोचय मम,
 भ्रिये, गाढ तृपाऽऽर्दितोऽह देहि पानीयम्, हन्त पिवेद् जल विमल शीतलमेतदिति

गृहीत्वा च नरक पाञ्चारत्न त्रयुक्तं तस्मै देवते कञ्चनऽऽञ्जयेत् । एष्ट्वा च उत्तयेपिता-
 ज्ञोपाज्ञा भद्रमुत्पद्यताऽऽश्नादिष्ठाया एष्ट्याऽऽश्नाकमिति कल्प्यामि अस्पृशो विप्रे
 क्षमाणा द्विषो द्विषाम् अत्राया अहारणा अनाया अवाञ्छवा वस्तुविप्रहीया विपञ्च-
 यन्ते च मृगा इव वेगेन भयोद्विग्ना । गृहीत्वा ब्रह्मात्मकाममानाम् निरनुकम्पा
 मुञ्चं विद्याय ओह पण्यै कञ्चकञ्च (द्रव्यत्रयुक्तं) मु चरने क्षिपन्ति केचित् पमाकपिका
 हसन्तः । तेन इग्वा सन्वो रसेन्ति च भोमानि विस्वरापि सन्ति च कल्पकानि
 शारावतका इव एवं प्रक्षपित विष्ठाप कल्प्याऽऽकन्दित बह्वन्त्र (हृत्) कन्दित शब्द
 परिशेषित क्वद ब्रह्मक नारकाऽऽरवसङ्गुलो निस्तृष्टो रसित भक्षित कुपितोस्तृक्षित
 निरय पाठ वर्जित-सं गृहाण, काम, मद्, छिन्धि, मिथि सत्याद्य, हरिश्चप (छसन)
 कन्त, विहृत्य च मूयो बहि, हन, विबहि, (विहन) विक्षिप, छरिष्ठप, भाक्षप विहृष,
 किम अल्पसि इतर पापकर्माणि दुष्कृतानि एवं चरन महाप्रगल्भ, प्रति मुताऽऽ
 ष्ट संसृज्य त्रासक सदा निरय गोचरायां ब्रह्ममान महानगर सद्यो निर्धोप ज्ञप
 सेऽनिष्टस्तत्र नैरपिकायां यस्वमानानां यातनामि । कास्ता ? (यातनाः) असिब
 न, इभवन, पन्त्र, प्रस्तर, सूचीवळ धारयापो कञ्चकलात् (द्रव्यत् त्रयुपादि ससृज)
 वैतरणो कश्च यमलुका चर्चित गुहा निरोधनम् लण्णोप्य कष्टकित दुगम रथ
 योजन तत्र ओह मार्गो गमन वाहनानि, एभिर्दिविषैरायुषै । कानि वानि ? मुद्गर
 मुमुञ्चि कुरुष शक्ति-इह-गदा मुसल चक्र कुल सोमर गूल कट्ट मिण्डिपात्र-सद्य
 (मल) पट्टिच धर्मो-द्रुषण मीष्टि षडसिन्धेयक कङ्क चाप नाराच कम्ब कल्पगी
 वासा परशु-टङ्क तोह्न निमत्ते । अन्यैश्चेवमाविभि रक्षुमै यैश्चिन्मै प्रहरणस्यै शुभ्र
 तोत्र पैराः परस्परवेनामुनीरयन्त्यभिप्रमत् । तत्र च मुद्गर प्रहार पूजित
 मुमुञ्चि संभग्न मथित देहा यत्रोपपोहनसुररकल्पिता केचिन्न सचमका
 विहृता निमूळ (खनलोत्तन) कर्णोत्तनादिकादिष्टमस्तपयाः, असि
 कुरुष वीक्षण मुन्त परशु प्रहार स्काटित चासीं समतक्षिताऽऽज्ञापाज्ञा कञ्चक्यायमान
 धार परिपिक्त गाढ दहमान गात्र कुन्वाऽऽ प्रभिन्नमन्नरितसर्वदेहा विहृकन्ति
 महीतले जातश्वयुक्ताज्ञोपाज्ञा । तत्रप वृक मुनठ दृगाळ काक मामार सरम
 ढोपिक बेनाम शानूळ सिद्ध रपित दुर्वाभिमुर्वेर्नित्यकात्मनसिधैर्पोटा
 सरक्ष्मीम रूपैराक्रम्य एवदंष्ट्रा गात्र इष्ट हृत् सुतोह्य मत्त स्काटितायुषैरेह विक्षिप
 ग्ते समन्ततो विमुक्तमन्त्रिवन्धना स्वद्विताज्ञा कङ्क कुरर गृह पीर कष्ट यावसग-
 ष्ट पुनः । रररिचरटतनगलोहदुष्टैरपपरय पञ्च ऽऽहृत वीक्षण मत्त विकीर्ण

जिह्वाःच्छिननयननिर्देशाश्चरण विकृत्तदना, उत्क्रोशन्तश्चोत्पतन्तश्च निपतन्तो
 भ्रमन्त पूर्वकर्मोदयोपगता . पश्चादनुशयेन दृष्टमाना निन्दन्त . पुराकृतानि कर्माणि
 पापकानि तत्र तत्र तादृशानि—उत्सन्न चिकनानि दु खानि—अनुभूय ततश्चायुः
 क्षये—उद्धृत्ता . सन्तो पदवो गच्छन्ति तिर्यग्भवसतिम्, दु खोत्तारा सुरारूपां जन्म
 मरण जरा व्याधि परिवर्तनाऽऽरघट्टां जल स्थल खचर परस्पर विहिंसन प्रपञ्चाम्
 इदञ्चजगत्प्रकट वराका, दु ख प्राप्नुवन्ति दीर्घकालम् । किन्ते ? तद्यथा—शीतोष्ण लृप्ता
 क्षुधा वेदनाऽप्रतीकाराऽटवो जन्म नित्य भगोद्ध्रमवास जागरण वध वृन्धन
 ताडनाऽङ्कन निपातनाऽस्थिभञ्जन नासा भेद प्रहार दवन-च्छविच्छेदनाऽभियोग
 प्रापणकशाऽदुःखाऽऽरा निपात दमनानि, वाहनानि, व माता पितृ विभयोग स्नान
 परिपोडनानि च शस्त्राऽग्निविषाभिपात-गलतत्राऽवलन मारणानि, गड-जालो
 तक्षेपणानि, पचनविकल्पनानि, यावज्जीवकवन्धननि, पञ्जरनिरोधनानि, व
 स्वयूथ निर्वाटनानि धमनानि, च दोहनानि, कुण्डगतमन्धनानि, वाटक, परि-
 धारणानि, पङ्कजलनिमज्जनानि, चारिप्रवेशनानि, भवपातनि, विपम निपतन
 दवाग्नि ज्वालादहनदीनि च । एवते दु खशतसम्प्रदीप्ता नरकादागता इह
 सावेशेपकर्मणस्तिर्यक्पञ्चन्द्रियेषु प्राप्नुवन्ति पापकारिणः कर्माणि प्रमादरागदाप
 बहुसञ्चितानि—अतीवाऽऽसातकशानि ।

अन्वयार्थ—“(पुंस्व कम्म कय सचोयोवतत्ता) पूर्व कृतकर्म के सचय से
 सन्ताप पाये हुए (निरयगि महगि सपलित्ता) भयङ्कर अग्नि की तरह निरयस्थान
 को अग्नि से जले हुए वे जीव (गाढदुःख) अत्यन्त दुःख युक्त (महवभय) महा
 भयङ्कर (ककस) फठोर इमोजिये (असाय) असात वेदनीय के उदय-से होने
 वाली (सारोर) शरीर सम्बन्धी (मानसच) और मानसिक ऐसे (दुविह)
 दो प्रकार की (तिन्व) तोत्र (वेयण) वेदना को (वेदेंति) अनुभव करते हैं ।
 (पावरुम्मकारो) पाप कर्म करने वाले वे जीव (वहुणि) बहुत से (पळिओवम-
 सागरोवमाणि) पल्योपम और सागरोपमतक (करुणं) दया जनक दशा को
 (पालेंति) पूर्ण करते हैं, फिर (ते) वे (अहाउयं) बाधी हुई आयु के अनुसार
 (जमकातियतासिया य) अथ आदि नाम वाले वहा के यमों से त्रास पाये हुए
 (सद्ध क रेंतिभोया) भय भीत होकर शब्द—आर्तनाद करते हैं । (किन्ते ?) वह
 आर्तस्वर कैसा है ? (अविभाय, सामि, भाय, वप्प, ताय जितव ! मुय मे)
 हे अविभाव्य—समस्त मे नही आने लायक वन्धु ! हे स्वामिन् ? हे भाई ! अरे

बाप ! हे तात ! हे बिजय रीठ ! मुझे छोडो (मरामि) मैं मर रहा हूँ (दुखको
 बाहिपोकिमोहं) मैं दुख-कमजोर और क्याचि से पीड़ित हू (एव शरुणो जिरुप)
 इस प्रकार शरुण तथा निव्य (किं वाण्डिसि) इस समय क्यों होते हो ? (मावेदि
 मे पहारे) मुझे प्रहार मत मारो (उसासेस मुहुत्तय मे देहि) पत्नी मर मुझे आस
 छेने हो (पत्ताय करेहि) प्रसाद—इया करा, (मारुस) मेरे ऊपर क्रोध मत करो
 (वोसमामि) थोडा विभ्राम छेता हूँ (गोबिर्जमुयह मे) मेरे गले के बन्धनों को
 छोडो, (मरामि) मैं मर रहा हू (गाडतग्यातिमो महं) मैं प्यास से खूब पीड़ित
 हू (देह पाणीयं) पानी दो (इता) अच्छा ! (पिय) पो— (इमं जळं विमळं सोयळं)
 यह सख निर्मळ और छीतळ ठंडा है (ति) ऐसा कड़कर (सरय पाळा) ये मरक
 पाळ देव (तवियं तयं) तपे हुए सीसे को (घेत्तुण) छेकर (से) इस प्यासे
 मारक बीब को (वेदि) देते हैं (कळसेण) कळस में से (अंजळीसु) अंजळियों
 में (इट्टाययत्तं) और इस सीसे के पानी को देखकर (पवेपियंगोवंगा) अङ्गो
 पात्रों से पूजते हुए और (अंसुपगळंत पन्नुयच्छा) गळते हुए भाँसुओं से भाँस
 भरके (छिण्णा तण्हाइयम्ह) हमारो प्यास मिट गई इस प्रकार (कळुणाखियंप
 माणा) कळुणा अमळ बन्धनों को बोलते हुए भागत हैं (विपेकत्ता दिवो निदि)
 एक ओर से दूसरी दिशा की तरफ देखते हुए (अत्ताजा) प्राण रहित (असरणा)
 रक्षकों से रहित (अणाहा अबंधना) योग क्षेम करने वाले भाव तथा स्वजनों से
 रहित अर्थात् भिगके न कोई भाव हैं न बांधव (बंधुविपरहणा) बन्धु के बिना
 रहने वाले वे बीब (मिगा इव भयुक्किग्गा) हरियों के समान भय से उद्भ्रम
 पने हुए (भंगेय) बहुत ओर से (विपछायति) भगते हैं (य) फिर (बळा)
 बल प्रयोग से (घेत्तुण) पकड़ कर (इसंता) हँसते हुए (केइ) कई एक (कम
 काइया) कम जाति क असुर (निरपुळंषा) निव्य बन हुए (पत्ताममाणणं) भगते
 हुए के (गुहं) मुस को (विहाडेत्तु षीदडंढदि) लोहमय ढणों से कमफ गुण
 दो पत्त रख कर (कळ कळं) कळ कळ करते हुए इस सोसे को (बयत्तिसि) मुह
 (एमंति) हाकते हैं, (तेण दणुसंगो) इस गरम सीसे के हाकने से यज्ञतहुए
 (रमति) प्रकाप करते हैं (य) और (सोमाइ विसरताइ) भयट्टर विरस हाइ
 करते (रपतिप कळुणगाइ पारेवतगाव) और कपूर की तरह कळुणा जनक
 रत्न परल है (एय) इस प्रकार बदाँ और गुमा जाता है (पत्ताविय विजाव
 कळुणा इदिय बहुदमग्दियसरा) कमवसय के प्रकाप और बिलाप—मातनाइ

करने से जो करुणा जनकहै, तथा आक्रन्दन अतिशय अभ्रमोचन और रोने के शब्द वाला है, (परि वेवित रुद्ध बद्धय नारकारवसकुलो) धूजते हुए रोके गए और नरक पालों के द्वारा बंधे हुए नारकों से व उनके आरवोंसे सकुल है (पी-सट्टो) जो निर्घोष नारक जीवों से छोड़ा गया (रसिय भणिय कुविउक्कूइय निरय-पाल तज्जिय-) शब्द युक्त भणित-- अव्यक्त वचन वाले और क्रोध युक्त तथा अव्यक्त महाध्वनि को करने वाले निरयपालों के तर्जित-रे पापी ! अब समझेगा ! इस प्रकार को तर्जना युक्त, (गेण्ह) धरो पकडो (कम्म) आक्रमण करो (पहर) मारो (छिद) काटो (मिद) भेदन करो (चप्पाडे हु कखणाहि) जमोन से उठाओ याने ऊपर फेंको आंख की पुतली या बाहु आदि उखाड फेंको (कत्तादि) नाक आदि कतरो-काटो (विकत्ताहि) टुकड़ी २ करो (य भुज्जो) और फिर किसी समय मदेन करो (हण) मारो (विहण) विशेष टाडन करो, (विच्छुभोच्छुभ) मुख मे सीसा डालो व अधिकता स डालो, (आक्कुहु) सामने खींचो (विकुहु) पीछे हटाओ (किण जपसि) क्यों नहीं बोलता है ? या नहीं जानता है ? , (सराहि) याद करो हे पापात्मन् ! (पाव कम्माइं दुक्कयाइं) अशुभ योग आदि से किये हुए दुष्कर्मों को (एव) इस प्रकार (वयण महप्पगब्भो) नरक पालों के बोलने से जो अति कर्कश है (पडिसुया सह सकुलो) प्रति शब्द की आवाज से व्याप्त (सया तासओ) सदा त्रास उत्पन्न करने वाला (निरयगोयराण) नरक स्थान बर्ती जीवों के लिये जो (महाणगर ढज्जमाण सरिसो) जलते हुए बडे नगर के समान (तहिय) वहां (जाइज्जताण जायणाहिं) अनेक प्रकार की यातनाओं से पीडित होते हुए (नेरइयाण) नारकीय जीवों का (अणिट्टो निग्घोसो) अनिष्ट-बुरा निर्घोष शब्द (सुच्चए) सुना जाता है (किते ?) वे यातनायें कौनसी हैं ? उन्हें कहते हैं - (असिवण दग्भवण जत पत्थर सुइतल) असिवन खड्ग की आकृति वाले जिन मे पत्र हैं, दर्भवन-जहा डाम की तरह तीखे अग्र भाग वाले घास हैं, वह दर्भवन, पाषाण का यन्त्र अथवा यन्त्र से फेंके गये पत्थर, या यन्त्र व बडे पत्थर, सूई के अग्र भाग वाला भूमितल (वखार वावि) खारे द्रव्य से भरी हुई वापी-वा-वडी (कल कलत वेयरणि) उकलते हुए सोसे आदि से भरी हुई वैतरणी नदी (कलष वालुया) कदम्ब फूल के आकार वाली वालू-रेत और (जलिय गुह निरुंभण) जलती हुई गुहा इन सब स्थानों में रोक कर रखना (एसिणोसिण कटइल्ल दुग्गम रह जोथण) अत्यन्त चण्ण कण्टक वाले और मुश्किल से चलने वाले ऐसे भारी

रथों में भोवना (वत्सोह मग गमण बाह्याणि) भीर तपे हुए छोड़ मय भागे में
 जाना या बैली को तरह हाँक कर—अववृत्ती छे जाना इस प्रकार की बनेक यातनायें
 ही जाती हैं, (इमेहिं विविहेहिं) इन नोषे कहे जाने वाले विविधि (आयुहेहिं)
 आसुनों से परस्पर वेदनाओंका त्वोरण करते हैं (किते ?) ये कौन से आसुप
 हैं ?—(मोगर मुसुदि) मुद्गर—लोहका बन, मुसुंदि—मुसुंदि (करकब) करकब—कर
 बव (ससि) ससि—त्रिशूल (इह) इह (गय) गय—एक प्रकार की झाड़ी (मुस
 छ) पान्य कूटने का मूसछ (चक) चक (कुन) भाजा (घोमर) बास्य विशेष
 (सूछ) सूज (सहस) सहस—सहा, (भिदिमास) मिदिपास—प्रहरण विशेष,
 (सदस) एक प्रकार का भाजा (पटिस) पटिस—प्रहरण विशेष (चमेट्ट) चमेट्टे से
 मडा हुमा पत्थर विशेष (दुरय) दुरय—वृद्धों को गिराने वाला मुद्गर (मुष्टिय)
 मौष्टिक—मुष्टि प्रमाण का एक पत्थर, (असि सेहग) तखबार के साथ फसक
 (सग) तखबार (बाब) बमुप (नाराय) छोड़ का वास्य (क्याक) बाल का
 एक भेद (व्याण) कर्तिका एक प्रकार की कैंची (वासि) काष्ठ छिन्ननेका बस—वसू
 द्या (परसु) परसु—(ठक विन्स, निम्मस) पूर्वोक्त सब बस सस मय भाग पर
 पीले और निर्मल हैं (अणोहिय) और वूसरे (एवमादिपरिहिं) इत्यादि बनेक
 (असुमेहिं) अशुभ कारक (वेवविपरिहिं) वैदिक (पहरणसतेहिं) सैकड़ों प्रकार
 के सखों से (अमुवदविभवेरा) सदा छकट वैरभाव रखने वाले नारकेशीब
 (अमिहणता) एक वूसरे को मारते हुए (परोपरवेयण) परस्पर में दुःख रूप
 वेदना को (अशोरेंदि) छपन्न करते हैं। (तसय) और वहाँ नरक स्थानों में
 परस्पर के प्रहार में (सोमार पहार बुण्जिब—मुसुदि संभग महित वेदा) मुद्गर
 के प्रहार से नूर्ण विभूष बने हुए तथा मुशुष्पी की मारसे दूटे हुए भीर मये हुए
 जैसे वेह वाले (अतोव पोहण फुन कल्पिया) घातो आदि यन्त्री में पीछने से चमकते
 हुए भीर कटे हुए (के इत्य) वहाँ नरक में कई नारक कीब (सचम्पका) चमेट्टे
 वाले (विगता) चमेट्टे से बहग किये गए (निम्मसुण्ण करणोड वासिका) मूछ से
 कटे हुए जान ओठ व मासिका वाले (छिण्णहत्तपादा) और कटे हाथ पाँव वाले
 (असि) तखबार (करकय) करकब (विक्ककोट) तोसा भाजा और (परसुप
 हार फाक्षिय वासी संतच्छित्तगमगा) परसु—फरसों से फाड़े गए और वसुओं से
 ढीठे गए अहोपन्न धास (कककतमानसारपरिमिता) कक कक करते हुए

उष्ण क्षार से सिक्त होने के कारण 'गाढ डञ्जंत गत्त कु नग भिण्ण जञ्जरिय
सव्वदेश) अत्यन्त जलते हुए शरीर वाले और भाले के अग्रभाग से विदोर्ण होने के
कारण जर्जर हैं सव्व देह जिनके ऐसे (विसूणियगम'ग) सूजे हुए फूले हुए तथा
क्षत शरीर वाले नारक जीव (महोत्तले) जमीन पर (विलोलति) लोटते हैं,
(तत्थ य) और वहाँ (विग सुणग सियाल) विग—उाली नाहर, कुत्ते, शियाल
(काक) कोए (मञ्जार) विल्ली (सरभ) मरभ (दोभिय) चीता (वियग्घ)
व्याघ्र के बच्चे (सहल) शार्दूल-सिह-व्याघ्र (सीह) सिंह (दप्पिय खुद्दाभिभूतेहिं)
दत्त-मस्त और भूख से पीड़ित (णिचकालमणमिण्हि) सदा से भूखे हों उस तरह
(घोरारसमाणभीमरूवेहिं) घोर शब्द व दारुण कर्म करने वाले और भयङ्कर रूप
वाले ऐसे ये क्रूर हिंसक जीव नारक जीवों पर (अकभित्ता) आक्रमण करके (दढ
दाढा गाढ दढ कड्डिय सुतिक्ख नह फालिय उद्धदेहा) मजबूत दाढों से गाढ़ दशे
हुए और खींचे गये तथा अत्यन्त तीखे नखों से फाड़ दिया—विदारण कर दिया है
ऊर्ध्व देह जिनका ऐसे नारकों को (विच्छिप्पते स तओ) चारों ओर फेंक देते—
विखेर देते हैं (विमुक्क सधिवधणावियगमंगा) ढोलो करदी गई है अङ्गों को
सन्धियों जिनकी ऐसे तथा विकल अङ्गोपाङ्गवाले (पुणो) फिर (कक) कक
पक्षी (कुरर) कुरर-पक्षिविशेष (गिद्ध) गीध (घोरकट्टवायसगणेहिय)
घोर कष्ट देने वाले वायस-कोए इन सबके समूह (खर थिर दढ नक्ख लोह तुडेहिं)
जो कठोर निश्चल और दढ नख व लोहमय चोंच वाले हैं उनके द्वारा (ओव
तित्ता) पास में आकर (पक्खाहय तिक्खणक्ख.विकिण्ण) पाखों को मारसे आ-
हत किये गये, तीखे नखों से तोचे-विखेरे गये (जिम्भळिय नयण निहओलुग विगत
णयणा) जीभ खोंची गई, आखे निकाली गई, निन्द्यता से मुंह विगाड़ा गया और
जिन्हें घायल किया गया है ऐसे वे नारक जीव (उक्कोसता) चिल्लाते हुए या रोते
हुए (य) और (उप्पयता) उछलते (निपत्तता) गिरते (भमता) फिरते हुए (पु-
व्वकम्मोदयोवगता) पूर्व कृत कर्म के उदय वाले (पच्छाणुसण) पश्चात्ताप से
(डञ्जमाणा) जलते हुए (पुरे कडाइ कम्माइ) पूर्व-पहले किये हुए अशुभ कर्मों
की (निंदता) निन्दा करते हुए (तहिं २) उस २ रत्नप्रभा आदि पृथ्वी से तथा
उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावास से (तारिसाणि) वैसे—जन्मान्तर में मिलाये हुए
परमाधार्मिक के चलते या परस्पर की उदोरणा से तथा क्षेत्र स्वभाव से होने वाले,
(ओसन्न चिक्रणाह) अधिकता से चिकने-दु ख से छूटने योग्य (दुक्खातिं) दु खों

को (अनुभवित्वा) अनुभव करके (ततो यः) बाद फिर (आठकल्पणे) आसु के क्षय-पूय हो जाने से (उष्णद्विधा-समाप्ता) ऊपर आध निकले हुए (बहवे) बहुत से जीव (विरिष बसहिं) विषय-योगि रूप निवास में (गच्छन्ति) चले जाते हैं (दुःस्वप्नतरं) जो विषय-योगि बहुत दुःख से झूटती है और (सुषारण) बहुत भयभूर है (जन्मण मरणं अरु बाहिं परिकल्प्यारहह) जन्म मरण ब्रह्मावस्था और स्वाधि के बारंबार परिवर्तन से जो रेंट अर्थात् अखंड की तरह चलेती-है (सह यत् सारथर परोत्पर विहंशुपपंथ) सहपर स्थसपर और शेषर जीवों के परस्पर, हिंसा प्रथि हिंसा का अिसमें विस्तार है, वैसी (इमथ) और पच योगि-में आगे, बड़े जाने वाले (अग पागडं) अग प्रसिद्ध (दुःखं) दुःख को (वराग) बेचारे हिंसक-जीव (वीहकाठ) अपने काष्ठक (पाषेठि) पाते हैं, (किते ?) वे दुःख कौन से हैं-
 चर—(सीष्) शीत उष्ण—ठंडो गर्मी। उष्ण सुह) वरुणा और मूष से होने वाली (पेय्यप्रपहकार) उपचार बिना लो जेदना मस्ति कर्म भादि (अहकिजन्मण) अटवी में जन्म लेना, (मिष भवन्निजावास-) सदा रूप-से पहिन रहकर बचना-रहना (अगज बह पंथन ताहणक्य) आगना, बध, पंथन छोडो भादि का पाहन और छोडमय शलाका भादि से चिह्न करना (निवायण अट्टि मंजण नासामेय-पहार इमण) एडु में गिराना, इडु तोडना नाक में बीजना, छोडो के प्रहार करना, जलामा (छविश्रेयन अमिभोगपात्रण) पमडे को छेदना, जान भादि अक्षयवों को बोधना, बहदली काम में लगाना (कसंजुसार निवा प इमजाणि) पातुक, अंडुत्र, और भार छकडो के अग भाग में छगी टुई कीड इन सधों से शरीर पर आपाठ करना व इमन करना, (बाह्याणि य) व भार चठबामा (मादापिठि विप्यभोग) माता पिता से विमुक्त-शुदाई होना (सोप परिपोलणाणि) नाक मुह भादि इन्द्रियों को बीडा पट्टवाना अथवा शोक से पीडित करना (य) और (स्यमि विस्तारिपाय गळ गवत्त आबळ मारणाणि) हाथ अग्नि और विप से इनन करना, गळे व सीग को मोडना, अथवा गळे का नुबाकर और सीग का मोड कर मारना (य) और (गळ आलुकिष्पणाणि) मस्य बीधन क कटि और जाल व मण्डलियों को पानी से बाहर लोपना (पभोउकणु विषलणात्रि) अन्न भादि को पाटना और पकामा (य) और (आवयोवग पंपणाणि) जीवम मर के लिये बांधना (पत्रर निरादणात्रि) बीजरे में राड रखना (य) और (धयूरनिडाहयात्रि) अवन पूष-धमूह से अलग कर देना (धमयत्रि) मक्षिप

वगैरहमे वायु भर देना-यह 'फूका नाम का नृशस कर्मभाज भी सुना जाता है' (य) और (दोहणाणि) दूध दूहना (य) और (कुदंडगल-वधणाणि) कुदण्ड-चुरी लकड़ी से पीटना और वही गले में बांधना (वाडग परिवारणाणि) बाड़े से हटाना (य) और (पकजल निमज्जगाणि) अधिक कीचड़मय पानी में डुवोना, (वारिप्पवेसणाणि) पानी में डालना—गिराना, (य) और (ओवायणि भग विसमणिवडण दव्वणि जालदहणाई य) खड़े आदि में गिराने से अङ्ग आदि का टूटना, पर्वत के शिखर वगैरह से गिरना-ऊँचे नीचे विषम प्रदेश में पडना और दावाग्नि से जलना इत्यादि (एवते) इस प्रकार वे हिंसक जीव (दुक्खसय सपलित्ता) सैकड़ों दुःखों से जले हुए (नरगार-आगया) नरक से भाये हुए (इह) यहाँ (सावसेसकम्मा) अवशेष वचे हुए बाकी कर्म वाले (तिरिक्ख पंचेंदिएसु) तियेञ्च पञ्चेन्द्रियों में (पाव कारी) पाप-कारी जीव (अतीवअसायककसाइं) अत्यन्त कठोर दुःखों को (पावति) पाते हैं, जो दुःख—(कम्माणि) कर्म जन्य तथा (पमाय—राग—दोस—बहु सचियाइं) प्रमाद और रागद्वेषों से बहुत सञ्चित किए गए हैं। ५।४।

भाव—“इस प्रकारण का अर्थ सहज है, इसलिये अन्वयार्थ से ही समझ लें। केवल इसका साराश यहाँ दिया जाता है। पूर्व कृतकर्म के सञ्चय से तपे हुए जीव शारीरिक और मानसिक वेदना रूप भयङ्कर दुःख को भोगते हैं। आयु के अनुसंधार कई पल्योपम सागरोपम तक वे यमसे त्रास पाये हुए चिल्लाते रहते हैं। अरे वाप ! मैं मरता हूँ, छोड़ो मैं दुर्बल हूँ, इस प्रकार निर्दय मत बनो, इत्यादि रूप से नारकीय जीवों के चिल्लाने पर और मैं प्यासा हूँ मुझे पानी दो ऐसा कहने पर नरकपाल गण उनको तपा-गला-हुआ सीसा लाकर अञ्जलिमें देते हैं, जिसको देखते ही देह से धूजते हुए और आँखों में आँसू भर कर नारक जीव कहते हैं--महाराज ! हमारी प्यास मिट गई अब हमें पानी नहीं चाहिए, ऐसा कहते हुए चारों ओर भागने लगते हैं, तब उन्हें जवर्दस्ती पकड़कर निर्दय यमदूत हंसते हुए उकलता हुआ सीसा मुहमें डाल देते हैं। उससे जलकर वे रोते हैं, भयङ्कर क्रन्दन करते हैं, नरक पाल व नारक जीवों के चिल्लाहट से नरकावास में बड़ा अनिष्ट शोर होने लगता है। जैसे किसी बड़े नगर के जलने से वहाँ हाहाकार होने लगता है और चारों ओर उद्विग्नता फैल जाती है वैसे अनेक प्रकार की यातनाओं से पीड़ित नारकों का कोलाहल उद्वेजक हो जाता है। अस्मिन् और चैतरणी आदि नरक के दुःख दायी

स्थानों में वे नारक कीच रोके जाते हैं। अत्यन्त बन्धु व कृति कुछ रथमें चोते जाते मुद्गर भादि अनेक वैश्विय आयुषों से वे परस्पर भी महार करते और कुछ कल्पन करते हैं, छिन्न मिन्न और अज्ञों के कृत विध्वत हो जाने से सञ्चरित वेद होकर वे मूर्धिवल पर छोटते हैं। इतने पर भी और नहीं कुछ कृत्ता और व्याघ्र भादि हिंसक पशु पक्षियों से विविध तरह से मारे और पीडित किये जाते हैं वेहाल बने हुए नारक जोब चिल्लाते उछलते और लीचे गिरते, एवं मँबरी की तरह घबरा काटते हैं,। पश्चात्ताप के बलते बलते एव अपने दुष्कर्मों को निम्ना करने लगते हैं,। वह! मरकावास में अधिकता से चिकने कर्मों को भोगकर आयु के पूण हो जाने से वे मरकर त्रिविधयोनि में जाते हैं। जो बहुत तुल्य व हारुण है, जन्म करा मरण और व्याधिओं के अनेक चक्र बाधी तथा लक्ष चर भादि जन्तुओं के रूप से परस्पर हिंसा के प्रपन्न वाधी है। पशुगति का कुछ अंग प्रसिद्ध है। वह हिंसक जोब दोपकाह तक उसको भोगता रहता है। पशुगति के कुछ—ठंडो गर्मी मूक, प्यास, तथा परायोनता से होने वाले अनेक प्रकार के बध बन्धन वाहन, अङ्गन भङ्गादि छेदन मेदन, अस्मि मोहन भादि हैं जो सुगम है ऐसे नरक से भाये हुए जोब कम बचे रहने से तथा हार्दिक बतमान राग द्वेष से सञ्चित सैद्धों दुःखों को त्रिमल योनिमें पाते हैं। जो अत्यन्त कठोर होते हैं। सू० ५।४।

मूक—“अथ ममगमादिषुमाहपसु य जाहकुल कोविसय सहस्तेहिं नवहिं चउरिदियाण तहिं तहिं चव जम्मण मरणापि अणु मवता काळ सखेज्जक भमति नेरइयसमाण तिष्ववुक्खा फरिस रसण घाण चक्खुसहिया, तइव तइदिएसु कुयु पिप्पी छिका अयधिकारिकेसु य जातिकुल कोविसयसहस्तेहिं अहहिं अणुणएहिं तेइदियाण तहिं तहिं चव जम्मण मरणापि अणु मवता काळ सखेज्जक भमति नेरइयसमाण तिष्ववुक्खा फरिस रसण घाण सपउत्ता, (तइव वेइदिएसु) गइलय जलूय किमिय चदणगमादिपसु य जातिकुल कोविसयसहस्तेहिं सत्ताहिं अणु णएहिं वेइदियाण तहिं र चव जम्मण मरणापि अणु मवता काळ सखिज्जक भमति नेरइयसमाण तिष्ववुक्खा फरिसरसण सप उत्ता, पत्ता एहिं भियत्तएपिय पुदबि जल्ल जल्लय माकयवयप्फति

सुहुमवायरं च पञ्जत्तमपञ्जत्तं पत्तेयसररीरणामसाहारणं च,
 पत्तेय सररीरजीविएसु य, तत्थवि कालमसंखेज्जगं भमंति अण्णत
 काल च अणंतकाए फासिदिय भाव सपउत्ता दुक्खसमुदय इमं
 अण्णिहं पार्विति पुणो २ तहिं २ चेव परभव तरुणणणे (गहणे)
 कोहालकुलिय दालण सालिल मलण खुंभण हंभण अणलाणिल
 विविह सत्थघट्टण परोप्पराभिहणण मारण विराहणाणिय
 अकामकाहं परप्पओगो दीरणाहिय कज्जप्पओयणेहिय पेस्स-
 पसु निमित्तं ओसहाहारमाहएहिं उक्खणणउक्कत्थण पयणको-
 हण पीसण पिहण भज्जण गालण आमोडण सडण फुरण भज्जण
 छेयण तच्छण विलुंचण पत्तज्जोडण अग्गिदहणाहयातिं, एवं
 ते भवपरंपरादुक्खसमणुवद्धा अहंति संसारवीहणकरे जीवा
 पाणाइवायनिरया अणंतकाल । जेविय इह माणुसत्तणं आगया
 कहंचि (कहिवि) नरगा उव्वट्टिया अधत्ता तोविय दीसंति
 पायसो विकयविगल रूवा खुज्जा वडभा य वामणा य बहिरा
 काणा कुटा पंगुला विउला य मूका य मंजणा य अंधयगा एग-
 चक्खुविणिहयसच्चिल्लया वाहिरोग पीलिय अप्पाउय सत्थ
 वज्ज्जवाला कुलक्खणक्किन्नदेहा दुव्वल कुसंधयण कुप्पमाण
 कुसंठिया कुरूवा किविणा य हीणा हीणसत्ता निचं सोक्खपरि-
 वज्जिया असुह दुक्ख भाग (गा) णरगाओ उव्वट्टिया इहं
 सावसेसकम्मा, एवं णरगं तिरिक्खजोर्णि कुमाणुसत्तं च हिंड-
 माणा पावति अणनाइ दुक्खाइ पावकारी । एसो सो पाणव-
 हस्स फलविवागो इहले इओ पारलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो
 महवभयो बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्से-
 हिं मुच्चती, नय अवेदयित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति एवमाहसु,
 नायकुलनदणो महप्पा जिणो उ वरिवर नामधेज्जो कहेसीय
 (कहइसीह) पाणवहस्स फलविवाग । एसो सो पाणवहो चडो
 रुहो खुहो अणारिओ निग्घणो निस्संसो महवभओ वीहणओ
 तासणओ अणज्जो उव्वेयणओ य णिरवयक्खो निद्धम्मो निप्पि-

वामो निष्कलुषो निरयवासगमण निषण्णो मोह महम्मय पव
 व्वप्पो मरणावेमणसो । पढम अहम्मदार समत्त पि वमि ॥
 सू० १ । ४ ॥

छाया- भ्रमर मक्षक मक्षिकादिषु च जाति कुल कोटि शत चहस्रै नैवभिन्नसुरि
 न्द्रिवाणाम् तत्र तत्र चैव जन्ममरणाणि-अनुभवन्त काळं संस्वाशक भ्रमन्ति
 नैरयिकसमानवीधुत्याः स्पर्शन रसन प्राण्य चक्षुः संहिता । तथैव त्रीन्द्रियेषु
 कुन्यु पिपीठिकाऽचपिकादिषु च जाति कुल कोटिशतचहस्रैरर्थाभिरन्यूनकेसीन्त्रि
 वाणाम् तत्र तत्र चैव जन्म मरणम्यनुभवन्त काळं संसपेयक भ्रमन्ति नैरयिक समान
 वीधु दुःखाः स्पर्श रसन प्राण्य सम्प्रयुक्ता (तथैव द्रोत्रियेषु) गण्डलक-सञ्जीव-कृमि
 क-पद्मन कार्द्वेषु च जाति कुल कोटिशत चहस्रैः सप्तभिरन्यूनै द्रोत्रियाणां तत्र २
 चैव जन्म मरणान्स्नुभवन्त काळ संसपेयकं भ्रमन्ति नैरयिकसमान वीधु दुःखा
 स्पर्शन रसन सम्प्रयुक्ता । प्राप्ता पकेन्द्रियवमपि च पृथिवी ब्रह्म-व्यञ्जन-मातृ-वनस्पति
 सुक्ष्म वादरं च पयात्तमपर्वात् प्रत्येक शरीरं नाम साधारणं च प्रत्येक शरीरं जीवितेषु च
 तत्रापि काळमसंक्षेपेय भ्रमन्ति, अनन्तकालं चामन्तकाले स्पर्शन्त्रिय माव सम्प्रयुक्ता
 दुःख समुदाय मिमर्शानष्ट प्राप्नुवन्ति, पुनः २ तत्र तत्र चैव परभव तस्यागुहने कोदाह
 बुद्धिक दारणं, सच्छिद्य मञ्जन क्षोभण रोषनम् अनलाऽनिल विविध दास्य घट्ट्य परस्परा
 भिद्मन मारण विरोधनानिच, अकामकानि पर प्रयोगोदोरणाभिन्न क्वय प्रयाजनाभिन्न,
 प्रेष पणु निमित्तमीपधाऽऽहावार्तिके -अखनतो त्वयन पथन कुट्टन मेपण पिट्टन भजन
 गालनाऽऽमोटन सटन खुट्टनाऽऽमदन च्छेदन तक्षण विद्रुपन पत्र ख्यादनाग्नि दाह
 नापीति, एवन्ते मक्षपरम्परा बुध्दममणुबद्धा अटन्ति संसारे भयद्वारे जीवा प्राणा-
 दि पाव निरवा अमन्त काळम् । यऽपिच इह मानुपत्यमागता कथ च्छप्ररका
 दृढता अचम्यात्तऽपिच दृढन्त प्राधो पिट्टनपिक्ककुरुपा कुट्टना घटभाध यामना
 यवधिः। काणा कुट्टाः, पद्मसा विच्छाध मुच्छाध मग्मना अचका एवचक्षु
 पि दवाः, चर्वा-पचक्षुपः, व्यापिरोगवोदिता क्कस्यानुप सख्यम्या वासिहा
 (वासा) कुञ्जघनात्कोलरेहा दुपक्ष दुसंद्मन दुपमाण दुसाधाता (सतिधाता)
 कुरुषा वृपणाध हीना हीमसखा तित्य सीत्यपरिवर्तिता अन्तुम दुःख भात्रा
 मरकादिह साप-पचग्मांण । एव मरक तियग्वात्रि कुमानुपताप दिण्डमासा
 प्राप्नुवन्ति-अनन्तानि दुःखानि पाव कम कारित् । एष स प्राणवधाय पञ्चविधाक
 प्दका इहः पाठोर्दिशो-स्वप्नगा बट्टु ता महाभयो बट्टुरज-प्रगाढा दारुन क्क-

शोऽसातो वर्षसहस्रैर्मुच्यते । नचाऽवेदयित्वा अस्ति हि मोक्ष इति आख्यानवान्
 ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीरवरनामधेयः कथितवान् प्राणवधस्य फल-
 विपाकम् । एष स प्राणवधश्चण्डो खद्र. क्षुद्रोऽनार्यो निर्घृणो नृशसो महाभयो भयानक-
 छासनकोऽन्याय्य (नार्य) उद्वेजनकश्च निरवकांक्षो निर्द्धर्मो निष्पपासो
 निष्करुणो निरय वास गमन निधनो मोहमहाभय प्रवर्धकः—प्रवर्तकः मरण वैमनस्य ।
 प्रथम मधर्म द्वार समाप्तमिति ब्रवीमि ॥ सू ० ४ क ॥

प्रथममधर्मद्वारं समाप्तम् ॥

अन्व—(य) और (चरिन्द्रियाण) चतुरिन्द्रिओंके (भमर मसग मच्छिमाइ-
 एसु) भौरें, मशक, मच्छर तथा मक्खी आदि मे (नवहिं जाइकुल कोडि सय
 सहस्सेहिं) नव लक्ष—लाख जाति की कुल कोटिसे (तहिं तहिं चैव) चतुरिन्द्रियों
 के उन उन स्थानों मे ही (जम्मण मरणाणि) जन्म मरणों को (अणुभवता)
 अनुभव करते हुए (सखेवज्जक काल) सख्येय कालतक (भमति) परिभ्रमण
 करते हैं, वे (नेरइयसमाणतिव्वदुक्खा) नैरयिक के समान तीव्र दु ख वाले
 (फरिस रस घाण चक्खु सहिया) स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षु इन ४ इन्द्रियों से
 सहित हैं, (तद्देव) चरिन्द्रिय के समान ही (ते इ दिएसु) त्रीन्द्रिय=तीन इन्द्रिय
 वाली जाति में (कुथु पिप्पीलिका अवधिकादिकेसु य) कुथु पिपीलिका कीडी
 और अवधिका आदिकमे (अट्टाहिं जातिकुलकोडिसयसहस्सेहिं) जाति कुल
 कोडि से जो आठ लाख हैं (तेइ दियाण) तीन इन्द्रियों के (तहिं २) उन उन
 स्थानों मे (चैव) ही (जम्मण मरणाणि) जन्म मरणों को (अणुहवता)
 अनुभव करते हुए (सखेवज्जककालं) सख्येयकालतक (भमति) परिभ्रमण करते
 हैं, ये भी (नेरइय समाण तिव्वदुक्खा) नैरयिक के समान तीव्र दु ख वाले और
 (फरिस रसण घाण सपउत्ता) स्पर्शन रसन व घ्राण रूप तीन इन्द्रियों से युक्त
 हैं । (य) फिर (गहूलय जल्लय किमिय चदणगमादिएसु) गिंडोला; जल्लूग,
 कृमि—कीडे और चदनक—कौडी आदि मे (अणुणएहिं सत्तहिं जाति कुल कोडि-
 सयसहस्सेहिं) पूरी सात लाख जाति की कुल कोडि से, (वे इ दियाण)
 वे इन्द्रिय जीवों के (तहिं २) उन उन स्थानों मे (चैव) ही (जम्मण मरणाणि)
 जन्म मरणों को (अणु हवता) अनुभव करते हुए (सखिज्जकाल) सख्येय कालतक
 (भमति) भटकते हैं, वे—(नेरइय समाणदुक्खा) नारकीय जीवों के समान तीव्र
 दु खवाले (फरिस रसण सपउत्ता) स्पर्शन व रसन रूप २ इन्द्रियों से युक्त होते हैं,

(य) फिर (परिद्वियत्तर्पण) ए केन्द्रियपत्र को भी (पत्ता) पाकर (पुढबिजड
 सकृप्य मारुपणपत्ति) पूरती क्वाय अप्काय, अग्निक्वाय, वायुक्वाय और वनस्पतिक्वाय
 सम्बन्धी (सुद्रुम पायर) सूक्ष्म और बाहर नाम कम के उद्य से जाने बाडे (न)
 और (पञ्चसगपञ्च) पचास तथा अषासत दशा (पचैय सरोरणाम) प्रत्येक सरोर
 नाम कम (सहारण्य) और आघारण नाम कम के उद्य से साघारण वन को
 पाते हैं (य) और (पचैयसरोरजीविपद्रु) एक क्षरीर में एक जीव रूप से जीने
 वाले-प्रत्येक-भिन्न जीविभों में (तत्पत्रि) वहाँ पर भी (कात्मसत्पित्र) असंख्य
 काष्ठक (धर्मति) परि ध्रमण करते हैं। (य) और (अर्णनकाय) अनन्त काय-निगो-
 व आदि में (अर्णनकाय) अनन्त काय तक ध्रमण करते हैं (कासिद्विय भाय संप-
 वत्ता) स्पर्श-त्रय के भाय से कुछ जीव, बड़ा- (इमं अणिद्रु) कहे जाने वाले इस
 अनिष्ट (दुष्प्रसमुवर्ष) दुष्प्र समूह को (पुष्पो २) बारबार (प विवि) पाते हैं
 (तर्हि २ चैव) उन २ प्रत्येक आदि स्थानों में ही (परमव तरुण्य गहणे) हरद्वय
 विवि युक्त वृक्ष समूह के भव वाले अथवा परमव रूप वृक्ष समूह से गहन पेसे
 एकेन्द्रिय वन में (कोशाल कुशिय वासुप सस्त्रि ३ मत्तप्य सुमण व भज) कुशाळ और
 पुलिक एक प्रकार के भूमिकनने का अन्न व इन्स उनसे पिदाग्य करना व पानो को
 मर्दन करना सुभ करना तथा रोक रखना "इस कश् से पूर्यो वनस्पति और
 अप् कायके पुत्र कहे गये हैं" (अणटा पिड विविह सत्य पट्टय परोपरभि इत्य
 मारण विराहणाणिय) अग्निक्वाय और व मुक्काय का अनेक प्रकार के पूर्यो बड
 आदि ससों से घटन करना तथा परस्पर के अभिभाव से मारना, व पोडा पट्टवाना
 (अकामकाइ) इस प्रकार नहीं चाहने योग्य दुःख होते हैं, (परणमोगोवीरण्या-
 हिय) वृक्षों के प्रयाग से दुःख का उत्पादन और (अत्रयभोमण्डिय) काय के
 प्रयोक्तों से जी (पेक्षवसुनिर्मितभोसहाहारमाइपदि) सेबक जा और पशु
 आदि के लिये भौषण व आहार आदि कारण से (अस्तपण्य) घरेडना (उदय्यय)
 त्याग इतना- छीछना (पयण कोट्टण) पकाना कूटना-टुकड़े करना (पीसण पि
 ट्टण) खो आदि में पीसना पीठना या कलक आदि में कूटना (अत्रयण गालण)
 भट्टी में पकाना गठाना या कपडे में छानना (आमोहन सदन) मोडा मोहना
 सुद विहर जाना (पुत्रण मज्जण) फूटना- हो भाग होना भङ्ग होना (देयण
 वच्छण) छेदना व बसल आदि से छासना (विष्णु वाण-पचयोडण) रोम आदि
 इताना, नोचना, पचे गिराना (अग्निद्विष्णुवाति) अग्नि वृक्ष इत्यादि क इन्से-

न्द्रिय जीव के लिये ये सब दुःख के कारण होते हैं । (एव ते) इस प्रकार वे (भव परपरा दुःखसमणुबद्धा) भव परम्परा—अनेक जन्मों में निरन्तर दुःखवाले (जोवा) एकेन्द्रिय जीव (संसारवोहणकरे) भयङ्कर संसार में (पाणाइवाय—निरया) प्राणातिपात—हिंसा में निरत (अणतकल) अनन्त काल तक (भडति) भटकते हैं (जेविय) और जोभा (कहिवि) किसी तरह (नरगाउवद्विया) नरक से निकले हुए (इह) यहाँ—मनुष्य लोक में (मणुस्तण) मनुष्यपन—नरभव को (आगया) प्राप्त किये (तेवि अधन्ना) वेभी अधन्य—मन्दपुण्यवाले (य) और (पायसो) प्राय. (विकयविलरूवा) विकृत व विकल रूप वाले (दोसति) दिखते हैं, इसी वान को स्पष्ट कहते हैं, (खुज्जा वडभा य) कुञ्ज—कूबड़े वटभ—उपर से चक्र—वाके देह वाले और (वामणा) वामन—बहुत छोटे (य) और (वहिरो) वहरे (काणा) कारे (कुटा) विकृत हाथ वाले (पगुत्ता) पगु—चलने में असमर्थ (विरला य) और विकल भङ्ग वाले (मूका) गूगे (य) और (ममणा) मन्मन रूप से—अस्पष्ट रूप से बोलने वाले (अधिल्लागा) अधे (एगच—क्खू) एक आख वाले (विणिहय सवेल्लया) जिनको एक आख नष्ट हो गई हैं ऐसे एकाक्ष, तथा—पिशाचगधा से पीडित (वाहि रोग पोळिय अप्पाउय सत्थवज्झ वाला) व्याधि कुष्ठ आदि, रोग—उवरादि इन सबों से पीडित और अल्प आयु वाले, व शस्त्र से मारे गए तथा मूर्ख (कुठक्खणुक्किन्नदेहा) अशुभ लक्षणों से आकार्ण—पूर्ण—देहवाले (दुव्वल कुसघयण—कुप्पमाण कुसठिया) दुर्बल, उत्तम—सहनन व शरीर रचना से होत अधिक बड़े या अधिक छोटे आकार वाले (कुरुत्ता) कुरूप) किव—णा य) और कृपण अर्थात् रङ्क (हीणा) जाति आदि से हीन (हीणसत्ता) अल्प—सत्त्व वाले (निष्घं सोक्खपरिवज्जिया) सदा सुख से रहिव (इह) यहाँ (असुह दुक्ख भाग णरगाओ) नरक से निकले हुए अशुभ दुःख के भागी (सावसेस—कम्मा) अशुभ कर्म जिनके अवशेष हैं, ऐसे वे दिखते हैं, (एव) इस प्रकार (णरग) नरक (तिरिक्खज्जोणि) तिरिक्खयोनि (कुमाणुसत्तच) और कुमनुष्य जन्म में (हिंढमाणा) हींढते हुए (पावकारी) हिंसक लोग (अणताइ—दुक्खाइ) अनन्त दुःखों को (पावति) पाते हैं, (एसोसो) वह है यह (पाणवहस्स) जीव हिंसा का (फलविवागो) फलरूप विपाक जो (इहलोइओ) इस मनुष्य लोक सम्बन्धी, और (परलोइओ) अन्य तीन लोक सम्बन्धी (अप्पुहो) अल्प सुख वाला (बहुदुक्खो) बहुत दुःख वाला (महव्भओ) महाभय रूप (बहुरण्पगाढो)

अधिक कर्म रस के कारण भविष्या (दाह्यो) रौद्र तथा (ककसो) कठोर (असाधो) असातवेदमोय कर्म के उदय से दुःखरूप (वाससहस्रेर्दि) हजारों वर्षों से प्राण्यी बस दुःख से (मुच्य) छूटता है (अवेदयिन्ता) बिना मांगे (नय अस्विह्म मोक्शोति) कर्म से छूटना नहीं होता, (एषमाहसु) ऐसा तीव्र करने कहा है जो (नाय कुक्ष्यन्वयो) श्राव कुक्ष के नन्दन (महष्पा) महात्मा (जिपोठ) भीर पीतराग (बीरवरनामधेरब्धो) भीरवर-महावीर नाम वाले तीर्थकरने (सीह कहेसी पाणबहसस) सिंह के ससात क्रूर ऐसे प्राण्य बध के (फलविभाग) फलरूप विपाक को (क्यह) कहा है। उपसंहार—(एसोसो) यह पूरा कथित स्वरूप बाळा (पाणबहो) प्रणवम (चंड) क्रूर-कूपित करने बाळा (रुहो) रौद्र-भ यद्धर (सुरो) नीच जनों से सेवित (भयारिमो) अनार्य कर्म (निमिष्यो) घृणा-रहित (निरसो) ब्रमा रहित (महकभमो) महाभय पैदा करने बाळा (बीह्यमो) डराने बाळा और (वासण्यमो) त्रास देने बाळा (अणवमो) म्याय से बहिर्भूत तथा (लम्बेय्यमो) लम्बे करने बाळा (य) और (विरवयकको) दूसरे के प्राण की अपेक्षा रहित, (निरन्मो) धर्म से शून्य (निमिषासो) पर प्राण्यी के प्रति स्नेह रहित (निरन्म्यो) करुणा रहित है इसलिये (निरय बास गमया निमयो) नरक गतिमें गमन रूप अन्त बाळा है (मोहमहकभयपबहुमो) मोह तथा मय को बढ़ाने बाळा और (मरणभेजन्सो) मरत्य से प्राणिमों के चित्त में वैमनस्य - दोनता पैदा करने बाळा है (चिषेसि) ऐसा मैं कहता हूँ। यहाँ प्रथम अपमर्त द्वारा ससात हुआ।

विशेषण—अर्ब सहजही है। इसलिये मात्र इसका सटीक लिखते हैं— पक्षेन्द्रि-पक्षी तरह हिंसक जीव जहरिदिय के जो छास कुछ कोबिमें भ्रमर भादि रूप से जन्म मरण करते हैं वहाँ स्पष्टतः रसन ग्रह और जलरूप चार इन्द्रियों से युक्त होते हैं, ऐसे त्रीन्द्रिय के ८ भाग छास कुछ कोडी में कुछ पिपोठिका भागि रूप से भी जन्म मरणों का अनुभव करते हैं। ये त्रीन्द्रिय जीव स्पष्टतः रसन और प्राण इन तीन इन्द्रियों से युक्त होते हैं। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय-ये इन्द्रिय के पूरे सात भाग कुछ को-बिमें में गिडोछा जलका भागि रूप से जन्म मरण करते हैं। स्पर्श और रसन ये दो इन्द्रियों त्रीन्द्रिय जीवों को होती हैं। इन तीनों स्वर्गों में नारक जीवों के समान। तीस्र दुःख भोगते और प्रत्येक के उन स्वर्गों में भ्रमण करता हुआ अल्प संख्येक काळ घाते हजारों वर्ष पूरा कर देता है। फिर येकेन्द्रिय पद को पाकर पृथ्वी जल अग्नि, वायु और जमस्वति भेद से सूक्ष्म वावर, पर्याप्त अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर और

साधारण दशा में, वहाँ असंख्य तथा साधारण को अपेक्षा अनन्त काल तक दुःख समूह को पाते हैं। वृक्ष समूह से गहन परभव में कुदाल आदि से विदारण करना, जल का मर्दन करना, भग्नि वायु का सघटन करना ये सब दुःख का कारण है। निष्प्रयोजन या सप्रयोजन-प्रेष्य आदि के आहार अदि कारणों से उत्खनन आदि विविध दुःखों को भोगते हुए भव परम्परा से सम्बन्धित अनन्त काल तक इस भयङ्कर ससार में भटकते हैं। अगर कहीं पुण्यवशात् ये जीव मनुष्यपन में भी आ जाय तो अधन्य और प्रायः विकल रूप वाले कुब्ज कुरूप आदि होते हैं। इस प्रकार नरकयोनि त्रियेन्द्रयोनि और पुण्य हीन मनुष्य भव को भटकते हुए पापी जीव अनन्त दुःख को पाते हैं यह प्राणवध का फलरूप विपाक है, जो उभय लोक सम्बन्धी और सुख रहित व बहुत दुःख वाला है, महाभयङ्कर कर्म रजकी अधिकता से प्रगाढ, दारुण और कठोर है, हजारों वर्ष से छूट सकता है, किन्तु विना भोगे कर्म से छुटकारा नहीं होता, ज्ञात कुल नन्दन भगवान् महात्मा महावीर ने हिंसाके इस प्रकार फल विपाक को कहा है।

उपसंहार—यह प्राणवध^१ क्रोध से होने के कारण चण्ड रौद्र है। आत्मभाव से गिरे हुए नीच लोक ही इसे करते हैं। इसलिये यह क्षुद्र एव अनार्य कर्म है। दया व घृणा से शून्य तथा महाभय को उत्पन्न करने वाला है, हिंसा में न्याय बुद्धि नहीं होती अतः यह अन्याय्य है, उद्वेग जनक एव पर प्राणों की अपेक्षा रहित होने से यह अधर्म है मोह तथा महाभय को बढ़ाने वाला और नरकगति में निवासही इसका परिणाम है, दूसरे प्राणिओं के साथ वैमनस्य पैदा करना तो हिंसा का खास कार्य है। अतएव हिंसा रूप अधर्म द्वार सर्वथा हेय है। यह प्रथम अधर्म द्वार पूर्ण हुआ।
सू० ६।४॥

॥ इति प्रथममधर्मं द्वारं समाप्तम् ॥

१—यहा स्थूल दृष्टि से छ काय के जीवों की शारीरिक हिंसा को ही प्राणवध में लिया है हिंसा का नाम भी प्राणवध अर्थात् दूसरे के प्राणों का वध करना रक्खा है। क्योंकि प्राणी सदा अमर है, इसलिये प्राणों का नाश करना उसके साथ वैर भाव नियत करना होता है। व्यवहार में अधिकाश होने वाली हिंसा का ही इस आश्रय द्वार में वर्णन है। अतएव मनुष्यवध का उल्लेख नहीं किया है। क्योंकि एक तो यह किसी जाति में विहित नहीं है और दूसरा निस्संकोच भाव से किया भी नहीं जाता। (अनुवादक)

“द्वितीयास्त्रवद्वारमधर्माख्यमारभ्यते”

अथ द्वितीय-आस्त्रवद्वार

प्रकरण सम्बन्ध—

प्राणवध के बाद दूसरा आस्त्रव—मृषावाद है। इसमें मृषावाद-असत्य का वर्णन किया जाता है। हिंसा करनेवालों को झूठ भी बोलना पड़ता है अतः झूठ वाचिक-वचन सम्बन्धी-हिंसा बन जाती है। अतः अब प्रस्तुत अध्ययन में पांच द्वारों से मृषावाद की प्ररूपणा की जाती है। श्री सुवर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामीसे इस प्रकार फरमाते हैं—“

मूल—“जम्बू ! वितियं च अलियवयणं, लहुसगलहु चवल भणियं भयंकरं दुहकर अयसकरं वैरकरग अरतिरति राग दोस मणसकिलेसाविघरणं, अलिय नियडि साति जोय बहुल नीय-जण-निसेविय, निस्सस, अप्पच्चय कारक, परम साहुगरहाणि-उज परपीलाकारक, परमकिएहलेस्तसहिय, दुग्गहाचिणिवाय वड्हण, भवपुण्णवभवकर चिरपरिचियमणुगतं, दुरत, कित्तित वितित अधम्मदारं ॥ ५ ॥

छाया—“हे जम्बू ! द्वितीयश्चालोकवचनम् । लघु स्वकलघु चपलभणित, भयङ्कर, दुःखकरमयशस्कर, वैरकरमरतिरतिरागद्वेषमनः संक्लेशवितरणम्, अलोक निष्कृति स्वाति—निर्विश्रम्भ योग बहुल, नीचजन निषेवित, नृशसमप्रमत्त्यय कारक, परमसाधुगर्हणीयं, परपीडाकारक, परकृष्णलेश्यासहित, दुर्गति विनिपातवर्द्धन, भवपुनर्भवकरं चिरपरिचितमनुगतं, दुरन्त, कीर्तित, द्वितीयमधर्मद्वारम् । १ सूत्र ५ ॥

अम्बयार्थ—“ (अंजू ।) हे अम्बू ? (अस्मिन्) अलीक वचन—सूठ (बित्तिव्यं) दूसरा भाखव है (अ) और स्वरूप से यह—(छद्मसगच्छुचवक्ष्यमस्मिन्) गुण गौरव से रहित छद्म-गुण्य लोगों से भी हल्का और अपन्न अनुष्यों से षोडा गया (भयंकरं) भयंकर (दुर्करं) दुःखदायी (भयसकरं) भयश करने वाला (वेरकरं) द्वेष कारक (भरति रति राग होस मण संधिसेस विपरं) भरति रति, राग, द्वेष रूप मानसिक सङ्कोच को देने वाला है (अस्मिन्) निष्कण्ड (नियति सातिजोय बहुछं) कपट और अविश्वास जन्मक वचन के व्यापार की अधिकता वाला (नोमन्नण निसेवियं) भीर ओ भीच जनों से सेवित है (निस्संसं) कृपा वा स्थापा से रहित (अल्पव्य कारकं) विश्वास को नाश करने वाला (परमभाहु गर्हभिस्य) उत्तम साधुओं से निन्दनीय, (निन्वित) (पर पीडा कारकं) दूसरे को पीडा देनेवाला (परमस्मिन्नेससहिम) परमकृप्यछेस्यावाला (दुग्गह विणिवाय बसुणं) दुग्गति व अघापाव को बढ़ाने वाला, (भव पुण्य म्मंकरं) अग्म अग्मात्वर को करने वाला (चिरपरिचियमणुगत) अनेक जनों का परिचित होने से शाय रहने वाला (दुरत्तं, कित्तितं) दुःख से अन्त है जिसका वैसा कहा गया है यह (बित्तिव अथम्म वार) दूसरा अथर्म वार है । १ । सू० ५ ।

विशेषन—सूत्र का अर्थ स्पष्ट है । इस सूत्र में अणु आदि अनेक विशेषणों से सूया वचन का स्वरूप दिखाया गया, जब छोटे सूत्र से इस सूयावाद के गुण निष्पन्न तीस नाम दिखाते हैं—“

मूल—“तस्स च यामाणि गाण्याणि होंति तीस, तजहा-
अक्षिय १, सह २, अणउज ३, मायामोसो ४, असत्तकं ५, कूड
वघडमबह्युगण ६, निरत्थयमवत्थय ७ विहेसगरह्यिउज
८, अणुउसुक ९, कफणाय १० वषणाय ११ मिच्छापच्छा कडथ
१२, मातीठ १३, उच्छुल्ल १४, उक्कूळय १५ अट्ट १६ अन्न
कम्पाण १७, किन्पिस १८, वळयं १९, गहण २०, मम्मण
२१ नूम २२, निययो (स्त्री) २३, अप्पथओ २४, असमओ
२५, असथ सभत्तण २६ विवफणो २७, अयहीय २८, उवहिअ
सुद्धं २९, अवणोयोसि ३० अधिय तस्स प्याणि प्यमावीणि
नामघज्जाणि होंति तीस सायअस्स अक्षियस्स वड्ढो गस्स
अणगाहं ॥ सू० । २ । ६ ॥

छाया—“तस्य च नामानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत्। तानि यथा—‘अलीकम् १, शठम् २, अनार्यम् ३, मायामृषा ४, असत्कम् ५, कूट कपटाऽवस्तुकञ्च ६, निरर्थकापार्थकञ्च ७, विद्वेष गर्हणीयम् ८, अनृजुकम् ९, कल्कना १०, वञ्चनाच ११, मिथ्या पश्चात्कृतम् १२, च सातिस्तु (अविश्रम्भम्) १३, अपच्छन्नम् १४, उत्कूलञ्च १५, आर्तम् १६, अभ्याख्यानञ्च १७, किल्बिषम् १८, वलयम् १९, गहनञ्च २०, मन्मनञ्च २१, नूम—(प्रच्छादनम्) २२; निकृतिः २३, अप्रत्ययः २४ असमयः २५, असत्य सन्धत्वम् २६, विपक्ष २७; अपधीकम्—(आज्ञातिगम्) २८, उपध्यशुद्धम् २९, अवलोप इति ३०, अपिच तस्यैतान्येवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत्, सावद्यस्याळीकस्य वाग्योगस्यानेकानि ॥ २ ॥ ६ ॥

अन्व०—(तस्य य) और उस मृषा वादके (गौणानि) गुणनिष्पन्न (तीसं) तीस (नामानि) नाम (ह्यति) होते हैं, (तंजहा) जैसे कि-वे निम्न लिखित हैं—(अलियं १) अलीक-झूठ १, (सद) मायावियों से किये जाने से शठ है २ (अणञ्ज) अनार्यों के वचन होने से अनार्य है ३, (माया मोसो ४) माया रूप कषायसे सहित होने और मृषा होने से मायामृषा है ४, (असंतक ५) असद् वस्तु को कहता है इसलिये असत्क है, (कूटकवडमवत्युगंच) दूसरों को ठगने से कूट भाषा विपर्यय होने से कपट मौजूद नहीं होने से अवस्तु, इन तीनों पदों में किसी तरह समानता होने से यह सम्मिलित ‘कूट कपट अवस्तु’ एक ही छद्मा नाम है ६, (निरर्थकमवत्ययच ७) निष्प्रजोजन होने से तथा सत्यहीन होने से ‘निरर्थकापार्थक है ७’ (विद्वेष गरहणिञ्ज) विद्वेष व निन्दा इन दोनों का कारण होने से विद्वेष गर्हणीय है ८, (अणुञ्जुक) कुटिल होने से अनृजुक है ९, (कक्काय) मायामय होने से कल्कना १०, (वंचनाय) ठगने का कारण होने से वञ्चना है ११, (मिच्छापच्छाकडच) झूठा समझ कर न्यायवादियों से पीछा कर दिया जाता है, इसलिये यह मिथ्या पश्चात्कृत है १२ (सातीउ) अविश्वास कारक होने से इसको ‘साति’ कहते हैं १३ (उच्छन्नं) अपने दोष को व परगुणों को ढक देने से यह ‘अपच्छन्न’ है १४, (उत्कूलच) सन्मार्ग से अथवा न्याय नदी के तट से गिरा देने के कारण यह ‘उत्कूल’ है १५ (अट्टं) पाप पीड़ितों का वचन होने से ‘आर्त’ १६, (अवभक्साणं) अविद्यमान दोषों को कहने से यह ‘अभ्याख्यान’ कहाता है १७,

(किम्बिसं) पाप) कारण होने से 'किम्बिप हे १८, (बळयं) बळय की तरह अन्तर मृत्यु और टेडा होने से इसको 'बळय' कहते हैं १९ (गह्वर्ष) शूटे के अमिप्राय का पना नहीं बळने से यह समन वन की तरह 'गहन' है २०, (मम्मणध) चाफ नहीं होने से 'गम्मन' है २१ (नूम) सत्य को डक घेता है इसलिये 'नूम' प्रच्छादक है २२, (नियमो) माया को डकने का वचन होने से यह 'निष्कमि' है २३ (अल्प-धमो) बिश्वास का कारण नहीं होने से 'अप्रत्यय' है २४ (असमभो) सम्यक् व्यापार से होन होने से 'असमय' है २५ (अससर्तमण्यं) शूठो प्रतोमा का कारण होने से 'असत्यं सन्वत्स है २६ (त्रिवक्तो) सत्य और वचन के विरोधी होने से 'विपद्य' है २७ (संवहोर्ब) निम्नित्त पुष्टि बाला होने से यह 'अपघोर्क' कदावा है (मायाइर्ब)—जिन मगयाम् की आशा का लक्षण करने से यह 'आशातिग' है) २८ (ववदि असुर्ब) उपयि—माया से अगुद्ध होने क कारण 'सपप्युद्ध' है २९ (अघोबोधि) वस्तु के सद्भाव का लोप करने से 'अवलोप' कदावा है ३०, (अविप तरस०) और वचन मूपावाद् के श्यादि इस प्रकार के ये लोप नाम हैं, जो मूपावाद् सायण सपाप और अलीक है तथा वचन का व्यापार है उसके ऐसे अनेक नाम हैं ।

मान-अथ स्पष्ट है, । मन्त्रत्र यह कि इम मूपावाद् ५ पूर्वोक्त नीम नाम हैं ही किन्तु इस प्रकार और आ अनेक नाम हो सके हैं । इस तरह इस मूपावाद् का वचन द्वार कहा गया । २। सु० ६ ।

श्रव मूट बोलने वाले जीवों को कहते हैं—

मूल— 'तप पुण यदाति केई अजिय पाया असजया अयि रया कपड कुटिल कट्टय पट्टुळभाया, कुळा लुद्धा भया य हसस १ट्टिया य सफ्ती चोर चार भंडा, चडरफळा, जियजूईकरा य, गहियगहणा, कपाकुरुग वारगा, पुर्लिगी, उयहिया, याणियगा य, वृत्तुळ फडमाशी कुटकादायणोपजीपी, पडगार कक्षाय

कारुण्यज्जा, वंचणपरा, चारिय चाटु यार नयार गोत्तिय परिच्यारगा, दुट्टवायि सूयक अणव्वल भणिया य, पुव्वकालियवयणइच्छा साहासिका, लहुरसगा, असच्चा, गारविया, असच्चडावणाहिचित्ता उच्चच्छुदा, अणिग्गहा, अणियता, छुंशेण मुक्कवाता भवंति अलियाहिं जे अविरया । अवरे नत्थिक्कवादिणो वामलोकवाक्षी भणंति-नत्थिजीवो न जाइ इह परे वा लोए, न य किंचिविफुमति पुन्नपाव, नत्थिफलं सुकय दुक्कयाण, पच महाभूतिय सरीरं भासति हे ! वातजोगजुत्तं पंच य खंधे भणति । केई मणं च मण जीविकावदंति । वाउजीवोत्ति एवमाहभु, सरीरं सादिय सनिधणं इह भवे एगे भवे तस्स विप्पणासंभि सव्वनासोत्ति, एवं जंपंति सुसावादी, तम्हा दाण वय पोसहाणं तव संजम वभचेरकल्लाणमाहंयाण नत्थि फल, नवि य पाणवहे अलियवथणं, न चेव चोरिक्क करण परदारस्सेवण वा सपरिग्गह-पाव-कम्म-करणं पि नत्थि किं चि न नेरइयतिरिय मणुयाण जोणी, न देवलोको वा अत्थि, न य अत्थि सिद्धिग्गमण अम्मापियरो नत्थि, नवि अत्थि पुरिसकारो, पच्चक्खाणमवि नत्थि, नवि अत्थि कालमच्चवूय अरिहंता चक्कवट्ठी बलदेवा वासुदेवा नत्थि, नेवत्थि के वि (इ) रिसओ धम्माधम्म फल च, नवि अत्थि किंचिभहुयं च थोवकंवा, तम्हा एवं विजाणिऊण जहा सुवहु इंदियाणुक्खेसु सव्व विसेसु वट्टह । णत्थि काइ किरिया वा अकिरिया वा एवं भणंति नत्थिक्कवादिणो वामलोगथादी । इमं पि वित्तीयं कुदंसणं व्वसवभाववाइणो पणवेति मूढा—संभूतो अंइकाओ लोको, सयं-भुणा सयंच निम्मिओ, एवं एयं अलियं-पयावइणा इस्सरण य कयंतिकेति । एवं विणहुमयं कसिणमेव य जगंति केई । एवमेके वदंति सोसं । एको आया अकारको वेदको य सुकयस्स दुक्कयस्स य करणाणि कारणाणि सव्वहा सव्वहिं च निच्चोय निक्किओ निग्गुणो य अणुवत्तेवओत्ति विय । एवमाहंसु असवभावं,

जपि इह किञ्चि जीवलोके वीसइ सुकयवा तुक्कयवा एय जदि-
 च्छ्राए वा, सहावेण वावि दइवतप्पभावओ वावि भवति,
 मत्थेत्य किञ्चि कयकतत्त लक्खणाबिहाण नियतीएकारिय, एव
 केइ जपति इबिडरससातगारवपरा, बहवे करणाळसा परूवोति
 धम्मवीमसएय मोस । अबरे अहम्मओ रायदुदठ अक्खणा
 भवेति-अक्षिय चोरोत्ति अचोरय कर्ते, सामरिठत्तिविय, एमेव
 उवासीणं दुस्सीसोत्ति य परदार गच्छतित्ति महिंति सखि
 कक्षिय, अयपिगुरुत्तप्पओ, अय्ये एमेव भवति उवाहणता मि
 सक्खत्ताइं सेवांते, अयपिमुत्तधम्मो, इमोवि विस्संभयाइओ,
 पायकम्मकारी अगम्मगामी अय दुरप्पा पट्टएसु य पावगेसु
 जुत्तोत्ति एव जपति मच्छरा । भइके वा शुबकिस्तिनेहपरलोग
 निप्पिवासा, एवते अक्षियवयणइच्छा परदोसुप्पापणप्पसत्ता
 वेदोति अक्खातिय धीएय अप्पाय, कम्मवधेणण मुहरी असमि-
 क्खिप्पलाभा निक्खेष अवहरति, परस्स अत्थमि गडिपगिट्ठा
 अभिमुजाति य पर अत्तएहिं, लुद्धाय करेति कूडसधिस्रपाय,
 असत्ता अत्थाक्षिय य कत्ताक्षिय य भोमाक्षिय य तह गवाक्षिय
 य गरुय भवति, अहरगतिगमण, असपि य जातिरूवकुलसखि
 पयं जायायिगुणं, अयसविट्ठय, परमदठमेवकमसक, विइस-
 मणत्थकारक पायकम्मूल, दुदिदठ दुस्सुप, अशुणियं निद्धज्ज
 लोकरदण्डिज्ज यहयथ परिकित्तसपट्ठज्ज जरा मरण तुक्खसा
 पन्निम्म असुद्ध परिणामसन्निदिदठ भवति अक्षियादि संधिसनि
 विहा, असत्तगुणुदीरका य सत्तगुणनासका य दिंनान्मृतोवपा
 तित्त अक्षियसपठणा ययण सावज्जमकुसल साहुयरदण्डिज्ज
 अयम्मजणण भवति, अणनिगय पुत्तपाया, पुणोवि अपिकरण-

किरियापवत्तका बहुविहं अणत्थं, अवमहं, अप्पणो परस्स य
करेति, एमेव जंपमाणा महिससूकरे य साहिंति घायगाणं,
ससय पसय रांहिए य साहिंति-वागुराणं, तिच्चिर वट्ठक लावके
य क्विंजलकवोयके य साहिंति साउणीयां, भस मगर कच्छभे
य साहिंति मच्छियाण, संवंक खुल्लए य साहिंति मगराणं,
अयगर गोणस मंडलिदब्धीकरे मउली य साहिंति बालवीणं,
गोहा सेहग सल्लग सरडगे य साहिंति लुद्धगाणं, गयकुल वानर-
कुले य साहिंति पावियाणं, सुक्करहिण मयणसाल कोइल हंस
कुले सारसे य साहिंति पोसगाणं. वध वंध जायणं च साहिंति
गोम्मियाण, धण धन्न गवेलए य साहिंति तक्कराणं, गामागर
नगर पट्टणे य साहिंति चारियाण, पारघाइय पंधघातियाओ
साहिंति य गंठिभेयाणं कयं च चोरिय नगरगोत्तियाणं, लंछुण
निंलंछुण धमण दुहण पोसण वणण दवण वाहणादियाइं साहिंति
वहूणि गोमियाणं, धातुमणि सिलप्पवाल रयणागरे य साहिंति
आगगीणं, पुप्फविहिं फलविहिं च साहिंति मालियाणं, अग्घ-
महुकोसए य साहिंति वणचराणं, जंताइं विसाइ मूलकम्मं आहे-
वण आविंधण आभिओग मतोसहिप्पओगे चोरियपरदारगमण-
बहुपावकम्मकरणं उक्खंधे गामघातियाओ वण दहण तलागभे-
यणाणि बुद्धि विसविणासणाणि वसीकरणमादियाइं भयमरण
किलेस दोसजणणाणि भाव बहुसाकिलिठ मलिणाणि भूतघातो-
वघातियाइं, सच्चाइपि ताइ हिंसकाइं वयणाइं उदाहरंति-पुट्टावा
अपुट्टावा परतत्तिग्वावडा य असभिद्विखयभासिणो उव-
दिसंति, सहसा उट्टा गोणा गवया दमंतु, परिणयवया अस्सा
इत्थी गवेलगक्कुक्कुडा य किज्जंतु, किणावेध य, विक्केह, पयह
य सयणस्स देह पियय, दासिदास भयक भाइल्ला य सिस्सा
य पेसकजणो कम्मकरा य किंकरा य एए सयण परिजणो य कीस
अच्छंति ? भारिया भे करिन्तु कम्मं, गहणाइं वणाइं खेत्तखिल
भूमिवल्लराइं उत्तण वण संकडाइं डज्जंतु, सूडिज्जंतु य क्खला,

भित्तजतु जत भडाइयस्स उ र्हिस्स कारणाए पहुविहस्सय अट्ठाए
 उच्छ्रुदुज्जतु, पील्लिज्जतु य तिळा, पपावेह य इट्ठकाउ मम
 घरदूठपाए, वेत्ताइ कसह, कसावेह य ठ्हुं गाम आगर नगर
 खेह कप्पवे नियसेह अशधीयेनेसु, विपुलसीमे पुक्काणिय फत्ता-
 णिय कवमूकाइ काळपत्ताइ गेयहह करेह सचयं परिजणदूठपाए,
 सात्ती र्धाही जया य लुच्चतु मासिज्जतु उप्पणिज्जतु य, ठ्हुं च
 पविमसु य कोदूठागर अप्प मह उक्कासगा य इमत्तु पायसत्था,
 सेणा विस्साउ जाठ इमर, घारा बहतु य मगामा, पण्डित्तु य
 सगस घाहणाई, उवणयण चोळण विवाहो जल्लो अत्तुगम्मिउ
 होठ दिवमेसु करणसु मुहुत्तसु, नक्खत्तसु, तिहिंसु य, अज्ज
 होठ यइवणां मुवित्त, बहुलउत्तपिउत्तकखिय कालुक विवहापण्णक
 सत्तिकम्माणि कुणह ससिर विगहोव रागीवसेमेसु सज्जण
 परिणयस्स य नियकस्स य जीवियस्स परिरक्खणहयाए पट्टि
 सीसकाइ च वेह, देह य सीसोपहारे, विविहोसदि मज्ज मम
 भक्खवत्तपाण मज्जाणुवेण पईवज्जिउत्तज्जत्तसुराधिघूयायकार
 पुक्ककल ममिद्ध पायच्छित्त करेह पाण्णइव यत्त ण्ण पहुविहण
 विवरीउत्तपायदुस्सुमिण पावसेउत्तम माभग्गह चरिय अग्गक
 निमित्त पडिघायइठ वित्तिच्छय करेह, मा वेह । क्विशाण,
 सुट्टुइओ (२) सुट्टुदिसो, भित्तत्ति उयविसत्ता एथावद्द करेति
 अक्षिय मखेय पायाए कम्पुष्पा य अकुसला अणज्जा, अक्षियाणा
 अक्षियधम्मणिरया अक्षियासु कडासु अभिरमत्ता सुट्टा अक्षिय
 करेत्तु होंति य पहुप्पयार ॥ सू० ३ । ७ ॥

छाया— 'तच्च पुनपशन्ति अपिदलीकं पापा असंयता अपिरता कपट कुटिल-
 च्छुद्ध-चटुन-रथमाया, सुता सुत्ता भय माताय हात्वारिकाम माश्रिय पीर—
 चारमग, एण्डरअच्च अितपुनकाराय गृहीतमहयका च्छक गुरुक कारका
 कुसिद्धिन, भीषणिका वाजिप्रकाय वृत्तुया पृटमानिन, वृत्तकापापणापजीविना
 पटकार—कडाए—काइदीवा वसुनवराभारिक पादुहार मगर गाण्डक परिचारका,
 दुपचारि सुपण्णनत्तभविताम पूर्वकारिकवपनश्र्वा साश्रिवा, उपुयारका

अमत्या गौरविका, असत्य स्थापनाधिचिन्ता, उच्चच्छन्दा, अनिग्रहा, अनियताश्छन्देन मुक्तवाचो भवन्त्यलीकाद् येऽविरताः । अपरे नास्तिकवादिनो वामलोकवादिनो भणन्ति—“नास्ति जीवो न याति इह परत्र वा लोके, नच किञ्चिदपि स्पृशति पुण्य-पापम्, नास्ति फल सुकृत दुष्कृतानाम्, पञ्चमहाभातिक शरीरं भाषन्ते हि वानयोग-युक्तम् । पञ्च च स्कन्धान् भणन्ति के चित् (रूप, वेदना, विज्ञान, सज्ञा, संस्कार-रूपान्) मनश्चैव मनोजीविका वदन्ति । वायुर्जीव इत्येवमाख्यन्ति, । शरीर सादिकं सनिधनम्, इह भव एको भवः । तस्य विप्रणाशे सर्वनाश इति । एवं जल्पन्ति मृषा-वादिन । तस्मद्दानत्रतपौपधानां तप सयमन्नह्यचर्यकल्याणादीना नास्ति फलम् । नापि च प्राणवध, अलोक वचन, नचैव चौर्येकरण परदारसेवन वा, सपरिग्रहपाप-कर्म करणमपि नास्ति, काचिन्न नैरयिकर्तयर्हन्मुष्याणा योनि । न देवलोको वास्ति, न चास्ति सिद्धिगमनम् । मातापितरौ न स्त । नाप्यस्ति पुरूपकारः, प्रत्या-ख्यानमपि नास्ति, नैवास्ति कालो मृत्युश्च । अर्हन्तश्चक्रवर्तिनो बलदेवा वासुदेवा न सन्ति, नैव सन्ति केऽपि ऋषय धर्माऽधर्म फल च नाप्यस्ति किञ्चद् बहुकचसोकं वा, तस्मादेव विज्ञाय यथा सुबह्विन्द्रियानुकूत्रेषु सर्वविषयेषु वर्तन्ते । नास्ति काचित् क्रिया वाऽक्रिया वा, एव भणन्ति नास्तिकवादिनो वामलोकवादिन । इदमपि द्वितीयं कुदर्शनमसद्भाववादिन प्रज्ञपयन्ति मूढा—“सम्भूतोऽण्डकोल्लोकः स्वयम्भुवा स्वयञ्च निर्मितः । एवमेतदङ्गीकम्—प्रज्ञापतिना चेश्वरेण कृतमिति केचिद्ददन्ति । एव विष्णुमय कृत्स्नमेव च जगदिति केचित्, एवमेके वदन्ति मृषाम्—“एक आत्माऽकारको वेदकोऽपि च सुकृतस्य दुष्कृतस्य च करणानि कारणानि सर्वत्र संवेधा च नित्यश्च निष्क्रियो निगुणश्च अनुग्लेपक इत्यपि च । एव वेदन्त्यसद्भावम् । यदपोह किञ्चिज्जीवलोके दृश्यते सुकृतवा दुष्कृतवा एतद्व्यदृच्छयावा, स्वभावेन वापि दैवत-प्रभावा द्वाविभवति । नास्त्यत्र किमपि कृतकतत्त्वम् लक्षणविधान नियत्या कारितम् एवकेऽपि जल्पन्ति । ऋद्धि रमसात गौरवपरा बहव करणालमा प्ररूपयन्ति धसविमर्शकेन मृषाम् । अपरेऽ-धर्मता राजदुष्ट मन्शाख्यान भणन्ति—अलोकम्—चार इत्यचार्य कुवन्त, डामरिक इत्यपि च वैरप्रकुर्वाणश्च । एवमेवादासीत दुःशोज इति च परदार गच्छतीति मलिनयन्ति शीलकलिनम्—अयमपि गुरूत्पग । अन्य एवमेव भणन्ति—उपन्नन्ती मित्र कलत्राणि सेवन्ते । अयमपि लुप्रर्मा इमेऽपि विश्रम्भवादिन पाप कर्म कारिणोऽ गम्यागामिन । अय दुरात्मा बहुकेश्व पापकैर्युक्ता इति, एव जल्पन्ति मत्सरिणो भद्रकेवा गुण कार्किस्नेह परलाकनिष्ठिवासा । एवतेऽलोक वचन दक्षा परदोषो-

त्वात्न प्रसङ्ग वेष्टयन्ति अस्मिदिक बोधेनाऽऽत्मानं कमत्रम्वनन मुहुरिणोऽसमोक्षित
 प्रकाशात् । निक्षेपानपहरन्ति परस्परार्थे प्रविष्ट गृह्यात् । अमिमुञ्जने च परमसद्य मल्लु क्त्वा
 कुर्वन्ति कृत्साक्षित्वम् अतस्त्वा अर्थात्क्रय, कन्पाठोक्तम् मूयन्नाकस्य तथा
 गवाङ्कोकस्य गुरुकं भणन्ति-अपरगविगमनम् । अम्यदपि च जाति रूप कुड शोड
 प्रत्यय भाषा निगुण चरक पिशुनं परमाय मदेकमसत्कम् विद्वेषमनर्थका कं पाप
 कर्मम्-दुष्टं दुःप्रवृत्तमनोऽहम् अनुचितं निक्षेपं लोकाद्दण्डोय ननस्य परिक्रान्ता-
 बहुलशरा मरण्य दुःखलोक मूक- (नेमम्) अमुह्य परिष्काम शक्तिष्ट मण्यन्ति अलीका
 असी काऽभिसन्धि संनिविष्टा, असद्गुणोदोरकास्य सदगुणताशकास्य हिंसामृतोप
 सातकम् अलीकसम्पुष्टा वचनं सावयमकुशलं साधु गहणोयमधर्मजननं भजन्ति,
 जननिगत पुण्यपापाः । पुनरप्यधिकरण-क्रिया प्रवृत्ता बहु विषयनर्थमपमवेमात्मानं
 परस्य च कुर्वन्ति एवमेव अहमस्यो मक्षिप मूकतौ च साधयन्ति पातकानाम् । अथ
 प्रस्य रोद्वितास्य साधयन्ति वागुरिकाणाम् । तिसिर वतक छावकास्य कपिञ्जलक
 तोपास्य साधयन्ति शाकुनिकानाम् । अथमकर कच्छ (क्छ) पांशु साधयन्ति मास्त्रि-
 कानाम्, अङ्गाहो मृगकांस्य साधयन्ति मकराणाम् । अथमर गोतस मयवडि बर्षिक-
 रस्य मुकुक्षिनस्य साधयन्ति व्याजपानाम् । गोषाम् सेहक अरकस्य अरकस्य साध-
 यन्ति कुम्भकानाम् । गजकुड वानरकुडानि च साधयन्ति पाक्षिकानाम् लुक्वर्हि
 मयनसाहा कोकिल इंसकुडानि सारस इव साधयन्ति पोषकाणाम् । वध वय
 यावतो च साधयन्ति गोस्त्रिकानाम् । अथ धाम्य गयेलकांस्य साधयन्ति तच्छ्र-
 णाम् । प्रामाकर नगर पत्तनानि च साधयन्ति चारिकाणाम् । पार पातिक पक्षि पातिकी
 साधयन्ति च मन्थिमेवकानाम् । कृगां च चौरिकां नगर गुप्तिकानाम् । छास्य
 निर्वास्यन इमान् दाहन पोषय वचन इवम बाह्यादिकानि साधयन्ति बहुनि गोभि-
 कामाम् । प्रातु मणि शिखा मयाल रजाकरास्य साधयन्ति-माकरिणाम् । पुण्य विधि
 पञ्चविधि च साधयन्ति माक्षिकानाम् । अस्य मधु कोशाव च साधयन्ति वनेचराणाम् ।
 पन्त्राण्य विपाण्य मूककर्मोऽऽक्षेय्या वेधनाऽभिसौग मन्त्रोपधिप्रयोगान् चौरिक
 परदार गमन बहु पाप-कर्म करणन्-अवरकम्पान् प्राप्त पातिका वन इहन तडाग
 भेदनानि शुद्धि विषय विनाशनानि, बल्लोकरणादिकानि, मय मरण्य क्रोश दोष सम-
 कानि भावव ह्यु समिष्ट भङ्गिनानि मूत पातोपपातकानि सत्यान्वपि तानि द्विसकानि
 वचनान्युदाहरन्ति पूषा वा अपूषा वा परवतिभ्यापूषास्य, असमोक्षितभाषिण्य उपदि-
 शन्ति-सहसा बहू गाधो गधया इत्यन्त्याम् । परिष्वत धयसोऽप्यहसितनो गवैठककु-

कुत्तैश्च क्रोणीत, कापयत, विक्राणीत पचत च, स्वजनाय दत्त, पिवत, । दासीदास-
भृत्कभागहारिण शिष्याश्च प्रेष्यजन कर्मकराश्च किंकराश्च एते स्वजन परिज-
नाश्च कस्मादाभते ? भर्त्या भवतः कृत्वा कर्म (कुर्वन्तु कर्माणि) गहनानि वनानि क्षेत्र
खिलभूमिबल्लराणि उत्तूण घनसङ्कटानि दह्यन्तां सूच्यन्ताश्च, वृक्षा भिद्यन्ताम्, यन्त्र
भाण्डादिकस्योपधे कारणाय बहु विधस्य चार्थाय, इक्ष्वो दूयन्ताम्, पीड्यन्ताश्च-तिलाः,
पाच्यन्तां चेष्टरामम गृहार्थाय, क्षेत्राणि कृपन, कर्षयत च लघु, ग्रामाऽऽकर नगर
खेट कर्षयन्तानि निवेशयत, अटवीदेशेषु विपुलमीमानि, पुष्पाणि च फलानि च कन्द-
मूलानि कालप्राप्तानि गृह्णीत, कुरुत सञ्चयम् । परिजनार्थाय शालयो व्रीहयो यवाश्च
ल्यन्ताम्, मर्द्यन्ताश्च, उत्पूयन्ता—(उपनीयन्ता) श्व, लघुच प्रविशन्तु कोष्ठागारम् ।
अल्पमहोत्कर्षमाश्च हन्यन्ता पोतसार्था. । सेना निर्यातु डमरम्, घोरा वर्तन्ताश्च
सप्रामा, प्रवहन्तु च शकटवाहनानि । उपनयन, चूडाकर्म, विवाहो, यज्ञोऽमुष्मिन्
भवन्तु (तु) दिवसे, करणे, मुहूर्ते, नक्षत्रे, तिथौ च । अद्य भवतु स्नपन मुदित,
बहु खाद्यपेयकलितम् । कोतुक, विस्त्रापनक, शान्तिकर्माणि कुरुत, शशि रवि ग्रहोप-
राग प्रियमेषु स्वजन परिजनस्य च निजकस्य च जीवितस्य परिरक्षणार्थाय प्रतिशीर्षकाणि
च दत्ता, दत्त च शीर्षोपहारान्, विविधौषधिमद्यमास भक्ष्यान्नपानमाल्यानुलेपन
प्रदीपञ्जलितोज्ज्वल सुगन्धि धूपोपचार (पापकार) पुष्प फल समृद्धानि प्रायश्चित्ता-
नि कुरुत, प्राणातिपातकरणेन बहुविधेन, विपरीतोत्पात दुस्स्वप्न पाप शकुनाऽऽसौम्य
ग्रह चरिताऽमङ्गलानिमित्तप्रतिघातहेतोर्वृत्तिच्छेद कुरुत, मादत्त किञ्चिद्दानम्
सुष्ठु हत २, सुष्ठु छिन्त, भिन्त इत्युपदिशन्ति एवविध कुर्वन्त्यलीकम् । मनसा वचसा
कर्मणा च अकुशला अनार्था अलीकाज्ञा अलीकधर्मनिरता. । अलीकासु कथास्व-
भिरममाणास्तुष्टा अलीक कृत्वा भवन्ति च बहुप्रकारम् । ॥ सू० । ३ । ७ ।

अब असत्य बोलनेवालोंका परिचय देते हैं—

अन्वयार्थः—“(तंचपुण) और फिर उस (अलिय) असत्य वचनको (वदतिः)
बोलते हैं (केई) कई (पात्रा) पापी लोग जो (अस्सजया) असयमशील (भवि०)
विरति रहित हैं (कबडकुटिलकडुयचटुलभावा) कपट के कारण कुटिल और
परिणाम से दारुण व चंचल मन वाले (य) और (कुद्धा लुद्धा भया) क्रोधी लोभी
और दूसरों को डराने वाले, तथा स्वयं डरने वाले (हस्तद्विया) हंसी मजाक के
अर्थी (सक्खी) साक्षो देने वाले (चोर चार भडा) चोर, गुप्तदूत व सैनिक
(खडरषखा) सायर के हासिल लेने वाले (जिय जूई करा य) और जूआ में हारकर

फिर मूमा खेड़ने बाळे (गहियगहिया) गिरबी रखने बाळे (कच कुसुम कारगा) माया-बपट करने बाळे (कुर्सिगी) कुर्तियाँ-या बेपभारी (बबहिया) ठग (बाणि पगा) ब्यापार करने बाळे-वणिक् लोग, (बूब ठोठ बूडमानी) काट वोल माप करने बाळे (कुडकाहाबणोपजीवी) नकली मुद्रा बनाने बाळे (पडगार कसाय-काठ इवद) बरत्र बुनने बाळे, गहना-भूषण बनाने बाळे व शिल्पी लोग-झीपे बादि (बंधण परा) दिन रात ठगाई करने बाळे (चारिय-भादुबार-मगर गोत्तिय-परिचारगा) खोब निकाछने में छोटे हुप, सूक्ष्मत्व करने बाळे और नगर को रक्षा करने बाळे व अभिचार में मदत देने बाळे (दुडुबायि सूयक अणबळ भणिया प) और खराबपक्ष छेने बाळे खुगडी करते बाळे, और सदा कजदार कहाने बाळे (पुम्बकास्त्रियबयनइकछा) बोलने बाळे के अभिप्राव को जानकार उसके परळे बोलने में अतुर अवया अविशय और भागमजान से बिकछ हाने के कारख पूर्व काठिक अये को बोलने में जो अदक्ष हैं, वैसे (साइसिका) बिना बिचारे बोलने बाळे (छहुरतगा) अरमबळसे हीन (असबा) घरबनों के किये अहितकारक (गारबिया) श्रद्धि बादि गौरव से मुक्त (असबुदाबणाशिचत्ता) असत्य की स्थापना में अक्ष बाळे (बयछंदा) आत्मोत्थर्य के बिचार बाळे (अणिगदा) इकछन्व (अणियता) नियम इहित-अध्यइहित जीवन बाळे (छवेण मुकबादा) इच्छानुसार वचन का प्रयोग करने बाळे (जे अक्रियादि) जो शूठ वचनों से (अदिरया) अदिरत-अनिवृत्त (अदवि) होते हैं । वे अपनी इच्छानुसार शूठ बोलते हैं । अब वाचनिक असत्यवागो कहे जाते हैं (अबरें) छैठिक शूठ बोलने वालों की अपेक्षा छ वृमरे (नरियकबाहिया) नास्तिक बायी-छैठिकवातिक (बाम छोक बायी) छोक को बिप ीत रूप से करने बाळे (अणलि) बाळते हैं कि—(नरियजीबो) जीब नहीं ट (न जाइ इ पर बा छोप) मनुष्य बादि वतमान गति के जन्म में या परछोक में नहीं जाता (मय किचिदि फुसनि पुसपाब) और पुण्य अवया पापका कियित् ओ रपछ नहीं करता है (नरिय फलं सुक्य हुकपाणं) सुठव व दुष्ठ ी का कुल ओ फल नहीं दे (पच महामूनिव सरीरं भासलि) पच महामूत-पृथ्वी बळ बहि, बायु आकाश इस से बना यह क्षरीर ही अत्मा भासित होता है (बात साग सुत्तं) वायु बायु क वाग स क्रिया में छगा हुआ है (केई) और कई-बौडाचार्य (पंच य मये) पांच [रूप पदना विद्यान सज्ञा और संस्कार-मासक] रच्यों का अरमा (अणनि) बदते हैं (च) और कुछ बीठ विद्यय (ग्य जीविका) मनको ही जीब

मानने वाले (मर्ण) मर्ण को आत्मा (वर्दति) कहते हैं, (वावर्जीवोत्ति) (उच्छ्वास
 आदि लक्षण वाला जीव है, (एवमहसु) इस प्रकार कई कहते हैं, (शरीर सादिय
 सनिधन) शरीर पैदा होने से आदि वाला और मरने से अन्त वाला है (इहभवे)
 इस ससर मे प्रत्यक्ष दिख पडने वाला भवही (एगोभवे) एक भव—जन्म है
 (तस्स विप्पणासमि) इसके विनाश हो जाने पर (सठ्वनासोत्ति) सर्व नाश
 हो जाता है अर्थात् आत्मा पुण्य पाप आदि कुछ नहीं रहता (एव) इस प्रकार
 (मुसा वादी) झूठ बोलने वाले (जर्पति) बोलते हैं (तम्हा) शरीर के साथ
 सबका नाश होता है, इसलिये (दाण वय पोसहाण) दान, व्रत, पौषधोंका (तव-
 सजम वभचेर वल्लाणमाइयाण) तप, रुयम, ब्रह्मचर्य रूप कल्याण मार्ग तथा सम्य-
 ग्दशेनादि सत्कर्मों का (न त्थिफल) कोई फल नहीं है (नवि य) और न (पाणवहे)
 प्रोणवध—हिंसा, (अलियवयणं) झूठबोलना (चोरिक्ककरण) चोरो करना (वा)
 अथवा (परदार सेवण) पर स्त्री गमन करना (उपरिगहपावकम्मकरण) परि
 प्रहों के साथ पाप क्रिया का सेवन करना (पि) भी अशुभ फल का कारण (नत्थि)
 नहीं है (किंचि) कुछ भी (नेरइयतिरियमणुयाण) नरक तिर्यक् मनुष्यों को
 (जोणी) योनि—जन्मस्थान (न) नहीं है (वा) अथवा (देवलोको न अत्थि)
 देव लोक नहीं है (नय अत्थि सिद्धिगमणं) और सिद्ध गति में गमन नहीं है
 (अम्मा पियरो) माता पिता (नित्थि) नहीं है, (नवि अत्थि पुरिसकारो) और
 पुरुषार्थे भी नहीं है (पच्चक्खाणमवि नत्थि) प्रत्याख्यान—धर्म साधन रूप से त्याग
 भी नहीं है, (नवि अत्थि काल मच्चूय) और काल व मृत्यु भी नहीं है
 (अरिहता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा) अरिहन्त चक्रवर्ती बलदेव और वासु-
 देव (नत्थि) नहीं हैं (नेवत्थि केवि रिसओ) और कोई ऋषि—महर्षि
 भी कुछ नहीं हैं (धम्माधम्म फलं च नवि अत्थि) तथा धर्मअधर्मों का फल भी कुछ
 नहीं है (किंचि) कुछ (बहुय) बहुत (वा) अथवा (थोवक) थोड़ा पुण्य पाप का
 परिणाम नहीं है । (तम्हा) इसलिये (एव) जीव को धर्माधर्म का फल नहीं
 मिलता ऐसा (विजाणिउण्ण) जान कार (जहासुवहु) जिस प्रकार बहुत अनुकूल हों
 वैसे (इ दियाणुकूलेसु) इन्द्रियों के अनुकूल (सव्वविसएसु) सर्व विषयों मे
 (वट्टह) वर्तन करो—प्रवृत्ति करो (काइ किरिया) कोई क्रिया—प्रशस्त कार्य (वा
 अकिरिया) या अक्रिया अर्थात् पापक्रिया (एत्थि) नहीं है, (एव) इस प्रकार
 (नत्थिकवादिणो) नास्तिक मतवाले (भर्णाति) बोलते हैं (वामलोगवादी)

विपरीत शोक को कहने वाले (इमपि त्रितीय कुर्वसर्ण) दूसरे इस कुर्वसान को भी
 (असम्भावक इत्यो) कुमावो को—असम्भाव को बोलने वाले (मूढा) मूढ मति लोग
 (पण्युर्बेति) प्ररूपण करते हैं जैसे (कंठकामो) अण्डे से (छोको) यह संसार (संमूठो)
 पैदा हुआ है, (सयमुया) स्वयम्भू मझाने (सयं) सुइ (निम्बिभो) बनाया है (एवं)
 इस प्रकार (एवं) यह (अक्षिभ्यं) मूपावद् है (वेति) कइवाही (पयावइया प्रभा पतिने
 ईसरैण्य) और ईश्वरने (कयति) बनाया 'पेसाकहते है' (एवं) इस प्रकार (केई) कई
 वाही (विगहुमयं कसिण्मेव जगति) समस्त जगत ही विष्णुमय है 'पेसा कहते है'
 (एवंमेके) इस प्रकार कई एक वाही (मोस वर्वति) मिय्या बोलते हैं (एको
 आया अकारका वेवकीय) आत्मा एक तथा अकारा और भाषा है (मुक्यस्त)
 मुकृत के (य) और (दुह्ययस) दुह्युत के (करणाणि) इन्द्रियो (कारणाणि)
 हेतु (सञ्चहा) सब प्रकार से (सञ्चहिष) और सब जगह 'है' (निबोय) और
 यह आत्मा नित्य (निदिभो) निष्क्रिय तथा (निम्गुणो) निर्गुण अर्थात् स्व स्व रज
 तम इन तीन गुणों से रहित है (य) और (मणुवजेव मोधि विय) वम बन्ध
 से अक्षिप्त रहित—है (एवमाहसु—असम्भार्य) इस प्रकार असद् भाव को कहते
 हैं (इह जीव सोप) इस संसार में (जपि) जोभी (किधि) कुछ (दोसइ) विख्या
 है (मुक्य) मुकृत (वा) या (मुक्यं) दुह्युत (एवं) यह (जविष्ठाप) यदृष्टा से
 (वा) अथवा (सहायेण) स्वभाष से (इवत्तत्पभावभो बाधि) अथवा देवता-
 विधि या माम्भ के प्रभाष से (भवति) होता है (नत्थस्य किधि कपकं तत्)
 यहाँ ह्यम अशुभ कुछ भी पुरुषार्थ से किया हुआ तत्त्व—सत्त्व नहीं है, (इवत्तत्प
 नियतीप) अक्षयों से विघाम—भेद और स्वभाष से (कारियं) किया हुआ है,
 (एवं केई जपति) इस प्रकार कई वाही बोलते हैं (इद्विरससातागारव परा)
 अक्षि, रस और साठा के आहर वाले जाने गबं वाले (बहये) बहुत से (कय्या-
 हासा) क्रिया में आससी लोग (एम्म जीयमण्य) भ्रम के बिचार से (मोसं)
 मूया का (परुर्बेति) प्ररूपण करते हैं (अवरै) दूसरे कई (अहम्मभो) अथम
 को आद्रीकार करके (रामुदुद्धं) राज हुष्ट अथात् राज विरोधी (अममकरणं)
 पाप कथन रूप (अक्षिपं) हूठ (मणति) बाह्यत है, जैसे (अचोरयं) चोरी नहीं
 (करेत्) करने वाले को (चोरोत्ति) चोर ऐसा (य) और (कामरिजसिधि)
 शान्त को भी छटाई करने वाला (एमेव) इसी प्रकार (इणसोणं) उपासीन को
 (दुस्सीबोत्ति) दुस्सीन—दुराचारी (य) और (परदार) परस्त्री में (गच्छति)

गमनं करतां है इस प्रकार (अयंपि) यह भी (गुरुतत्पभो) गुण पत्नी गामी है, 'ऐसा कहकर' (सौंल कंलियं) शीलं युक्त को (मइलिति) मलिन बनाते हैं (एमेव) इसी प्रकार (अत्रे) दूसरे (उवाहेणना) दूसरों की कीर्ति को मिटाते हुए (भणति) मृषा बोलते हैं, जैसे कि—(मित्त केलत्ताइं) मित्र छो मे (सेव ति) गमन करते हैं (अयंपि) 'कैवल वे नहीं किंतु' यह भी (लुत्त धम्मो) धर्म रहित है (इमेवि) यह भी (विस्सभं वाइओ) विश्वास घाती (पावकम्मकारी) पाप करने वाला तथा (अर्गम्म गार्सी) अगम्या-लकड़ों बहन आदि में गमन करने वाला है, (अयं) यह (दुरप्पा) दुष्ट आत्मा (बहुएसु पावंगेसु) बहुत से पाप कार्यों में (जुत्तोत्ति) युक्त है (एवे) इस प्रकार (मच्छरीं) मत्सरो लोग (जंपति) बोलते हैं (वा) अथवा (भइके) गुणों व निर्दोष पुरुष के विषय में (गुण कित्ति नेह पर लोग निपिंवासा) गुण, कीर्ति, स्नेह और परलोक की इच्छा से रहित होकर मृषा बोलते हैं, (एव) इस प्रकार (अलिय वयण दच्छा) झूठ बोलने में निपुण तथा (परदीसुप्पायणप्पत्ता) दूसरों के दोष उत्पादन में तत्पर (ते) वे मृषावादी (अक्खतिर्यवोएण) अक्षयं दुःख के कारण भूत (कम्म वंषणेण) कर्म धन्व से (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (वेडंति) घेर लेते हैं (मुहरो) अनर्थ कारी होने से जिनको मुख ही शत्रु है, वे मुखारि वैसे (असमिक्खियप्पत्तावा) बिना विचारे बोलने वाले (परस्स) दूसरे के (अत्यमि) द्रव्य में (गडिय गिद्धा) अत्यन्त लोभ वाले (निकखेवे) रखी हुईं ठेव को (अव हरति) अपहरण कर लेते हैं (य) और (परं) दूसरे को (असंतएहिं) अविद्यमान दोषों से (अभिजुजति) जोड़ते हैं अर्थात् झूठे आक्षेप करते हैं (लुद्धाय) और लोभी मनुष्य (कूडपक्खित्तण) झूठी साक्ष्य देने के कार्य को (करंति) करते हैं, (च) और (असच्चा) अहित कारी लोग (अत्थालिय) धन सम्बन्धी झूठ (कन्नालिय) और कन्या सम्बन्धी झूठ (तह) तथा (भोमालिय) भूमि सम्बन्धी झूठ (च) और (गवाालिय) गोआदि पशु सम्बन्धी झूठ (गरुयं) स्वपर को पीडा कारी होने से भारी ऐसे झूठ को (भणति) बोलते हैं, जो झूठ—(अहरगति गमणं) नीचगति का कारण है (अन्नं पिय) और कहे हुए के सिवाय अन्य भी (जातिरुव कुलसील पच्चयं) जाति, रूप, कुल और शील-आचार के कारण वाला (माया णिगुण) माया का गुण वाला या माया से निपुण (चवळ पिसुणं) विचार आदि से चपल व पिशुन लोग (परमंद्ध भेदकं) जो वचन मोक्ष रूप परमार्थका घातक (असकं) अविद्यमान अर्थ वालों

या-‘असंततं’ अस्व रहित (विदेशमन्वयकारणं) अग्रिम और अनन्त कारक है
 (पाप कर्म मूल) पाप कर्म का मूल (पुष्टि) वृष्ट-मिथ्या दृष्टि बाध, (तुम्सुय ।
 मिथ्या द्रुत पुक्त (अमुषिय) ज्ञान रहित और (निज्ञानं) खरजा से होन (छोड़
 गरहमिञ्जं) छोक में निम्ननीय है (वह मंत्र परिच्छेद बहुल) बध वन्ध और
 छेद की अभिज्ञता बाधा (करा मरण दुष्कस सोय निम्न) करा-बुद्धावस्था मरण,
 दुःख तथा छोक का जो मूल है जैसे (अमुक्त परिणाम सक्तिच्छिद्र) अमुक्त परिणाम
 से संहृश युक्त ‘ऐसे असत्य बचन को’ (मर्णति) बोलते हैं, ओ (अभिषाहि संधि
 संतिबिद्धा) मूठे अभिप्राय में छोड़ो हुए (य) और (असंतत गुण शीरका) असंत
 गुण की पशोरणा करने वाले याने मूठे गुण कहने वाले (य) और (संत गुण
 नासगा) विद्यमान गुण को मष्ट करने वाले अर्थात् छिपाने वाले (हिंसा भूलोष
 पातित) हिंसा से प्राणियों का उपपात हो जैसे (साबन्ध मकुसलं) पाप छिद्र
 और जीवों के छिये अकुसल कारक (साहुगरहमिञ्जं) साधुओं से निम्नित (महम्म-
 लणर्ण) अपने अनक (बर्ण्य) बचन को (मर्णति) कहते हैं (अभिय संपत्ता) जो मूठ के
 प्रयोग करने वाले हैं (अजभिगय पुत्रपावा) पुण्य और पाप के हेतुओं से अनज्ञान होते
 हैं (पुणोबि) और (अपिकरण किरिपा पवत्तका) अज्ञान के बाह्य अस्व भाति
 अधिकरण बनाने व ओढ़ने की क्रिया को करने वाले (बहुविह) बहुव प्रकार के
 (अपर्य) अनर्थ का कारण रूप (अप्पजो) अपने (य) और (परस्स) परके
 (अममदं) अपमद- हानि को (करंति) करते हैं, (एमेव) इसी प्रकार-बुद्धि के
 बिना (अपमाणा) बोलते हुए (चायगाणं) हिंसकों के छिये (मडिससुकरेय)
 जैसे और सूभर को (साहिति) बताते हैं (य) और (ससय पसय रोदिय) शाशा,
 प्रसय व रोदिय-पद्य विशेष (वागुराणं) वागुरी को (साहिति) बताते हैं, (वित्त
 बट्टक छावडे) तीतर बर्तक-बतक तथा छावक-लवे (य) और (कडिञ्जळ कवोय-
 केव) कपिञ्जळ व कपूतरों को (साउणोणं) पक्षी मारने वाले शिकारियों को
 (साहिति) बताते हैं (इस मगर वच्छमेय) इस मगर और कच्छप भादि अस्व
 जगु (मणिठपाणं) मच्छामाटी को (साहिति) बताते हैं । (संयंके) सन्त व
 अन्त-जस जीव विशेष (य) और (सुत्तए) सुत्तक-कीडों के जीव (मगराणं)
 घोवर छोड़ों को (साहिति) बताते हैं (अदगर गोजस मडळि द्दनीकर) अमगर,
 गोजस मडळी और द्दनीकर भादि के सप (मच्छोप) और सुपुत्री-क्या रहित
 सपे ये सप (माठपोणं) व्याधय-रूपकहने वालेको (साहिति) बताते हैं

(गोहा सेहग सल्लग सरडकेय) और गोधा, सेह, शल्लकी और सरट (लुद्धगाण) लुद्धकों को (साहिति) वताते हैं (य) और (गयकुल वानर कुले) गजकुल और वानर कुलों को (पासियाण) पाग वालों के लिये (साहिति) वताते हैं (सुक व-रहिण मयण साल कोइल हंस कुले) तोता, मयूर, मेना कोकिला और हंस के कुल (सारसेय) और सारस पक्षी (पोसगाण) पालने वालों को (साहिति) कहते हैं (च) और (गोम्मियाण) गुप्ति पालकों को (वधवधजायण) वध वध और यातना (साहिति) वताते हैं (य) और (तक्षरण) चोरों को (धणधन्न गवेले) धन धान्य तथा पशु (साहिति) वताते हैं (चारियाण) चारिक—गुप्तचरों को (गामा-गर नगर पट्टणे य) ग्राम, आकर, नगर और पत्तन (सहिति) वातते हैं (य) और (गंठिभेयाण) ग्रन्थि छेदन करने वालों को (पार घातिय पथधानियाओ) मार्ग के अन्त में यावीच में मारने—लूटने—की क्रियायें (सहिति) कहते हैं (च) और (नगर गोत्तियाण) नगर रक्षक—कोटवाल आदि को (कय चोरिय) की हुई चोरी 'वताते हैं' (गोमियाण) गो आदि पशु वालों को (लङ्गण निङ्गण धमण दुहण पोसण) लाछन—कान आदि कतरना या निशान बनाना, निर्लाछन—वाधिया करना याने फसो करना धमान—भेंस आदि के देह में हवा भरना, दोहन—दुहना, पोषण यव आदि देकर पुष्ट करना (वणण दवण वाहणा टियाइ) बछड़े को दूसरी गौ में लगाकर दूसरी गौ को धोखा देना अर्थात् यह वच्चा मेरा ही है ऐसा धोखा देना, दुवन—पीडा देना वाहन—गाड़ी आदि में जोतना इत्यादि (ब्रह्मणि) बहुत से कार्य (साहिति) कहते हैं (य) और (आगरीण) खान वालों को (धातु मणि मिल प्पवाल रयणागरे) गैरिक आदि धातु, मणि—चन्द्रकान्त आदि, शिला—पत्थर, प्रवाल-विद्रुम—मूंगे और रत्नों की खानें (साहिति) कहते हैं (मालियाण) मालिओं को (पुष्कवि-हिं) पुष्प के प्रकार (च) और (फलविहिं) फल के प्रकार (साहिति) वताते हैं (य) और (वणचराण) भील आदि ज गलिओं को (अग्वमहुकोसए) कीमत और मधुके छाते (साहिति) वताते हैं (जताइ) यन्त्र—लिखे हुए अक्षरों की रचना विशेष अथवा जलयन्त्र, आदि (विसाइ) अनेक प्रकार के विष (मूलकम्म) मूलकम्म-गर्भपात या गर्माधान (आहेवण आविंधणा आभिओग सतोमहिप्पओगे) आक्षेप-नगर में क्षोभ उत्पन्न करना, आव्यधन—क्षन्त्रप्रयोग, आभियोग्य-वशीकरण आदि प्रयोग, मन्त्र और औषधिओं के प्रयोगों को (चारिय परदार गमण बहु पाव कम्म करण) चोरी, परस्त्रीगमन और अधिक पाप वध के व्यापार करना (उक्खवे)

क्यत् से वृत्तरेके बलको उपमर्दन करना, (गाम धीर्तिथीर्भो) प्राम धीर्तेके (वय
 वृत्त वलाग भेयर्पाणि) वनं बंलानां और वंलाव फोबेना (बुद्धि विसे धियासर्पाणि)
 बुद्धि के विषय को नष्ट करना (वसीकरणमाविर्वाह) बक्षीकरण इत्यादि (भयमरण
 क्लिप्त होस बग्यापि) भय मरण, होस और होप को क्यम करने वाले (मार्ग
 बहुसंविन्नु मक्षिप्यणि) जो अन्वयसाय-भाव से बहुत दुर्लभ और मक्षि हैं
 (भूतधातोवर्षासायाह) प्राक्भिर्भो के धातु और धप धातु वाले (सर्वाह पि) सत्य भो
 (ताह) ऐसे वन (हिसकार) हिसक (वप्याह) वचनोंको (व्वाहर्ति) बोलने
 हैं (पुद्गावा) पूछे गये वा (अपुद्गावा) बिना पूछे गये (परतत्पि वावडा) वृत्त-
 रेके कार्योंको सोचने विचारने में लगे हुए (य) और (असमित्तिवर्मासिप्यो)
 बिना विचारे बोलने वाले (संहसा) अस्मात् (वरविचिति) उपदेश करते हैं
 (वदा) कठ (गोष्ठा) गाय वैद्य, (गवया) गवय-रोस धर्मको गाय को (वर्मन्तु)
 वमन करो अर्थात् इनकी क्षिप्रत बनाओ (परिणयवर्षया) प्रीतिवय वाले-वर्षान
 (अस्ता) पीठे (ह्यपी) हाथी (गर्वेण कुर्बुदाप) और बकरे व सुगों को
 (किर्बन्तु) बरीदो (किगावेष) लटीह करामो (य) और (विच्छेद) बेचो (य)
 और (पयह) पकाने योग्य वस्तुओं को पकाओ (तप्यस्स) स्वजन की (वेह) बेभो
 (पियव) मदिरा आदि पेय वस्तु को पिओ (दासीदास भवेकं माह्लकाय) और
 दासी दास-नोकर मृतक-भोजन देकर पाछे गए सेवक और भागीदार (सिस्ता)
 शिष्य (य) और (पेशकज्यो) काम पर भेजने योग्य आदमी (य) और
 (कम्मकरा) कर्म करने वाले मयात् निबन समय तक आशा पाहने वाले (य किं-
 रा) और किंकर-पुछर कर काम करने वाले (एप) ये (सव सवणपरि बंखीय) और स्वजन
 परित्त (कीस) किसलिये (अण्छति) बैठे हैं (मारिया) भरण करने योग्य हैं अर्थात् इन-
 को बतन चुका देना चाहिए ये (भे) आपके (कम्म) कामको (करित्तु) करें, (गहणाह)
 गहन-सधन (बणाह) वन (तेत्तमित्तभूमिबल्लराह) खेत, तिखगूमि-बिना
 खोटी गई भूमि और बल्लर-खेत विक्षेप (उराय षण संकडाह) जो इनो हुए पासों
 से अत्यन्त भरे हैं इनको (वर्यन्तु) जलाओ (य) और (सूडिजन्तु) घास
 कटाओ या बल्लहाओ (वंत्त वंढाहस्स) विषयन्त्र - पानी और माह-कुंडे आदि
 धाजन वारीह (वरविस्व) वपकरण के (काट्याप) मिमिन्त (य) और (बहु
 विहस्स अट्याप) बहुत प्रकार के प्रयोजन से (वप्या) वृत्तों को (मिर्बन्तु) कटाओ
 (वप्य) इतु को (इग्गन्तु) कटाओ (य) और (तिख) तिखी की (पोडिज्ज ह)

पीलो-उनका तेल निकालो (य) और (इट्टकाउ) इट्टों को (पयावेह) पकाओ (मम घरदुयाए) मेरे घर के लिये (खेत्ताइ) खेतों का (कसह) कषण करो (कसावेह) कषण कराओ, (य) और (लहु) शीघ्र (गाम आगर नगर खेड कव्धडे) गांव भाकर खान, नगर, खेडा और कर्वट-कुनगर इन सब को (निवेसेह) वसाओ (अदवों देसेसु) अटवों के प्रदेश में (विउलसो में) विपुल सोमा वाले 'गाव आदि वसाओं' (य) और (पुफ्फाणि) पुष्प (य) और (फलाणि) फलों की तथा (काल पत्ताइ) प्राप्त काल— लेने के समय पर पहुंचे हुए (कंद मूलाइ) कन्द मूलों को (गेण्हेह) ग्रहण करो (परिजणदुयाए) परिजनों के लिये (सचयं) उनका सचय (करेह) करो (साली) साल-धान्य (त्रोहो) त्रोहि (य) और (जवा) जौ को (लुच्चतु) काटो, (मलिज्जतु) मलो—मसलो (उप्पणिज्जंतु) हवा से साफ करो (लहुच) और शीघ्र (कोट्टागार) कोठार में (पविसतु) डालो (भप्पमहवक्कोसगाय) और छोटे, उसकी अपेक्षा मध्यम व उत्तम (पोयसत्था) नौकाके समूह-नौका व्यापारो (हम्मतु) चलो या छटो (सेणा) सेना (शिज्जाउ) निकले (डंमर) समग्र भूमि में (जाउ) जावे (य) और (घोरा) भयङ्कर (सगामा) संग्राम (वटतु) प्रवृत्त होवे (य) और (सगहवाहणाइ) गाड़ी व नौका आदि वाहन (पवहतु) चले (उवणयणं) उपनयन संस्कार (चोलग) बालकका प्रथम मुंडन (विवाहो) विवाह सन्बन्ध (जत्तो) यज्ञ (अमुगम्मिउ) 'ये सब कार्य' अमुक (दिवसेसु) दिनों में (करणेषु) वालव आदि करणों में (मुहुत्तेसु) अमृत सिद्धि आदि मुहुत्तों में (नक्खत्तेसु) भस्विनी आदि नक्षत्रों में (य) और (तिहिसु) नन्दा आदि तिथियों में (होउ) हो-होना चाहिए (भज्ज) आज (पहवण) स्नान-सौभाग्य आदि के लिये स्नान (होउ) हो (मुदितं) प्रमोद युक्त (बहु-खज्जपिज्जकलिय) मद्य मास आदि बहुत से पेय भक्ष्य वाला (कोतुक) रक्षा या क्रीडा आदि (विण्हावणक) विविध मन्त्र मूल आदि के द्वारा संस्कृत जल से स्नान कराना (ससिरवि गहोवरागविसमेसु) चन्द्र और सूर्य का राहु से उपराग-ग्रहण होना और विषम दुष्ट स्वप्न-अमङ्गल आदि में (सत्ति कम्मणि) शान्ति कर्म (कुणह) करो (सजणपरियणस्स) स्वजन और परिजन (य) और (नियकस्स) अपने (जीवियस्स) जीवन की (परिरक्खणदुयाए) रक्षा करने के लिये (पडिसोसगाइ) अपने मस्तक को पीठ—आटे आदि से बनी हुई आकृति (देह) देओ-दो (च) और (सीसोवहारे) पशु आदि के शिर की

बलि (वृद्ध) दो-बढाभो (विविहोसहि मज्ज मस भक्खम पायु मज्जाजुठेवया पईव
 बलि उग्रज्ज सुगंवि धूवावकारपुष्कफळममिठ्ठे) जो क्षोर्पोपहार विविध औषधि मय
 मांस भक्ष्य अन्न पानक-वेद्य, मास्य, माछा अन्व न अदि का अनुठेपन और सबते हुए
 उग्रज्ज प्रदीप, सुगंधिसुक्त पूष का अंगार पर डालना तथा फूळ फलों से पूर्ण है ।
 (पायच्छित्ते) प्रायश्चित्त—हुष्ट स्वप्न भादि अशुभ के प्रतीकारको (बहुविहेष)
 बहुत प्रकार के (पायाइवायकरणेण) प्राणातिपातरूप क्रिया से (करेह) करो
 प्रायश्चित्त करने का हेतु—(बिबरो ज्जाप तुस्सुमिष्य पायसछय्य मसीमग्गह परिय
 जमग्गल निमित्त पडिपायहेस) बिपरीत-अशुभमूचक-उत्पाद हुष्ट स्वप्न पाप
 शकुन-साराव निमित्त क्रूरघातों का संचार, अमङ्गलकारी-अङ्गदुरण भादि निमित्त
 इन सबके निवारणार्थे प्रायश्चित्त करो, (विस्तिच्छेय) वृत्तिच्छेद बोधिका का
 नाश (करेह) करो अथ वा भयुक्त को धिक्का तोड़ो, (मावेह किप्पिवाय) कुछ
 भी क्षाम मत हो (सुद्ध हभो सुद्धमो) अच्छा मारा अच्छी तरह मारा गया
 (सुद्धु छिभो) अच्छी तरह काटा गया (मिमत्ति) अच्छा भेदा गया ऐसा (उवदि-
 संठा) उपदेश करते हुए (पव विहं) इस प्रकार के (अक्रियं) सुपावाद को
 (मणेण) मनसे (वाचाय) वाणी से (प) और (कम्मजा) कर्म—कायासे
 (करेव) करते हैं (अकुसला) जो क्या बोलना व क्या नहीं बोलना इस विचार
 से हीन हैं (अपग्गवा) अनार्य हैं (मज्झिमाणा) शूठे सिद्धान्त वाले व शूठो आशा
 वाले (अस्सिय धम्मखिरया) मिथ्या धर्म में तत्पर (अस्सिवासु क्कदासु) शूठो कबामों
 में (मभिरसंवा) रमण करने वाले (प) और (पटुप्पगार) अनेक प्रकार के (अस्सिय-
 करेसु) मिथ्या भाषण को करके (तुट्ठा) स्मृष्ट (होंति) होते हैं ॥ सू० ३ । ७ ॥

गाथाय—'ई पापो मनुष्य शूठ वासते ई वा संयम और प्रथ स दूर हैं । तथा
 कपटी व पछल रदभाष वाले हैं । ऋष, छोम भय और हास्य के प्रयोजन से शूठ
 बोका जाता है । अधिकता से नीचे बड़े गए छोग शूठ बोलते हैं । जैसे—गवाही
 देन वाले १ और २ दून ३, मट-भाट या सैनिक ४, राजदरबार ५, जुमाये ६ गिरबो
 छेने वाले ७, मायाधो-कपटी ८ भेषधारी-कुमायु ९, ठग १० वक्कि-छेन देन करने
 वाले ११ नकली माप तोल करने वाले १२, शूठे छिप्पे बनाने वाले १३ वस्त्र बनाने
 वाले १४ सुनार १५, छिप्प से जोन वाले १६, ठगाईं छोड, परोक्षा और मुसामह
 भादि क क्रिये शूठ वासते हैं । शूठे छोग शास्त्र ज्ञान से हीन बिना विचारे बोलने
 व स हृद्य के हृदय भार घन भादि के अभिमानी होते हैं । प्रविष्टा की रक्षा भी

मिथ्या मान मिलाने के लिये भी भूठ बोला जाता है। अपने आपको बड़े मानने वाले स्वच्छन्दचारी व अनियमित जीवी लोग भी अधिकांश भूठ बोलते हैं। कई दार्शनिक भी लोकोत्तर मृषावादी होते हैं। जैसे नास्तिक लोग लोक के स्वरूप को विपरीत रूप से कहते हैं और तत्त्वों का असत् प्रतिपादन करते हैं। वामलोक वादी कहते हैं कि जीव नहीं है, और न वह परभव में ही जाता है। जीव न पुण्य पाप का बन्ध करता है और न उसको शुभ अशुभ फल ही भोगना पड़ता है। पञ्चभूतों का यह शरीर प्राण वायु से युक्त ऐसा भासित होता है। कई एक बौद्ध-आचार्य-विज्ञान, वेदना, सज्ञा, संस्कार और रूप ऐसे पाच स्कन्धों को कहते हैं। इनके विचारानुसार आत्मा यह कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। कितनेक मतवादी मन को ही आत्मा मानते हैं। दूसरे वायु-प्राण वायु को ही जीव कहते हैं। इनके मत से शरीर सादि सान्त है और वर्तमान जन्म ही एक भव है, क्योंकि शरीर के नाश होने के साथ ही सबका नाश हो जाता है। इस प्रकार ये सब मिथ्या बोलते हैं। शरीर के साथ सब का नाश हो जाता है इसलिये दान व्रत आदि सत्कर्मों का फल भी नहीं होता। हिंसा, भूठ, चोरी, परदार गमन और परिग्रह रूप पापवध का कोई कारण नहीं है। नरक, तियेञ्च और मनुष्य योनि, देवलोक तथा सिद्धिगति भी नहीं है। पुरुषार्थ, प्रत्याख्यान और काल मृत्यु भी नहीं हैं। माता पिता ऋषि और तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदि भी नहीं हैं धर्म व अधर्म का थोड़ा बहुत फल भी नहीं मिलता। इसलिये इन्द्रिय के अनुकूल सब विषयों में प्रवृत्त रहना चाहिए। क्रिया वा अक्रिया कुछ नहीं है, इस प्रकार नास्तिक वादी मिथ्या कहते हैं। दूसरा कुदशन कर्तृत्ववादो का है, वे कहते हैं कि-लोक अण्डे से उत्पन्न हुआ और स्वयं ब्रह्मा ने इसको बनाया है। कई सम्पूर्ण जगत् को ही विष्णुमय कहते हैं, आदि। कई साख्याचार्य इस प्रकार मृषा बोलते हैं—“आत्मा एक, अकर्ता और भोक्ता है। सुकृत और दुष्कृतों का कारण इन्द्रियाँ हैं आत्मा तो सब प्रकार से और सब जगह नित्य, निष्क्रिय तथा सत्त्वादिगुणसे रहित व कर्म बन्ध से निर्लेप है-इस प्रकार असत्य बोलते हैं। इनके विचार से जो कुछ भी ससार में सुकृत दुष्कृत या इनके शुभाशुभ फल दिखते हैं ये स्वभाव प्रकृति-सं या दैवत-विधि के प्रभाव से होते हैं, यहाँ कोई भी कृतक तत्त्व नहीं है इत्यादि कई कहते हैं, ऋद्धि, रस व साताके अहङ्कारी बहुत से आलसी लोग धर्म के विचार से भूठ बोलते हैं। दूसरे अधर्म से राजदुष्ट भूठा आरोप बोलते हैं-चोरा नहीं करने वाले को चोर और शीलवान् को भी दुःशील तथा अगम्या गामो कहते

हैं। मद्र पुद्गल में मत्सरी लोग गुण्य कीर्ति आदि की अपेक्षा नहीं रखते हुए मूठे रोप लगाते हैं। इस प्रकार वे मूठ बोझने वाले वृक्षों के रोप निकालने में तत्पर अपनी आत्मा को गाढ़ कर्म बन्ध से बांध लेते हैं। दूसरे के वन में आसक्त होकर निक्षेप-ठेक का अपहरण करते हैं और दूसरों के ऊपर असत्य कारणों से अभियोग करते हैं, छोम बस मूठो साझी देते हैं। असत्य के मुख्य प्रकार—'अर्थात्तेक-वन सम्बन्धी मूठ १ कन्याछीक-छन्दके लक्ष्मी व सो पुद्गल के पावत बोझ जाने वाला मूठ २ भूमिछीक भूमि के विषय में बोझा गया ३ गवाछीक और पशुओं के छिये बोझा गया मूठ ४ इस प्रकार महा अनर्थ के कारण व नीच गति में पहुँचाने वाले घुपावाद को बोझते हैं। चाति रूप, छुछ और झीछ के कारण मूठ पोसा जाता है, पह परमार्थ का भेदक और द्वेष व अनर्थ का कारण है। धानत् जरा मरख हु'स और झोक का मूस तथा अष्टुष्ट परिणाम से मखिन है। मूठे लोग असत्य गुण्य को कहने वाले व सद्गुण को छिपाने वाले हिंसाकारी साधन-बचन को बोझते हैं। जो साधु पुरुषों से भिन्निष्ठ और अपमान का जनक है। पुण्य पाप के भ्रमभान व असत्य बाही फिर बहुत तरह की सख क्रिया के प्रवक्त कई तरह के अनर्थ और स्वपर का अपमर्द करते हैं। ये झोक निर्दयता से छिकार करने वाले छिकारियों को जनकी छिकार-पष्टु, पक्षी या मच्छो आदि बताते हैं। तथा छिकारी को उत्तेजित करते हैं। हिंसक लोग भय मरख और छेस को उत्पन्न करने वाले मखिन भाषों से पुष्ट सत्य को भी हिंसा भय बनाकर बोझते हैं। फिर वे दूसरों के कार्यों को विचारने वाले और बिना विचारे बोलने वाले सहसा निम्न प्रकार से उपदेश करते हैं—ऊठ बैठ आदि का व्रमन करो। खान हाथी घाँडे आदि खरोतो और खरीद करामो बेचो अमुक कीच पकाओ, खदनों को दो मद्य आदि का पान करो, ये दासी दास आदि क्यों बैठे हैं? इनका पाखन करो ये आपका काम करें, गहम बग तथा खेत आदि बछाये बाँप। यन्त्र वा भाजन आदि के छिये घुसों को काटो इधु को काटो, और तिर्की से तेक निकालो, रस निकालो। मरे घर के छिये हँटे पकाओ खेत खोतीं तथा दूसरों से जुलबाओ। इस अटवी के मीदा १ में बड़े गाँव नगर आदि बघामा, पके हुए फूछ फल और कन्व मूछ आदि को म्खण करो। तथा संघय करो, छाल आदि धान्यों को काटो पका बनाओ मर्दन करो और दवा में उठाकर साक करो तथा दीप कोठे में भर। छोटे बड़े जहाम पछाये जाय, सना प्रयास करे व युद्ध भूमि में जाय भयङ्कर सामान खाद हो, गाड़ी या नौका आदि बाहन पछाये जाय। अमुक

शुभतिथि, दिन, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में उपनयन आदि सस्कार किये जाय, यज्ञ किया जाय। आज वधू का सौभाग्य सूचक स्नान हो,। बहुत प्रकार के स्नान पान वाला उत्सव किया जाय, भोर अभिषेक हो। चन्द्र सूर्य के ग्रहण और अमावस्य शकुन आदि को शान्ति को जाय। स्वजन परिजन और अपने जीवन की रक्षा के लिये वनावटी शिर चढाओ। पशुओं के शिर चढाओ, जो विविध ओषधि व मद्य मांस फल फूल आदि से पूणे हो। उत्पात व अशुभ स्वप्न आदि के निवारणार्थ बहुत प्रकार के हिंसा युक्त कार्यों से प्रायश्चित्त करो। इसकी वृत्ति बढ करदो कुछ भी दान मत दो। यह अच्छा काटा गया, मारा गया इस प्रकार सावध उपदेश करते हुए मन वचन तथा कर्म से मृषा कार्य करते हैं। ये लोग भाषा ज्ञान में अकुशल अनार्य और झूठे सिद्धान्त वाले हैं, मिथ्या धर्म में तत्पर होने से झूठी कथाओं में रमण करते हुए बहुत प्रकार से झूठ बोल कर सन्तुष्ट होते हैं ॥ सू०।३।७॥

श्रव भूठ बोलने का फलदिखाते हैं—

मूल—तत्सय अलियस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढेति महवभयं अविस्सावयेयणं दीहकालं षडुदुक्ख संकडं नरय तिरियजोणिं। तेणय अलिएणसमणुद्धा आइद्धा पुणवभवंध-कारे भभंति भीक्षे दुग्गतिवसहिमुवगया। तेय दीसंतिह दुग्गया दुरंता परवसा अत्थभोगपरिवाजिया असुहिता फुडियच्छुवि धीभच्छुविवन्ना खरफरुमविरत्तज्झामज्झुसिरा निच्छाया जल्ल-विफलवाया असक्कतमसक्कया अगंधा अचेयणा दुभगा अकंता काकस्सरा हीणभिन्नघोसा विहिंसा जड्ढहिरन्धया यमम्मणा अकंतविक्रय करणाणीया णियजण निसेविणो लोग सरहणिज्जा भिच्चा असरिसजणस्स पेस्सा, दुम्मेहा लोक वेद अज्झप्प समय स्रुतिवज्जियानराधम्मबुद्धि वियत्ता अलिएण य तेणं पड्ढज्झ-माणा असंतण्ण य अवमाण्ण पट्टिमंसाहिकखेव पिसुण्णभेयण गुरुबंधव-सयण-मित्तवक्खारणादियाइं अबभक्खाणाइं बहु-विहाइं पावेति, अणुवमाणि (मणोरमाइ) हिययमण दूमकाइं, जावज्जीवं दुरुद्धराइ। अणिट्ठखर फरुस वयण तज्जण निभच्छुण

दीर्घवदण विमणा कुभोयंणां कुर्याससा कुधरहीसु किच्छिस्मता
 नैव सुई, नैव निष्पुई उघळमति । अद्यत विपुलेदुक्खसपमप
 खिता । ऐसो सो अखियबेयणस्स फलविषांओ इहओइओ पर
 ओइओ अप्पेसुइो बहुदुक्खो मेइहभओ पपुरपपगोहो वारुणो
 ककसो असाओ वासिसंइस्से हिं मुच्चइ । न य अवेवपिशा
 अत्थिहु मोक्खोसि एवमाईसु नार्यकुलनदणो महप्पाजिण्णोउ
 वारधरंमामघेवओ कहेसी य अखिय घयणस्स फल विषाग । एयत्तं
 थित्थियपि अखियघयण खंडुसगळहु चवळ मणिय भयकर हुह
 कर अयसकर वरकरग अरति रति राग दीस मण सकिळस विर
 यण अत्थियणियठि साविजाग बहुळ योपजण निमधिय निस्सस
 अप्पक्कयकारक परमसाहुगरहाण्णज परपीळाकारक परमकयह
 केससाहिय हुग्गतिविनिवायवद्धर्यं पुणठमबवर थिरपरिथिय
 मणुगय थुरत (तिथमि) धार थित्थिय अप्पम्मदार समस ॥
 ४ ॥ सू० ८ ॥

छाया—“तस्य चाङ्गीकस्य फलविपाक मज्जानन्ती बर्धयन्ति महामयामविनाम
 धेवना दीर्घं काष्ठं बहु दुःखं सङ्गं नारकं तिर्यग्योनिम् । तेन चाङ्गीकेन समनुबद्धा
 भादिग्धा पुनर्भावात्पकारे भ्रमन्ति मोमे दुग्गतिबद्धतिमुपगताः । तेन दृश्यन्ते दुर्गता
 दुरन्ताः परबद्धा अर्थभोगपरिवर्जिता अमुल्लिता स्फुटितच्छवि बोमरसविचर्णा
 खर पटप विरक्त ध्याम सुपिरा निच्छाया कङ्गाविफळवापः असंक्लृताऽभ्रकृता अग-
 न्था अचेतना दुमगा अकान्ता काक्खरा हीनमिन्नपोपा विहिंसा अजबधिराऽप्य
 काय मम्मया अकान्तं बहून् करणा नोवा मीच अल मियेविणो ओक्काईणोया सूत्वा
 अजददजनस्य प्रेध्या दुर्मेघसं ओक्खेदा अयम सयच-भ्रुति-विचर्जिता नरा धममुद्धि
 विच्छताः अलोकेन च तेन प्रदह्यमाना अशास्तकेन च अजमानन-पृष्ठमसापिण्णेप
 पिण्णुम भेदम गुरुवाग्धव एवमन मित्रा पक्षारयादिकाति-अम्पात्त्वानानि बहुविधानि
 प्राप्नुवन्ति । अममोरमोनि इत्यमनोरावकानि वाचश्रीवं दुक्खरापि । अमिष्ट खर
 पटप बधन वर्धन मिमत्सुन हीन बदन विमनसं कुभोजना कुषाससं कुचसतिपु
 द्विस्मत्तो नैव सुए नैव निष्पु विमुपलभन्तेऽरयस्य विपुळ दुःखसवसम्भोता । एव
 योऽङ्गीकवचनस्य फल विपाक पेक्षीकिकः पारङ्गीकिकोऽप्यमुखो बहुदुःखो महामयो

बहुरजः प्रगाढो दारुणः कर्कशोऽसातो वर्षसहसैर्मुच्यते, नचाऽवेदयित्वाऽस्ति हि मोक्ष इति । एवमाख्यातवान् ज्ञातकुच नन्दनो महात्मा जिनस्तु शीव वर नाम धेयः कथं प्रियाति चालीकवचनस्य फल विपाकम् । एतत्तद्वितीयमपि अलोक वचनं लघु स्वक लघुचंपलभणित भयङ्करं दुःखकरमयशस्कर वैर कारकम् भरति रतिरागदोष-मनः सङ्घेश विरचनम् अलीक निकृतिसाति यो ग बहुल नीच जननिपेवितं नृशस-प्रत्ययकारक परमसाधु गहेणाय पर पोडा कारक परम कृष्णलेश्या सहित दुर्गति विनिपातवर्द्धनं पुनर्भवकर चिम्पश्चिया (चिता,) ऽनुगतं दुर्नरन (दुर्कृत्) इति प्रविमी द्वितीयम धर्मद्वारसमाप्तम् ॥ २ ॥ सूत्र ४।८ ॥

अन्व—“(तस्मै) ओर उस (अलियस्मै) भूठ के (फलविवागं) फपरूप परिणाम को (अयाण साणा) नहीं जानते हुए (मह्वभयं) भयङ्कर (अविस्वामवे-यणं) अविश्रान्त वेदना वाली (दीहकालं) दोष काल को स्थितियुक्त (बहु दुःख सकल) बहुत दुःखों से पूर्ण-पैसे (नरय तिरिय जोणि) नरक और तियंग्योनि को (बडूति) बढ़ाते हैं, (तेण्य अल्लिण) और उस भूठ से (समणुधद्धा) अच्छी तरह बधे हुए (आहद्धा) अच्छी तरह से बढ़े हुए (भीमे) भयङ्कर (पुण्णभवध फारे) पुनर्भव-जन्म न्तर रूप अन्धकार मे (दुग्गति वसहि मुवगया) दुर्गतिवास को प्राप्त हुए (भमंति) भटकते हैं (तेय) और वे-मृषावादां (दोसविह) इस सभार में पैसे दिखते हैं (दुग्गया) बुरी हालत वाले (दुरता) दुःख मय अन्त वाले (परवसा) पराधीन (अत्थभोगपरिवज्जिया) धन और धनोपभोग से हीन (असुहिया) सुख से या मित्र से रहित (फुडियच्छवि बोभच्छविवज्जा) फटी हुई चमड़ी वाले, त्रिकार युक्त रूप और खराब वर्ण वाले हैं (ख्र फरुस विरत्तज्झाम ज्युसिरा) अत्यन्त ककश स्पर्श वाले, निरानन्द, कान्तिहीन और सारहीन जारर वाले (निच्छाया) शोभा रहित (लल्ल विफळवाया) अव्यक्त व सफलता रो रहित वाणी वाले (असक्कन मसक्कया) सक्षार और सत्कार से रहित हैं (अग्घा) बदनूदार देह वाले-दुर्गन्ध (अचेयणा) विशिष्ट चेतना से हीन (दुग्गो) दुर्भग्य कमनसोव (अकना) अशोभन (काकस्सरा) काक के समान रूक्ष स्वर वाले (हीण भिन्न घोसा) धीमी और अस्फुट-फटे हुए स्वर यानो आवाज वाले (विहिसा) विशेष हिंसा वाले (य) और (जड वहिरवया) गूँगे बहरे तथा अन्धे व (सम्मणा) अव्यक्त बोलने वाले होते हैं (अकत विकप्रकरणा) सुन्दरता रहित विकृत इन्द्रिय वाले (णीया) नीच (नीयजण निसेविणो) नीच जनों को सेवा करने वाले (लोग

गच्छतिगच्छा) लोक में निम्ननीय (मिथा) भृश (असत्सि जगत्सि पेशा) असमान
 शीघ्र बाढे लोगों के मोकर या द्वेषनात्र होते हैं (दुग्मेहा) दुष्ट बुद्धि (लोक वेद
 अक्षय्य समयसुनिवृत्तिना) लोकशास्त्र-भारत भादि, वेद-सूक्त साम भादि अन्धकार
 शास्त्र-मनो विजय का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र और समय-जैन बौद्ध भादि
 सिद्धान्तशास्त्र इन सबोंसे परिबर्णित अर्थात् शास्त्र ज्ञान से भृश (धम्म बुद्धि
 विषया) धम्म बुद्धि से बिकूट ऐसे (मरा) नर (लक्ष्मिण्य व सेण) उस पूव कथित
 अलोक भाष्य रूप पाप से (पद्मसमाणा) अज्ञते हुए (असत्पण्य) भी अनुप
 शान्त शूरान व रूप पाप से (अत्रमाणत्रविद्वमता हिक्लेश विमुञ्च मेवण गुरु वचन
 क्षयय मित्त वरुकारणादिपाह) अपमान परोक्ष में वृषण प्रकृत करना-निन्दा और
 पुगल राग से परस्पर का प्रेम भङ्ग और गुरु पाश्र्वक, स्वजन धया मित्र जनों के
 तिरस्कार बचन इत्यादि (बहु बिहाई) बहुत प्रकार के (अकमस्मान्नाह) शूठे
 आरोग्यों को (पाबेत्ति) प्राप्त करते हैं जो (अमणो रमाह) अमनो राम (हियप-
 मणदूमकाह) हृदय और मन को बढाने वाले-सपथाप करने वाले तथा (बाव-
 वजीप) जीवन पयनन (दुठद्वाराह) दुष्ट से पार करने योग्य होते हैं । (अगिद्ध
 शर फलम वचन वञ्जन निष्पच्छण दोष्य वक्ष्य विमया) अमिष्ट और अत्यन्त
 कठोर वचन से वर्जना व निमस्सता पान के सब कारण जो दोन यदन और वश
 समन वाले हैं (कुमोपणा कुवाससा) मांस भादि कुत्सित भोजन और सराव वात्र
 वाले हैं (कुसहोसु किन्निस्संवा) कुमार्मों में छेद पाते हुए (नेवमुह) न दारौरिक
 सुख का और (नेव निळुह) न मांस सम्तोष को हो (वज्जमति) पाते हैं,
 (अथ व बिजुळ दुग्गसय संपत्तिवा) अत्यन्त विशाल सैकड़ों दुग्गों से य जो व सङ्घते
 रहते हैं । (अन्नियवप्पणस) शूठ बोलने का (पसोतो) यह ऊपर कहा हुआ वह
 (वज्ज विजागो) कप्त रूप परिणाम (इदंभी इमो पर कोइमो) इस लोक सम्बन्धी
 तथा परलोक सम्बन्धी (अण्णमुहो वट्टु हुक्को) अन्नमुह्य व अधिक दुग्ग वाला है
 (महत्तामा महाभव का कारण (बहुपण्यगादो) कर्म रत्न की अधिकता से अत्यन्त
 गाढ (दाठनो) हृदय को बिहारण करने वाला (ककसो) कठोर (अत्तामा) दुग्ग
 रूप (बाणसदसे) दशरों बर्षों से (मुपह) पृथक् दे (मय अपेदिता) किन्तु
 बिना भोगे (अत्थिहु सोव्यात्ति) मोक्ष-वसकम से मुक्ति नहीं होगी है (माव कुञ्ज
 मत्तो) श्राव कुञ्ज मन्दन (जिजो) अिनवर (वोर वर नाम धरजा) महावीर नाम
 वाले (महत्ता) महात्मा ने (परमा इत्तु) पैसा कहा है (य) और (अन्नियवव

एगस) झूठ बोलने के (एयं) इस (फल विवाग) फल रूप विपाक को (कहेसी) भविष्य मे भी कहेंगे । (त) वह (वितीयपि) दूसरा भी (अलिय वयणं) मृपावाद रूप आसत्र (लहुस गतहु चवलम०) छोटे से छाटे ओर चञ्चल मनुष्यों से कहा गया तथा (भयकर) भयङ्कर (दुःकर) दुःख कारक (अयसकर) अकीर्ति करने वाला (वैर करग) वैर का कारण (अरतिरति राग दोस मण संकिलेस विरयण) अरति रति और राग द्वेष रूप मन के सहेश को करने वाला (अलिय नियडि सादि जाग वहुल) झूठ निष्फल कपट और अविश्वास वृत्ति की प्रधानता वाला है (नीयजण-निसेत्रिय) नीच जनों से खेचित (निम्सस) घृणा व दया रहित (अपच्चय कारकं) अविश्वास कारक (परमसाहु गरहणिज्ज) परम साधुओं से निन्दनीय (पर पीला-कारक) दूसरों को पीडा देने वाला (परम कण्ठ लेस सहिय) परम कृष्ण लेश्या वाला (दुग्गति विनिचाय वड्डुण) दुग्गति पतन को घटाने वाला (पुण्णभवकर) पुनर्भव जन्मान्तर का कारण (चिर परिचिय मणुगय) चिर काल का परिचित होने से पाछे रहने वाला तथा (दुरत्त) दुःख से अन्त वाला है । ऐसा मैं कहता हूँ । (विनिय अधम्म०) दूसरा अधम द्वार समाप्त हुआ । २ । सूत्र । ४ । ८ ॥

भावार्थ—‘ उपरोक्त सूत्र मे कहा गया है कि असत्य वचन के कटु फलों को नहीं जानते हुए झूठे लोग लंबे काल के लिये भयङ्कर नरक व तिर्यग् योनि को दहाते हैं । असत्य से युक्त प्राणी पुनर्भव रूप अन्धकार मय कोठे मे दुर्गति भोगते हुए भटकते हैं । मनुष्य होकर भी वे परवग बने हुए साधन हीनता की दशा में बुरी स्थिति का अनुभव करते हैं । शरीर से भा वे लोगों मे बुरे दिखते हैं क्यों कि वे गूगे बहरे व अन्धे होते हैं । लौकिक या लोकोत्तर शास्त्र से तथा ज्ञान व बुद्धि से भी वे विकल होते हैं । झूठ रूप पाप के प्रभाव से वे अपमान और विरस्कार पाते हैं । झूठे आरोप में पडते हैं जो यावज्जीवन के लिये दुःखद्वर होते हैं, इससे दीन बने हुए वे लोग बुरे खान पान रहन सहन और कुपाम में कुेश के अनुभव करते हैं, कभी भी शारोरिक सुख व शान्ति नहीं पाते । प्रत्युत सैकड़ों तरह की दुःखानि में जलते रहते हैं । झूठ बोलने के ऐसे उभय लोक सम्बन्धी कुफलों को ज्ञात कुल नन्दन महात्मा भगवान् महावीर ने फरमाया है जो बहुत भयङ्कर है व हजारों वर्ष तक भोगने पर ही छूटता है । विना भोगे इससे मुक्ति नहीं होती । यह दूसरा अधर्मद्वार अर्थात् मृपावाद झूठे हलके और चञ्चल लोकोंसे कहा गया है । अन्य उपसहार

पूषवत् है। सार यह सूपावाद् रूप महापाप नोर्त्वा से सेवित व अभिधात कारक तथा दुर्गति में गिरने वाला और दुस्व है ॥ इति । २ । ४ । सू० ८ ॥

“अथ तीसरा अधर्मद्वार”

सम्बन्ध दूसरे अध्वयन में असत्य भाषण रूप मास्त्र को कहा, अब इस तीसरे अध्वयन में अदत्तादान—घोरी के तीसरे मास्त्र को कहते हैं क्यों कि चारो करने वाले प्रायः गूठ बोलते हैं। दूसरो बात असत्य भाषो जीव धर्म, समाप्त और रात्र से निषिद्ध यत्न बोलते हैं, तथा दूसरे से नहीं कजो गई और न की गई पाते कहते हैं और पदार्थों के सत्य रूप को छिपाते हैं जो एक प्रकार से चोरी होगी है, इसलिये सूपावाद् के अनन्तर तीसरे अध्वयन में अदत्तादान को कहते हैं—

प्रथम सूत्रकार अदत्तादान—घोरी का स्वरूप कहते हैं—

मूल—“अन् ! तद्व्यय अदत्तादाय हरवद् मरण भय कलुष तासण पर स सिगऽभेज्ज कोममूल काळविसम सभिय अहो च्छिन्न तयद्द पत्थाणपत्थोइ मइय अकि सिक्कण अणज्ज श्लिहमतर धिधुर वसण मग्गण उस्सथ मत्तप्पमत्त पसुत वंषणफिम्बवण घायण-पराण्हिय-परिणाम-तप्परजण पटुमय्य, अकलुण राय पुरिसाफिम्बय, सया साहुगरइण्हिज्ज, पियजण-मित्तजण-भेद विप्पीति कारक, रागवाप पणुत्त पुणोय उप्पूर-समर-सगाम-उमर कलि-कल्लइ वेइ करण दुग्गति विणिषाय वदइणं, भवपुण्य वनवकरं पिर परिचित मणुगयदुरम, तद्व्य अयम्मदारं सू । १६॥

छाया—‘अन् ! तद्व्यय अदत्तादाय हर वद् मरण भयकलुष तासण पर सत्ता-भिय्या कोम मूल काळ विपम संसिक्तम् भयो च्छिन्न वृष्णा-पर्याप्त-पराणोद् मदिक्कम् अकारिणकरणम् अनाय छिन्नान्तर विधुर वसतन मार्गेणारसव मत्त प्रमत्त प्रमुन वयनाऽक्षेपण पावम परा-निष्ठ पारिणाम तत्परजन वदुमत्त अकलुष रात्र पुण्य रक्षितं सत्ता सापुगद्वीयं पियजन भिक्कजन भद विमाति कारकं रागराव वदुत्त पुनश्च कूर समर सयाम उमर कलिकल्लइ वैप करणं दुग्गति विनिषाय वदुत्त भव पुनश्च करणं पिर परिचितमनुगले दुग्गं तद्व्ययमधमदारम् । १ ॥ सू० ९ ॥

अन्व०—“सुधर्म स्वामी कहते हैं—(जवू !) हे जम्बू ! (तइयच) आस्रव द्वारों में तोसरा आस्रव द्वार (भदत्तादाणं) अदत्त का ग्रहण करना—चौर्य कर्म है जो (हर दह मरण भय कलुस तासण—) अमुक के द्रव्य का हरण कर, तथा जला ऐसी प्ररणा करना अथवा हरण, दहन और मरण व भयरूप पातक के त्रास उत्पन्न करने वाला (परिसतिगऽभेज्ज लोभ मूल । दूमरे के धन मे रौद्र ध्यान युक्त लोभ—सूच्छा, ही जिसका मूल है ऐसा (काल विषम सप्तियं) आधो रात आदि काल और पर्वत आदि विषम स्थान मे जो श्राश्रित है (अहोऽच्छिन्न तण्ह पत्थाण पत्थोइ मइय) नीच गतिओं की ओर लोभिओं के प्रस्थान करने मे प्रेरणा करने वाली बुद्धि की रखने वाला (अकित्ति करणं) अकीर्ति करने वाला और (अणज्जं) अनार्य कर्म है (छिद्दमतर विधुर वसण मगण—उत्सव मत्तप्पमत्त पसुत्त वंचणक्खिन्नण घायण पराणि हुय परिणाम तक्करज्जण बहुमय) छिद्र-प्रवेश का मार्ग, अन्नर-समय मौका तथा विधुर-नाश-दोष, व्यसन-राजादिसे होने वाला कष्ट इन को खोजना उत्सवों मे मस्त और प्रमादी बने हुए तथा सूते हुए का ठगना, चित्त को व्यग्र बना देना और मारना इन सब मे तत्पर और अनुप शान्त परिणाम वाला तथा चोरों से मान पाने वाला है [वाचनान्तर मे—(छिद्द विसम पावग) छिद्र और विषम समय में होने वाला पाप (अण्हिय परिणाम) सक्केश युक्त परिणाम वाला] (अकलुण) करुणा रहित—निर्दय (राय पुरिसरक्खिय) राज पुरुषों से रक्षित अर्थात् राज-पुरुषों से रोका गया (सया) सदा (साहु गरहणिज्ज) साधु पुरुषों से गद्दी करने योग्य, निन्दित (पियज्जग भित्तज्जग भेइ विप्पोति कारक) प्रियजन व मित्र जनों के भेद तथा अप्रति को करने वाला (राग दोष बहुले) राग द्वेष को अधिकता वाला (पुणोय) और फिर (उप्पूर समर सगाम डमर कलि कउह वेह करण) अधिकता से जन सहारक जो सप्राम मोरचा डमर-भय के कारण रण से भागता विह्वर-पाप युक्त कलह ओर पश्चत्ताप इन-सब को बढ़ाने वाला (दुग्गइ विणिघाय बहुण) दुर्गति में पतन को बढ़ाने वाला (भवपुण षभवकर) और संसार मे वारवार जन्म कराने वाला तथा (चिर परिचिय मणुगय) चिर काल का परिचित होने से अनुगत-साथी और (डुरत) दुःख से अन्त वाला ऐसा (तइय) तोसरा (अहम्मऽार) अधर्म द्वार है ॥ सू० १।९ ॥

भावार्थ—इस सूत्र मे सुधर्म स्वामी ने अदत्तदान-चोरीका स्वरूप कहा है । यह

हरण आदि से ब्रह्म पेश करने वाला है। इसका मूल छोम है। यह चोरो कम प्रायः विषम स्थान और कुसमय में किया जाता है। दुर्गादि के भतुकुड समस्त षाळा अकारि कारक और अनर्थ कम है। पावस् प्रेशो मनों में भेद भार अग्नि उत्पन्न करने वाला तथा राग द्वेष की प्रधानता याज्ञा है। अनसहारक संभाम-छाई तथा पञ्चशाप का कारक है। दुर्गादि में गिराने बाधा और फिर काड एक संभार में काम कारण करके भी दुःख से अन्त करन योग्य है। इस प्रकार उभय छोक में अद्वित कारक यह चोरो कर्म तीसरा अथम द्वार है ॥ १। ९ ॥

अथ दूसरा नाम द्वार कहते हैं—

मूल—'तस्म यणामाणि गोप्ताणि ह्यंति तीस, तजदा चोरिक
१ परहृड २ अदत्त ३ कुरिकड ४ परछामो ५ असजमा ६ पर-
घणमिगेही ७ लोलिक ८ तस्करत्तणतिय ९ अवहारो १० हृथळ
(हृ) तण ११ पाषकम्मकरण १२ तणित्तं १३ हरण विप्प-
यामो १४ ध्यादियणा १५ लुपणा घणाय १६ अप्पघयो १७ आधीलो
१८ अफणेषा १९ लोपा २० विरुत्थेयो २१ कूडया २२ कुलमनीय
२३ कम्पा २४ छालप्पण पत्तणाय २५ (आममणाय) दमर्ण २६
इच्छाकुच्छाय २७ तयागाहि २८ नियदिकम्म २९ अपरच्छुत्ति
३० मिय तस्स ण्याणि एवमादीणि नामधज्जाणि एमि तीस
आदिना दाणस्स पाष कलिबल्लुन कम्मपट्टुत्तस्स अणगाइ ॥
सू० २। १० ॥

छाया—“तस्य च नामानि गोपानि भवन्ति त्रिंशत् तानि यथा—“चोरिकम् १
परहृत्तम् २ अदत्तम् ३ कुरिकटम् ४ परछामो ५ असजमा ६ परघनम् ७ लोपम् ८
हरणमिगेहि ९ अवहार १० दगात्तु ११ ११ पाव कम करणम् १२ १२ तेनिका १३ हरण
विप्रणासा १४ आदानम् १५ आपना घनानाम् १६ अमपय १७ अमणा १८
आधाय १९ शेष २० विहाय २१ कूटता २२ कुडमपी २३ २३ वागा २४ छालपन
माधना २५ आगतनाय अमनम् २६ इच्छमूच्छा २७ तयात्तु २८ निच्छि
वम २९ अपरो (परा) क्षम् ३० ३० इत्यदिप तस्य तानि परमादीनि नामधर्काः अस्मि
त्रिंशत्, अत्रादानाय पाव कलिबल्लुन कम कट्टुत्तवने कानि ॥ सू० २। १० ॥

अदत्तादान के नाम कहते हैं—

अन्वयार्थ—“(तस्य) उभ चौर्यकर्म के (गोण्णाणि) गुण-निष्पन्न (तीसं) तीस (णामाणि) नाम (होति) होते हैं (तन्महा) वे इस प्रकार हैं (चोरिकं) चुरालेने से ‘चोरिका’ कहते हैं, (परहृद) दूसरे के पास से हरण करने से ‘परहृत, कहाता है (अदत्त) विना दिया हुआ होने से ‘अदत्त’ (कूरिकड) और क्रूरचित्त वाले से किया जाने के कारण इसे ‘क्रूरिकृत’ कहते हैं (परलाभो) दूसरे के भ्रम और आश्रय का लिया जावा है इसलिये ‘परलाभ’ (असज्जो) तथा उसमें समय नहीं रहता, वास्ते यह असंयम कहाता है (परधणमिगेही) दूसरे के धन में लालच होने से चोरी की जाती है वास्ते इसे परधनगृद्धि (लोलिक) और लौल्य कहते हैं (य) और (तत्करत्तणत्ति) चोर का कर्म होने से ‘तत्करत्व’ है (भवहारो) स्वामी की इच्छा विना लिया जाता है इसलिये ‘अपहार’ कहते हैं (हृत्थळुत्तण) दूसरे के धन को चुराने से जिसका हाथ कुत्सित हैउ सका कार्य, अथवा हाथ की चालाकी के कारण इसको ‘हस्तलघुत्व’ कहते हैं (पावकम्मकरण) इसे ‘पाप कर्म करण’ भी कहते है (तेणिकं) चोर का कार्य होने से इसको ‘स्तेनिका’ कहते हैं (हरण विपपणासो) चुरा के दूसरे के धन को नष्ट करने के कारण यह ‘हरण-विपणाश’ कहाता है (आदियणा) परधन का ग्रहण करने से इसको ‘आदान’ कहते हैं (लुपणा घणाण) धन को लुप्त करने से ‘धनलुम्पना’ कहाता है (अपचओ) अविश्वास का कारण होने से इसे ‘अप्रत्यय’ कहते हैं (ओवोळो) दूसरों को पीडा करने से ‘अवपीड’ (अक्खेवो) पर द्रव्य को अलग रखने से ‘आक्षेप’ (खेवो) क्षेप और (विअखेवो) ‘विक्षेप भी कहते’ हैं (कूडया) तराजू आदि को खोटा करना भी चोरी है इसलिये इसको ‘कूटता’ कहते हैं (कुळमसी) कुळको मलिन करने के कारण ‘कुळमसी’ (य) और (कखा) तीव्र इच्छा के कारण यह ‘काक्षा’ कहाता है (लाळपणपत्थणा) निन्दित-लाभ की प्रार्थना करने से या दीन वचन युक्त प्रार्थना करने से ‘लाळपण-प्रार्थना’ (य) और (वसण) विपत्ति का कारण होने से ‘व्यसन’ कहाता है (इच्छामुच्छा) परधन में इच्छा व आसक्ति होने से ‘इच्छा मूच्छी’ (य) और (तण्हारोही) प्राप्त द्रव्य का मोह व अप्राप्त की वांछा होने से ‘तृष्णागृद्धि’ कहते हैं (नियडि कम्म) कपट से यह कार्य किया जाता है इसलिये ‘निकृति कर्म’ कहते हैं (अपरच्छंतिविद्य) और यह दूसरे की दृष्टि से छिपाके किया जाता है; वास्ते इसे ‘अपराक्ष’ भी कहते हैं। (तस्य आदि) उस

अवचा दान कि (एवाभि) उपरोक्तये (तीस) सोस (नाम वेदवाणि) माय (हौवि) होते हैं और (एवमावोनि) इत्यादि (पाप-कर्मि ककुस-कम्म बहुलस्त) पाप और कर्म से मलिन मित्र द्रोह आदि कर्म की अधिकता वाले मनुष्यादान कं (अनेगाइ) अनेक नाम हैं ॥ सू. २ । १० ॥

भाषा— इस अवचा दान के तीस नाम हैं, जैसे—चोरिका १ परद्वत २ अन्त ३, मूरिकव ४, परअम ५, अस्तंयम ६, पर धन गुद्वि-७, छौस्य ८, त स्करत्व ९ अपहार १०, इस्तउधुता ११ पापकर्मउरण १२ स्तैन्य १३, हरण विप्रवास १४ आदान १५, धनछुम्पना १६, अपस्त्य १७, अयपीडन १८ आक्षेप १९, क्षेप २०, निक्षेप २१ छूटा २२, कुञ्जमयी २३, काँडा २४ क्षाजपन प्रार्थना २५, अमसन २६ इच्छामूर्छा २७, वृष्णा गृह्य २८, निकृति २९ और अपराध ३०, ये अवचादान के तीस नाम हैं । पाप और कर्म से मलिन कर्म मुक्त ऐसे वसके अनेक नाम होते हैं ॥ ३ । १० ॥

अथ चौर्यकर्म करने वालों का वर्णन करते हैं—

इसमें चोरी कौन और कैसे करते यह घताया जायगा,

मूल—“तपुण करेति चोरियं तद्धरा परवच्यहरा छेया कय करण-कडखकजा माहसिया सहुस्सगा अति-महिच्छ-कोम गात्था वहर-ओषधिका य गेहिया अहिमरा अणमंजक-भग्ना संधिया रायदुद्ध-कारीय विसयनिष्कूट-लोकबन्धा, उद्दीक गामघायय-पुरघायग-पंधघायग-आलीबग-तित्थभेया कहुइ त्यसपउत्ता जूइकरा अडरकम्पथीचार-पुरिसचोर-साविच्छपा य गंधिभेदग-परधणहरण-कोमाधहार अन्नेवी इडकारक निम्मइग-गूइचौरक-गोचौरग-अस्सचौरग । वासिचौराय, कए चोरा,—ओकडुक-सपवायक-उच्छिपक-सत्थघायक-बिर्क कोणीकारकाय निग्गाह-बिप्पसुपगा पडुविहतेषिष्ठहरण बुद्धी एते अक्षेय एवमावी परस्स वठ्याहि जे अविरया । विपुअ यक-परिग्गाहा य पडवे रायावो परधणंमि गिद्धा सरैष वडवे असत्तुठ्ठी परधिसए अहिर्घाति, ते सुद्धा परधणस्स कज्जे अठ रंग-विमत्त-वडसमग्गा निच्छिय-धरजोह-मुद्धसदिय-अहम

हामिति दण्डिर्हि सेनेर्हि संपरिवृडा पउम-सगड-सूड-चक्र-सागर
गरुडबृहतीर्णह अणिएर्हि उत्थरता अभिभूय हरन्ति परधर्णाई

छाया—“तत्पुनः कुर्वन्ति चौर्यं तस्कराः परद्रव्यहराश्चेकाः कृत करणलेब्धलक्ष्याः,
साहसिका., लघुस्वका अतिमहेच्छलोभमस्ता ददराऽपत्रीडकाश्च, गुद्धिकाश्चाऽभिमरा,
ऋणभञ्जक-भग्नमन्धिका, राजदुष्टकारिणश्च, विषयनिर्घाटित लोकवाह्या, उद्गोर्हके
ग्रामघातक-पुरघातक-पथिघातकाऽऽदीपक-तीर्थभेदा लघुहस्तमम्प्रयुक्ता, चूतकराः
खण्डरक्षुभ्रीचोरकपुरूपचौर—मन्धिच्छेदकाः, ग्रन्थिभेदक—परधनहरण—लोगप-
हाराक्षेपिणः, हठनागकाः, निर्मर्दक—गूढ चौर-गोचौराऽश्वचौर—शालीचौराश्च, एक-
चौराः, अपकर्षक—सम्प्रदायकाऽवच्छिम्पक-सार्थघातक-विलकोलोकारकाश्च, निर्घाह-
विप्रलोपका, बहुविधस्तेनकरणबुद्धयः, एतेऽन्ये चैवमादयः परस्य द्रव्याद् वेऽवि-
रताः । विपुलदलपरिग्रहाश्च बहवो राजानः परधनेषु गुद्धा, स्वके द्रव्येऽभन्तुष्टाः,
परविषयानभिन्नन्ति, ते लुब्धाः परधनस्य कार्ये चतुरङ्ग-विभक्तवत्समग्रा निश्चित
धरयोध-बुद्धश्रद्धिताऽहमहमिकादुर्षितैः सैन्यै सम्परिवृताः पञ्चशकट-सूची—चक्र-
सागर-गरुड-व्यूहादिकैरनीकैरुत्तरान्तोऽभिभूय हरन्ति परधनानि । सू० । ३ । १० ॥

अन्वयार्थ—“(तंपुण) फिर उस (चोरिय) चोरो को (तस्करा) तस्कर (करैति)
फरते हैं, जो (परद्रव्यहरा) पर द्रव्य का हरण करने वाले (छेया) कुशल (कथ-
करण लद्धलक्ष्या) बहुत बार चोरी कर्म को किये हुए और अवसर को जानने वाले
हैं, (साहसिया) साहसिक (लघुस्सगा) तुच्छ आत्मा वाले (अतिमहिच्छलोभ-
गत्या) बहुत बड़ी इच्छा वाले और लोभ से मस्त (य) और (ददर ओधीलका)
वचनों के आहम्बर से जो अपने आत्मस्वरूप को विशेष लजाने वाले यो पीछा
पहुचाने वाले हैं, (गेहिया) अतिलोभी (अहिमरा) सामने आए हुए को मारने
वाले (अण सजक भग्न सधिया) ऋण को नहीं देने वाले और विरोध में सन्धि
को तोड़ने वाले हैं (य) और (रायदुद्धकारी) खजाना लूटना आदि राज विरुद्ध
कार्य करने वाले (विसयनिच्छेद—लोकवञ्जा) विषय अर्थात् देश से निकाले हुए
तथा लोक से बाहर निकाले गए (उद्गोर्हक गामघायेय पुरघायेय पथघायेय आलि-
वग वित्यभेया) घातक तथा ग्राम, नगर, और मार्ग में घात करने वाले—लूटने वाले,
जलाने वाले तथा तीर्थ में भेद करने वाले (लघुहर्त्य सपत्ता) हाथ की चालाकी
से युक्त (जूईकरां) जुआरी (खंड रक्खत्यीचोर पुरिसचोर संधिच्छेया) चूंगी
लेने-वाले या कोतवाल, स्त्री चोर-स्वय स्त्री को या स्त्री के पास से अथवा स्त्री रूप

बनकर चुटने वाले, पुरुष चोर-पुरुष को चुटने वाले और संधि छेदक-जात खोदने वाले (घ) और (गंधमेदग) मन्थि काटने वाले (परमन हरण खोमावहार अस्त्रेधी) परमन हरने वाले, निर्दयता से या मर से दूसरों को मारकर चुटने वाले-खोमावहार, बक्षीकरण आदि के द्वारा माझेप करके चुटने वाले (हृदकारण हठसे चोरी करने वाले, (निम्नरग गूढचोरग गोचोरग अस्त्रचारण वासिचोरा) सदा दूसरे का अपमर्द करने वाले, गुप्त चोर, गो चोर-गौ चुटने वाले अथ चुटने वाले और दासो चुटने वाले (घ) और (एगचोप) अकेले चोरी करने वाले (शोकभूक संपदायक अर्चिष्ठरक सत्वपायक बिक्रकोजीकारक) घरसे द्रव्य निकालने वाले या चोरों को चुकाकर दूसरों के घर चुटने वाले, ममदा चोरों को सहायता पहुंचाने वाले, संप्रदायक-चोरों को मोक्षण आदि देने वाले अर्चिष्ठरक सार्थ पावक समूह को छूटने वाले बिक्रकोजी-दुमरे को घोसा देने के शिमे बनाइतो आबास से बोलने वाले (घ) और (निग्गाह विप्लवग) राजा से निगूरीत और छत्र से आशा को छुन करने वाले (बहुविह वेणिक हरण बुद्धो) बहुत प्रकार की चोरी से हरण करने की बुद्धिवाले (पने) ये (असेव) और पेसे ही दूसरे (एवमाशी) इत्यादि (जे) जो (परम) दूसरे के (दुःखाह) द्रव्य आदि में (अविरया) इच्छा से अनिष्ट है अर्थात् परमन की आच्छाद रखाते हैं। (विपुत्रवक्षपरिगहा घ) और अधिक बल व अधिक परिवार वाले (बहवे) बहुत से (रापाया) राजा लोग (परमर्णमि०) दूसरे के धन में गूढ-मूर्छावाले (सप व दुःखे) तथा अपने द्रव्य में (असंतुष्टा) सन्तोष नहीं रखने वाले (परविषय) दूसरे के वेष पर (अभिह-वति) आक्रमण करते हैं अर्थात् चढ़ाई करते हैं (ते लुटा) वे छोटी बने हुए (पर पणस कम्न) दूसरे के धन के शिमे (अहरंग-विमत्तवक्षममागा) वाट अज्ञो-दायी, घोडे, रथ व पैदल सेना-रूप मेरी से विमत्त-वटि हुए सैम्य बल से युक्त (निविउप बरजोह शुद्धसक्षिय अहमहमिति इपिर्दि) विश्वास पूण बराम यौद्धाओं के साथ युद्ध करने में अज्ञावाले और आत्मानिमान से डप वाले (सेमेदि) सत्य या शैम्यों से (संपरिखुडा) घिरे हुए (पडम-सगड-सूर-पख-सागर गरुडपूहा-विर्दि) पद्मभ्यूह, शकटभ्यूह, सूचीभ्यूह, पकभ्यूह, सागरभ्यूह और गहडभ्यूह इनसे रथे गप (अधिर्दि) सैम्यसमूहों से (अबरंठा) पर सैम्य को दबाते हुए (अभिभूय) ञ्दे भीत कर (दरति परपणाई) पर धन को हरण करते हैं।

सूत्र—“अवरे रणस्त्रीसलाद्धलकखा संगामामि अतिवयंति
 सन्नद्ध—पद्परियर-उप्पीलियविंधपट्टगहियाउहपहरणा, मा-
 ढिवरवम्मगुंडिया, आविद्ध-जाळिका, कवयकंकडह्या उरसिर-
 सुहवद्धकंठोणमाहतवरफलहरचितपहकर-सरहस खरचाव—
 करकरछिय- सुनिसितसरवरिस—चडकरक—मुयंतघणचंडवेग-
 धारानिवायमग्गे, अण्णेगधणुमंडलग्गसंधिता—उच्छूलिय-सत्ति-
 कण्ण-वामकरगहिय-खेडग- निम्मलनिकिद्धखग्ग—पहरतकौत
 तोमर-चक्क-गया-परसु सुसल-लंगल-सूतलउल-भिडमाला-सव्यल
 पाटिस-चम्मेट्ट-दुघण-मोडिय -मोग्गर-वरफालिहजंतपत्थर-दुहण-
 तोण-कुबेणी-पीठकलिय-ईलीपहरण-मिलिमिलि भिलंत-खिप्पं-
 त—विज्जुजल-विरचित-समप्पहणभतले, फुडपहरणे महारण-
 सखभेरी—वरतूर —पउरपडुपडहाहय—ण्णायगंभीरण्णित-
 पक्खुभियविपुलघोसे, हय-गय-रह-जोह-तुरितपसरितउद्धत
 तमंधकारबहुले, कातरनर-णयण-हिययवाउलकरे, विलुलिय-
 उक्कहवरमउड-तिरीड-कुडलोडुदासाडेवियम्मि पागडपडाग-
 उलियउभय-वेजयंति-चामरचलंत-छुत्तधकारगंभीरे, हयहोसय-
 हत्थिगुलुगुलाहय—रह-घणघणाहय-पाइक-हरहरहराहय अप्फो-
 डियसीहनाया, छेलियविपुलकुड-कंठगय-सहभीभगज्जिण्ण,
 सयराह-हसंत-रुसंत-कलकलरवे, आसूणियवयणरुदे, भीम-
 दसणाधरोट्ट-गाढदट्टे, सप्पहरणुज्जयकरे, अमारिसवस-तिव्व-
 रत्त-निहारितच्छे, वेरदिट्टिकुद्धचिडिय-तिवली-कुडिल-भिडडि-
 कयनिलाडे, वहपरिणय—नरसहसस—विक्कम—विधंभियबले,
 वग्गंततुरण—रहपहाविय-समरभडा, आवडिय-छेय-लाघव-
 पहारसाधिता, समूसवियवाहुजुयले, मुक्कट्टहास-पुक्कंतबोल-
 बहले, फुरफलगावरण-गहिय-गयवर-पत्थित-दरिय-भडखल-
 परोप्पर-पलारगजुद्ध-गव्वित-विडासित-वरासिरोसतुरियअभिमुह
 पहरित-छिन्नकरिकरविभंगित करे, अवहट्ट-निसुद्ध-भिन्न-फालिय-

पगाकिय-रुहिरकतमूमिकइम-थिलिषिद्धपहे, कुच्छिदाजिय
 गर्हित-रुहित-निमेहंतत-—फुरुफुरतऽधिगळमम्माइयधिकय-
 गाइदिन्नपहारमुच्छित्त-—इवात-बेभधाविशाघकनुणे, इय-जोइ
 भमततुरग-—उव्दाममसकुजर-परिसाकित-जणमिष्पुक-च्छिन्न
 घयमगारइवरनदृसिरुकरि कखेवराक्षिन्न, पतितपहरणविकिन्ना
 भरणमूमिभागे, नद्यतकबधपठर-—भयंकरवायस-—परिवॉत
 गिद्धमबशभमतच्छायबकारगभीरे, वसु-—वसुइ-बिकंपितठब-
 पपकलपिठवण, परमरुइवीइयाइ, तुप्पवेसतरं, अमिवयति,
 संगामसकड परबण महता, अचरे पाइइवीरसया सेखावति
 चोरवदपागइइकाय अबवीदेसदुग्गावासी काळ-इरित-रत्त
 पीत-सुच्छिन्न-अपेरासयधिघपहबद्धा, परविसए अमिइयंति
 कुद्धा, घणसस कडजे रयणागरसारां उम्मीसइस्समाधाउशाकुवा
 वित्तोय-पोतकवाकथेत्तकशिय, पायाधसइस्स-वायवस-वेरा
 सखिल उद्धम्ममाय वगरयरयभकार धरफण पठर धवळ पुळ
 पुळ समुद्धियइहासं, मारुयविच्छुभमाय पाणियजळ माळुप्पी
 छहुणिय, आधिय समंतओ खुभिय-लुखिय-लोखुभमाय
 पक्खलिय अखिय विपुलजळ अकबाळ महानई वेगतुरिय आपू
 रमाण गभीर विपुल आवत्त अवल भममाय गुप्पमाणुच्छलत
 पधोणियत्त पाणिय, पधाधिय थर करुत्त पपइवाठलिय सकिल
 कुद्धतवीतिकल्लोब-सफुत्त, महामगर मच्छकच्छभाहार गाइ
 तिभि धुसुमार सावय समाइय समुद्धायमाणक पूर घोरपउर
 फापरजण त्रिययकपण, चोरमारसंत महम्मय भयंकर पतिभय
 उप्पासणग अणोरपार आगात्त येव निरवळ उप्पाइय पवण
 धयित्त नोत्तिय उवक्यरितरग दरिय अतियेगवेग अफरुपहसुच्छु-
 रत्तफच्छुइ गभीर विपुलगडिजय गुणिय मिग्घाय गरुय निवतित
 सुदीइ नीहारि पूरसुधत गंभीर धुगधु।तसइ, पडिपइरुभत
 जणपरफजसुइइ विसाय कसियतरजाय उवसग्ग सइस्स

संक्रुलं बहुप्पाइयभूय, विरचित षलिहोम धूवउवचार-दित्र
रुधिरच्छणाकरण पयतजागेपयय चरियं, परियंत जुगंतकाल
कप्पोवसं, दुरंतमहानई नईवइ महाभीमदारिसाणिज्जं, दुरणु-
च्चर, विसमप्पवेसं दुक्खुत्तारं दुरासयं लवणसलिल पुणं
असिय सिय समूसियगेहिं दच्छ (हत्थ) केहिं वाहणेहिं अइ
वइत्ता समुहमज्जे हणंति गतूण जणस्स पोते, परदव्वहरा नरा
निरणुकपा निरवयक्खा गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मडं-व-दोण-
मुह-पट्टणा-समण्णिगमजणवते य घणसभिद्धे हणंति, थिर-हियय-
छिन्नलज्जावदिगह गोग्गहेय गेरहंति, दाण्णमती णिक्खिवा
णियं हणंति छिंदंति गेहसंधि, निक्खित्ताणिय हंरित घणधन्न
दव्वजायाणिजणवयक्कुलाणं णिग्घणमती परस्स दव्वहिं जे
अविरया । तहेव केई अदिन्नादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संच-
रता चियकापज्जलिय सरसदरदड्ढ कड्ढिय कलेवरे, रुहिर
लित्तवयण अखतखातिय पीतडाइणि भमंत भयंकरं, जंबुयक्खि-
क्खियंते, घूयकय घोरसहे वेयालुट्टिय निसुद्ध कह काहित-
पहसित बीहणक निरभिरामे, अतिदुब्धिगंध बीभच्छुदरि-
साणिज्जे, सुसाणवण सुन्नघर लेण अंतरावण गिरिकंदर विसम
सावय समाकुलासु, वसहीसु, किलिस्संता सीतातव सो सिय-
सरीरा दड्ढच्छुवी, निरय तिरिय भवसंकड दुक्खसंभार वेय-
णिज्जाणि पावकम्माणि संचिणता दुल्लहभक्खन्न पाण भोयणा,
पिवासिया, भुंभिया, किलंता, मसक्कुणिमकंद-मूल जर्किचि
कयाहारा, उव्विग्गा, उप्पुया, असरणा अडवीवासं उव्वेति वाल-
सत संकण्णिज्जं । अयसकरा तक्करा भयंकरा कास हरामोत्ति
अज्जदव्वं इति सामत्थं करेति गुज्जं । बहुयस्स जणस्स कज्ज-
करणेसु विग्घकरा मत्त-पमत्त-पसुत्त-वीसत्थ-छिइघाती, वसण-
व्भुदएसु हरणवुद्धी, विगव्व रुहिरमहिया परेति नरवति मज्जाय
मतिकंता, सज्जणजणदुगुल्लिया सकम्मोहिं पावकम्मकारी असुभ-

परिणया य दुक्लभागी, निष्वाहल हृहमनिष्पृहमया इहलोक
 येव किञ्चित्सता परद्वयहरानरा बसण सयसमावयणा ॥
 सू० ४। ११ ॥

छाया—“अपरे इत्यशीर्षकम्पठ्या” संप्रामेऽपि पठन्ति, समद्वयद्वय परिकुरोत्यो-
 दित-विद्युत्पृ-गृहीताऽऽयुधप्रहरणा माहीवर-बमगुण्डिता भाविद्यवाकिकाः कषय-
 कष्टकिता पर.सिरोमुल्लसदकण्ठतोल मायिवर (इत्यपासितवर) फलक-
 रथित प्रहकर (समुदाय) सरमध सरचापकर करम्भित-सुनिसितसर-
 बर्ष चटकरक मुक्यमान धनचण्डवेगपारातिपातमार्गे, अनेकधनुमण्डलाम-
 सधितोच्छलितसृष्टि कनक धामकरगृहीत कोटक निमल निष्कृष्ट-सङ्गप्रहार प्रवृत्त
 (प्रहस्त) कुन्त-सोमर-चक्रगदा-परशु-मुसल छाहक-शूल-कुट्ट-मिन्दिपास (पण्डित)
 सत्यक-यद्विश-भर्षेष्ट कुपय मौष्टिक-मुद्गर-वरपरिप-यन्त्रप्रस्तर-द्रुहण-सोय-कुपेयो-
 पीठ—कक्षिते इलोप्रहरण—विर्वाधकायमान (मिळिमिळिमिळत्) क्षिप्यमाण-
 विद्युत्गवळ-विरथितसमप्रभनमत्तले भुङ्गप्रहरणे महारण शंलभेरी-वरसुर्य-मपुर-
 पटुपहाऽऽइत-निनादगम्भीर—मन्दितप्रसुम्प-विपुळपोषे, ह्य-गज-रय-योष-
 स्वरितप्रसूतोद्धत—समोम्भकारबहुळे, कातर—नर-नयन—हृदय—व्याकुलकरे
 विद्युत्सितोत्कटवरमुकुट—किरीट कुण्डलोलुहामाटोपिके, प्रकटपताकोष्पित्त-ध्वज-
 वेजयन्ती-धामर-वसुचक्रान्धकारगम्भीरे, ह्यद्वेषित हरित—गुल्लगुलावित-रथपन-
 पनाविन पद्मविहरहरावितास्कोटिषधिनादे सोल्लुष्ट (सेंटित) विपुष्टाकट-
 कण्ठकृन्-शब्द—भीमगर्विते सहेसहस्रद्रुप्यत्कळकरवे भाशुनित—वदनद्वे,
 भीमदनाधरोसगाहदष्टे सद्यहरसोपनकरे, धामबदल—तीव्ररत्ननिर्हारिताचे
 वैरदृष्टि-द्रुदपेटित—त्रिबलीकुट्टिक—भुकुटि—कलकंभाटे, धयपरिणय—नरमदस-
 विरम-विजग्मितबळे बमगुरस-रय—प्रधावितसमरभटा, आपवित-छच्छाप-
 य प्रदारसाधिता समुत्तिष्ठन्वाद्रुयुगळ-मुळाह्रास-पृथुवद् बोल (कोडाहळ)-
 बहुळे रुररकळकावरलुगृहीत-गजवर—प्राप्यमान दस-भट—घटपरस्यप्रभन-
 मुदगर्वित—विशानिःकराधि—रोपारविताभिमुच—प्रहरधिसररिहर-प्यग्निकाचे,
 अपवित-निद्रुद-मिस-रचदित-मगळित-दधिरकृतभूमिकदम—प्रारसन् (चित्त-
 पित्) यध, कुक्षिरारिगळुठद—निर्भेडिताऽऽत्र पुनपुगावमाण-विद्युत्-ममाऽ-
 ६१-विद्युत् गाडरचनहार मूर्धित्त-सुद्विद्युत्विश्रापकरणे इत्यथोप—प्रमपुरागोशाम-

खेडग निम्मल निक्किट्ट खग-पहरंत कौत-तोमर चक्र-गया-परसु मुसल लंगल सूळ
 भिंडमाला सव्वल-पट्टिस-चम्मेट्ट-दुवण मोट्टिय मोगगर-वर फलिह-जंत पत्थर-
 तोण-कुवेणी-पीठ-कलिय ईलो पहरण मिलि मिलि मिलत स्रिप्पंत विज्जुज्जल
 चित्त समप्पहणभतले) अनेक धनुष और मण्डलाग्रखण्ड विशेष, तथा फेंकने को नि
 हुई तथा उछलतो हुई शक्तियों त्रिशूल, और बाण तथा दायें हाथ मे लिये एहु प
 फलक, निकली हुई उज्ज्वल चमकदार खड्ग, प्रहार में प्रवृत्त कुन्त-भाले, तोमर
 चक्र, गदा, परसु-कुठारविशेष, मृशाल, लांगल, हल, शूल और लकुर-दडा, भिंड
 शस्त्रविशेष, शव्वल-भाला, पट्टिस-अस्त्रविशेष, चर्मेट्ट—चमडे में दधा प
 द्रुघण—एक प्रकार का मुद्गर, मौष्टिक—मुष्टि से आने लायक प
 मुद्गर और वही आगल—वर परिधा, यन्त्र प्रस्तर—गोफण भादि के पत्थर, द्रु
 धक्का देकर वृक्ष गिराने का साधन, तोण-तूपीर, कुवेणी, पीठ-आसन इन प्रहरण
 युक्त रहने वाले तथा ईलो—एक प्रकार के तलवार विशेष भोर फेंके जाते हुए
 चिकाहट युक्त अन्य प्रहारों से उज्ज्वल विजली को प्रभा के समान बनी है दोस्रि जि
 ऐसे भाकाश तल से युक्त तथा (फुड पहरणे) जहा प्रहरण शस्त्र खुले हुए हैं
 सामम मे, फिर (महारण-सख-भेरि-वरतूर-पउर-पडुपदहाहय - गिणाय-ग
 णदित्त पम्भुभिय विपुल घोसे) महारण सम्बन्धी शंख, भेरी और वरतूर के
 तथा स्पष्ट ध्वनिवाले बजाये गए पटाह के गम्भीर निनाद-ध्वनि—से जो प्रसन्न
 भयभीत लोकों के विस्तोर्ण घोष-कोला हल से युक्त है (हय गय रह जोह ह
 पसरित उद्धंत तमघकार बहुले) घोडे, हाथी, रथ और योद्धाओं के गमनम
 से शोभ्र फैला हुआ रज ही जहाँ अतिशय प्रबल अन्धकार है वैसे (कातर नर प
 हियय वाचल करे) कायर मनुष्यों के नेत्र और हृदय को व्याकुल करने वाले (इ
 लिय उद्धड-वर मउड-तिरोड - कुडलोडु दामा डाविया) ढिलाई से चञ्चल
 अघ्निक ऊचे जो उत्तम मुकुट तथा तिरोट-तीन शिखर वाला मुकुट विशेष
 कुण्डलध नक्षत्र माला नामक आभरण विशेष उन से जो चमक और आटोप
 है, (पागड-पडाग-ऊसिय ज्हाय-वेजयति चामर चलत उच्छध-कार गभीरे)
 को गई पताका तथा ऊंची उठाई हुई ध्वजा और वैजयन्ती—विजय सूचक
 फायें-और चलते हुए चामर व छत्रों के कारण जो अन्धकार से गम्भीर अ
 अति अन्धकार वाला है (हय हेसिय हत्थि—गुळ गुलाइय रह घण घणाइय पाइ
 हर हराइय अप्फाडिय सीहनाया) घोडों का दिन दिनाना, हाथी का गुळ गुळ

दग्ध कृष्टकृष्टेवरे, रुधिरसिप्तवदनाऽऽतस्त्रावितपोतडाकिनीभ्रमपभयद्वरे चन्द्रुक-
 कृतस्त्रीकोविदशिशते, धुकृष्टधोरसद्वे वेताकोशियतनिशुद्ध (विशुद्ध) कइकहापमान-
 महसिवभयानकनिरभिरामे, अतिदुरभिमग्न्यशोमस्सवर्शनीये इमशान-बन-शून्य-गृह-
 छपनान्तरापण—गिरिकन्बराविषमश्रापदसमाकुआसु वसतिपु छिश्यन्तः, शोताऽ-
 तप शोपितशरीराः, दग्धकृष्टवयो निरयतिर्यग्भबसङ्कटदुःखसम्भारवेदनोपानि-
 पापकमायि सञ्चिन्वन्तो दुर्लभमक्ष्यान्न पानभोजना पिपासिताः, श्माता छिद्य-
 माना मांसकुक्ष्यपकन्दमूत्रपशिकञ्चितकृताहारा, सविमता वृत्तुदा अक्षरणा जटबो-
 वासमुपयन्ति ब्याछशतसङ्गनोम् । अयशास्त्रास्तरकरा मयकुरा कस्य हराभोऽद्य-
 द्रव्यम् ? इति सामर्थ्यं कुवस्मिगुह्यम् । बहुकस्य जनस्य काय कारणयो विप्रकराः सत्त-
 प्रमत्त-मसुप्त-विद्यस्त छिद्रपातिभो व्यसनाभ्युदययोहरणशुद्धयो वृकाईव रुधिरमहिता
 पयटन्ति, (पयन्ति) सरपविमयोदामतिक्रान्ताः, सञ्चमजन सुगुप्सिता, स्वक-
 मभिः पापकर्मकारिणोऽसुभपरिणवाश्च दुःखभागिनो मित्याऽविद्यदुःखाऽतिदृष्ट-
 मानसा इहलोके वैव छिदन्तः परद्रव्यहराः, नरा व्यसनशत समापन्नाः ॥
 सू० ४ । ११ ॥

अन्वयार्थ—(अक्षरे) दूसरे-स्वयं छन्दे वाले राजा (रणसोसख खड्गकला)
 संप्राम के अग्रभाग में अपने सङ्घ को पाने वाले (सगामभि) संप्राम में (अतिवयति)
 मृप ही मृप पड़ते हैं (समस्त बद्ध परिवर लपोसिय विषपट्ट गहिपावृहपरखा)
 सेवारी किये हुए, कवच बांधे हुए, शिह पद को मस्तक पर मजबूत बांध कर जो
 प्रहार करने के साधन-विभिन्न आयुधों को ग्रहण किये हुए हैं फिर (माहियर बग्म
 गुहिया) बलवर व सत्तम बर्मे तिरस्त्रम्य-से सुरक्षित रहने वाले (वाविद्ध वाडिका)
 मोह की जाती पहने हुए (कवच कंकडहवा) कवच से कटि मुक्त शरीर वाले (हर
 सिर मुर बद्ध कंठ तीण माहववरक्याह रचित पहकर शरदस पर भाव कर करंजिव
 मुनिवित शर बरिस पद करक मुपव घण खडवेग द्वारा निवाय मग्गे) भिन्हति
 छातो के साथ गळे में लू से मुह वाले तूणीर बांधे हैं तथा हाथ में लिये हुए प्रधान
 पाटियों से जिन्होंने दूसरे के शस्त्र प्रहार को निरुद्ध करने केलिये समूह बना लिया है
 तथा वेग वाले या हवयुक्त एवं हाथ में कठोर धनुष को छिये हुए हैं और धनुषारिभों
 से स्त्रीयेगये अतिशय तीव्र बाणों की मेघ के समान वेग से होने वाली धारा वृष्टि
 का जदों माग है (अनेग धनुर्महत्तग संधितावृष्टिधिसधि-कष्यग-बाम कर गदिय

पगलिय रुद्धिर क्त भूमि कदम चिलि चिल्लपहे) बाण आदि से वीधे गये, अच्छी तरह कटे हुए ओर जो शरीर विदारण किये गये हैं उनके देह से, गलते हुए रक्त से भूमि पर के मार्ग, क्रीचड से भरगये हैं ऐसे, तथा (कुच्छि-दालिय-गलित रुलित निभेह्लत फरु फुरतऽविगल मरनाहय विकय गाढ दिश पहार मुच्छित रुलत वैभल विलाव कलुणे) कुक्षि—पेट मे विदारण करने से जहाँ गला हुआ रक्त बहता है और भूमि पर घायल लोग लुडक रहे हैं, तथा कङ्गों को पेट से आँों निछालदी गई है, (फुरफुरायमाण) धूजते हुए और जो ऋद्ध से विकल इन्द्रियों को विरुद्ध वृत्ति वाले हैं तथा जो मर्मस्थल मे ध्याहत हैं व जिनको जुरी तरह से गाढ प्रहार दिया गया है, इक्षीलिये जो मूर्छित होकर जमीन पर लौटते और विह्वल घने हैं, उन सबके विलाप से जो स्थान किङ्कणा जनक है वहा (ह्य जोद भजंत तुरग उहाम मत्त कुजर परिसाकित जण निव्वु कच्छिन्न घय भग्ग रइ वर नट्ट टिर करि फलेवरा किन्न पतित पहरण विकिन्नाभरण भूमि भागे) बरे हुए सैनिकों के श्लेच्छा से इधर उधर फिरते हुए घाडे, मद मस्त हाथी और भयभीत गनुष्य तथा 'नितुक च्छिन्न'—निर्मूल कटो हुई ध्वजार्ये और टूटे रथ तहाँ दिखाई पडते हैं, फिर कटे हुए मस्तक वाले हाथियों के कलेबरो से भरा हुआ तथा गिरे हुए शस्त्रास्त्र और विखरे हुए अलङ्कारों से जहाँ का भूमदेश युक्त है (नच्च त कवध एच्च भयकर वाचस परिसेत गिद्ध संडल अशतच्छायधकार गर्भीर) नाचते हुए—कवध—बिना शिर के देहों को प्रचुरता वाला तथा डरावने कोए और चारों ओर फैलते हुए गिद्धों के भ्रमण करते हुए मण्डल की छाया से जो गहरे अन्वकार वाला है, ऐसे संग्राम मे (बहुवसुहविकपित्त-व्व) देव और वसुधा को करिगत करने वालों के समान वे राजाडोग, (पञ्चस्व पिस्वण) साक्षात् पितृवन इमशान के जैसे (परमद्धहोइरणग) परम-रौद्र और भय उत्पन्न करने वाले (दुण्णवेसतरग) दामान्य जनों के लिये कठिनाइ से प्रवेश पाने योग्य (संग्राम संकड परवण) और संग्राम से गहन पूर्ण, ऐसे परधन को (महंता) चाहते हुए (अभिवयति) उद्य समर युद्ध मे कूद पडते हैं । (अवरे पाइक्क चोरसंघा) राजाओं से भिन्न दूसरे पैदल चोर समूह (सेणावति चोरवद् पागड्ढिकाय) और चोर सघ को प्रेरणा करने वाले सेनापति जो (अडवी देस दुग्गवासी) अटवो के बुर्ग में रहने वाले (काल-हरित-रत्त-पीत-सुकिङ्ग अणेगसय चिधपट्टवद्धा) फाले, हरे, लाल, पीले और धीले ऐसे पाचों रंग के सैकडों चिह्नपट्ट-

तथा रथों का घर पराना और पैदल सैनिकों का हर हर भादि शब्द करना ताड़ बनाना
 भीर सिंह नाम करना फिर (खेडिय विपुद्दुद्ध कंठ गण सह मीम गम्भिर) सेंटित
 सीत्कार करना, बिरुप घोष करना तथा उत्कृष्ट-मानस्य की महा प्वनि और कंठ से
 किया हुआ शब्द ये ही जहाँ मेघ को गर्जना है ऐसे (सय राह हसत हसत कळ
 कळरये) एक बेजा-एक समग-से, हसते वा रुद्र होते हुए खोकी के कळ-कळ शब्द
 से व्याप्त (भास्विद्य-वयणरुद्रे) कुल माटे किये हुए व फुलाये हुए मुँह से जो रुद्र
 भवानक है (भीम-इसजापरोद्ध-गाढबद्धे) भयङ्करता के साथ भिन्हीनि
 पातों से मोचे के शोष को गाढ काटा है जैसे शोग बाजा (सप्य हरणुग्नय करे)
 जो शब्दों पर प्रहार करने में तत्पर घोडाभों के हाथ बाजा है (अमरिष बस
 विष्वरत्त-निहारितच्छे) जहाँ क्रोध बरा भासों अत्यन्त छाळ और मिश्रणी हुई हैं
 (बैर-विद्धि कुण्ड-विद्धिय-विषकी-कुडिल-मिठडि-कय मिठाडे) बैर को तत्पर से
 जो कुण्ड और चेटा युक्त है छटाट पर तीन रेखाओं से बळ-टेडो-जहाँ भुङ्कि
 बडो हुई है, ऐसे हथों से संप्राम भूमि युक्त है (वह परियण नर सहस्र विष्म
 विरमिप बडे) मारने के विचार बाडे हजारों मनुष्यों के परा क्रम से जो विस्तृत बळ
 बाजा है जहाँ जहाँ प्रहार करने वाले हजारों सुभतों का बळ प्रवर्धित होरहा है
 (बर्मातर-गुग-रह-पहाविय समरमहा) जहाँ लड़कते हुए घोडों के रथ से
 संप्रमिष घोडा जोस के साथ फूटे हुए हैं (भावदिय छेय ज्ञापक पहार
 साधिता) जो लड़ने को माचे हुए रुद्र और हथके प्रहार से साधन किये हुए हैं
 (समुसवियबाहुगुगळ) हथों की अधिकता से जहाँ दोनों हाथ छठाये हुए हैं (मुक्क
 हास-पुळ-त-योठवहुळे) मुक्काहास-महाहास करने वाले और फूँकर करने वाले
 मनुष्यों के कळ कळ शब्द की अधिकता बाजा (फुर फळगा बरज गदिय गयबर
 परियत हरिय मळ कळ परोप्पर पळगमुद्ध गम्भित विठसित बरासिरोष हरिय अमिसुद्ध
 पहरित छिम करिकर निर्मागत करे) स्फुट शब्दवा लकार पाने बसकते हुए फळक और
 सम्राट का प्रहण किये हुए शत्रु दल के हाथियों के कुम्भस्वज पर बड के बतको मारने
 की अभिजापा करने वाले जो वपयुक्त दुष्ट घोडा हैं वे परत्पर लड़ने को लगे हुए हैं
 और युद्ध कला के विज्ञान में अद्भुत युक्त तथा उत्तम लड़चारों को कोप से निकाले
 हुए रोप से शीघ्र सामने प्रहार करते हुए भिन्हीनि हाथियों को सूँहें अटकों हैं और
 जहाँ जनेकों के हाथ भी संवित दिखाई पडते हैं (अवरुद्ध मिसुद्ध धिम अश्वि

समान (निरवलम्बं) आधार रहित (उष्णाय पवणधणित-नोल्लिय-उवरुवरि-
 गरगरिय-अतिवेग-वेग-चक्रु पद मुच्छरत-कथइ गंभोर विपुल गविजय-गुंजिय-
 तिग्घाय-गरुय निवतिन सुदोह नीहारि-दूर सुव्वंत गभोर-धुगधुगतसइं) उत्पात सम्भ-
 न्धो पवन से अतिशय प्रेरणा पाई हुई जो निरन्तर ऊपर उठने वाले तरङ्ग हैं गर्व युक्त
 की तरह सब वेगों की मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले, जिनके वेग से दृष्टि का मार्ग
 टुटका हुआ है, कहीं पर गम्भीर व मेघ ध्वनि की तरह विस्तीर्ण गर्जना रव से गुञ्जित, वाद्य
 विशेष के समान गुजन और निर्घात-विजली गिरने के समान शब्द अथवा व्यन्तरकृत
 महाध्वनि एव विद्युत् आदि भारी द्रव्य के गिरने की जैसी महाध्वनि होती है और
 बहुत दूर तक सुन पड़ने वाला जहाँ धुग इस प्रकार गम्भीर शब्द होता है (पडि-
 पद रुंभंत-जक्ख-रक्खस-कुहड-पिसाय-पडिगविजय-रुसिय-तब्जाय-उवसग सह-
 स्स सकुलं) मार्ग में चलने वालों के राह को रोकने वाले यक्ष राक्षस, कूष्माण्ड और
 पिशाच रूप व्यन्तर विशेषों के प्रति गर्जना और हजारों उपसर्ग अथवा यक्ष आदि
 के रोष और उनसे किये गये उपसर्ग सहस्र से जो सकुल है (बहूष्पाइय भूय)
 अनेक प्रकार के उत्पातों से युक्त (विरचित बलिहोम-धूव-उवचार-दिन्न रुधिर
 च्चणा-करण-पयत जोग-पयय चरियं) तथा बलिहोम और धूप से जिन्होंने देवता
 का पूजन किया एव रुधिर-अपना या अन्य का रक्त दिया और उस पूजा कर्म में
 प्रयत्न शील तथा नौका के अनुकूल दूसरे कार्यों में तत्पर ऐसे सायत्रिक-नौका
 व्यापारी से वह समुद्र सेवित है (परियत-जुगंतकाल-कप्पोवम) अन्तिम युग-कलि
 युग के अन्त काल-नाश काल के समान उपमा वाला (दुरत महानई-नइवई महा
 भोम दरिसणिज्ज) जो दुःख से अन्त मिलने योग्य गगा आदि बड़ी नदियाँ तथा
 अन्य साधारण नदिओ का स्वामो और महाभय जनक दर्शन वाला है (दुरणुच्चरं)
 दुःख से सेवन करने योग्य (विषमप्पवेसं) विषम प्रवेश वाले (दुक्खुत्तार) दुःख
 पूर्वक उतरने योग्य (दुरासय) कठिनता से पाने योग्य और (लवण सल्लि पुण्णं)
 खारे पानी से भरे हुए समुद्र को (असियसिय-समूसिय गेहि-इच्छतर केहिं) काड़ी
 व सफेद ऊंची की हुई पताका वाले, अत्यन्त दक्ष याने वेग से चलने वाले (वाह-
 गेहिं) वाहनों से (अइवइत्ता) प्रवेश करके (समुइ मज्जे गंतूण) समुद्र के भीतर
 जाकर (जणस्स पोते) व्यापारी के जहाजों को (हणति) लूटते-नष्ट करते हैं
 (परदव्वहरा नरा) दूसरे के धन को हरण करने वाले मनुष्य (निरणुक्का)
 निर्दय (निरघयक्खा) परलोक की अपेक्षा नहीं करने वाले हैं, (धण समिद्धे)

निदान के कपडे जिन्होंने बांध रखे हैं। और (सुदा) छोभी (परबिसप) दूसरे के प्रवेशों को (घण्टास कन्ने) घन के लिये (भमिहजति) छुटते-मारते हैं, (रम्यागरसागर) रमों की खान रूप को समुद्र (रम्यी सहस्र माता उवाङ्कुष वितोय पोव क्क क्क्ये क्कियं) हजारों तरङ्ग माता से आकुञ्ज तथा जल के अभाव से व्याकुञ्ज पेसे नौका व्यापारियों की क्ल-क्ल ध्वनि से मुक्त है (पायाळ सहस्र वायवस-वेग सल्लि-उत्तन्ममाण द्ग-रय-रयभकारं) हजारों पाताळ कक्षों में से वायु के साथ वेग सेऊपर उड्गता हुआ समुद्र जल ही जहाँ अक्षय रूप पूर्णमय अन्धकार है (वरफेण-पठर-भबळ-पुळ्पुळ-समुद्रिपट्टहासं) उत्तम फेन हो जहाँ अत्यन्त बबळ और सदा उठा हुआ अट्टहास है (मादय-विष्णुममाण पाभियबळ माह्लुपीबुक्षियं) हवा से निष्पन्न होते हुए जल के कारण को शीघ्र जलमात्र के समूह बाढा है (भविय समंतभो) और भी चारों तरफ से (सुभिय-लुक्षिय लो-सुभममाण-पवळक्षिय-वक्षिय-विपुळबळ-बळबाळ-महाणई-वेगहुरिय-भापूरमाय्य गंभीर-विपुळ आवच बबळ-भममाण गुण्णमापुच्छंठ पयोणमस-पाणिय पमाविव कारकठस-पयड-वाळक्षिय-सल्लि-पुट्ट-वीतिकल्लोळ संकुळ) वायु आदि से हुक्म किया गया, लुक्षिय-वीर की मूमि पर टकराया हुआ, बड़े मत्स्य आदि के कारण अत्यन्त व्याकुञ्ज किया गया और मत्स्यवित-पहाड आदि से रोका गया-फिरकर अपने स्वान की और जाता हुआ जहाँ पानी का अधिक विस्तार में बंढ है, तथा वही मदिनों के वेग से जो जमीं भरा जा रहा है व गंभीर और अधिक फैले हुए भावतों में बपळता के साथ प्रमथ करते हुए, व्याकुञ्ज होते उड्गते, या नीचे गिरते हुए पानी तथा बीचों से मुक्त है वेग मुक्त गतिवाली अत्यन्त कठोर, रौद्र तथा व्याकु-जता मुक्त बळबाळी और विदीपे होती हुई तरङ्ग बाढा से जो संकुळ है, (महामगर मच्छ कच्छमोहार-गाह-विमि-सुमुमाट-सावय-वमाहय समुद्राममाय्यक वूर-धोर पळर) फिर महा मगर, मत्स्य कच्छप, बीहार-बळ अन्तु विशेष प्राह, विमि-बडा मत्स्य सुमुमार और आपह-ईसक वीव इनके परस्पर एक दूसरे से मारे गये और प्रहार करने को उठे हुए बहुत समूहों से जो भयानक है। (कबर अय विव कल्पं) कबर समुद्रों के हृदय को मुजाने बाढा (धोरमारसंठ) मयहूर सप्प करने बाढा (महाम्मथ) परम भय देने बाढा (मयकर्) मयहूर (वतिमथ) प्रवेक वस्तु में मय पैरा करने बाढा (ज्तास्यण) डराने बाढा-शास अत्यन्त करने बाढा (अयोपारं) विसर और विबाई नदी देवा देवा (आगासवेव) और आकल

कन्दरा रूप (वसहीसु) निवासस्थानों में (किलिस्सता) छेश पाते हुए (सीतातप-सोसियसरारा) शीत-सर्दी व गर्मी से सुग्रा एे हुए गरोर वाले (दडुच्छवी) जली हुई चमडो वाले अर्थात् सर्दी आदि से जले शरीर वाले 'वे लोग' (निरय-तिरिय भव संकड-दुक्ख समार वेयण्णज्जाणि) नरक तिर्यञ्च भव रूप गहन वन में होने वाले निरन्तर दुःख की अधिकता से वेदन करने योग्य (पाव कम्मणि) पाप कर्मों को (सचिणता) सचय करते हुए 'रहते हैं' (दुल्लह-भक्खन्न पाण भोयणा) भक्ष्य-खाने योग्य अन्न और जल आदि का खाना पीना भी जिनको दुलभ है (पिवासिया) प्यासे (झु झिया) भूखे (क्लिता) थके हुए (मस कुणिमकद-मूल जक्किचि-कयाहारा) मास, शव-मुर्दा और कन्द मूल जो कुछ भी मिला उसी का आहार करने वाले हैं (उव्विग्गा) उद्वग युक्त (उप्पुया) उत्सुकता वाले (अस्रणा) रक्षक से हीन (अडवी वास) अटवी के निवास को (उव्वंति) प्राप्त करते हैं, जो (वाल सत सकण्णज्जं) सैरुडों भुजग आदि से शङ्का जनक है (अजसकरा) अकीर्ति करने वाले (भयकरा-तक्करा) भयङ्कर चोर (अज्ज) आज (कास) कित्त का (ढव्व) द्रव्य (हरामोत्ति) हरण करें (इति) इस प्रकार (सामत्थ-गुञ्ज) गुप्त मन्त्रणा-विचार (करेति) करते हैं (बहुयस्स जणस्स) बहुत से मनुष्यों के (कज्ज-करणेसु) कार्य करने में (विग्घकरा) विघ्न करने वाले (मत्त-पमत्त-पसुत्ता-वीसत्थ-छिद्धवाती) मत्त-नशे में प्रमत्त वे सुध सोये हुए और विश्वास किये हुए लोगों का समय पर हनन करने वाले (वसणव्भुदण्णसु हरण बुद्धी) व्यसन—विपत्ति और अभ्युदय-उन्नति के प्रसङ्ग में हरण करने को बुद्धो वाले (विगव्व रुद्धिर महिया) वृक्ष-व्याघ्र के जैसे रक्त का चाहने वाले (परेति) चारों ओर भ्रमण करते हैं (नर-वाति मज्जाय मतिक्कता) राजाओं की मर्यादा को उलंघन करने वाले (सज्जण जण-दुगुछिया) सज्जन लोगों से निन्दित (पाव कम्मकारी) पाप कर्म करने वाले (स-कम्महिं) अपने कर्मों के कारण (असुभ परिणया) असुभ परिणाम वाले (य) और (दुक्खभागी) दुःख के भागी होते हैं (निच्चाइल-दुइमनिव्वु इम्पणा) सदा मज्जिन, दुःख का कारण और अशान्त मनवाले (परदव्वहरानरा) दूसरे के धन को चुराने काले मनुष्य (इह लोके चेष) इस संसार में ही (किलिस्सता) छेश पाते हुए (वसणसय समावण्णा) सैकड़ों कष्टों से घिरे रहते हैं ॥ सूत्र ४।११ ॥

भावार्थ—“ सूत्र के आदि में चोरों के स्वभाव, प्रवृत्ति और चोरी करने के प्रकार से, चोरों के अघान्तर भेद बताये गये हैं । तत्पश्चात् सैन्य बल को साथ लेकर

घन से समृद्ध (गामागर नगर-खेड-कन्नड-मंडव-दोणमुद्-पट्टणसम-निगम जण-
 बतेय) ग्राम, भाकर-सोन चाँदी आदि १३ अर्थात् स्वान नगर, टेट-धूली के कोट
 बाधा, कबट-छोटा नगर मंडव चारों ओर जिसके पास कोई वृक्षवाणी नहीं हो
 द्रोण मुख—बल माग व त्यक्त माग दोनों से आने योग्य सहर पत्तन—रत्न मूमि या
 कळ त्यक्त गत दोनों मार्गों में स किसी एक माग से आने योग्य, आमम-तापस आदि
 का निवास स्वान या तापसों से बसाया गया निगम-व्यापारिक क्षेत्र और जनपद
 देश को (हणति) वे छून्ते-नष्ट करत हैं (विर हिय-छिप्त छज्जा) घ अपने
 अथ में स्थिर चित्त-दृढ चित्तार याळे भी (छज्जा रहित होते हैं (प्रदिगाद गोम-
 हेय) ममुष्य को बन्दी बनाना और गौओं का पकड़ने रूप कार्यों को (गेण्ति)
 करते हैं (बाडगमवी-खिडिया) दारण मुदि बाळ ये निद्वय (गियं) सुद को
 या निमो छोड़ों को भी (हणति) मारते हैं (छिद्वति गेडसबिं) घर में सौच लगाते हैं
 (य) और (जणवप कुजाण) छोड़ों के घर के (निस्त्रिज्जाणि) रखते हुए (मज
 वम-रम्बजावमि) घन घाम्य रूप द्रव्य समूर्त्तों को (श्रिगिष्यसमती) निद्वय बुद्धि
 होकर (हर्ति) हरण करते हैं (जे) जो (परस द्यवाहिं क्विरया) वृक्षों के
 द्रव्य को छेद से निद्वय नहीं हैं अर्थात् जिन्होंने वृक्षों के द्रव्य को छेदना नहीं छोड़ा
 है (तहेव केई) इसी प्रकार कई जाग (अदम्ना दणं गयेसमाखा) बिना दिये
 द्रव्य को हटते हुए (क्यका कालेसु संवरता) समय और असमय में क्रियते हुए
 (चिकका-पत्रसिय—सरस वरवहु—कडुव कळेरे) चित्तों में बलते हुए
 मांस आदि मुक्त, बोधे बलते हुए और मत्तक से व हर स्त्रीय गय कळेवर बाळे तथा
 (उदिरसित्त-बभ्य-अक्षत—काविय—पीत—डा गि मन्व भयकर) रक्त से भरे
 हुए सुद बाळे मद्यत—पूरे सुवक, खावे हैं और जिन्होंने इनके रक्त का पान किया
 है ऐसी डाकिनियों के भ्रमण स जो मयहूर है (जनुयक्रिन्वयते) बंधु को भी
 स्त्री स्त्री रूप चिति बाळे तथा (धूपकय पार सह) बंधुओं के धीर शत्रुओं से मुक्त
 (वेयाछुद्वि—निमुड क्व—कहित—पहसित—बीहयक निरभिरामे) के तारु से
 किया गया सव्यान्तर बाळा को कद कद रूप प्रहसन से मयहूर और अक्षोममीक है
 (अति बुक्तिगाव—बीभक्ष—इरिसपियजे) अमन्त तुगम्य और मयहूर दर्शन
 बाळे इमसान में तथा (सुसायावव—सुजपर—छेय अतदावक्षगिरि कंदर-दिसम-
 सावय समकुछेसु) समदान तथा सगळ का मृत्य पर, क्यत-पवत में आदि हुए पर,
 प्रथम क मय्य की तुक्तों और विवमता तथा हिसक अन्तुओं से व्याप्त पर्वत की

कन्दरा रूप (वसहीसु) निवासस्थानों में (किलिस्सता) क्लेश पाते हुए (सीतातप-सोप्तिग्रसरारा) शीत-सर्दी व गर्मी से सुखापे हुए शरीर वाले (दहूच्छवी) जली हुई चमडो वाले अर्थात् सर्दी आदि से जले शरीर वाले 'बे लोग' (निरय-तिरिय भव सकड-दुक्ख सभार वेयणिज्जाणि) नरक तिर्यञ्च भव रूप गहन वन में होने वाले (नरन्तर दु ख की अधिकता से वेदन करने योग्य (पाव कम्माणि) पाप कर्मों को (सचिणता) सचय करते हुए 'रहते हैं' (दुल्लह-भक्खन्न पाण भोयणा) भक्ष्य-खाने योग्य अन्न और जल आदि का खाना पीना भी जिनको दुल्लभ है (पिवा-सिया) प्यासे (झु झिया) भूखे (क्लिता) थके हुए (मल कुणिमकंद-मूल जकचि-कयाहारा) मांस, शव-मुर्दा और कन्द मूल जो कुछ भी मिला उसी का आहार करने वाले हैं (उव्वग्गा) उद्वग युक्त (उणुधा) उत्सुकता वाले (अत्तरणा) रक्षक से हीन (अहवी वासं) अटवों के निवास को (उव्वंति) प्राप्त करते हैं, जो (वाल सत सकणिज्जं) सैकड़ों भुजंग आदि से शङ्का जनक है (अजसकरा) अकीर्ति करने वाले (भयकरा-तक्करा) भयङ्कर चोर (अज्ज) आज (कास) किस का (दव्व) द्रव्य (हरामोत्ति) हरण करें (इति) इस प्रकार (सामत्थ गुज्झ) गुप्त मन्त्रणा-विचार (करंति) करते हैं (बहूथम्म जणस्स) बहुत से मनुष्यों के (कज्ज-करणेसु) कार्य करने में (विग्गकरा) विघ्न करने वाले (मत्त-पमत्त-पसुत्ता-वीसत्थ-छिहवाती) मत्त-नशे में प्रमत्त वे सुध सोये हुए और विश्वास किये हुए लोगों का समय पर हनन करने वाले (वसणवमुदएसु हरण बुद्धी) व्यसन-विपत्ति और अभ्युदय-उन्नति के प्रसङ्ग में हरण करने को बुद्धो वाले (विगव्व रुहिर महिया) वृक-व्याघ्र के जैसे रक्त का चाहने वाले (परेति) चारों ओर भ्रमण करते हैं (नर-चाति मज्जाय मतिक्कता) राजाओं की मर्यादा को उल्लंघन करने वाले (सज्जण जण-दुगुछिया) सज्जन लोगों से निन्दित (पाव कम्मकारी) पाप कर्म करने वाले (स-कम्मेहिं) अपने कर्मों के कारण (असुभ परिणया) असुभ परिणाम वाले (य) और (दुक्खभागी) दु ख के भागी होते हैं (निष्ठाइल-दुदमनिव्वु इमणा) सदा मलिन, दु ख का कारण और अशान्त मनवाले (परदव्वहरानरा) दूसरे के धन को चुराने काले मनुष्य (इह लोके चेष) इस संसार में ही (किलिस्सता) क्लेश पाते हुए (वसणसय समावणणा) सैकड़ों कष्टों से घिरे रहते हैं ॥ सूत्र ४।११ ॥

भावार्थ—“सूत्र के आदि में चोरों के स्वभाव, प्रवृत्ति और चोरी करने के प्रकार से, चोरों के अघान्तर भेद बताया गये हैं। तत्पश्चात् सैन्य बल को साथ लेकर

परपत्र पर आक्रमण करने वाले छुटेरों का वर्णन किया गया है। वे छुटेरे चतुर द्विणी-इय, गज, रथ और पैदल रूप इन चार प्रकार की सेनिकों से पत्र, सत्र आदि विविध व्यूह बनाकर परपत्र को छूटते हैं। इनमें कई साहसिक राजा सेना को सहायता के बिना ही स्वयं मयूर संग्राम में प्रवेश करके दूसरों का घन हण करते हैं। केवल परपत्र के छात्रप से संग्राम करके दूसरों को छूटते हैं। राजाओं से मित्र पैदल चोर छप सेनापति आदि भटवा के दुर्ग स्थानों में रहकर विविध वर्णों के विह्वलकों को बांधे हुए दूसरों के प्रवेश को भी प्रहण करते हैं। जो हजारों बत्तक तरस तरसों से दुरवगाह है, ऐसे सागर में प्रवेश करके भी नौका आदि प्रबल छात्रनों से सम्बन्ध होकर कई दूसरे के बहालों को छूटते हैं। अनेक प्रामों को मरु कर देते हैं। पर की दीवालों को फोड़ते लोहों को मारते और सर्वस्व बचसैली छे छेते हैं। ऐसा मन्त्रिण आचरण वे लोग करते हैं जो परपत्र से अविरत हैं अर्थात् जो परपत्र की छात्रप से भयग नहीं हुए हैं। अक्ष-विना दिये हुए-बच को खोबते हुए वे छुटेरे समझान में जाते और गुप्तकों में प्रवेश करते हैं वहाँ पर खर्ची, गर्मी, मूक, प्यास, परिश्रम आदि सैकड़ों प्रकार के श्रेष्ठ करते हैं। रक्षागोन ऐसे मन्त्री वास को भी स्वीकार करते हैं। चोरों के समुद्र युद्ध तथा छूटने के प्रकार का विषय बपन मूक के अनुसार अन्ववार्त्त में कहा गया है। जो लक्ष है। सू० ४।११॥

मूल—सहेव केइ परस्स वष्य-गवेसमाणा गाहिता य हया य वदरुद्धा य तुरिथं अतिघाडिया, पुरवर समपिपिया, चोररगाह चारमड-बाडुकराय तेदिय कपडपपहार-निदय-आरकिन्वय कर फरुस-वयण-तडजण-गळण्ड-गुण्डल्लणहि विमया चारग बसहि पवेसिया, निरयवराहि सरिस तत्थवि गोमिय-पपहार वूमय-निवमकण्ड-कडुय-वदण-भेसयग मयाभिन्नुया अक्खि-त्त मिपंसणा मक्खिणवडि कड-निवसणा ठडोडाकथ-पासमग्ग पायपेहि [दुक्ख समुवीरयोहि] गोम्मिय भडेहि विविहोहि वधयोहि, किंते ?, हाडि-निगड-वाकरणुयकुदवगपरत्त-खोह संकख-हत्थंयुय-वडरूपहवाम कपिखोडणहि, असेहि य पवमा-दिपहि गोम्मिक भडोवकरयोहि दुक्ख समुवीरयोहि संकोडण

मोडणाहिं षडभ्रंति मंदपुण्णा । संपुह-कूवाड-लोहपजर भूमि-
घर-निरोह-कूव-चारग-कीलग-जूय-चक-वितत-बंधण-खंभा-
लण उद्धचलण-बंधण-विहम्मणाहि य विहेडयंता अवकोडक-
गाढ उरसिरषद्ध-उद्धपूरितफुरंत—उरकडग मोडणा मेडणाहिं
षट्वा य नीससंता सीसावेढ-उरुयावल-चर्पडगसंधि बंधण-तत्त-
सलाग-सूहया कोडणाणि-तच्छुण-विभाणणाणिय खार-कडुय-
तित्त-नावण-जायणा-कारण-सयाणि बहुयाणि पावियंता, उर-
कखोडी-दिन्न-गाढपेक्षण अट्टिक-संभग्ग-सुर्पसुलीगा, गलकालक
लोहदंड-उर-उदर-वत्थि पैरिपीलिता, सत्थंतहियय संचुण्णि-
यंगमंगा, आणत्तीकिंकरेहिं केति अविराहिय वेरिएहिं जेमपुरिस
सन्निहेहिं पहया, ते तत्थ मंदपुण्णा षडवेला-वडभ्रपट्ट-^१पाराइं-
ल्लिषकस लत वरत्त ^२नेत्तप्पहारसय-तालियंगमंगा, किवणा
संबंत-चम्म-वण वेयण विमुहियमणा घणकोट्टिम-नियत्त-जुयत्त-
संकोडिय-मोडिया य, कीरंति निरुचारा एया अनाय-एवमा-
दीओ वेयणाओ पावा पावेंति, अदंनिदिया वसट्टा षट्ट मोह
मोहिया परघर्णमि लुद्धा, फासिंदियविसय तिक्कगिद्धा, इत्थि-
गय-रूव-सद्-रस-गंध-इट्ट-रति-महित-भोग तणहाइया य धण-
तोसगा, गहिया य जे नरगणा पुणरवि ते कम्मदुक्कियद्धा, उव-
णीया राय-किंकराण तेसिं वहसत्थग पाढयाण, विलउली कार-
काणं, लंचसय-गेणहगाण कूड-कूवड-माया-नियडि आयरण-
पणिहि वंचण-विसारयाणं, षट्टुविह अलिय-सत्त जंपकाण पर-
लोक-परम्मुहाण, निरयगति गामियाणं, तेहि य आणत्त-जीय
दंडा तुरिय उग्घाडिया पुरवरे सिंघाडग- तिय-चउक्क-चच्चर-चउ-
म्मुह-महापह पहेसु, वेत्त-इंछाल उड-कट्ट-लेट्टु पत्थर-पणालि-
पणोल्लि-मुट्टि-लया-पाद-पण्हि-जाणु-कोप्पर-पहार संभग्ग माहिय

१—क. षट्पट्टग ।

२—क. विद्धि परिपीलिता ।

३—क. मंगु पंगा ।

४—क. पोरा इति वा ।

५—क. वेत्त ।

गन्ता, अङ्गारस कम्मकारणा, जाइ यगमगा कलुणा सुफोडफट
 गच्छक ताजुजीहा जायता पाखिय विगय जीवियामा, तयहा
 दिता वराणा तपिय ण कम्मति वज्जपुरिमेहिं पाखियता तस्थ य
 खर फरुस पडह घट्टित कूडग्गठ गाए रुट्ट निसह परामुट्टा घज्ज
 करकुट्टि जुय नियत्था, सुरत्त कण्ठीर गहिय विमुक्कल कठेगुण
 यरुक्कत अ विद्ध मल्लवामा, मरण मयुप्पयण सद आयतयेहुत्तु
 पियकिलिधगता, पुयणगुहिय सरीर रय रेणुभरियकेमा कुसु
 भगाक्खिण मुद्धया छिन्नजीवियामा, घुल्लता बज्जपाय्पे मीता
 तिखं । तस्य अथ छिन्नजमाणा सरीर विक्कल लोहिओक्खिता काराणि
 संमाणि आविपता पाषा खरफरुपएहिं ताक्खिज्जमाणवेहा,
 पातिक नर नारि सपरिबुद्धा, पेक्खिज्जता य नागरजणेषु बज्ज
 न वस्थिया पयेज्जाति नपरमम्मणेण कियण कलुखा अत्ताया अस
 रणा, अणाहा अवधवा अणु विप्पहीया विपिक्खिता विसोविस्ति
 मरण मयाव्विग्गा आघायण पडिदुवार सपाषिया अवल्ला सुत्तग
 विक्कग-निपददा, तयतस्थ कीरति परिकप्पियगमगा ठल्लविट्ठ.
 ति खखसातासु कई कलुणाइं यिक्खमाया अवरे यउरग वथिय
 पद्धा पव्वय कडगा पमुचंते वूरपात बहुविमम पत्थरभाहा अल्लय
 गय-स ए-मवय य निम्मदियो कीरति पावकारी, अङ्गारस खडिया
 य कीरति सुएपर सूहिं केइ उक्कत कन्नाडु नामा, उप्पाडिय
 नयण-दसण पसणा, जिट्ठिमदियच्छिया छिन्न-कल्लमिरा, पणि
 खंते, जिट्ठजत य असिणा मिट्ठिसया, छिन्न इत्थपाया । पमु
 चंते, जावज्जीव पपणा य कीरति केइ । पर वव्वहरणकुट्टा,
 कारगगल्ल-नियल्लसुयल्लकुट्टा, चारगायहतसारा सयणविप्पमुक्का,
 भिन्नजणनिरिक्खिया नितासा बहुजणभिकार सइक्कज्जायिता,
 (मल्लज्जाविया अवल्ला अणुवट्ट-खुडा पारसू सी उयइ-तयह वेयण
 दुग्घट्ट-घट्टिया, विवन्नमुह-विच्छुविया, विहक मतेक दुक्खला,

क्रिलंता, कासंता, वाहिया य आभाभिभूयगत्ता, परुठ नह-
 केस-मंसुरोमा, छेगमुत्तंमि णियगंमि खुत्ता तत्थेव मया अका-
 मका वंधिऊण पादेसु कद्धिदया खाहयाए छूढा, तत्थ य वग-
 सुणग-सियाल-कोल-मज्जार-वंद संदंसगतुड पक्खिगण-
 विविहमुह सयल विलुत्तागत्ता कय विहंगा केइ किमिणा य कु-
 हियदेहा अणिट्ट वयणेहिं सप्पमाणा सुट्टुकय जं मउति पावो
 तुट्टण जणेणं हम्ममाणा लज्जावण कायहोति सयणस्यवि दीह
 काल मया सता ॥ सू० ५ । १० ॥

छाया—तथैव केचिद् परस्य गवेष यन्त. द्रव्यं गृहीताश्च हताश्च बद्ध रुद्धाश्च त्वरित
 मति ध्राद्धिताः (भ्रामिताः) पुरवर समर्पिता श्रौरग्राह चार भट चाटुकाराणाम् ।
 तैश्च कर्पट प्रहार निदयाऽऽरक्षक खर परुष वचन तर्जन गढप्रहणो (च्छलो)
 च्छलना नाभिर्विमनसश्चारक वसति प्रवेशता निरय वसति सदृशोम् । तत्रापि
 गौलिमक प्रहार-दवन-निभत्सन कटुक वचन भेषणक भयाऽभिभूताः, आक्षिप्त
 निवसना मलिन दण्डि-खण्ड-निवसना, उत्कोचा लज्जा पार्श्वे मार्गेण परायणैः
 (दु ख समुदोरणै) गौलिमक भटैर्विधेर्वन्धनै, किं तानि ? (तद्यथा) काष्ठ
 (हडि) निगड-बालरञ्जुरु-कुदण्डक-चरत्र-लोहसङ्कल-हस्तान्दुक-वधपट्ट-दामक
 निष्कोट नैरन्यैश्चैवमादिकै गौलिमक भण्डोपकरणै, दु ख समुदोरणै. सङ्कोचन मोटना-
 भिवेध्यन्ते मन्दपुण्या, सम्पुट कपाट-लोहपञ्जर-भूमिगृह निरोध-कूप-चारक-
 वीलक-यूप-चक्र-वितत बन्धनरतम्भाऽऽलिङ्गनो—ध्वं चरण बन्धन-विधर्मणा-
 भिश्च विहेष्यमाना (बध्यमानाः) अवकोटक गाढार-शिरो बद्धोर्ध्व पूरित-स्फुर
 दुर-कटक मोटनाऽऽम्रेडनाभिर्बद्धाश्च, नि श्वसन्तः शीर्षाऽवेष्टकुरुकाऽऽवळन-
 चप्पडक-सन्धि बन्धन-तप्तशलाका-सूचीनामा-कोटनानि च (तानि प्राप्यमाणाः)
 सक्षणा विमाननानि च क्षार-कटुक-तिक्त-दापन (नावण) यातना-कारणज्ञानानि
 बहुकानि (बहूनि) प्राप्यमाणा । उरसिखोडी (दीर्घकाष्ठ) दत्तगाढ प्ररणाऽस्थिक-
 सभग्न-सुपार्श्वोऽस्थिका गल कालक लौहक्षण्डोर उदर-वस्ति परिपीडिता, मध्यमान
 हृदय सञ्चरिणताङ्ग प्रत्यङ्गा, आज्ञासि-किङ्करै केचिद् विराधित-वैरिकैर्यम पुरुषसन्निभै
 प्रहतास्तेत्र मन्दपुण्या, चडवेला (चपेटा) वर्धपट्ट पाराइ (लाह कुसो) छिवा-

कच-कच-धरत्र-भत्र-महारक्षत वाहिताऽङ्ग प्रत्यङ्गा कृपणा कम्बमान चर्म ज्ञप
 वेदना-विमुक्तिव-भामसाः धन कुट्टिम-निगड-युगळ-सङ्कोटित-मोहितम् क्रियन्ते
 निवृत्ताः । एता अ-याज्ञेयमात्रिका वेदना पापा मानुबन्ति । अद्यान्तेन्द्रिया बद्धांठी
 (विषय पीडिता) बहु मोह मोहिता, परपन्थेच्छुःकाः, स्वर्गेन्द्रिय विषय तीव्र गुदा,
 रोगरूप-शब्द-रस-गन्धेष्टरति-महित मोग एष्णारिवात्म्य जनतोपका गृहीताश्च
 ये नरगणा । पुनरपि ते कम दुर्बिदग्धा उपनीता-रामकिङ्कण्यां तेषां वचसाश्च पाठ
 कानां, विटपाक्षक कारकायां छद्वासत प्राहकार्णा कूट कपट माया-निकृति काऽऽच
 रण-प्रसिधिविद्यन-विशारदाना, बहुविधाभेद सत अल्पकानां, परलोक पराङ्ग-
 मुखानां, निरयगति गामिनाम् । श्रेय आम्न जीव (जीवित) वृष्णारवित मुद्
 धाटिता पुरचरे शृङ्गाटक त्रिक-चतुष्क-पत्रवर-चतुस्त्र महापथ पथेषु, वेत्रदण्ड
 ककुट-काष्ठ छेपु प्रस्तर-थयाळी-प्रजोरी मुष्टिखतो-पादपाण्डि-मानुसूपर महार संम
 ग्नाऽऽमवितगात्रा अष्टादश कम कारणात्-याविताङ्ग-प्रत्यङ्गा, कल्या, शुष्कैष्ठ
 कण्ठ गळक-वास्तु विद्या याचमाना पानीयं विगत मोविताशास्त्रुष्यारिता बरा
 कास्तदपि म कम्बन्ते, बभ्युबुदये धाद्यनामाज्येयमाणाः । तत्र च खर परुष पटह पट्टित
 कूट प्रह गाह रुट निस्तुष्ट पयमृष्टा बभ्य कर कुटो युग निवसिताः । सुरच्छ कजबीर
 प्रथित विमुकुळ कण्ठे गुण बभ्य वृथाऽऽविद्य मान्यहामानः मरण भवोत्पन्न श्वेषायत
 त्नहित हुत्तुषित १ क्रिष्ण गात्राः, शून्यगुणित घाटीर रकारेजुषुव केसाः कुम्भ
 कोत्कीर्ण मूषबसादिछमत्रीविताऽऽशा पूर्णमानावप केभ्यो मीतालिङ्गं विङ्गं वैव
 छिद्यमाना शरीर म्युत्काम्य आहितोक्षितानि काक्यी मांसाणि प्राद्यमाना पापा
 शरपरुषे (सरकरशठे) तादृशमान देहा, वादिक नर-नारी संपरिहृता मेक्ष्यमाणाश्च
 नागरभमेन बभ्यने पथिव्या प्रनीवते नागरमध्येन कृपण कल्या अत्राणा-भशरणा
 जनाया-अवा-धवा-बभ्युविषयीना-विभ्रेक्षमाणा-दिशोदिशं मरणमयाह्रमाः, आधा-
 तन प्रतिहार सम्प्रापिश अथम्या शूद्राश्च विद्वानभिन्न देहा, स्ते च तत्र क्रियन्त परि-
 कल्पिताङ्ग मस्यङ्गा । ब्रह्मभ्यगते पुष्टशारासु केचित्कल्याणि विद्यन्तेऽ, अपरे चतुर्द्व
 दद बदा पबत कटकात्ममुच्यन्ते दुर्यात बहुविधम प्रशरसदाः जन्मे च गत्र
 परत्य मछन निमर्षिता क्रियन्ते पापकारिणः, अष्टादश एण्डिताश्च क्रियन्ते, मुष्ण
 द्युभिः केपिदुरकोम क्योत्तनाश्च कत्यास्तित मयन-दसन वृपजा त्रिदग्निवाग्निताः,
 छिन्न कम तिराः, प्रणीयन्ते छिद्यन्ते चाऽसिताः, निर्बिषयाऽऽम हस्तपादा प्रमुच्यन्ते

भावजोव बन्धनाश्च क्रियन्ते, केऽपि परद्रव्य हरणं लुब्धाः, कारागला-निगल-युगल रुद्धाश्चारकाऽपहतसाराः, शयन (स्वजन) विप्रमुक्ता मित्रजन निरीक्षिता (निराकृता) निराशा बहुजन धिक्कार शब्द लब्जापिता अलब्जा अनुबद्ध क्षुधाः प्रारब्ध शोतोष्ण लृप्णा वेदना दुर्घटा घट्टिना-विवर्णमुख विच्छन्नयो विफळ मलिन दुर्वलाः, क्लान्ताः, काशमाना व्याधिताश्च आमाभिभूतगात्राः प्ररूढ नख-केश श्मश्रुलोमानः पुरीष (छग) मूत्रे निजके क्षिप्ताः, तत्रैव मृता अकामका बध्वा पादयोराकृष्टा खातिफार्या क्षिप्ताः, तत्र च वृक शुनक-शृगाल-कोल-मार्जार चण्ड सन्दंशक तुण्ड पक्षिगण विविध मुख शकल विलुप्तगात्रा कृतविभागा, (विभगा) केऽपि कृमिमन्तश्च कथितदेशा, अनिष्टवचनैः शप्यमाना, सुष्ठुकृत यन्मृत इति पापः तुष्टेन जनेन हन्यमाना, लब्जापनाश्च भवन्ति स्वजनस्यापि दीर्घकालंमृता सन्त । सू० ५११२ ॥

अब चोरी का फल वर्णन करते हैं ।

अन्व०— (तद्देव) पूर्वोक्त प्रकार से (केह) कई (परस्त द्रव्य गवेसमाणा) दूमरे के द्रव्यों को दूढते हुए (गहिया) पकड़े गये (य) और (हया) मारे गये (य अद्भुद्धा) डोरी आदि से बाधे गये और रोके गए (य) और (तुरिय अतिघाडिया) जल्दी २ घुमाये गए तथा (पुरवर) नगर में पहुँचा कर (चोरगह-चार-भद-चाडु करण समप्पिया) चोरों को पकड़ने वाले, जेल के अधिकारी और चाडु-कार-सिपाही बगैरह को सौंपे जाते हैं (तेहिय) और उनके द्वारा (कपडप्पहार-निहय-आरक्खिय-खर-फरुसवयण-तवज्जण गलुच्छलुल्लच्छणाहिं विमणा) कर्पट-कपडे के कोरडे का प्रहार, दयारहित कोतवालों के अत्यन्त कठोर वचन आर तर्जना तथा गला पकड़ के पोछे हटाना, इन सब कष्टों से उदास होकर (चारक वसहिं) चारक वसति—जैलखाने में (पवेसिया) ले जाये जाते हैं, जो जैलखाना (निरयवसहि-सरिस) नरकावास के समान है (तत्थि) वहा पर भी (गोम्मिय-प्पहार-दूमण-निम्भच्छण-कडुय वदण-भेसणग भयाभिभूता) गुप्ति पाल के प्रहार, पीडा, आक्रोश और कटु वचन तथा भय जनक-ढरावने मुखाकृति आदि भय से अभिभूत होते हैं (अक्खित्त निर्यसणा) जिनके वस्त्र खींचे गए (मलिन-दडि खड-निवसणा) मलिन और फटे हुए चिथड़े पहने हुए (उक्कोडालव-पास-मग्गण-परायणेहिं) लौंगों से रिशवत व नजराना मांगने वाले [दुखों की उद्दीरणा करने वाले] (गोम्मिय-भडेहिं) गुप्तिपाल-अधिकारियों के द्वारा (विविडेहिं वधणेहिं) अनेक प्रकार के

वर्धनों से बांधे जाते हैं (किते) वे बंधन बीन से हैं ? 'बधर'—(इति निगट
 बाण रग्मुप कुर्वडग-वरत्त-ओइसंक्षस ह्ययदुय बयसपट्ट-दाम-कण्ठिओइणेहि) काष्ठ
 का खोडा, निगट-ओइ को पेडो, बाण-केसों की रग्मु-डोरी कुण्ड अन्त में डोरी
 बासा पासा, वरत्ता,-पमडे की डोरी और लोहे की संकल तथा इलाम्बुदुह—एक
 प्रकार का बंधन बधपट्ट पमडे की पट्टी, डाली का बना हुआ पौव का बंधन भी (
 निष्कोट रूप बंधनों से (अग्रहि य एवमादिर्णहि) और अन्य इस प्रकार के
 (गोम्मिक-भडोयकरणेहि) गुप्ति पाठ के महापञ्चय-विभिध साधन (दुक्क ससुदी-
 रणेहि) को दुःख को उत्पन्न करने वाले हैं उनसे (संकोड मोडयाहि) देह की
 सिकोडने व मोडने से (वग्गति) बांधे जाते हैं (मंयपुष्पा) मग्ग पुष्य बाडे
 (सपुड कवाड-ओइ पंजर भूमिपर-निरोइ इव चारग कोडमा-ज्य-सक-विक्षित-वधय्य
 संमाहय-कट्टकअण-बंधय-विहम्मप्याहि य) और काष्ठमय संपुट कपाठ छोड़े के
 विजरे और तल परमें रोक रजना रूप अन्धकूप चारक बन्वो जाना कोस मूय, पुग
 गाडो का जुभा को बैलों के कपे पर दिया जाता है और एक से पीडा पहुँचाना, बाहु
 व धंषा का प्रमर्दन करके विशेष पीडा देना, धंभे में बांधना, पैर ऊपर करके
 बांधना इन सब कर्मनामों से (विहेडयंठा) पीडित किये गये-अङ्ग प्रत्यङ्गों से
 मोडे-सिकोडे जाते हैं (अक्कोडक-गाड उर-सिर वड इड पूरित-पूरित-अ-कडग-
 मोडया—मेडयाहि) गहन को नीचे छोड़ा कर जो इदय और मत्तरु में गाड-बड
 पूषक बांधे गये तथा इषा भर गये या खडे २ को धूँठि के नीचे दबाये गए हैं पूडवी
 छाठी बाडे, देह को मोडने या लसट पुसट करने अर्थात् डंभा मीभा करने से (बट्टाव)
 बांधे गए और (मीससंठा) श्वास गिराते हुए (सोसावेड-ऊड-बावड—वप्पडग
 संधि बधण-उत्तसअग-सूहा कोडयापि) पमडे से सिर को लपेट कर बाँधना
 ज्यों को विहारय करना या बंधाना पुठनों आदि पर काष्ठ के मन्त्र विशेष की
 बाँधना तपी हुई सल्लाका—कील और सूई के अग्रभाग को कूटकर देह में चुभोना
 मीकमा (सक्कण-विमाणयासिध) बसूँडे से कण्ठी की तरह छीकना-दरजना, अप
 मानित करना और (चार-कनुप-विसा-नाबण-बाप्पवा-कारण सयासि) धार-विह-
 धार आदि, मरवी आदि कटुक, और निम्न आदि तिल पदार्थों के देने से सैकड़ों
 पीडा के कारण (बहुवापि) ऐसे बहुत से कारणों को (पाविसेठा) प्राप्त करते हुए
 (उरक्कोजो-विम-गाडपेजय-अक्कि-संमग—सुप्सुओगा) छाठी पर बांधे गये

बड़े काष्ठ को मजबूत चोट से जो टूटो हुई अस्थि और पांसली वाले हैं (गल कालक-लोह दड-उर-उदर-वत्थि-परिपोलिता) मत्स्य वेधो भक्ष को तरह घातक होने से जो काले लोहमय दण्ड से चक्षुःस्थल, पेट और गुह्य प्रदेश तथा पीठ पर पीटे गये हैं (सच्छंन-हियय सचुण्णियंग मंगा) मथा गया है हृदय जिनका और अङ्ग चूर्णित किये—पीसे गये हैं (आणत्ती किक्केहि केति) कई आज्ञा करने वाले किंकर पुरुषों से (अविराहिय वेरएहि) विना अपराध के वैरी बने हुए एवं (जमपुरिस सनिहेहि) यम पुरुषों के समान जो कठोर हैं उनसे (पहया) ताडना पाये हुए—पीटे गए (ते) वे (मदपुण्णा) मन्द पुण्य वाले (तत्थ) वहाँ (चडवेला—वज्जपट्ट-पारा-इ—छिव-कस-लत-वरत्त-वेत्तप्पहार सय तालियंग मंगा) चपेटा, वर्धपट्ट—चमड़े को पट्टी, पारा—लोहमयकुशी, छिवा-चिकनी चाबुक, कष-चमड़े का चाबुक, लता-घेंत ओ छडो, चमड़े की बड़ी डोरो, बैत, इन सबके सैकड़ों प्रकारों से जिनके अङ्गो पाङ्ग ताडित किये गये हैं वैसे (किचणा) बुरी दशा वाले (लंत्त-चम्मवण-वेयण-विमुहियमणा) लटकती हुई चमड़ी वाले घावों को पीडासे जो चोरी में विमुख मन वाले हैं (घण कोट्टिम-नियल-जुयल—सकोडिय मोडियाय) और लोहमय घन के मारने व बेडो के युगल से जो संकुचित और मोटे हुए अंग वाले हैं (निरुच्चार) भ्रमण रहित या रुकी हुई जवान वाले तथा जिनका टट्टी पेशाब तक रोक दिया गया है, ऐसे (कोरति) किंकरों के द्वारा-किये जाते हैं (एया अण्णाय) ये और ऐसी दूसरी (एवमादी) इत्यादि (वेयणाओ) वेदनायें (पावा) पापी (पावति) पाते हैं (अदतिदिया वसहा) असत्य इन्द्रिय वाले एव विषय की परतंत्रता से पीडित (चहुमोह मोहिया) मोह कर्म को तीव्रता से मुग्ध बने हुए (परघणमि लुद्धा) जो परधन में लुब्ध हैं (फासिदिय विसय तिव्वगिद्धा) स्पर्श इन्द्रिय के विषय तीव्र आमक्ति वाले (इत्थियगय रूव सद्द रस-गध-इद्ध-रति महित भोग-तण्हाइयाय) स्त्री के रूप—सौन्दर्य, मनोहर शब्द, रस व गन्ध सुगन्ध में मानी हुई जो रति तथा स्त्री के इष्ट भोग में लृप्णा रखने वाले और (धण तोसगा) धन से सन्तुष्ट होने वाले (गहिया य) और राज पुरुषों से पकड़े गए (जे नरगणा) जो घोर मनुष्य (पुण-रवि ते) फिरभी छूट कर वे (कम्म-टुत्थिवयद्धा) कर्म के वशीभूत हुए (उवण्णोया राय किंकराण) राज पुरुषों के पास पहुँचाये जाते हैं (तेसि वह सत्थंग पाठयाण) इन दण्ड शास्त्र के जानकार (वित्तलली कारकाण) वृक्षों को झोंकें देने वाले या व्याकुल करने वाले या (लंत्तसय गेण्हाणा) सैकड़ों प्रकार के घूस लेने वाले (कूड-

कबड माया-नियति—आवरण—पमिहि-बंघन विचारमाण) कूट—छाटे माप आदि
 कपट—भेष व भाषा बखलना, माया—उगबुद्धि निकृति—भूतता, बंघन क्रिया इनका
 आचरण करने वाले अर्थात् एक पित होकर सब कपट बाजी में विशारद (बहुवि
 द अन्वय—सत् लपकाण) बहुत प्रकार से सँकड़ों सूट बोलने वाले (परलोक परम्पु
 हार्य) परलोक से पराङ्ग मुक्त अर्थात् परलोक विगडने की अपेक्षा नहीं करने वाले
 (मिरब गति गामियार्ण) एवं नरक गति में जान वाले हैं (तेहि य) और उन राज
 पुरुषों के द्वारा (व्यापत्त जीय ढँडा) ओ दुष्ट निग्रह के द्विये किया गया वण्ड या सोवन
 वण्ड रूप आवेश वाले (तुरियवर्षा द्विया पुरबरे) अस्ता से नगर क राज माग में
 झुठे किये गए (सिधावग—तिय—बठव—बबर बग्गुड—महापह—पईसु) सृष्टाटक
 सिधोदे के आकार का त्रिकोण स्थान त्रिक, बसुदक—चौक, बत्बर—सैदान बसुसुस
 चारों ओर मार्ग बाबा, वेबकुड आदि महाम् माग और साधारण माग इन सब बगड़ों
 में (वेत्त-बड-सबड-कट्ट-छेदु—पत्वर—पणाधि—पयोधि—मुद्धि—कया—पाद् पधि—बापु
 कोपर—पहार संमग महियगता) येत्र वण्ड, सडुट—ढँडा काष्ठ, डेडा, पत्वर, मणाधि
 छटीर प्रमाण छाठी, मणोदी—भार आदि की डकडी, मुष्टि, छता पाद्पार्थिव—वैर की
 पेडी, आमु—हूर्पर—मुटना व कोहनी इन सब के प्रकारों से भङ्ग किये और मये गये
 वैहवाडे (अहारस कम्मकारना आहर्यग मंगा) अहारह प्रकार के कर्मों के कारणों
 से कर्धरिथ भङ्ग प्रत्यङ्ग वाले (कडुगा) शोन (सुबोद्ध—कठ—गडक—तालु जीहा)
 जिनके ओठ कण्ठ, गडा, सालु और सीम सूखे हैं ऐसे (पाखीयं आर्यदा) पानी
 को मोंगते हुए (विगय जीवियासा) जोबन की आसा छोडे हुए (जवण्हाविता बरागा)
 वण्णा से पोहित बेचारे (तपिय न क्षमति) उस पानी को भी नहीं पाते हैं (बन्ध
 पुरिसेहिं पाडियेता) बन्ध—पुरुषों पर नियुक्त अधिकारियों से प्रेरणा पाये हुए (त-
 थ य) और उस प्रेरणा में (खर—कदव—पडह—पट्टि—कूडगह—गाड—रुड
 निचट्ट परामुद्धा) अत्यन्त कठिन पटह—डोड से बचने के लिये पकेले गये तथा
 अत्यन्त रुट कर्मचारियों के द्वारा छुड पूबक पकडने के कठिन साधन—पाश विरोध
 से मडबून पकडे गये (वड्डकर कुडि—मुप निवत्या) बन्ध के योग्य करकुणीमुग—बख
 का सोडा विरोध—पहने हुए हैं (सुरत्त—कडबोर—गदिय—विमुड्ड—कंठे गुय बग्ग-
 वूत—आविद मडगामा) जिसे हुए—सूर जाड कनेर के फुडों से गूये गये सुबण हार
 के समान कंठ में बन्ध के दूत की तरह पूखमासा की भी पहने हुए हैं (मरण

भयुत्पण्ण-सेद-आयस-णेहुत्तु पिय किलिन्नगत्ता) मरण भय से उत्पन्न पसीने के कारण जैसे किसी ने थक कर तैल से शरीर मसवा हो जैसे गीले शरीर वाले (शुष्ण-गुण्डिय सरार; रयरेणु भरिय केसा) राख आदि के चूर्ण से भरे शरीर वाले तथा हवा से चढो हुई धूलि के कणों से जिनके केश भरे हैं (कुसुम-गोकिन्न मुद्धया) कसूवा के रग से व्याप्त केश वाले (छिन्न जीवियासा) जीवन की आशा जिन की छूट गई है (घुन्नता) भय की अधिकता से जो धूज रहे हैं (वज्जयाण भीता) घातक पुरषों से डरे हुए (वज्जप्पाण पीता) वध और दूसरे के प्राणों का पान करने-नाश करने वाले (तिल तिल चेष छिज्जमाणा) तिल जैसे टुकड़े २ कर के फाटे गये (सरोर विकित्त-लेहिओलित्ता ऋगाण मंसाणि) शरीर से तत्काल फाटे हुए अतएव रक्त स्राव से लित ऐसे मांस के छोटे २ टुकड़ों को (खावियता) खिलाये जाते हुए (पावा) पापी जोव (खर फरुसएहिं) अतिशय कठोर अथवा (खर करसएहिं-) सैकड़ों कठिन हाथों या पत्थर आदि से भरी हुई थैली से (ताळिज्जमाण वेहा) पीटे जाते हुए शरीर वाले (वातिक नर नारि सपरिवुडा) वातिक-स्वच्छन्द स्त्री पुरुषों से घिरे हुए (पेच्छिज्जंता य नागर जणेण) और नागरिक लोकों से देखे जाते हुए (वज्ज नेबत्थिया) वध के पूर्ण वेश वाले चोर (नयर मज्जेण) शहर के बाह से 'वध भूमि में' (पयोज्जति) ले जाये जाते हैं (किवण कलुणा) अत्यन्त हीन (अत्ताणा,—असरणा-अणाहा-अन्नधवा-बंधु विप्पहोणा) त्रास रहित, असरण गृह हीन, तथा नाथ बन्धु और बान्धवों से विप्रहीण अर्थात् प्रियजनों से दूर किये गए (विसोविसिं विपिक्खता) एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर देखते हुए (मरण भयु न्विग्गा) मरणभय से उद्विग्न (आघायण पडिदुवार सपाविया) वध भूमि के प्रतिद्वार पर पहुँचाये गए (सुळग-विळग भिन्न देहा) शूली के अग्रभाग पर लगे होने से बिदीर्ण-छिदे हुए शरीर वाले (अधन्ना) जो अधन्य-विफल हैं (ते य तत्थ) और वे वहाँ पर (परिकप्पियग मगा कीरंति) छिन्न भिन्न अङ्गों पाङ्ग वाले किये जाते हैं (उन्न-सालासु उल्लविज्जति) वृक्ष की शाखाओं में लटकये जाते हैं (केई कलुणाई विल्लबमाणा) कई करुणा जनक विलाप करते हुए और (अवरे) दूसरे (चउरग घणिय वद्धा) हाथ पांव रूप चार अङ्गों में टूट बाँचे गए (पव्वय कडगा पमुच्चते) पर्वत के शृङ्ग-शिखर से गिरा दिये जाते हैं (दूरपात्त-वहुविसम-पत्थरसहा य) और दूर से बहुत विप्रम पत्थर पर गिराये गये पत्तन के दुःख को सहने वाले हैं (अन्ने) दूसरे

(गय बळ्य मलय निमहिया कीरति) हाथों के पैर नोच मसखने के कारण मर्दिन
 किये जाते हैं (पावकारो, भट्टारस खंडिया म) और चोरी के पाप को करने
 वाले अठारहों स्थान में अदिन (कीरति) किये जाते हैं जैसे—, मुसुहि पर
 सुहि) सुसुंठी-कुम्भित कुठार और परशु स (के; बभ्यत-कमोद नासा) कई काटे
 गये कान भोष्ट और नाक बाळे (क्वाख्य-मपण-वस्य-वसया) भाँस, दाँत
 और धूपन-भंडकोश तिनके निकाले गये हैं जैसे (जिर्मिर्माद्यष्टिया विभ्र कन्न
 सिरा) खोबी गई जीभ बाळे, कटे हुए कान और नाडी बाळे (पणिरत्रते) बभ्य
 भूमि में छाये जाते हैं (छिम्भंते य असिजा) और तलवार से काटे जाते हैं
 (निष्ठिरसया) वेस से निकाले गये (छिभ्र हत्यपाया पमुच्छते) हाथ पाँव काट
 कर रात्र पुदपां से छोड़े जाते हैं (आवन्धीव बषणाय कीरति कइ) और कई
 चोर आजीवन क किये बंधी किये जाते हैं (परदम्ब इत्य लुद्रा) ये दूसरों के
 धन को हरण करने में लोभो (कारभाल निषय-सुषकरुद्रा) छेड़ के कटहरे
 और दो वेडियों से ढके हुए (चारगावहतसारा) चारक कैर में छोड़े हुए द्रव्य
 बाळे (सयण विषमुष्ठा) स्वधनों से छोड़े गये (मिचबन निररिञ्ज [रकि] या
 निरासा) मित्र जनों से देखे-गये या हटाय गये) अतएव निरास (बहुबन्धविचार
 सर कन्नयिता) बहुत से छोड़ों के विचार क्षण से क्षया पाये हुए (अन्नरत्ना)
 निछन्न (अणुषन्नसुदा) सही भूसे (पारस-सीकण्ड वेपण दुत्थट्ट-वट्टिया) प्रारम्भ
 के योग से सुसर्वा गर्मी और दूबा को दुर्घट वेदना सं मुक्त हैं (विवन्नसुहृन्मिच्छविया)
 विरूप सुख और कान्तिहीन शरीर बाळे (बिहृत्त मणिण दुक्कस) विच्छन्न मनो-
 रथाबाळे मर्दिन और असमय हैं (किलंथा कासंवा) म्थानियुक्त तथा जाँबते हुए
 (बाहिया म) और कुट आदि ब्य पि बाळे (आसमिभूषणा) आ 1-अपकन्नस
 रूप-रोग से आक्रान्त कायबाळे (पसन्नमह-केस-ससुरोमा) बधे रहने से बिनके
 नक, केस दाँती व रोम बड़े हुए हैं (छगसुत्तमि विपयंमि लुवा) अपने वही पैशाब
 में पड़े हुए (वत्थेव) परबस होकर पहाँ-मछ भूष के स्थान पर ही (मया अकाम
 का बधिञ्ज पापेसु) बिना हच्छा के ही अविमित्त मरवाने से जो पाँव में बाँधकर
 (कट्टिया साहवाप लुदा) छोड़े गए और लाई में गिरा दिये गये (वत्थ व) और
 बहाँ गिराने के बाद (वग-सुष्ण-सिवाळ-कोळ-मन्त्रार चंड संदंग सुह पत्तिगण्य
 विविहसुह सयस-विच्छुत्तता) हुक, कुत्ता घूगाक, कोळ बिल्लों के समूह और

सहाशे के समान मुख वाले पक्षि समूह के अनेक प्रकार के सैकड़ों मुखों से उनके शव नोचे जाते हैं (कयविहगा) उन मास भक्षी जीवों से टुकड़ि किये गये (केइ किमणा य) और कई क्रमियुक्त शरीर वाले (कुहियदेहा) सड़े हुए देह वाले अणुद्वयणेहि सप्पमाणा) लोकों के द्वारा अनष्ट वचनों से क्लेश पाते हुए (सुट्टुकयं ज मरत्तिपावो) अच्छा किया जो पापी मर गया इस प्रकार (तुट्टेणं जणेण हम्म) सन्तुष्ट हुए मनुष्य से मारे जाते हैं (सयणस्त विय) और स्वजन नगं को भी बेचारे (दीहकाल) लम्बे समय तक (लज्जावणकाय होंति) शरमाने वाले होते हैं (मया सता) मरे हुए क्या दशा भागते हैं ? । ५ । १२ ॥

भावार्थ— दूसरे के धनको छुटते हुए चोर पकड़े जाते व मारे जाते हैं, बांध कर रोक रखे जाते हैं । शीघ्रता से चारों ओर घुमाकर नगर में पहुँचाये जाते हैं और फिर अधिकारियों को सौंपे जाते हैं । अधिकारियों के द्वारा दिये गये विविध प्रहार और तर्जन से उदास बने हुए नरकावास के समान दुःख प्रद ऐसे वन्दिवृह मे गौतमकों के प्रहार आदि से अभिभूत पोडा को भोगते हैं । वहाँ जो बध, बंधन, ताडन आदि दिये जाते हैं उनका वणण सहज है छ अठारह प्रकार के चौये कर्मों के कारण कई चोर शूली पर चढाये जाते, कई आजीवन सजा पाते हैं और कुछ अन्धकूप आदि यातनाओं से सताये गये बिना इच्छा के ही मृत्यु पाते हैं । अन्य प्रकरण सुलभ है । सू० । ५ । १२ ॥

मूल—“पुणो परलोकं समाधत्ता, नरए गच्छन्ति निरभिरामे,
अंगार पलित्तक-कप्प-अच्चत्थ-सीतवेदण-अरखा उदिन्न-सयत-
लुक्खसय सन्नभिद्दुते, ततोवि उब्बट्ठिया सन्नाणा पुणोवि पवज्जं-
ति तिरिय जोषिं, तहिंपि निरयोवम अणु ह्वंति वेयणं । ते अणंत
कालेण जति नाम कहिंपि अणुयथावं लभंति णे गेहिं शिरियगति-
गमण-तिरिय भव-सयसहस्स परिचट्ठेहिं, तत्थावि य भवंतऽणा-
रिया नीच-कुल-समुप्पण्णा आरिय जणेधि लोगवज्झा, तिरिक्ख
भूता य अकुसला, काम भोग तिसिणा, जहिं निवर्धति निरय-
वत्तणि, भवप्पवंचकरण-पणोत्ति पुणोवि संसारा वत्तणेम मूल
धम्मसुति विवडेजया अणज्जा कूरा सिच्छत्त सुति पवन्ना य

ह्योति, एगत बंध रुहणो वेहेता, कोसिकार कीडोव्य अप्पग अहुकम्म
 तनुघण्य बधयेष्य एवं नरग तिरिय-नर-अमर-गमण्य पेरंत चक्रबांध,
 जम्म-अरा-भरण-करण ग मीर दुक्ख पखुभिय पठर-सकिंठ, सजो
 ग विद्योग-वीची-विंता पसग पसरिय वह-बंध-महद्ध विपुल बद्धो
 छ-कक्षुण्य-विखवित-कोम-कल कर्षित बोध बहुलं अवमाण्य फेण,
 तिब्ब क्षिसद्य-पुल्ल पुल्लप्पमूय-रोग वेयण-पराभव विधिवात
 करुस-परिसण्य-समाबधिय-कठिय कम्म-पत्थर-तरग-रगत-
 मिथ मच्छुभय-तोयपट्टं कसाय पायाल सकुल, भवसय सहस्स
 जल सचय, अयंत ठब्बेयण्य अचोरपार, महम्मयं भयकरं पह-
 भय, अपरिमिय-महिच्छ-कल्लुसमति-बाठबेग-ठद्धम्ममाण
 आसा विवास-पायाल-कामरति-रागदोस-बधण्य बहुविह
 संकप्प विपुल दग-नय-रयधकारं, मोह महाबल भोग भममाय
 गुप्प माणुच्छुद्धत-बहुगणमथास-पबोण्णियत्त पाणिय पया
 वित-वसण्य समावस-रुल्ल बंध-मारुप समाहया मणुल्ल वीची-
 बाहुधित भग्ग-फुरत निट्ट-कल्लोळ-सकुलजलं पमात बहुचह दुह-
 सावय समाहय उद्धापमाण्य-पुरघोर विट्ठसण्यत्तबहुल, अयण्य-
 ण भमत मच्छ परिहत्थ, अनिट्ठतिदिय महामगर-तुरिय-वरिय
 ओखुन्भमाण्य प्रताव-मिथय-बलत बवल-बवल-अत्ताण्यऽसरण्य
 पुण्वकपकम्म-संचयोदिल्ल बरुज वेहज्जमाय-दुहसय विपाक
 बुधंत जल समूहं, इट्ठिरस साय-गार बोहार-गहिय कम्म पाठे
 बद्ध सत्त-कड्ढिज्जमाय मिरयत्त-हुत्तसत्त-बिसल्ल बहुळा, अरह
 रह भय-बिसाय-सोग मिच्छुत्त-सेल्ल सकुल, अयाति सताय कम्म
 बधण्य किलेस-विदिखल्ल सुहुत्तार, अमर-नर-तिरिय मिरय गति
 गमण्य कुडिल्ल परियत्त-विपुल वल्ल, हिंसादिय अदत्तादाय मेहुय
 परिगगहारंभ करण-कारावण्यणु मोदण्य-अहुविह अण्णिड कम्म
 विंभित-भुद्ध भारकंत-भुग्ग जल्लोघ दूर पबोखिज्जमाय उम्मग्ग
 निमग्ग-दुल्ल भतल, सारीरमण्यो मयाण्य-दुक्खण्य उप्पियता, मात
 स्थाय परितावधमय उप्पयुद्ध नियुद्धयं करेता, चउरत महत्त नय

वयगंग, रुहे संसार सागरं अद्विय अणालक्षणा रूपत्तिठाण मप्प-
 स्यं, सुलभाति जोणि सयस्सहस्स गुविल, अणालोक मंधकार,
 अणंत कालं निच्च उच्चत्थ सुरणभय-सरण संपउत्ता वसंति
 उच्चिगात्रांस वसहिं । जहिं आउयं निबंधंति पाव कम्मकारी पंध
 वजण-सयण-मिन्न पारिवाज्जिया अणिट्टा भवति अणादेज्ज दुच्चि-
 णीया कुठाणासण-कुसेज्जं-कुभोयणा, असुइणो कुसंघयण-कुप्प-
 माण-कुमंठिया, कुरुवा, बहुकोह-माण-भाया-लोभा, बहु मोहा
 धम्मसन्न-सर्मदत्त पवभट्टा, दारिद्रोवद्वर्वाभभूया, निच्च परकम्म
 कारिणो, जीवणत्थराहिया, किविणा, परपिंडतक्कका दुक्खलद्धा-
 हारा, अरस-विरस-तुच्छुकय कुच्छिपूरा, परस्स पेच्छंता, रिद्धिस-
 क्का-भोयण विमेष-समुदयविहिं, निंदता अप्पकं कयं त च, परि-
 वयंता इह य पुरेकडाइ कम्माइ पावगाइ, विमणसो सोएण डज्ज-
 खाणा परिभूया होंति सत्ता परिवज्जिया य, छोभा-सिप्पकला
 जमय-सत्थ परिवज्जिया, जहाजाय पसुभूया, अवियत्ता णिच्च-
 तीय कम्मोव जीविणो, लोय दुच्छाणिज्जो, भोघमणोरहां, निरास
 बहुला आसापास पाडिमद्ध पाणा, अत्थोपायाण-काममोक्खेय
 लोयसागे होंति अफल वंतका य सुट्ठुविय उज्जमंता तद्वि सुज्जु-
 त्त-कम्मकयदुक्खे संठाविय-सित्थपिंड-संचय-पक्खीणदव्व-
 सारा, निच्च अधुवधण-घरण-कोस-परिभोग विवज्जिया, रहियं
 काम भोग परिभोग सव्वसोक्खा, परसिरिभोगोवभोग-
 निस्साण-मग्गण परायणा, वरागा अक्रामिकाए विणेंति दुक्खं,
 योवसुहं, एव निव्वुत्ति उवलभंति अचंत विपुल दुक्ख सय सं-
 पलित्ता । परस्स दव्वेहिं जे अविरया । एसोसो अदिण्णादाणस्स
 फलविवागो, इहलोइओ, पारलोइओ, अप्पसुहो बहुदुक्खो
 महवभओ बहुरयप्पगाढो, दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं
 मुच्चति । न य अवेयहत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु णायकुल

एदयो महत्त्वा जिष्ठा उ वीरघट-नाम घेउजो, कहसा य अदियणा
 दाखस्त फलधिवाग, एय म लनियपि अदियणादाय इरदइ-मरण
 भय-कलुसतासण-पर सति क भज्ज स्याम मूल एव जाय षि।
 परिगतमणुगत दुरत । ततिय अइम्मदार समत्त तिथमि ॥ ३ ॥
 ६ ॥ सूत्र १२ ॥

छाया-पुन परलोह समापना नरकेगच्छति निरमिरामे, भङ्गाप्ररोह
 कस्याऽत्यय शीतभदनाऽसाताक्षण-सतव दुःख एत समभित्तुत तताऽप्युर्वृतिता।
 समाला पुनरपि प्रप्रवन्ति तियन् योनिम् । सत्राऽपि निरयोपमाननुभवन्ति वेवनाम् ।
 तेऽनन्त काष्ठेन यदि नाम अपि मनुजमाध लभन्त नैरपु निरयगति-गमन-तियन्
 मबद्यत सहस्र परिवर्तेषु । तत्रा पि च मबन्तोऽनार्था नाप कुळ ममुत्पन्ना भायज
 नेऽपि कोक बाह्यालियन् मूलाश्च भङ्गुश्या, कामभाग कृपिता यत्र निरम्बन्ति निरय-
 वर्तिमभवपद्य करण प्रणोदोति । पुनरपि समाराधतेनेमि मूळानि । प्रमभुति विवर्जिता
 जनायां ह्या मिष्पात्वं तुतिप्रपन्नाश्च भवन्ति । एकास्त-दण्ड कश्चो यष्टयन्ति काशि
 काऽऽकार कीटा इवामानमष्टम तन्नु-धनव-धनेम । एवं नरक तियङ् नराऽमर
 गमन-पयन्त चक्रवाळ बन्म वरा-मरण-कार-गम्भीर बु ल्यशुद्ध-प्रचुरसमिर्क
 संयोग-बिद्योग-बीषो-बिम्बा प्रसङ्ग प्रसूत वध-वर्ण महा (इज्ज) विपुळ क्लोळ
 कठण विद्ययित-छाम कलकळाबमान-माल वहुळम् अजमानन फेन तीव्र खिचन
 [पुळ पुम] प्रमत-रोग वेदना-पराभव विनिपात पर्य पपय समापतित-कठिन-
 कर्म प्रसर रङ्ग लङ्ग मित्य मृत्यु-भय तोष वृष्टन, कपाय पाताळ संदुळ मबद्यत
 सङ्ग्रहसद्यप मनन्त मुद्रेजनक मन र्गठपारं, महाभय भयदुरं प्रतिभय अपरि-
 मित महच्छा क्लुपमति-यासु वेगोद्यमानाऽऽज्ञा-विपासा पाताळ-कामरति-राग
 दाय-वर्धन-बहुविध सङ्कल्प-गिपुळोदक रजोरपात्प्रकारं माहमहावत-भाग-प्रोष्यद्
 मुपदुष्पुष्टद् बहु गमकास प्रत्यथ गिष्टुत्तपानीम प्रधावितम्पचन-समापन्न-रहित-
 पण्ड मादन-ममाहिताऽमनोत्र चापी-व्याकुळित-भङ्ग रुग्णमिष्टिन-वृक्षा
 सङ्कुञ्जल, प्रमाद बहु पण्डहुष्-आपद् समाहतातिष्ठन्-पौर विष्वंमा नयवहुळम्
 अज्ञान भ्रममरम्य परिहृतम् । अनिर्गती त्रय-सदामकरवहित-परित चासुम्पमाय
 सगाव निचय-पसापरल पञ्जाऽत्राल शरण्य पूषट्टन कम अज्ञयादोष-वय वधमान
 दुःखगत विवाह-पूर्णमानश्चसमूह-शद्वि-रस साठ गा वापद्दर गृहीत कम प्रति

बद्ध सत्त्वाऽऽकृष्यमाण नरक तलाभिमुखसन्न विषण्ण बहुलाऽरति-रतिभय विपाद्
शोक-मिथ्यात्व शैल सङ्कटम्, अनादि सन्तान कर्म बन्धन क्लेश-चिक्खिल्ल सुदुस्वारम्,
अमर-नर-तिर्थङ् निरयगति गमन कुटिल-पर्यस्त-विपुलवेल्मम्, हिंसाऽलीकाऽदत्ताऽ-
दान मैथुन-परित्रहाऽरम्भ करण-कराणाऽनुमोदनाऽष्टविधाऽनिष्टकर्म-पिण्डित-गुरु
भारोऽऽक्रान्त दुर्गजलौघ दूर [निमज्जमान] प्रणोद्यमानोन्मग्न-निमग्न-दुलभतलम्,
शरीर मनोमयानि ढ खान्युत्पिबन्त, साताऽसात-परितापनमयम्, उन्मग्न-निमग्ने
कुवन्त, चतुरन्त महान्त मनवदत्र, रुद्र, संसार सागरम् । अस्थिताना मनाल्मभन
अप्रतिष्ठानमप्रसेयम्, चतुर शीति योनिशत सहस्र गुपिलम्, अनालोकमन्धकारमनन्त-
कालम्, नित्यमुत्रस्त्रग्न्यभयसजा-सम्प्रयुक्ता वसान्त-उद्विग्नवासवसतिम् । यत्राऽऽ-
युर्निबध्नन्ति पाप कम कारिणो धान्धवजन-स्वजन मित्र-परिवर्जिता, अनिष्टा
भवन्ति-अनादेय दुर्विनीता कुष्ठानाऽशन-कुश्या-कुभोजना अशुचय, कुसहनन-कु
प्रमाण-कुसथाना, (स्थिता) कुरूपा. बहुक्रोध मान माया लोभा, बहुमोहा, धर्म
सजा-सम्यक्त्वप्रभ्रष्टा दारिद्र्योपद्रवाऽभिभूता नित्यपर कर्म कारिणो जीवनाऽर्थरहिता,
कृपणा, पर पिण्डतर्कका, दु खलब्धाऽऽहारा, अरस विरस तुच्छ कृत कुक्षिपूरा,
परस्य प्रेक्षका, ऋद्धि सत्कार भोजन विशेष समुदयविधि, निन्दन्त -आत्मानं कृतान्तं
च परिवदन्त, इह च पुराकृतानि कर्माणि पापकानि विमनस शोकेन दह्यमानाः
परिभूता भवन्ति-सत्त्व परिवर्जिताश्च [क्षोभणाय] क्षोभशिल्प-कला-समय-शास्त्र
परिवर्जिता, यथा जात पशुभूता, अप्रणीता नित्य नीचकर्मोपजीविनो लोक कुत्स-
नीथा मोघ मनोरथा, निराशा-बहुला, आशा पाश प्रतिबद्ध प्राणा अर्थोपादान
कामसौख्ये च लोकक्षारे भवन्त्यफलवन्तश्च । सुष्टूपि च उद्यच्छन्तस्तद्विषयोद्युक्त-
कर्मकृत-दुख सस्थापित-सिक्थ-पिण्ड सञ्जय-प्रक्षोण द्रव्यद्वारा, नित्यमधुव-धन-
धान्य कोश-परिभोग-विवर्जिता, रहित-काम भोग-परिभोग सर्वसौख्याः, परश्री
भोगोपभोग-निश्राण मार्गण परायणा, धराका अकामिकया विनयन्ति दुःखम् ।
नैव सुख नैव निवृत्तिमुपलभन्ते, अत्यन्त विपुल दु खशत सम्प्रदीप्ता, परस्य द्रव्याद्
येऽविरता । एष सोऽदत्तादानस्य फल विपाक ऐहिलौकिक पारलौकिकोऽल्पसुखो,
बहुदु खो महाभयो, बहुराज प्रनाढो दारुण कर्कशोऽसातो वाससहस्रैमुच्यते । न
चाऽवेदयित्वाऽस्ति मोक्ष इति, एवमाख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु
वीर वरनामवेय कथयिष्यति चाऽदत्तादानस्य फल विपाकम् । एतत् तत् तृतीयमप्य-

वृत्ताऽभ्यां ह्रस्व मरण-मय कल्पव्य त्रासन पर सत्का मया छीम मूलमर्ष यावत्
 चिर परिगत मनुगैर्तं हुरन्तम् । सुवीममघमद्भारं समाप्तम् । इति ब्रह्मि ॥ ३ ॥
 सूत्र ६ । १२ ॥

अन्वयार्थ— (पुणो परलोक समापत्ता) मरवाने के बाह फि परलोक गये हुए
 वे और (नग्य गच्छति) नरक में जाते हैं (निगिरामे) जो नरक सुन्दरता से
 हीन है और (अंगार पक्षितक-कल्प-अकल्प-सीत वेद्य अस्ता त्विन्न-मयत्त पुष्प
 सपसमभिद्रुते) अग्नि से जलते हुए पर के समान जो अत्यन्त शीत वेदना बासा
 और असावा-शुष्क से उदीरणा पाये हुए अगावार सैकड़ों पुष्पों से व्यक्त घिरा
 हुआ है (तपोवि कल्पद्विया समाप्ता) उस नरक स्थान से निकले हुए (पुणोवि
 पबञ्जति) फिर भी प्राप्त करते हैं (तिरियत्रोवि) तिर्यक यानि को (त्विपि)
 वहाँ पर भी (निरयोबमवेपण) नरक के समान वेदना को (अनुप्यति) अनुभव
 करते हैं (अणतकाकेर्म) अनन्त काळ से (अविमाम) अगर् कदाचित् (ते) वे-
 पोर के बीच (क्विन्वि) किसी प्रकार या कहीं भी (मनुवमार्भं) मनुष्यता को
 (नेगेहिं) अनेक (निरय गति गमज तिरियमवसय सहरस पारक्वेहिं) नरक गति
 में जानेरूप और तिर्यक भव के छाकों परिवर्तन होवाने पर (छर्मति) प्राप्त करते
 हैं (तयवि प) और वहाँ मनुष्य भव के छाम में भी (मन्वतऽप्यारिया) अनाय
 होजाते हैं, जो (नीयकुलसमुपपन्ना) मोक्ष कुल में पैदा हुए हैं (आरिवज्जोवि)
 अनाय मनुष्य में उत्पन्न होकर भी (अोगवयसा विरिक्त्वा मृता व) बाकों से बहिष्कृत
 और पशुके समान (अकुसला) तत्त्व ज्ञान में अनिपुण (काम भोग तितिया)
 काम भोग की तृप्ता पाळे (अहिं) वहाँ मनुष्य भव का बन्ध हुआ वहाँ (निरय
 वत्तयि-भवप्यवच-करयपयोहिं पुणोवि संसारापत्तयेम मूळे) नरक गति संवग्धो
 अनेक भव करने से पुन' उद्यो में प्रवृत्ति परायण बीच, पुनः पुनरावर्तन से संसार
 रूप मीच पाळे सुती के मूळ कर्मों को (निर्वर्षति) नापते-सक्षय करत है
 (पम्म सुति विवगिब्या) धर्म शास्त्र से विवर्षित-विकल्प (अप्यग्जाकूरा) अनार्य
 बुर-दिसाकारी अपवैद्य देने वाले (मिच्छत्तमुति पवसाय ह्यंति) और वे मिथ्यात्व
 प्रधान धुति-सिद्धांत को शोकार करने वाले होते हैं (एगंठ वंड हरणा) एकान्त-
 सब तरह स-दिसा को रधि पाळे (कासिकार कीडोडव अप्यगं) वैशम के कीड़े को
 तरह अपने आपको (अट्टपम्मतनु-पज वंघणजं) अष्ट प्रकार के कर्मरूप तन्तुओं के

सघन बन्धन से (वेदेंति) वेष्टित करते हैं (एवं) इस प्रकार (नरग-तिरिय-नर
अमर गमण पेरंत चक्रवाल) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति में गमनागमन
परिधि वाले (जन्म-जरा-मरण-करण-गंभीर-दुःख-पक्षुभिय-पउरसल्लि) जन्म,
छरा मरण रूप साधन वाला गंभीर दुःख ही जहां अत्यन्त क्षुब्ध प्रचुर पानी है
(संलाग-विभोग वीची चिता पसग-पसरिय- वह—बंध—महल्ल विपुल-कल्लोल-कलुण-
विलावत-लोभ-कलकलित-मोल बहुल) संयोग, वियोग रूप तरङ्ग वाला, चिन्ता के
प्रसङ्ग रूप फैलाव वाला, और जो बंध—बन्धन रूप लम्बाई से बड़ा और विस्तीर्ण
कल्लोल वाला है, दोनता से विलाप युक्त, लोभ रूप कल-कल करती हुई ध्वनि की
अधिकता वाले (अवमाणणफेण) अपमान रूप फेन वाले (तिन्व-विसणपुल्लपु-लप-
भूय-रोग-वेयण पराभव विणिवात-फरस-धरिसण-समावडिय-कठिण-कम्म-पत्थर-
तरग रगत-निष मन्चुभयतोयपट्टं) तोत्र निन्दा, निरन्तर उत्पन्न हुए अनेक रोगों की
वेदनायें, अनादर का संयोग और कठिन बचनों का सघर्ष, ये सब जिनसे प्राप्त हों
ऐसे कठिन कर्म रूप पत्थरों से तरङ्ग की तरह चलायमान सदा-अटल सृत्यु भय रूप
जल के पृष्ठ भाग वाले (कसाय पायाल सकुल) ४ कषाय रूप पाताल कलसों से
ब्याप्त (भवसय सहस्र जल संचय अणत्तं) लाखों भवरूप जल सञ्चय वाले, अन्त
रहित (उव्वेजणय अणोरपार) उद्वेगजनक अपार एवं अति विस्तीर्ण (महब्भय-
भयकर पइभय) महाभयानक, भयङ्कर और जो प्रत्येक वस्तु में भय उत्पन्न करने
वाला है (अपरिमिय-महिच्छ-कलुसमति वाच वेग उद्वम्ममाण—आसा-पिवास-
आयाल—काम-रति-राग—दोस-बंधण—बहुविह सकप्प-विपुल-दग—रय-रयघकारं)
अपरिमित-बड़ी इच्छा वाले मलिन मति रूप वायु के वेग के कारण आशा पिवासा रूप
पाताल कलशे या समुद्रतल से उत्पन्न हुआ जो विषय में अभिरुचि, राग द्वेष रूप
बन्धन और अनेक प्रकार के सकल्परूप विस्तीर्ण पानी के रजःकरण हैं उन के वेग से
भवसमुद्र अन्धकार युक्त है (मोह-महावत्ता-भोग-भममाण-गुप्पमाणुच्छलत-
बहु गन्भवास-पञ्चोणियत्त पाणियं) जहाँ मोह ही महा आवर्त है, भोग-इन्द्रिय के
विषय हो परिभ्रमण करते हुए व्याकुल होते और उछलते हुए बहुत गर्भवास-मध्य
भाग-में उछलकर मोड़े झँटे हुए प्राणी हैं (पघावित वसण-समावन्न-रुन्न-बंढ-
आरुय-समाहया—मणुन्न वीची-वाकुलित भग-फुटत—निट्ट कल्लोल—सकुलजल)
धधर धधर फँसे हुए व्यसनों को प्राप्त कर रोने वालों का प्रलाप रूप प्रचयद वायु से

वृत्ताऽध्वानं हवद्दह मरणं-मय कालुष्य प्राप्तन पर सरहा मया । काम मूलमव थापम्
 फिर परिगत मनुगते दुरन्तम् । तृतीयमधर्मद्वारं समाप्तम् । इति प्रथमि ॥ ३ ॥
 सूत्र । ६ । १२ ॥

अन्वयार्थ— (पुत्रो परलोक समापना) मरने के बाद फिर परलोक गये हुए
 थे और (नरय गच्छति) नरक में जाते हैं (निर्गिरामे) जो नरक सुन्दरता से
 हीन है और (अंगार पक्षिस्तक-कल्प-असत्य-सीत वेद्यु अस्ता सर्वज्ञ-मयत बुक्ल
 सबसममिदुते) अग्नि से अज्ञते हुए पर के समान जो अत्यन्त शीत वेदना वाला
 और अज्ञाता-दुःख से लदीरणा पाये हुए लगातार सैकड़ों दुःखों से व्यथित पिरा
 हुआ है (ततोऽपि तत्त्वद्विद्या समाप्ता) उस नरक स्थान से निकले हुए (पुत्रोऽपि
 पबन्वति) फिर भी प्राप्त करते हैं (तिरियजोषि) तिर्यक् यानि को (तद्विपि)
 वहाँ पर भी (निरयोवमवेद्यु) नरक के समान वेदना को (अनुभवति) अनुभव
 करते हैं (अर्थात्कालेऽं) अगस्त काळ से (अतिनाम) अंगार कदाचित् (ते) वे-
 चोर के जीव (कर्हिऽपि) किसी प्रकार या जहाँ भी (मनुभवार्थं) मनुष्यता को
 (वेगेहि) अनेक (निरय गति गमय तिरियमवसथ सहस्र पारवद्वेहि) नरक गति
 में जानेरूप और तिरय मय के छात्रों परिवचन होजाने पर (छर्मति) प्राप्त करते
 हैं (तत्त्ववि य) और वहाँ मनुष्य मय के काम में भी (मयतऽप्यारिषा) अनाय
 होजाते हैं, जो (नीयकुलसमुपपन्ना) नाच कुल में पैदा हुए हैं (भारिषज्जोषि)
 अनाय मनुष्य में उत्पन्न होकर भी (लोकावस्था विरिक्त्वमृता य) छात्रों से बहिष्कृत
 और पशुके समान (अकुसला) तत्त्व ज्ञान, में अनिपुण (काम भोग विधिया)
 काम भोग की एषा बाधे (अर्हि) वहाँ मनुष्य मय का बन्ध हुआ वहाँ (निरव
 वत्तयि-भयव्यवच-करणपयोद्धि पुत्रोऽपि संसारवत्तयोम मूढे) नरक गति संभव्यो
 अनेक भय करने से पुन वसो में प्रवृत्ति पराप्य जीव पुन पुनरावर्तन से संसार
 रूप नीच बाधे दुःखों के मूढ कर्मों को (निर्बन्धि) बाधते-सहाय करते हैं
 (वन्म सुति विवचिक्त्वा) धर्म शास्त्र से विचरित-बिच्छ (अल्पज्जाकूरा) अनार्थ
 कूर—हिंसाकारी उपदेश देने वाले (निच्छत्सुति पबन्नाय ह्येति) और वे विष्यात्त्व
 प्रधान भ्रुति-सिद्धान्त का स्वीकार करने वाले होते हैं (परगत दंड कश्यो) एकान्त-
 सब तरह स-हिंसा को शक्ति बाधे (कोसिकार कीडोव्य अप्पगं) ऐश्वर्य के कीड़े की
 तरह अपने आपको (अदृक्मवर्तु-पय वधयेऽं) अष्ट प्रकार के कर्मरूप तन्तुओं के

सघन बन्धन से (वेदेंति) वेष्टित करते हैं (एवं) इस प्रकार (नरग-तिरिय-नर
 अमर गमण पेरत चक्रवाल) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति में गमनागमन
 परिधि वाले (जन्म-जरा-मरण-करण-गंभीर-दुक्ख-पक्खुभिय-पउरसळिलं) जन्म,
 जरा मरण रूप साधन वाला गम्भीर दुःख ही जहा अत्यन्त क्षुब्ध प्रचुर पानी है
 (सल्लांग-विभोग वीची चित्ता पसंग-पसरिय- वह—बंध—महल्ल विपुल-कल्लोळ-कलुण्ण-
 विलावत्त-लोभ-कलकलित-बोल बहुलं) संयोग, वियोग रूप तरङ्ग वाला, चिन्ता के
 प्रसङ्ग रूप फैलाव वाला, और जो बंध—बन्धन रूप लम्बाई से बड़ा और विस्तीर्ण
 कल्लोळ वाला है, दोनता से विलाप युक्त, लोभ रूप कल-कल करती हुई ध्वनि की
 अधिकता वाले (अवमाणणफेण) अपमान रूप फेन वाले (तिच्च-खिसणपुल्लप्पु-लप्प-
 भूय-रोग-वेयण पराभव बिण्णवात-फरस-धगिसण-समावडिय-कठिण-कम्म-पत्थर-
 तरग रगत-निष्प मन्चुभयतोयपट्टं) तोष निन्दा, निरन्तर उत्पन्न हुए अनेक रोगों की
 वेदनायें, अनादर का संयोग और कठिन बचनों का संघर्ष, ये सब जिनसे प्राप्त हों
 ऐसे कठिन कर्म रूप पत्थरों से तरङ्ग की तरह चलायमान सदा-भटल मृत्यु भय रूप
 जल के पृष्ठ भाग वाले (कसाय पायाळ संकुल) ४ कषाय रूप पाताल कलसों से
 व्याप्त (भवसय सहस्र जल संचय अणत्तं) लाखों भवरूप जल सञ्चय वाले, अन्त
 रहित (उव्वेजणय अणोरपार) उद्वेगजनक अपार एवं अति विस्तीर्ण (महब्भय-
 भयकर पइभय) महाभयानक, भयङ्कर और जो प्रत्येक वस्तु में भय उत्पन्न करने
 वाला है (अपरिमिय-महिच्छ-कलुसमति वाउ वेग उद्धम्ममाण—आसा-पिवास-
 पायाळ—काम-रति-राग—दोस-बंधण-बहुविह सकप्प-विपुल-द्ग—रय-रयधकारं)
 अपरिमित-बड़ी इच्छा वाले मलिन मति रूप वायु के वेग के कारण आशा पिवासा रूप
 पाताल कलशे या समुद्रतल से उत्पन्न हुआ जो विषय में अभिरुचि, राग द्वेष रूप
 बन्धन और अनेक प्रकार के सङ्कल्परूप विस्तीर्ण पानी के रजःकरण हैं उन के वेग से
 भवसमुद्र अन्धकार युक्त है (मोह-महावत्त-भोग-अममाण-गुप्पमाणुच्छलत्त-
 बहु गब्भवास-पञ्चोणियत्त पाणियं) जहाँ मोह ही महा आवर्त है, भोग-इन्द्रिय के
 विषय ही परिभ्रमण करते हुए व्याकुल होते और उछलते हुए बहुत गर्भवास-सध्य
 भाग-में उछलकर मोड़े छोटे हुए प्राणों हैं (पघावित वसण-समावन्न-रुन्न-बंह-
 आरुय-समाहया—मणुन्न वीची-वाकुलित भगग-फुट्ट-निट्ट कल्लोळ—सकुलजळ)
 हृषर उघर फँसे हुए व्यसनों को प्राप्त कर रोने वालों का प्रलाप रूप प्रचण्ड वायु से

आधान पाये हुए भ्रमोत्पन्न तरंगों से ठपा टूट और तरङ्ग से विरहित-चपल कर्ताओं में
 व्याप्त जलवाला दे (पनात बहुचंद्र दुष्ट साधक-ममाह्य उदापमाया पूरा-विद्वान्मय
 बहुचंद्र) (य आदि प्रमाद ही बहुत रीति व दुष्ट भावद विज्ञात जन्तु हैं उनका आधान
 से उठते हुए पुरुष आदि रूप सगरी का समूह ही पुर दे तसक भगदूर विनाश लक्षण
 अनयो स जो बहुल-व्याप्त दे (अप्युष्ण भ्रमण मच्छ परिहरथ) अज्ञान रूपा भ्रमण करते
 हुए ब्रह्म मरस्यों से युक्त (आणुद्विविध-महा मगर-हरिय-परिष्णु ज्योमुक्तमभा-
 -संता-निषय-चरित-परल-पपल-अप्याप-मरण-पुत्रकय कर्म-मप्यादिभ्रमण
 येद्विजमाय दुष्ट मय विपाक पुण्यत जल समूह) अनुपशान्त इतिव रूप बट महीरी
 के जस्दी बलने या चेष्टा करन स जो भ्रमिक ह्युष्य तथा निश्च मन्ताप वाता है,
 चसता हुआ चपल व चक्र और प्राण रहित एव अज्ञान प्राणिमां के प्रबलन कम
 के संवय से पश्य पाये हुए-यापों का भोग जाटा हुआ सँकड़ों, एव रूप विपाक ही
 भ्रमण करता हुआ जल समूह है (इद्वि-रम-मात-गारयोहार-गदिय-कर्म पद्विद्व
 सत्-कविजमाय-निरवतल-दुष्ट सन्न-विसन्न-बहुसा-भरद्-गद्-मय-विसाय
 शोग-मिच्छा सेल संकट) अस्ति, रस और साता ये तीन गौरव रूप मप्या-जल-
 शर विशेष से गृहीत और कम बग्य स संकडे हुए प्राणो क्षीये जात हुए या नरक
 रूप पाताक लक के सम्मुख सन्न और विपण्य-येद युक्त-हैं, उन से बहुत अरति,
 रति, मय, हीनता, शोक तथा मिथ्यात्व रूप पतवों से संकट (अजादि-संतास्य कर्म-
 पण्य-स्मिन्-विच्छिन्न सुदुत्तार) अमादि-आदि रहित सन्तान बाळा कर्म बंधन]
 और रागादि होश रूप कीपक के कारण बहुत कठिनता से उरने योग्य (अमर-नर
 तिरिय, निरयगतिगमण-कुटिल-परिकरा-विपुल वेड) देव, मनुष्य विषय और
 निरय-नरक-गति में जाने रूप कुटिल परिवर्तन युक्त विस्तोर्ण वेला-बल बुद्धि बाडे
 (विस्मयि-अदत्तादान-मेहुया-परिमाहार-भ-करस-काराव्यापुमोरण-अद्व-
 विह अविद्वकर्म-पिडित सुदुत्तारक व-हुमा-सोप-दूर-पयोविजमाय-कर्ममा
 निममा-दुष्टमठ) हिंसा, मूठ चोरी, मेषुन और परिमह-क्षय, आरम्भ के
 करने करने व अनुमोदन से सम्भव भाठ प्रकार के अनिष्ट कर्म के मारी बीज से
 जो बने हुए हैं, व्यसन रूप लक के प्रवाह से दूर-के बाते हुए, और पानी में, रूपर
 नीचे होने से विस्तका लक प्रवेश मिलना बुद्धिम है (उरीर मयोमपाणि बुद्ध्याधि)
 शरीर-वसन सम्बन्धी-दुर्गों को (क.पयता) प्राप्त करते हुए (सावसाव

परित्याग मय) माना-सुख और दुःख से उपन्न परितापना वाले (उन्मुह निम्बु-
हुय) सुख दुःख रूप उच्च नीच दशा को (करेना) करते हुए (चउरत महत मण-
वथगम्ह (रुहं) ससार मागर) दिशा व गति से चार तरफ अन्त वाले, बड़े अन्त
रहित और अत्यन्त विशाल सनार सागर को (अद्विय अणालवणमपतिट्टाणमप-
मेय) मयम मे अस्थित आलम्बन रहित अप्रतिष्ठान-आधार रहित या त्राण रक्षा के
कारण से रहित तथा अल्पज्ञों से नहीं जानने योग्य (चुलसीति जोणि सय—सहस्स-
गुवेल) चोरामी-लाव जीव योनिओ से गुपिल-व्याप्त (अणालोकमधकार)
अज्ञान के अन्धकार स्वरूप ऐसे समार सागर मे (अणतकाल) अनन्त काल
(णिच्च उत्तथ सुन्न भयमन्न संपउत्ता) सदा त्रास युक्त शून्य—कर्तव्य विचार में
मूढ—ओर भयसन्ना सहित जोव (वसति) रहते हैं (उव्विगावास वसहि) जो
समार उद्विग्न जनों का निवासथान है (जहिं) जिस ग्राम कुल आदि में (पावकम्म-
कारो) पाप कर्म करने वाले (आउय) आयु को (निवधति) बंध करते हैं, वहा
(वधव जण सयण मित्त-परिविज्जया , वाधव जन भवजन तथा मित्रों से त्रे परिवर्जित-
रहित (अणिट्टा) अनिष्ट (भवति) होते हैं, (अणादेज्ज दुव्विणोया) फिर अप्राह्य
वाक् एव दुर्विनीत-विनय से भ्रष्ट (कुठाणासण कुसेज्ज कुभोयणा) अयोग्य व खराब
स्थान, आसन शय्या, और खराब भोजन वाले (असुहणो) अशुचि-शुचि रहित या धर्म
श्रुति से हीन (कुसंधयण-रुप्पमाण-कुसंठिया-कुरुवा) सेवट्ट आदि अशुभ सहनन
वाले, अधिक लम्बे या अधिक छोटे हुड आदि आकार वाले कुरूप सुन्दरता से हीन
(बहुकोह-माण माया-लोभा—बहुमोहा) बहुत क्रोध, मान, माया और लोभ
वाले, बहु मोहा-अधिक कामी या अज्ञानी (धम्म सन्न-सम्मत्त-पवभट्टा) धर्म-बुद्धि
और सम्यक्त्वसे परिभ्रष्ट (दारिहोवहवाभिभूया) दरिद्रता के उपद्रव से घिरे
हुए (निच्च पर कम्म कारिणो) सदा दूसरों के काम करने वाले (जीवणत्थ-
रहिया) जीने योग्य द्रव्य से रहित या जीवन के पवित्र उद्देश्य से रहित
(किवणा-पर पिंड-तक्का) रक, भिखारी, तथा दूसरे के दिये हुए पिण्ड को
ताकने वाले अर्थात् परमुखापेक्षी (दुक्खलद्धाहार) दुःख से आहार का लोभ
करने वाले (अस विरस तुच्छकय कुच्छपूरा) अस-हीन आदि रस रहित, विरस-
पुराने-वासी और तुच्छ आहार से उदर भरण करने वाले (परस) दूसरों के
(रिद्धि-सक्कार-मोयण विसेस समुदयविहिं पेच्छता) ऋद्धि—सम्पत्ति, सत्कार और

भोजन के विशिष्ट प्रकार के सम्पद् और तरीके को देखते हुए-तरसते (निर्दत्ता-
 जल्पकं) अपनी निन्दा करते हुए (कथं च परिबयता) और कुतान्द-ईव को
 बुरा करते हुए (इह य) इस जन्म में ही (पुरे कदाह कम्माई पावगाई) पूव कुव
 जन्मान्तर के किये हुए-अमृष्य कर्मों का निन्वन करते हुए (विमणसो) उदास मन
 वाले (घोपय्य इत्यमाणा) शोक से बहते हुए (परिमूया ह्वंति) मनावर मुक्त
 होते हैं, (घट परिबन्धिया य) और घामर्ष्य रक्षित (छोमा) असहाय-छोमपाने
 योग्य (सिप्य क्का समयसत्य परिबन्धिया) क्षिप्य-विप्रकळा भादि कला-मनुबेद
 भादि और समयसाम्प्र-जैन बौद्ध शैव भादि के सिद्धान्त सास्त्र, इन सब से परिब-
 र्जित अर्थात् अनजान होते (जहाजाय पसुभूया) मूर्ख और पशु के समान (अवि-
 यत्ता) अपीति रूपज करने वाले (शिष सीयकम्भोबसीदिणो) सदा भोष कर्मों
 से भीबिका बचाने वाले (छोय कुच्छयिग्गा) शोक में निन्दनीय (मोष मणोरहा
 निरास बहुळा) निष्कल मनोरथ वाले व निरास की अधिकता वाले (भासापास
 परिबन्धियाणा) आशा के पाश में बंधे हुए प्राण वाले (अस्थोपावाण कामसोक्ये
 य छोगसारे) जय्यं सम्पद्-धन सख्य तथा काम सुखरूप शोक के सारांस में
 (सुद्ध'य एवमंवा) लक्ष्मी तरह से धयम करते हुए भी (अफळबंयका ह्वंति)
 निष्कल होते हैं, (तदिवसुवसुत्तकम्म रूप-दुक्कसंठविय-सित्पविह-संधव-पक्की-
 व-वम्भसत्ता) प्रतिदिन तत्पर होकर किये गये जम से दुःख पूर्वक मिछाये गये
 सिक्ख-गिरे हुए भाहार के अंसको संभय करके पर भी घटते हुए इत्य-सार वाले
 बाने भोजन के सिवाय कुछ भी नहीं बचाने वाले (निव) सदा (अधुव-यन्-यत्त
 छोष परिभोग विबन्धिया) अविचर धन बाम्य और कोष के त्पर रहने पर भी जो
 परिभोग से रक्षित हैं (रक्षिष काम-भोग-परिभोग सम्भ सोक्का) काम-सम्भ रूप
 भोग-गंध रस और इह स्वप्ने के परिभोग में आमन्व रक्षित हैं (परसिरि भोगोव
 योग निस्ताव मभाह्य परापणा) दूसरे की छद्मी से भोगोपभोग में निव-मात्रव
 की छोडा करने वाले (अकामिकए परागा) विना इच्छा सं बेचारे (विपेति-
 दुक्कं) दुःख को बहन करते हैं (नेव सुह नेव निष्पुति एवमंमंति) न सुख की
 और न कहीं इच्छा को ही वे प्राप्त करते हैं (अक्खंत विपुस दुक्कसय संपक्किता)
 अत्यन्त विस्तीर्ण सौंकों दुःखों से बहते रहते (जे परस्य वम्पेहि अविस्था) जो
 दूसरे के इत्य से निवृत्ति रक्षित हैं ॥

उपसहार—(एसोसो) ऐसा यह—(अदिण्णादाणस्स फल विवागो) अदत्तादान का फल रूप विपाक (इहलोइओपारलोइओ) मनुष्य लोक और परलोकसम्बन्धी (अप्पसुहो ब्रहुदुक्खो महब्भओ वहुवरयप्पगाढो) अल्प सुख वाला, अधिक दुःख वाला, महाभयानक, कर्मरज की अधिकता से गाढ (दारुणो कक्खो असाओ) भयङ्कर, कठोर और दुःख रूप है (वाससहस्सेहिं मुच्चवति) हजारों वर्षों से छूटता है (न य अवेयइत्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति) विना भोगे इससे छुटकारा नहीं होता है (एवमाहसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर नाम धेब्बो) इस प्रकार ज्ञात-कुल-नन्दन-जिनवर महावीर नाम वाले महात्मा ने कहा है (कहेसी य अदिण्णादाणस्स फल विवागं) और अदत्तादान के फल रूप विपाक को कहेंगे (एयं तं तत्तियपि अदिन्नादाणं) यह वह तीसरा आखवद्वार भी अदत्तादान नाम का हुआ (हर-दह-सरणभय—कलुप्त—तासण-परसंतिक-भेब्ज-लोभमूल एव जाव चिर-परिगत मणुगत दुरत) हरण, जलन और मरण भय वाला तथा यावत् दूसरे के धनग्रहण रूप लोभ के मूल वाला इस प्रकार यावत् चिरकाल से रहा हुआ भव-परम्परा से साथ चलने वाला और दुरत—दुःख से अन्त वाला है (तत्तियं०) इस प्रकार तीसरा अधर्मद्वार पूर्ण हुआ, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ६।१२ ॥

भावार्थ—सूत्र के इस अंश में बताया गया है कि वे चोर मर कर नरक में जाते और सैकड़ों दुःखों का वहां अनुभव करते हैं। वहां से निकले भी तो नरक के समान फिर तिर्यञ्च योनि में वेदना भोगते हैं। अनन्त काल से अगर कहीं मनुष्य जन्म प्राप्त किया तो भी अनार्य व नीच कुल में उत्पन्न होते हैं, आर्य होकर भी लोक-बहिष्कृत तथा तिर्यञ्च के समान अकुशल यावत् धर्म, श्रुति रहित और क्रूर व मिथ्यात्वी होते हैं। एकान्त हिंसा की रुचि के कारण अपनी आत्मा को रेशम के कीड़े की तरह खाठ कर्मों के तन्तुओं से वे वेष्टित करते हैं। इस प्रकार अनन्त काल संसार-सागर में निवास करते हैं। ये पाप कर्म करने वाले मित्रादि रहित, अनिष्ट, साधन विकल, शरीर के आकार, प्रकार व रचना से हीन एव बुरूप होते हैं। अधिक कषाय वाले, धर्म बुद्धि से रहित, दरिद्री, दास, और योग्य अन्न जल आदि जीवनोचित सामग्री में भी मुंहताज होते हैं। दूसरे के द्रव्य की इच्छा रखने वाले प्राणी कभी सुख व शान्ति नहीं पाते और अत्यन्त दुःखी होते हैं। उपसहार पूर्ववत् ही समझ लें। इस प्रकार तीसरा अधर्म द्वार पूर्ण हुआ । ३। सू। ६।१२

चौरासी ८४ लक्ष जीव योनिः^१

७ छाक पृथ्वी काव ७ छाक अप्कय ७ छाक तेजस्काय, ७ लक्ष वायु काव
 १० लक्ष प्रत्येक बनस्यति, १४ लक्ष साधारण वनस्यति, २ लक्ष द्वीम्बिय, २ लक्ष
 त्रीम्बिय, २ लक्ष चतुरिम्बिय ४ लक्ष मारक,—४ लक्ष देव, ४ लक्ष विपन्न, नीर
 १४ लक्ष मनुष्य, ऐसे ८४ लक्ष जीवों को योनिर्वा हैं ।

“चतुर्थम् अब्रह्माध्ययनम्”

सम्बन्ध-तीसरे अध्यायन के बाद चौथे अध्यायन का प्रारम्भ करते हैं, सूत्र में किये हुए निर्देश के अनुसार अब्रह्म में आसक्त चित्त वाला प्रायः भदत्त का ग्रहण करता है। पञ्च द्वारों से अब्रह्म वर्णन करते हुए श्री सुधर्म स्वामी पहले इसका स्वरूप वर्णन करते हैं-

मूल-“जंबू ! अब्रह्मं च चउत्थं सदेव मणुयासुरस्स लोयस्स पत्थण्णिज्जं, पंक-पणाय-पासजालभूय, थी-पुरिस—नपुंसवेद-चिधं, तव संजम षंभचेरविग्घं, भेदायतण-बहुपमादमूल, कायर-कापुरिस सेवियं, सुयणजण वज्जण्णिज्जं, उड्ढ-नरथ—तिरिय-तिलोक्क, पइड्डाणं, जरा-मरण-रोग-सोग बहुलं, बध बंधविघात दुव्विघायं, षसण-चरित्त मोहस्स हेउभूय चिरपरिगयमणुगयं दुरंत चउत्थं अधम्मदारं ॥ सू० १।१३ ॥

छांय-“हे जम्बू ! अब्रह्मं च चतुर्थं सदेव मनुजाऽसुरस्य लोकस्य प्रार्थनीयं, पङ्क-षनक पाशजालभूतं, स्त्री पुरुष-नपुंसक वेद चिह्नम्, तपः सयम ब्रह्मचर्यं विघ्नः, भेदायतन-बहुप्रमादमूलम्, कातर कापुरुष सेवितम्, सुजनजन वर्जनीयम् ऊर्ध्वं नरक-तियंक्-त्रैलोक्य प्रतिष्ठानं, जरा-मरण-रोग-शोक बहुलम्, बध-बन्धन-विघात दुर्विघातम्, दर्शन चारित्र मोहस्य हेतुभूतम्, चिर-परिगतमनुगतम् दुरन्तं चतुर्थ-मधर्मद्वारम् ॥ ० १।१३ ॥

अन्व-“(जंबू !) हे जम्बू ! (अब्रह्मं च) तीसरे के बाद अब्रह्म नाम का (चउत्थं) चौथा आख्यवद्वार है (सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स पत्थण्णिज्जं) देव, सहित मनुष्य और असुर लोक का प्रार्थनीय है (पंक-पणाय-पासजालभूय) कीचड, चिकनी काई, पाश और जाल के समान (थी पुरिस नपुंसवेद चिधं) स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदका चिह्न है (तव, संजम षंभचेर विग्घं) तप, सयम और ब्रह्मचर्य का विघ्न (भेदायतण बहु प्रमादमूल) चारित्र भग का स्थान और अनेक प्रमादों का मूल कारण है (कायर कापुरिस सेवियं) कायर तथा अधर्म मनुष्यों से सेवित (सुयणजण वज्ज-

श्लिष्टं) सुजन बनों से परिहार करने योग्य (बहु नरय विरिय विज्ञोक्त पदार्थ)
 छम्बछोक नरकछोक, मपोसोक्त, त्रिपगू म्भ्यछोक रूप त्रिछोक्ते में पुतिष्ठान भित्ति
 वासा (जरा म-ण रोग सोग बहुते) जरा, मरण और रोग छोक को भविकता बाळा
 (बध बंध विधात दुस्विधात) बध बन्धन और माहा से दुस्कर विधान बाळा
 (दंसम परिच मोहसस हेतुमय) दर्शन मोह और चारित्र मोहका कारण (निर
 पत्तियमणुगयं दुरंतं अउयं मयम्भार) अनदि काळ से परिभिन पोछे २ माने
 बाळा और दुस्त्र से अन्त हो सेवा यह अतुष अचमहार है ॥ सू० १ ॥ १३ ॥

माह—सुपम रबामो फरमाते हैं-हे अम्बू ! अक्षर यह अतुष आसत्र है, देव,
 अनुष्य और असुर आदि जीवों से प्रायतोष, प्राणिमों को कृच्छ्रिण करने व
 कसाने के कारण कोचह तथा जाल के समान है, स्त्री पुरुष और नपुंसक श्रेष्ठ का
 पिष्ट, तप संयम आदि में विभ्र पात्रि भृक्ष का रयान और विविध प्रमादों का मूत्र
 है। काबर व भीष जन से सेबित, सुजन-सत्त्व पुरुषों से छोटा दुष्म्य वीनों का म
 आचय पाया हुआ जरा मरण और रोग शाक को प्रयुक्त बाळा पावत् वधत्र मोह
 और चारित्र मोह का हेतु है। श्लोप प्रयुक्त ॥ सू० १ ॥ १३ ॥

मूक—“तस्म यथा माषि गात्राणि इमाणि ह्येति तीस्रं तजहा
 १ अयं २ मेहुण ३ अरंत ४ नमग्नि ५ सेषणाधिकारो ६ सकृत्पो
 ७ याहणा ८ पदाण्य दप्पो ९ मोहो १० मण संभवा ११ अपिगगहा
 १२ युग्गहा १३ विघाषो १४ यिनगो १५ विहभमो १६ अयम्भो
 १७ असीलया १८ नामपम्भ तिस्ती १९ रुती २० राग, २१ काम-
 भाग मारो २२ घेर २३ रइस्म २४ गुज्ज २५ बहुमाणा २६ र्धु न
 घेर विघा २७ घाषति २८ यिराहणा २९ पसगा ३० वा, युयो
 ति विप, तस्स पयाणि पयमादीणि नाम पेयाणि दाति
 तीस्रं ॥ सू० २ ॥ १४ ॥

छापा—तस्य च नामानि गीयानोमानि भवन्ति त्रिंशत् तानि यथा अक्षर
 मियुनन पण् संसर्ति, सेषनापिडाट, सुहृन्, वापनाप्रदानां र्धुः मोहः मन-
 घाभाः, अनपद विमरः, विधानः, विभ्रमः, अयम्भं अरतेजना प्रामभम्
 र्धुः, रति रागः कामभागमार घेर रइस्म गुपम् बहुमान मय्यचविभ्रः,

व्यापत्तिः विराधना, प्रसङ्गः, कामगुणः, इत्यपि च तस्य एतानि एवमादीनि नाम-
धेयानि भवन्ति त्रिंशत् ॥ सूत्र २।१४ ॥

अन्व०—(तस्स य) और उस अत्रह के (इमाणि गोत्राणि) ये कहे जाने
वाले गुण निष्पन्न (नामाणि) नाम (तीस होंति) तीस होते हैं (तं जहा) जैसे
कि—(भवभ) अत्रह-अशुभ आचरण (मेहुणं) मैथुन-स्त्री पुरुष का कर्म (चरंत)
चरत्—विश्व को व्याप्त करने वाला (संसर्गि) ससर्गि-स्त्री पुरुष के विशेष ससर्गे
वाला (सेवणाधिकारो) सेवना अधिकार-चोरी आदि की प्रतिसेवना का अधिकारी
(सकप्पो) सङ्कल्प-विकल्प से होने वाला (वाहणा पदान) वाधना-सयम स्थान या
प्रजा को घाधा करने वाला (दप्पो) दर्प-अभिमान से होने वाला (मोहो) मोहोदय से
होने वाला (मण संखेवो) मनः संक्षेप अथवा मनः संक्षोभ-मन को संकुचित या
झुंघ करने वाला (अण्णिगहो) अनिग्रह-विषय में प्रवृत्त मन को निग्रह नहीं करने
वाला (चुगगहो) विग्रह-कलह का कारण (विघाओ) विघात-गुणों का नाश
करने वाला (विभगो) विभग-गुणों का खडन करने वाला (विवभमो) विभ्रम-
सुख की भ्रान्ति करने वाला (अघम्मो) धर्म विरुद्ध (असीलया) अशीलता-दुश्शो-
लपन (गामधम्मत्तित्तो) गाम धर्मवृत्ति-तप्ति शब्दादि—कामगुणों में वृत्ति करना या
काम गुणों का गवेपण करना (रति) वुरा प्रेम (रागो) राग—विषयानुराग
(काम भोग मररो) काम भोगों के साथ मरण वाला (वेर) वैर-शत्रुता का कारण
(रहस्स) रहस्य-एकान्त में छिपके करने योग्य (गुज्झ) गुह्य-छिपाने योग्य व
अवाच्य (बहुमाणो) बहुमान-बहुतों का माना हुआ (वंभचेर विग्घो) ब्रह्मचर्य
का विघ्न (वावत्ति) व्यापत्ति—सद्गुणों से गिराने वाला (विराहणा) विराधना-
यक देश से व्रत खण्डन का कारण (पसंगो) प्रसङ्ग-कामगुणों में प्रसङ्ग करना
(काम गुणोत्ति वि य) और कामगुण इस प्रकार (तस्स एयाणि) उस अत्रह के
थे पूर्वोक्त (एवमादीणि) इस प्रकार के अन्य, इत्यादि (नाम धेज्जाणि) नाम
(तीस होंति) तीस होते हैं ॥ सू० २।१४ ॥

भावार्थ—“ उस अत्रह के ये गुण युक्त ३० नाम होते हैं, जो ऊपर कहे जा
सुके हैं । ये केवल मुख्य २ बातों का सङ्केत मात्र है । अतएव एवमादीनि, यह विशे-
षण है, इससे दूसरे नामों की सूचना हो रही है । इसलिये तीस ही नाम निश्चित न
समझकर दुराचार, विषय भोग आदि नाम भी समझ लेने चाहिये । सू० २।१४ ॥

अथ इसके सेवन करने वालों को कहते हैं ।—

मूक— 'त च पुण्य निसेवति सुरगणा, स अच्युता, मोह मोहिय-
मती, असुर-सुयग-गरुड-विष्णु-अन्नय त्रीव उदहि । वीर्य पवण
धणिया १० । अथ बलि-पशुबलि-इसिनाविय-सूयवा । विय कविय
महाकविय—कूडस-पर्यग देषा ८ । पितायभूय-अफल-रफलस
किन्नर किंपुरिस—महारेग-गणध्वज ८ । तिरिय-जोइस-विमास-
वासि-मणुय गणा जक्षयर—यक्षयर-अक्षयर ८, य मोह-पडिबद
बिष्ठा, अविमयहा, काम-भोग तिसिमा, तयहाए यक्षबहेए मह-
ईप समभिमूया, गडिया य अतिमुष्टिद्वय ८ य अरने ठरमयसा, ताम-
सेष भाषेण अणुम्मुका, दसप-चरित्त-मोहस्म पञ्जर विष क्तगति
असोऽस सवमाया । मुचनो असुर—सुर—तिगिय-नणुअःभाग
रति-दिहाराः प्रठस्ता य यक्षबही । सुरनावति सक्षयः सुर बरुव
वेवखोप, अरह षग षगर १० वियम—जयबय-पुरवर-वापमुह-चड
७ कः ३३ मठय-सपाइ पदण-सहस्म भडिय, धिमिय मेयधिय एग-
च्छुर्त, अस्तागर जुजिऊण बसुह मासीहा नरवई नरिवा नर-
यस मा लक्ष्य-वस मकप्पा अरुमाहिय रायतय-लक्ष्मीए धिप्पमाणा
सोमा रायससतिऊगा, रवि-सभि-सव-वरचक्ष-सोस्थिय पडाग
जय मच्छ-कुम्म-रहपर भग भवण-विमास-तुरय-नोरण-गोपुर
मणिरयण—नवियावत्त-मुसक-खगळ-सुरहयवर कल्पकस-मिग
धति महासक सुरधि पूमवर-मठस—सरिप-कुसळ-कुञ्जर—वर
बसभ-वीथ मंविह-गरुड-द्वय इवकेठ-वप्पण—अक्काषप-थाव-बाण-
मखस मेइ मेइक-वीणा जुग-क्षुत्त-दाम—वामिधि-कमडहु-कमस-
घटा-वरपोत-सूह—सागर—कुमुदागर—भगर—हार गागर-मेठर
णग-यगर बइर बिन्नर मसूर-वरराय हस-सारस-चकोर-यक्षबाग
मिहुण-चामर-जेडग—पठवीसग-विपधि—वरताडिपट सिरिया
भिमेय मेइशि अगकुस-विमक कळस भिगार-बद्धमाखग पसत्य

उत्तम विभक्तवर-पुरिसलकवर्ण धरा। वत्तीसं वरराय सहस्राणु-
जायमग्गा, चउसट्टि-सहंसस पवर जुवतीण णयणकुंती, रत्ता भा
पउम-पम्ह-कोरंटग—दाम चंपक सुतयवरकणक—निहसवण्णा,
सुजाय-सवंग सुंदरंगा, महग्घवर पट्टणुग्गय विचित्त राग-एणि-
पेणि-णिम्मिय-दुगुल्ल-वरचीण पट्टकोसेज्ज-सोणी सुत्तक विभूधि-
र्यंगा, वरसुग्गभि-गंधवर-चुण्णवासवरकुसुम-भरिय सिरया,
कणिय छेया यरिय-सुकय-रहतं-माल-कडगंगय-तुडिय-पवर भूस-
ण पिणद्धदेहा, एकावलि-कंठ सुरइय-वच्छा, पालेष-पलंबमाण
सुकय-पंडउत्तरिज्ज-मुहिया पिंगलंगुलिया, उज्जल-नेवत्त-रइय
चेल्लण विरायमाणा, तेण दिवाकेरोव्व दित्ता, सारय-नेव-
त्थणिय महुर-गंभीर निद्धयोसा, उप्पन्न-समत्त-रयण-चक्क-रयण-
प्पहाणा, नवानिहि वैहणो, समिद्ध कोसा, चाउरंता चाउराहिं
सेणाहिं समणुजातिज्जमाणमग्गा, तुरगवती, गयवती, रह-
वती, नरवती, विपुलकूलवाभुयजसा, सारय—ससि—सकल
सोमवयणा, सूरा तेजोक्क-निग्गय-पभावलद्धसादा. समत्ता भर-
हाहिवा, नरिंदा, ससेलवण काण्णच हिमवत साग-तं, धीरा
भुत्तूण भरहवासं जियसत्त पवर रायसीहा, पुव्वकड तवप्पभाशा,
निविट्ट संचियसहा, अण्णमवाउसयमायुवंतो भज्जोहि य जण-
चयप्पहणाहिं लालियता-अतुल सह-फरिस-रस-रुव-गंधे य अण्ण
वेत्ता तेवि-उवण्णंति मरणधम्मं, अविदत्ता कामाणं ॥सू० ३।१५।

छाया—“तच्च पुनर्निषेवन्ते सुरगणाः साप्सरसो मोहप्रोहितमृतयः असुर-भुजग-
गरुड-विद्युज्ज्वलण द्रोपोदधि-दिक्-पवन-स्तनिताः १० । अणपन्निक पणपन्निक-जृष्टि-
षादिक-भूतवादिक-क्रन्दित-महाक्रन्दित-कूष्माण्ड-पतङ्गदेवा ८ । पिशाच भूत-यक्ष-
राक्षस-किन्नर-किम्पुरुष-महोरग गन्धर्वा ८ । तिरंग-ज्यौतिष-त्रिमानवासि मनुजगणाः,
अलेचर-स्थलचर-खेचराश्च, मोहप्रतिबद्धचिन्ता, अविवृण्णाः काम भोग वृषिताः, वृषण्या
बलवत्या महत्या समभिभूता गृद्धाश्चानिमूर्च्छिताश्च अत्रह्वाणि, अवसन्नास्तामसेन

१ क-सुतत्त इति पाठेन भाव्य १ क-नवनिहि पइणा

भाषेनाऽनुमुक्ताः, दर्शनं चारिं मोहस्य पञ्चरमिव कुर्वन्ति अन्वोऽप्यं (परस्पर) सेव
मानः । भूषोऽसुर-सुर-तिर्मङ् मनुज भोग रति विहार सम्प्रयुक्ताश्च चक्रवर्तिनः सुर
वरपति सत्कृताः सुरवरा इव देव लोके भरत-भग-नगर-निगम जनपद-पुरवर
श्रेष्ठमुक्ता-श्रेष्ठ-कर्मठ-महत्त्व-संवाह-पत्तन सङ्घमण्डिता सिधमिहमेदिनीकामेकच्छत्रा,
असागरा मुक्त्वा वसुधा, नरसिंहा नरपतयो नरेन्द्रा नरहृपमा मरु (व) हृपमकम्पा
अभ्यधिकं राजतेकोकम्प्या दीप्यमाना सौम्या राक्षसंघतिष्ठन् रवि-शशि इन्द्र-वर-
चक्र-स्थितिक पताका-यव-मत्स्य कूर्म-रथवर-भग-भवन-विमान-सुरग-तोरण-गोपुर
मणिरत्न-मन्त्रवर्त-मुपब-आङ्ग-सुरचितवरकम्पयुक्ता-प्रागपति-भद्रासन-सुदधि-स्तूप-
वरमुकुट-मुक्तावली कुम्भक-कुम्भार-वरहृपम-होप-मन्वर-गदह-स्वमेन्द्रकेतु वर्पजा
ष्टापद-बाप-बाण-नक्षत्र मेघ-मेखला-बीणा-युगच्छत्र-शाम-दमिनो-कमण्डक-
कमल-पट्टा-वरपोष-सुखी सागर-कुमुदाकर-मकर-हार-स्त्री परिधान (गागर)
नूपुर-नग-नगर-बध्न-किन्नर-मयूरवर-राजईस-सारस-बकोर-चक्रवाक-सियुत-
चामर श्रेष्ठक-पद्मीसक-विपक्षी-वरतामसुक्त श्रीकामिपेक-मेदिनी-आङ्गाऽनुस-
विमल कलस-भृङ्गार-वर्द्धमानक-प्रशस्तोत्तम-विपिक्त वर पुरुष सक्षयवरा । इति-
शत्रुराज सहसाऽनुजात मार्गाः, चतुः पश्चिमरयुवतीनां मयनकाम्नाः, रक्षाभाः पद्य-
गर्म कोरुष्टक-शाम चम्पक सुतक्षवर कनक-निकपसवर्षा सुबाव-सर्वाङ्ग सुन्दराङ्गा,
महापवर पत्तमोद्गत विचित्ररागोष्ठी-मैथी (चम) निर्मित-मुकुटवर चोनपट्ट
कौशेयक शोषी सूत्रक विमूषिताङ्गा, वरसुरमिगम्भवर वृषबास वरकुमुम भरिव-
धिरस्ता कल्पित जेकाचार्य-सुकुत-रतिक माता-कटकङ्कट्टुटिका, मवर मूप्य
पिनसवेहा, एकावली कण्ठ सुरचितवद्यसा प्रकम्प प्रकम्पमान सुकृत पतोत्तरीय मुक्ति-
का-पिङ्गलाऽऽङ्गुल्यः, कम्बल नेपथ्य-वर्षित-श्रेष्ठक-विराजमाना तेजसा विषाकरा
इव बीताः, शारद नवस्तनित-मयुर गम्भीर स्तिग्धपोषाः, कल्पज जमस्तरङ्ग-चक्रस्व
प्रभाभा मधनिधिपरायः, सस्यकोशाश्चतुरन्तःप्रतसृमिः सेनामि सममुप्यजमान
आर्गाः, सुरगपतयो-राजपतयो-रजपतयो-नरपतयो-विपुल कुल विभुत वसस, शारद शशि
सकलशोभयवता, शूरस्त्रीतीक्ष्णनिर्गत प्रभाष कम्पहाष्या समस्त-मरताधिपा नरेन्द्राः,
सक्षीकवम-काननं च द्विमवसागरान्तं धीरा मुक्त्वा भरतवर्षे दितसत्रव मवररावसिंहा
पृथक्कृतपः, प्रभाषाः, विविध सङ्घित हुक्ता, जनक वर्षेद्यतमायुष्मन्तो मार्वाभिश्च
जमपद प्रभाषामिर्भान्माना अतुल्य शम्भ-वर्षे-वस-रूप गम्भीराऽनुसूत्र तेऽपि वपम-
मन्वि भरतव पमे-विद्यताः कामेपु । सू० । १ । १५ ॥

अन्वयार्थ—(तं च पुण) और फिर उस चौथे अन्न को (निसेवति) सेवन करते हैं (सुरगणा स अच्छरा) अप्सरा सहित वैमानिक देव समूह, ये कैसे हैं ? (मोह मोहियमतो) मोह से मोहित बुद्धि वाले (असुर-भुयग-गरुड-विज्जुजलण-दीव-उदधि—दिसि-पवण-थणिया) ? असुर कुमार २ भुजंग—नाग कुमार ३ गरुड-ध्वजवाले—सुपर्ण कुमार, ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्वीपकुमार, ७ उदधि-कुमार, ८ दिक्कुमार, ९ पवनकुमार, और १० स्तनितकुमार, ऐसे दश भवन पति (अणवन्नि—पणवन्निय—इसिवाइय भूयवादिय कदिय महाकदिय-कूहड पयगदेवा) १ अणपत्ति, २ पणपत्ति, ३ ऋषिवादिक, ४ भूतवादिक, ५ क्रन्दित, ६ महाक्रन्दित, ७ कूष्माण्ड और पतङ्ग देवरूप व्यन्तर विशेष (पिसाय—भूय-जक्ख—रक्खस-किन्नर—किंपुरिस—महोरग—गधन्वा) १ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किन्नर, ६ किम्पुरुष ७ महोरग और ८ गन्धर्व ये आठ जाति के व्यन्तर देव (तिरिय-जोइस-विमाणवासि मणुयगणा) तिर्यग् लोक में जो ज्योतिष्क, विमान वासी-ज्योतिष्क देव तथा मनुष्यगण (जलयर—थलयर—खहयरा य) और जलचर, स्थलचर व खेचर—आकाश मार्ग में चलने वाले पशु पक्षिगण (मोह पाडिबद्धचित्ता) जो मोह में बंधे चित्त वाले हैं (अविताण्हा काम भोगतिसिया) प्राप्त विषय में विना बुझी हुई व्यास वाले अर्थात् सन्तोष रहित व अप्राप्त काम भोग की तृप्ता वाले (तण्हाय बलवईए महईए समभि-भूया) बलवती और अधिक विषय वाली, महती—बड़ी भोग लालसासे घिरे हुए (गढिया य) और प्रथित—विषयों में गुथे हुए-गृह्य हैं (अतिमुच्छिया य अवभे) फिर अन्न—मैथुन में अत्यन्त आसक्त बने हुए (ससण्णा) कीचड़ के जैसे फसे हुए हैं (तामसेण भावेण) तमोगुण रूप भोग से (अणुमुक्ता) नहीं छूटे हुए (अन्नोन्न सेवमाणा) अन्न को परस्पर सेवन करते हुए 'देव आदि' (दसण चरित्त-मोहस्स पंजरपिव करेति) दर्शन मोह तथा चारित्र मोह के बन्ध को आत्म रूप पक्षी के लिये पञ्जर जैसा करते हैं, (भुज्जो असुर—सुर—तिरिय—मणुअ—भोग—रति विहार सपउत्ता) फिर विशेष रूप से कहते हैं—और असुर, सुर तिर्यञ्च और मनुष्यों के भोग में—रति-आसक्ति प्रधान अनेक क्रीडाओं से युक्त जो (देव लोए सुरवरुव्व) देवलोक में प्रधान देव की तरह 'यहाँ' (सुर नरवति सक्कया चक्कवट्टी) सुरेन्द्र और नरेन्द्र से सत्कार पाये हुए चक्रवर्ती 'हैं' (भरह—णग—णगर—णियम—जणवय पुरवर—दोणमुह—खेह—कन्वड—मडव—संवाह—पट्टण सहस्स मडिय) भरत-भारत वर्ष के नग—पर्वत, नगर, निगम—वणिक् प्रधान वस्ती, जनपद-देश, पुरवर-

राजधानी रूप सहर और श्रोणमुख, सेठ, कबट, महम्ब, संवाह—रक्षा के
 छिये धान्य अदि के संबहन योग्य दुग विशेष और पसान इनके इशारों ममूह से
 होमिन् (यिमिय-मेयत्रियं ण्गच्छत्) गितमित-निमय धन समूह बालो एकच्छत्र
 (ससागर वसुदं मुंभ्रिञ्ज) समुद्र महिन पृथ्वी का पाछन करके (मरसोहा नरबई
 नरिंहा नरबममा) नरमिह-मनुष्यों मं सिंह के समान, नरपति, नरेन्द्र-मनुष्यों में
 इन्द्र, नर प्रपम-पुटपभेष्ट (मन्व वसभरुणा) महहूपम—महमूमि के बादिमाम्
 कृपम के समान टायमार को निभाने वाले (रावतेय छच्छाप अम्मदियं) राजतेज
 का इहमी से अनिधाय (विप्रमाया) दोष्यमान-दोपते हुए (सोमा राययसविक्षगा)
 मोम्य भाकृति वाले, राजवश में सिद्धक रूप (रवि—ससि-सक्ष-वरपक्ष—सोत्थिय
 पहाग-अथ—मच्छ—कुम्भ-रहवर-भग-भवसु—विमाथ—दुरग—दोरण—गोपुर
 मणि रमण नक्षियावत्-मुनछ-संगळ) सूर्य, चन्द्र सप्त बरचक्र-प्रधानपक्र, स्वस्तिक,
 पताका यव मरय कुम्भ,रथवर इत्तमरथ मग-योनि, भवन बिमान, दुरग-घोडा घो
 रण, गोपुर-नगर का द्वार, मणि रत्न-चक्रेतन आदि मन्थावर्त—नव कोष का स्वस्तिक
 विशेष मूखल और सांगळ—इल (मुग्गय-वरकपरकक्ष-मिगधति-महासण-सुरुधि
 धूववर-मउड—सरिय—कुडळ—कुडर—वरवसम—रीव— मंदिर-गरुडदय-ईदकेच-
 इप्यज-अट्टावध-धाव-बाण—मकरत-मेह-मेहस बोला-भुग-च्छत्—राम) अछो
 रचना बाभा या सुखप्र-उत्तम क्करवृक्ष मृगपति-भिह भद्रासन—भासन विशेष
 मुरुषो या मुरपि-भांभरण विशेष, स्तूप-यज्ञस्तम्भ, उत्तम मुकूट, सरिका-मुष्काबळी
 आदि पुंठळ-कान क आभरण कुडर—दापो सरामरूपम द्वोप उल के बीच का
 भूमिभाग मम्हर-मेरुपवन या मन्दि, गडड स्वजा, इन्द्र वतु—इन्द्रपटि-सकडो
 वर पिण्ड विशेष, इपण-कौप, अष्टापद-जूर का पागा भयबा केनाग वधत; पाप-
 धनुष बाण गद्यत्र मेप, और मेवज्ञा-कमर का बोरा, बोला, युग-गाडी का जूभा
 छत्र शम-माडा तथा (शामित्रि—कर्मट्टु-कमळ-पंटा—वरपोन-मूह-सागर-
 कुगुगार-मगर-दार गगर-मेरु लुग लगर-बहर—दिसर-मधूर-वरदापदन-सारस
 पकार—पञ्चशक (ग) मिट्टन—वामर—ग्रहण-पञ्चोमग विपिबि—वरताछियट
 गि/पाभिमोव-मेरुग-भार्गव विमळ कजम-भिगार बटमाणुग-वमय वराम विभक्त
 वरपु/समकवलयग) शामिनी-दारी कमरु-कुण्डो कमर पञ्चा वराम ब्रह्म
 गृभा—गई सागर वृमुद चन्द्र विभक्ति कमळ का समूह मकर दार-भाभरण
 विष्णु गावर-नरो क परिने के करवा मृगुर—वांघ का मूवण गुनग—पवन, मगर,

वज्र, किन्नर,—देव या वाद्य विशेष, मयूर-मोर, उत्तम राजहंस, सारस, चक्रोर, और चक्रवाक-चकवा चकवो का जोड़ा, चामर, खेदक-पाटिया विशेष, पञ्चीसक और विपञ्ची-वाद्यविशेष, श्रेष्ठ तालवृन्त-उत्तम पंखा, लक्ष्मी का अभिषेक, मेदिनी—पृथ्वी, खड्ग-तलवार, अङ्गुश, निर्मल कलस, भृङ्गार-झारी, वर्द्धमानक-शरावा अथवा पुरुष के कंधे पर आरूढ पुरुष, इन शुभकारी उत्तम पुररों के प्रधान लक्षणों को शुद्ध रूप से धारण करने वाले (वत्तीस वर राय सहस्राणु जायमगा) पीछे चलने वाले वत्तीस हजार उत्तम राजाओं से अनुगत मार्ग वाले (चउसट्टि सहस्र-पवर जुवतीण-णयण-कना) चौंसठ हजार उत्तम युवतियों के नयनाभिराम (रत्ताभो) लाल कान्ति वाले (पउमपम्ह कौरटग—दाम—चपक सुतय-वर कणग-निहसवृण्णा) कमल का गर्भ, कोरट, फूलों की माला, चम्पक-चम्पा का फूल और अच्छी तरह तपे हुए उत्तम सुवर्ण को रेखा के जैसे वर्ण वाले (सुजाय सव्वंग-सुदरगा) अच्छी तरह से निष्पन्न सभो अङ्गों से सुन्दर शरीर वाले (महग्घवर पट्टणुगय विचिन्त राग एणि पेणि णिमिय दुगुल्लवरचीणपट्ट कोसेज्ज सोणोसुत्तक विभूसियगा) बहु मूल्य उत्तम पट्टन में बने हुए तथा अनेक प्रकार के रङ्ग वाले और हरिणो के वर्म से निर्मित वस्त्र, दुकूल वृक्ष विशेष की वल्क-छाल को जल के साथ ऊखल में कूटकर उस के सूत से बनाये हुए वस्त्र दुकूल वस्त्र कहाते हैं, वरचोचन—दुकूल वृक्ष की छालके भीतरी तन्तुओं-हीरकों से बनाये गये अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र अथवा चोचन देश में बने हुए, पट्ट-पट्टसूत्र-पाट के कपडे, कौशेयक-कीट से बने हुए रेशमी वस्त्र और श्रोणी सूत्र-कटिसूत्र-कदोरा इनसे विभूषित शरीर वाले (वर सुरभिगंध - वर पुण्ण वास-वर-कुसुम भरिय सिरया) उत्तम सुगन्धित पदार्थ, सुगन्धि युक्त चूर्ण, वास और प्रबान फूलों से भरे हुए शिर वाले (कप्पिय-छेया यरिय—सुकय-रइत्त-माल-कदगंगय तुडिय-पवर भूमण-पिण्णददेहा) कुशल आचार्य से अच्छी तरह बनाये गये इष्ट और मन को आनन्द देने वाले माला, कटक—ककण, अङ्गद—भुज बन्ध, त्रुटिक-बाहु रक्षक-बहरखा तथा अन्य मुकुट आदि प्रवर भूषण—शरीर पर पहने हुए हैं (एकावलि कठ-सुरइयवच्छा) एकावली-सुवर्ण आदि की एक लडो माला कण्ठ में डालकर हृदय प्रदेश को सुशोभित करने वाले (पालव-पलवमाण-सुकय-पडउत्तरिज्ज-मुहिया पिंगलगुलिया) लम्बे लटकते हुए उत्तम रचना युक्त उत्तरीय वस्त्र वाले तथा अङ्गुठियों से पीली अङ्गुली वाले (उज्जल नेवत्थ—रइय—चेल्लग-विरायमाणा) सुख प्रद-उज्ज्वल वेष के वस्त्रों से विराजमान (तेण दिवाकरोव्व दित्ता) तेज

से सूप के समान क्षीरि बाळे (मारय नव यक्षिष मधुर गंमोर निद्र पोसा) शरत्कास
 के मधीन उत्पन्न गर्भात्वे के समान मधुर गन्मीर और क्षिप प्रेमयुक्त ध्वनि बाळे
 (कण्ठ्य समस्तरयण्य पकरयण्यहागा) उत्पन्न हुए सभी रत्नों के स्वामी और
 पकररतन की प्रधानता बाळ (नवनिद्रिश्ये) नव निधान के माडिक तथा
 (समिद्ध कोसा) समृद्ध—परिपूर्ण स्वज्ञान बाळे (चाठरंता) चार समुद्र रूप
 अन्त-मयस्त पाळे (पहराहि सेखादि) हाथी पाडे रय और पदाति रूप-पतुरगिनी
 सेनाओं से (समजु खानिग्रमाणमगा) अष्टौ तरह अनुगमन किये हुए माग बाळे
 (सुरगवतो गयवतो रदवतो नरवनी) पाहों के स्वामी, गज के स्वामी रय के स्वामी
 और जा मनुष्यों के अधिपति हैं (विपुल कुम्भ विम्बुय जसा) बिस्तीर्ण फुल और पक्याव
 कीर्तिबाळे (सारयससि सच्छ सोम बयणा सूर) शरद शत्रु के पूनपत्र की तरह
 सौम्य मुग्य बाळ गूर-पराक्रमी हैं (तेजोकर भिगय पभाय-लद-सदा) त्रिजोषी
 में पैठे हुए प्रभाव बाळे व प्रविद्धि पाये हुए (समस्त भरदादिषा मरिषा) समस्त
 भरत क्षेत्र के स्वामी मरेन्द्र (ससेख-बन्-कण्ठ्य धोरा) और वे धीर शैल-पथव
 बन और करवनों से युक्त (हिमयन सागरंत मरहबासं) हिमवान—पुत्रदिम गिरि
 और समुद्र से अस्त बाळे मारतपप ण (मुत्तु) पाळकर (त्रिय सत् पूवर राय-
 सोहा) दायु रहित हसाम राजसिंह (पुत्रकृष्ट लक्ष्यमाषा) पूर्वजन्त तपस्या के प्रभाव
 से (निबद्ध खविय सुरा) संवित मुर्गों को भीगते बाळे होते हैं (अनेगबाय
 धयमायुवता) येकहों वर्ष की आयु बाळे 'प' (अन्नादि प अणुवपयद एहि)
 देण में प्रधान वेमो मायाओं से (खानियता) बिद्यास करत हुए (अत्रु मर-नरिम
 रम-रुच गंध य) और अत्रु दाम्भ स्वयं रूप और गंध का (अणुमपेसा) अनुभव
 करके (तैत्रि) के भी (बामर्ल अविना मरणधम्म जयमति) काम से धाने
 विषय भांग व विना वृत्ति पाये दा मृतु को प्राप्त करत हैं। १। १५।

गुण- सुगो भुज्जो पल्लव पातुदेवा य पवर पुरिमा मद्दा
 दा परगमा, मद्राधनुवि ददा मद्दामत्तागारा, पुद्ररा भणुद्रा
 र गगना, रामवमया भागरा मपरिमा पतुवप-ममुहापिजय
 भापिय दमारण्य पग्गुत-पतिय-मव-अनिरुद्र-निमह-उम्भुग
 वारप-गग मुगुद-उम्भुहादीप जायवाय अद्रुहापवि कुमार
 बाह्यि । दीपयदापिया देधीप रादिपीप वगीप दवहीप य आयद

हियय भावनंदणकरा, सोलस रायवर सहस्साणु जातमग्गा,
 सोलस देवीसहस्स-वरणयण हियय-दयिया, णाणामणि-
 कणग-रयण-मोत्तिय-पवालधण-धन्न संचय-रिद्धि-समिद्ध कोसा,
 हय-गय-रह-सहस्ससामी, गामागर-णगर-खेड-कव्वड-मडंभ-दोण-
 मुह-पट्टणासम-संवाह सहस्स धिमिय निव्वुय मुदित जण विविह
 सस्स निप्फज्जमाण-मेहाणि-सर-सरिय-तलाग-सेल-काणण-आरो-
 मुज्जाण-मणाभिराम परिमंडियस्स दाहिणड्ढ वेयड्ढ गिरि वि-
 भत्तस्स, लवणजलहि-परिगयस्स, छुव्विह कालगुण काम जुत्तस्स,
 अद्द भरहस्स सामिका, धीरकित्तिपुरिसा, ओहवत्ता, अहवत्ता,
 अनिहया अपराजियसत्तु-महाण-रिपुसहस्समाण-महणा, साणु-
 छोस्ता, अमच्छुरी, अचवत्ता, अचंडा, मितमंजुल-पलाषा-हसिय-
 गंभीर महुरभणिया, अम्भुवगयवच्छुत्ता, सरणणा, लक्खण-
 वंजण-गुणाव्वेया, माणुम्माण पमाण-पडिपुत्त जुजाय-सव्वंग-
 सुंदरगा, ससिसोमागार कंतपियदंसणा इमरिसणा, पयंड-
 ढंडप्पयार-गंभीर धरिसणिज्जा, नालद्ध उव्विद्ध गरुलकेज्ज, चल-
 वग-गज्जंत-धरित दाप्पित-मुट्टिय चाणूरसूरगा, रिद्ध-वसभ-
 घातिणो केलरिछुह विप्फाडंगा, दरितनागदप्पमहणा, जमल-
 ज्जुण भंजगा, महासउणि-पूतणारिज्ज कंस मउड मोडगा, जरा-
 सिंघ माण महणा, तेहि य अविरल सम लहिय चंड मंडल-
 समुप्पभेहिं, सूरानिरीयकवयं विणिम्मुयंतेहिं, सपतिदंडेहिं
 आयवत्तेहिं धरिज्जंतेहिं विरायंता, ताहि य पवर-गिरि कुहर विह-
 रण समुट्टियाहिं निरुवहय-चमर पच्छिम सरिर संजाताहिं
 अमहल-सियकमल विमुक्कुलुज्जलित रयतगिरि-सिहर-विमल
 सासि किरण सरिस कलहोय निम्मल्लाहिं पवणाहय चवल
 चलिय-सललिय-पणच्चिय-वीह पसरिय-खीरोदग-पवर मागरु-
 प्पूरचंचल्लाहिं, माणस सर-पसर-परिचियावास-विसदवेसाहिं,
 कणगगिरि सिहर संसिताहिं, उवाउप्पात-चवल-जाणियसिग्घ-

बेगाहि, इसषधूप्याहि, षष कबिया, नाण्यामण्य कस्यग महारिडन
 बणिकुमुज्जध विचिस्त डडाहि, सन्नाक्षयाहि, नरबति सिरिममुःय
 प्यगासय करीहि वर पदणुगगयाहि, समिद्ध तायकुळ साबियाहि,
 काळागुरुपवर कुडुरुळ तुरुळ धूवव रषास विमर-गपुदया
 भिरामाहि चिच्छिनाहि, 'उभयोपासपि चामराहि, ठभिल्लप्य
 माण्याहि, सुहसीतखधातवीतियगा अजिता अजितरहा इळ
 मुसळ कणग पाणी मळ चळ-गय-सास्ति-श्वदगचरा पंथकज्जळ-
 सुकत्त भिमळ बोयु म तिरीडपारी, कुडळ उज्जोधिपाळ्या,
 पुंडरीय षयणा एगावली कठ-रतिययळ्ळा सिरिवळ्ळ सुल्लुणा
 वरजसा सव्वाउय सुरभि कुमुम-भुरइय-पळव सोइत बिय
 सत । धिसत षयमाल-रतिययळ्ळा, अट्टमय-धिभक्त-क्षफण पसत्प-
 सुंदर विराइयगमगा । मत्तगय वरिष-कळियबिद्धम बिकसिय
 गती कडिसुत्तगनीळ पीत कोसिडजयाससा, पवर विसतया,
 सारय नवषणिय-महुरगंभीर-निद्धयासा नरसीहा, सीइबिद्धम
 गई, अत्पमिया, पवर रायसीहा सोमा वारवइ पुळ चंदा पुळ
 कपतवप्पमाबा, निविद्ध सचिय सुहा, अखेगवास सयमायुवंतो
 भज्जाहि य जळवयप्पहाळ्याहि काळियता, अतुळमइ-फरिस
 रस-रूव-गंधे अणुभवेत्ता, ते वि उषणमति मरळधम्म अचितता
 कामाय ॥ ४ । १५ ॥

छाया—“ मूयो मूयो बलादेव बासुदेवात्प्रमवर पुठपा महावज्जपराकमा महापुत्र-
 निरुपका महावस्त्रसागराः, दुदरा यदुदरा नरहपभा रामकेसवा भ्रातर सपरि
 परो बसुदेव-समुद्रविजयारिक वशाऽऽर्था प्रयुज्ज मतिव सम्भाऽनिकत्त-तिपथीरमुळ-
 धारण-गळ-सुमुस-हुमु जापीनी यावचानामम्पुष्टानामपि कुमार कोओना इव-
 वपिताः, देव्या रोहिण्या देव्या देवक्याऽऽनम् इवम्-भावनपुनकराः, पोडस
 राजवर अहसानुजावमार्गा पोडस देवी मडक वर मयन इवयवपिता नानामण्य-
 क्तक-रत्नमौक्तिक-प्रवाह-धम-धान्य-सद्यपदिसमित्त कोशा इव-गळ रव-

सहस्रस्वामिनो, प्रामाकर-नगर—खेट-कवेट—महस्य द्रोणमुख-पत्तनाऽऽपम-
सवाह—सहस्र—स्तिमित निवृत्त-प्रमुदित जन—विविध सस्य-निष्पद्यमान-मेदिनी-
सरःसरित्-तडाग-शैल-काननाऽऽरामोद्यान-मनोऽभिराम-परिमाण्डतस्य, दक्षिणाद्धै-
वैताह्य गिरिविभक्तस्य लवण जलधि परिगतस्य षड्विधकाल गुण काम युक्तस्य अर्द्ध-
भरतस्य स्वामिकाः, धीरकोर्तिपुरुषा-ओघबला-अतिबला-अनिहता-अपराजित—शत्रु-
मर्दन-रिपुसहस्र-मानमथनाः सानुक्रोशाः, अमत्सरा अचपला अचण्डा मितमञ्जुल-
प्रलापाः, हसित गम्भीर मधुरभणिता, अभ्युपगतवत्सलाः, शरण्या, लक्षणव्यञ्जित
गुणोपपेता, मानोन्मान प्रमाण परिपूर्ण सुजात सर्वाङ्ग सुन्दराङ्गाः, शशि सौम्याकार-
कान्तप्रियदर्शनाः, अमर्षणाः, प्रचण्ड दण्ड प्रचार गम्भीरदर्शनीयास्ताल ध्वजोद्विद्ध-
गरुडकेतवो-बलवद्गर्ज हस्र दर्पित-मौष्टिक-चाणूर मारकाः, रिष्ट वृषभघातिनः, केसरि
मुखविस्फाटका, हस्रनाग-दर्पमथनाः, यमलाजुन भञ्जका, महाशकुनि पुतना रिपवः,
कंस मुकुट मोटका, जरासन्ध मानमथनास्तैश्चाविरल-सम-सहित चन्द्रमण्डलसम-
प्रभैः, सूर्यमरीचिकवच विनिमुञ्चद्भिः, सप्रतिदण्डैरातपत्रैर्धियमाणैर्विराजमानाः,
तैश्चप्रवर-गिरि-कुहर विहरण समुत्थितैर्निरुपहत-चमरपश्चिम शरीरसञ्जातै-अमलिनः,
सितकमल-विमुकुलोज्ज्वलित-रजतगिरि—शिखर-विमलशशि-किरण सदृश—कल-
धौतनिर्मलैः, पवनाऽऽहत चपल चलित ललित प्रवृत्त वीचो पस्तुन परिचिताऽऽनास
विशदवेशाभिः, कनकगिरिशिखरस्रिताभिः, अवपातोत्पात चपल (वस्त्वन्तर)
जयनशीघ्र-वेगभिर्हसवधूभिश्चैवकाठिता. नानामणि कनक महार्ह-तपनीयोज्ज्वल
विचित्रदण्डैः, सललितैर्नरपति श्रीसमुदाय प्रकाशन करैर्वरपट्टनोद्गतैः, समिद्ध राज-
कुलसेवितैः, कालागुरु प्रवर, कुन्दुरुक-तुरुष्क-धूपवश वास-विशद-गन्धोद्धृताऽऽभि-
रामैर्दीप्यमानैरुभयपार्श्वयोरपि, चामरै रत्नक्षिप्यमाणैः, शुभशीतल—वात-वीजिताङ्गाः,
भजिताः, अजितरथाः, हळमुशळ कनक पाणयः, शङ्ख-चक्र-गदा-शक्ति-नन्दक धराः,
प्रवरोज्ज्वल सुकृत विमल-कौस्तुभ—किरीट धारिण, कुण्डलोद्योतितानना, पद्मावली-
कण्ठ रचितवक्षस्का, श्रीवत्स सुलाञ्छना, वरयशष्का, सवर्तुक—सुरभि-कुसुम-सु-
रचित-प्रलम्ब शोभमान-विकशच्चित्रवनमाला रतिद-वक्षस्का, अष्टशत-विभक्त-लक्षण-
प्रशस्त-मुन्दर विराजिताङ्गोपाङ्गा, मत्तगजवरेन्द्र लजित—विक्रम त्रिलसित गतय,
कटिसूत्रक नील-पीत-कौशेयवासस्का, प्रवरदीप्ततेजस्का, शारद नवस्तनित-मधुर-
गम्भीर-स्निग्धोपा, नरसिंहा, सिंहविक्रमगतय, अस्तमिताः, प्रवरराजसिंहा, सौम्याः,

द्वारावधौ पूषन्त्रा, पूर्वाह्न तपः प्रभावाः निविष्ट सञ्चितमुखा अनेकबाध सप्त
 मासुपमन्तो मार्गामिन्द्र जनपद प्रधानामिन्द्रास्थमाना, अतुल्य सम्भ-स्पर्श-रस-रूप
 गन्धाम अनुभूय तेषां अपनमन्ति मरणधर्ममवितृता कामेषु । ४ । १५ ।

अम्बुधर्य—(मुञ्जो मुञ्जो) फिर इसी प्रकार (वल्लभेश्वर वासुदेव) व पवर
 गुरिसा) वल्लभेश्वर और वासुदेव रूप उत्तम पुरुष (महाबल परब्रह्मा महापुत्र विष्णु-
 हृदा महासप्त सागरा) जो बड़े शारीरिक बल तथा पराक्रम वाले, बड़े धनुष को
 भींचने वाले और महाबल साहस के समुद्र हैं (तुलसी धनुषद्वारा) तुलसी तथा प्रधान
 अनुष्ठी (नग धसमा) मरों में रूपम याने भेष (रामकेसवा भायरो सपरिसा)
 बलराम तथा हृष्य मधवा बल्लभेश्वर वासुदेव दोनों भाई, परिवार सहित मी, 'भोग में
 प्रवृत्त हो भस्त होगए' विशेष कहते हैं—(वसुदेव समुद्रविषयमादिष्य वसाराण्य)
 वसुदेव और समुद्रविषय आदि वृत्तों के (पञ्चम-प्रतिव-संन-अनिरुद्ध-निसह
 श्मुय-सारण्य गय-सुमुह-दुग्मुहावीर्य चापवाण्य अतुल्यवि कुमार कोर्डीयं हियप-
 ष्ठिा) प्रमुञ्ज कुमार, प्रतिव शम्भ अनिरुद्ध कुमार, नियध, औरमुक सारण्य, गङ्ग-
 कुमार, सुमुय और तुमु क आदि पात्रों के तथा साठे तीन कोटि कुमारों के जो
 हृष्य धनुष हैं (देवीय रोहिणीय देवीय देवकीय य) देवी रोहिणी और देवी देवकी
 के (आर्णवविषय भाव नक्षत्रा) आनन्द रूप हृष्य के भाव को बढ़ाने वाले
 (सोलस रावधर सहस्राणु जाठमगा) मार्ग में सोलह हजार राजा जिनके साथ
 बसते हैं (सोलस देवा सहस्र बरष्मय-हियपवृत्ता) सोलह हजार राक्षसों के
 नेत्रों व हृदयों के प्रधान विष (नानामजि-कृष्ण रम्य-मोक्षि-प्रबाह-यण-धण-
 संधय-रिद्धि समिद्ध कोसा) अनेक प्रकार के मजि,सुधयै,रस-कर्मवम आदि मौखिक,
 प्रबाह-मूंगा धन-गिनते योग्य धाम्य-तोड़ने योग्य के सधय रूप धम्मी से
 समुद्र भरपूर-मज्जार वाले (हय-नाथ गह-सहस्रसामी) हजारों हाथी, घोड़े व रत्नों के
 स्वामी (गामागर-खगर-खेड-कषड-मडध-शोष्मुह-पट्टासम-संवाह-सहस्र-
 षिमिय-पिम्बुय-समुद्रित जण विविह-साध मिष्कजमाय मेहनि-सर-सरिय-तडाग
 खेड-काण्य-मारादुन्नाय-मयाभिराम परिमहियस) भाय, आकर मगर, खेड,
 कषड मडध शोष्मुह पटन आश्रम और संवाह पूष कथित स्वरूप वाले हम हजारों
 वशिष्ठों के निभय स्थिर-स्थाय और प्रमुदित लोक बाढा, अनेक प्रकार के धाम्य से
 अद्वित पृथ्वी और सर गरी ताकाव, पशव जानन, उपवन, आराम-की पुरुषों के

रक्षण करने योग्य-वन विशेष और मनोहर उद्यान-बगीचों से परिमण्डित ऐसे भारत-वर्ष का (दाहिणद्व-वेयद्व-गिरि विभक्तस्स-लवण जलहि-परिगयस्स छन्विह-काल-गुण-कमजुत्तस्स--अद्धभरहस्स) वैताह्य पर्वत से विभाग पाये हुए दक्षिण के अर्ध भाग रूप, और लवण समुद्र से तीन दिशाओं में घिरे हुए छः प्रकार के कालगुण याने ऋतुओं के कार्य-क्रम से युक्त अर्द्ध भरत के (सामिका) नाथ हैं, (धीरकित्ति पुरिसा) धीरों के योग्य कीर्ति वाले पुरुष, (ओहबला, अइबला, अनिहया) ओह-अविच्छिन्न-अखूट बल वाले, अतिशय बली, किसी से नहीं मारे गये (अपराजिय-सत्तुमदण-रिपुसहस्समाणमहणा) किसी से नहीं हारे हुए, शत्रुओं का मर्दन करने वाले, हजारों शत्रुओं के मानों को मथन करने वाले (साणुक्कोसा अमच्छरी) दयावान् तथा मत्सर-द्रोह से रहित (अच-बला अचडा) चपलता रहित, बिना कारण क्रोध नहीं करने वाले (मित मंजुल-पलावा) परिमित और मधुर सलाप वाले (हसिय गंभीर महुर भणिया) गम्भीर हास्य और गम्भीर ध्वनि वाले (अञ्जुवगयवच्छला सरण्णा) आभित्तों के वत्सल व शरण दाता (लक्खण वंजण गुणोववेया) लक्षण, व्यञ्जन-तिल-भसा आदि और गुण, दया आदि इन सबों-से युक्त (माणुम्माण पमाण पडिपुन्न सुजाय सव्वंगसुद-रणा) मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण तथा अच्छे बने हुए सभी अवयवों से-सुन्दर शरीर वाले (ससि सोमागार कतपियदसणा) चन्द्र को तरह सौम्य आकार और कान्त व प्रियदर्शन वाले (अमरिसणा) अपराधों को नहीं, सहने वाले या कार्य में आलस्य रहित (पयड-डड-प्पयार-गभीर-दरिसणिज्जा) प्रचण्ड दण्ड विशेष का विधान करने वाले या प्रकाण्ड सेना के विस्तार वाले तथा देखने में गम्भीर मुद्रा वाले (तालद्ध उन्विद्ध गरुड केऊ) उठी हुई ताल वृक्ष की ध्वजा वाले और गरुड केतु वाले 'बलराम और कृष्ण' (बलवग-गज्जंत-दरित-दप्पित-सुद्धिय-चाणूर-मूरगा) बलवान तथा मेरे समान कौन है ? इस प्रकार गाजते हुए अह-कारिओं में दर्पवाले, सौष्टिकमल्ल और चाणूर नामक मल्ल को चूर्ण करने वाले (रिद्ध-बसर्भधातियो) कस के अरिष्ट नामक बैल को मारने वाले (केसरिसुह विप्फाडगा) केंसरी का मुह फाड़ने वाले (दरित नागदप्पमहणा) दुष्ट नाग के दर्प को मथने वाले (जंमेलज्जुण भजंगा) अर्जुन-वृक्ष के रूप को धारण करने वाले दो विद्या-धरों के मान भङ्ग करने वाले 'श्री कृष्ण' (महासजणि पूतनारिवू) महा शकुनि और पूतना के शत्रु (कस मल्ल मोडगा) युद्ध के लिये तत्पर ऐसे कस के मुकुट को

मोहने वाले (जरासन्ध नामक राजा के मान को मथन करने वाले (तेहि प अबरिख—सम—सहिय—खंद्—भंडह समप्पमेहि सूर—मिरीय-कवर्ध—विणिन्सुयंतेहि सपनि—दुडेहि मायवचेहि भरिखंतेहि) और छिन्न रहित मुख्यशकाका वाले तथा हिनकारो चन्द्र मन्दक के समान प्रमावाले, सूय की किरणों के समान चारों ओर प्रमा-समूह को फैलाते हुए प्रतिदृष्ट वाळ, 'छिरपर भारे जाते हुए—'छत्रों से (विरायंता) विराजमान हैं ।

(ताहि प) और जन जामर्गों से युक्त जो (पवन गिरि कुहर बिहरण समुहियाहि) ऊँचे पहाड़ की गुफा में जमरी गाय के विचरते समय बलदेव हुए (निरुवहम पमर

१-वाचदास्तर में छत्र का वर्णन फिर ऐसा मिलता है परमपदक विंगलुगवर्द्धाई अकि-रक सम सखिच चद लहक समप्पभदि मगय मयमति-ज्येव-चितियखिखिखि-मभि-हेमजाक विरहव-परिगव-देरंत-ववव-वदिय-पयजिय-खिखिखिखि-सुमहुर-सुह-सुह-धरक सोहि-पदि प्रपवरम-मुत्तदाम-कवत सूसमदि र्दि-वामपमाल-धरपरिमवडेहि सीयावक-वाचवरिच-विसरोसजातपदि तमरव-मकण्डुम पदक-वाचव-पहाकरेहि सुवसुह-सिक्कवाचसमसुवडेहि वेरिखिखिखिखिखिखि ववरामव-वदिय-त्रिदल-जोह्य-जडसहरस-वरकचमप्रकाग-विमिमपि सुदिसच-रयव-सुसुप्पइपि विदवादिक्-मिसिमिति मभि-रयप-सूर मडक-बितिमिर कर-दिग्गव-पडिहव पुजावि-रयोवपत खंचक मरीह कचव विवि-मुपतेहि—'बडे वादक की तरह पीछे और उज्ज्वल छिन्न रहित बाराबर दितकारी व चन्द्र मन्दक के समान प्रमा वाळ कुचक छिपरी के द्वारा मडककारी सैकड़ों विभिन्नतियों से विन्न युक्त छोटी घटिका और इस जडित मोने की वाळ की रचना से चारों ओर घिरे हुए, प्राण्य भाग में दिकती हुई सुवर्ण भंडिकाओं के विचरिताहद से अतिघन मयुर और कर्मविष छत्रों से शोभित धामरम युक्त कटकती हुई मोठी की माका के मूल्य वाले राजा के फैलावे हुए वाहुओं के प्रमान गोक व विरतार वाळ सर्वा भर्मा चर इवा वर्षा और विषमवर्णवी दोषों का मिटाने वाले अल्पकार तथा भूमिदक के सख पदक को बह करने वाली घसा वाले मरक को सुलकारी तिकाहव छावा के समान्य वाले वैदुंबरक के विमंकइप्यों पर लाने हुए, बज्रमय मन्वभाय पर चतुा शिखिणों से जाडे हुए और एक हजार जट जलम लोमे की शकटाओं से जो विमित हैं सूय साध चांदी के पतरे से कथी तरह कपे हुए, कुचक शिखिणों से साक दिने हुए और वाळ चिक्कयुक्त मलिन की कियों से मूर्धमण्डक की विरितमिर बाहर पकती हुई कियों की तरह किलम समूह का फैलावे वाले (घारे घाने हुए) देते त्यों से शोभावमान ॥

पच्छिम सरोर संजाताहि) रोग रहित चमरो गौ की पूछ के पिछले भाग में (अम-
हल-सिय-कमल-विमुकुलुज्जलित-रथत-गिरि-सिहर-विमल-ससि-किरण-सरिस-
कूडहोय निम्मलाहि) निर्मल और खिला हुआ श्वेत कमल तथा उज्ज्वल किये हुए
चांदी के पर्वत का शिखर एव निर्मल चन्द्र को किरणों के समान तथा स्वच्छ चांदी
जैसे निर्मल (पवणाहय-चवल-धलिय-सललिय-पणश्विय-वोड-पसरिय-खीरोदग-
वरसागरूपूर चचलाहि) वायु से ताडित होकर जैसे चपल हो वैसे चलता हुआ, लौला
के साथ प्रवृत्त तरङ्गों से फैले हुए इतम क्षीरोदधि-क्षोर समुद्र-के उरूर की तरह
चञ्चल, (माणस-सर-पसर-परिवियावास-विसदवेसाहि) मानस-सरोवर के
विस्तार में परिचित आवास और सफेद वेष वाली-(कणाग-गिरि-सिहर-ससिताहि)
सुवर्ण गिरि के शिखर पर आश्रय रखने वाली (उवाउप्पात-चवल जयिण-सिग्ध-
वेगाहि हस वधूयाहि चैव कलिया) नीचे जाने व ऊपर उठने में चपल वस्तुओं को
जातने योग्य शीघ्र वेगवाली जैसे हंस वधु-हमनिओं को तरह जो (नाणामणि-कणाग-
महरिह-तवणिज्जुज्जल-विचित्त दंडाहि सललियाहि) अनेक प्रकार की मणियाँ और
सुवर्ण तथा बहु मूल्य तपनीय-लाल सोने के उज्ज्वल व विचित्र दंड वाले लालित्य-युक्त
(नरवति-भिरि समुदय-पपासणकरीहि) राज लक्ष्मी के समुदाय को प्रकट
करने वाली (वरपट्टणगयाहि समिद्धरायकुल सेवियाहि) श्रेष्ठ वाजार में निर्मित
वथा समृद्ध राजकुलों से सेवित, (कालागुरु-परर-कुदुरक-तुरुकक-धूववस-वास-
विसद-गधुद्धूयाभिरामाहि) काला, अगुरु, प्रधान कुदुरक-चोडा, तुरुकक-सोलहक,
इनके धूप के फारण प्रकट, एव स्पष्ट गन्ध की वासना से समणोय (चिल्लिकाहि
रुभञ्जो पासपि चामराहि उक्खिप्पमाणाहि) दीपते हुए तथा दोनों बाजू उछाले ज ते
हुए चामरों से विराजमान (सुह-सीतल-वातवोनियगा) सुखकारी चामरों की शीतल
हवा से वीजित शरीर वाले (अजिता अजितरहा) क्रिसा से नहीं जोते गए-तथा
अजित रथ वाले (हल-मुसल-कणाग पाणी) हल मूशन और बाण को हाथ में लिये
हुए-अरुदेव (सख-चकक-गय-ससि-णंदगधरा) शङ्ख, चक्र-सु'र्जन चक्र और
कौमुदी नामक गदा व शक्ति-शून तथा नन्दन नाम के खड्ग को धारण करने वाले
कृष्ण हैं (पवरुज्जल-सुकत्त-विमल-कोथूम-निरोडभागे) उत्तम श्वेत तथा सुरचित-
निर्मल कौस्तुभमणि और किरोट-मुकुट को धारण करने वाले (कुडल-उज्जोवियाण-
णा) कुण्डल से उद्योतित मुग्ध वाले पुडगीयणयणा) पुडरोक-कमल-के समान
नेत्र वाले (एगावली-कट-रत्तियवच्छा) कण्ठ में पहनी हुई एकावली-सुवर्ण

भाषा से आहारिक बन्धस्यक्त बाळे (सिरिवज्ज सुसंछपा^१ बरबसा^२)^३ भीरुस के
 कराम लक्ष्य बाळे बभेष्ट कीर्ति बाळे (उम्भीर्ये सुरभि कुसुम-रह्य^४ पञ्च-दोह^५
 मियसंत-चित्तबन्धमाकरविय-गच्छा) यह अतुनी के सुगन्धित फूलों से गूथी हुई, लक्ष्य
 शम्भो 'सोमार्यमान' और बिक्रास युक्त, चित्र बिचित्र बनमासा से प्रीतिप्रद बन्धस्यक्त
 बाळे (अहृद्य विमत्त-जकसय-पस्त्र-सुंदर-बिराह्यगमेगा) स्वस्ति के आदि
 चिर्ममा युक्त एक सौ घाट बराम लक्ष्यो से सुन्दर और विशेष सोमा युक्त अर्द्ध
 बाळे (मत्त-गण बरिद-लक्ष्य-विष्कम्भ-विष्कसिय गई) मशोम्मस गभेम्भ
 के समान भीर-गम्भीर गतिबाळे (ऋद्धि सुत्तग-नील पीठ-कोसिरेव बाँससा) कर्द्धि सुद्धि,
 मषाय मोळे और पीळे कौशेयक बस बाळे (पत्तर चित्तेया) बहुत शक्ति युक्त तेज
 बाळे (सारक-जब-अजिव-अहुर-नीमोर मिद्ध भोसा) सरत्त कीर्ति के सब बन्धस्यरे के
 समान गम्भीर व क्षिण्य ध्वनि बाळे (मरसोहा सीह विष्कम्भेगई) मनुष्यों में सिंह,
 सिंह के समान पराक्रम और गमन बाळे (सोमा बारबइ पुत्त बेहा) सोम्य आङ्कुरि
 बाळे शारिका मगरी के पूर्णचन्द्र (पुम्बक-वर्षपमोबा, निविट्ट सीर्षि सुहा) पूर्व-
 कृत तपस्या के प्रभाव से प्राप्त और उषित सुद्धि बाळे (जियोगवासस्येर्मासुवती)
 अनेक सैकड़ों वर्षों की आयु बाळे ऐसे 'बसदेव और बामुदेव रूप' (अर्ध्यामिया पत्तर
 राय सोहा) प्रधान राजसिंह, अस्त हागये र भर्मादि^६ व बर्षवर्ष्यहापादि^७) और
 देव को प्रधान स्थिती से (कास्मिता) बिक्रास करते हुए (अनुसहर-परिस-रस-
 रुम-गणे अनुमपेत्ता) अनुपम शत्रु हरस रस, और गम्भीर का अनुभव करके
 (कामाण अविशता) काम मोगों में दृष्टि रहित (तेवि मरय बम्म बर्षप्यति)
 वे बसदेव एवं बामुदेव भी मरय धर्म-स्यु-को प्राप्त कर बाळे हैं । ४।१५ ॥

श्व मांडलिक राजा व युगलिकर्के का वर्णन करते हैं—

श्लोक—“सुज्जो महलिय नरवरेंदा, सवळा सभतेठरा सपरिसा,
 सपुरो हियाऽमद्यद्व नायक-सेखावाति-मत-नीति कुसळा, नाया
 अणिरयण-विपुल धण-बल-मचय निही, समिद्ध कोसा, रंज-
 सिरि विपुल मणुअविता विज्जोसंता, वलण मत्ता, तेवि उबणमति
 मरय धम्म अविशता कामाण । सुज्जो ठरार कुद वेवकुद-वण
 विवर-पाय चारियो, नरगळा, भोगुत्तमा, भोग लफळणधरा,
 भोग अस्सारीया, पसात्थ-सोम-पडिपुण्य रुव-वरिसाधिज्जा, सुजात

सव्वंग-सुंदरंगा, रत्नुप्ल-पत्त-कंत-कर-चरण-कोमलतला, सुपई-
द्विय-कुम्म-चारु-चलणा, अणुपुव्व-सुसंह यंगुलीया, उन्नय-तणु-
तंष-निद्धनखा, संठिय सुसिलिद्ध गूढ गौफा, एणी-कुरुविंद-वत्त-
वट्टाणु पुव्वि जंघा, समुग्ग-निसग्ग-गूढ जाणू, 'वर वारण-मत्त-
तुल्ल-विक्रम विलासितगतो, वर तुरग-सुजाय गुज्झ देसा, आहन्न
हयव्व-निरुवलेवा, पमुहय-वर तुरग-सीह-अतिरेग वट्टिय कड्डी,
गंगावत्त-दाहिणावत्त-तरंग-भंगुर-रविकिरण-बोहिय-विकोसा-
यंत-पम्ह गंभीर-विगडनाभी, साहत-सोणद-मुसल-इप्पण
निगरिय-वर कण्ण-च्छुरु सरिस-वर वड्ढर-वलियमज्झा, उज्जुग-
सम साहिय जच्च-तणु कसिण-णिद्ध-आदेज्ज-लडह-सूमाल-मउय
रोमराई, भूस-विहंग-सुजात-पीणकुच्छी, भूसोदरा, पम्ह-
विगड नाभा, संनतपासा, संगयपासा, सुंदर पासा, सुजात-
पासा, मित माहय-पीण-रइयपासा, अकरडुय-कण्ण-रुयग-
निम्मल-सुजाय-निरुवहय देहधारी, कण्ण-सिलातल-पसत्थ-
समतल-उवहय विच्छिन्न-पिहुल वच्छा, जुयसंनिभ-पीण-
रइय-पीवर-पउट्ट-संठिय-सुसिलिद्ध-विसिद्ध-लट्ट-सुानेचित-
घण-थिर-सुबद्ध संधी, पुरवर-वरफलिह-वट्टियभुया, भुय-
ईसर-विपुल भोग-आयाण-फलि उच्छूढ दीह बाहू, रत्ततलो-
वतिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ-अच्छिद्ध जालपाणी,
पीवर-सुजाय-कोमल वरंगुली, तंष-तलिण-सुह-रुहल-निद्ध नखा,
निद्ध-पाणिलेहा, चंद-पाणिलेहा, सूर-पाणिलेहा, सख-पाणिलेहा,
दिसा सोवत्थिय-पाणिलेहा, रवि-ससि-संख-वरचक्क-दिसा सोव-
त्थिय विभत्त-सुविरइय-पाणिलेहा, वर महिस-वराह-सीह मेदूदूल-
सीह-नाग-वर-पडिपुन्न-विउल्ल खंधा, चउरंगुल सुप्पमाण-कंबुवर-
सरिसग्गवा; अवाट्टिय-सुविभत्त-चित्त मंसू, उवाचिय-मंसल-पस-
त्थ-सददूल-विपुल हणुया, आयविय सिलप्प वाल-विषफल-

समिमा-घरोद्वा पङ्कुर-ससि-सकळ-विमल सख गोम्बीर फेण रुव
 वगरय मुणाळिया-घवल वतमेदी, अम्बड वता, अण्फुडियवता,
 आविरळ बंता, सुणित्ठवमा, सुजायवता, एगदन सेठिव्व अण्णवता,
 हुयवइ निद्रत भाय तत्तत वणित्तज रत्ततला-तालुजीहा, गरुलायत
 ठञ्जुतुग नासा, अववाळिय पोंडरीय नयणा, को कासिय घबळ
 पत्तळण्हा, आणाभिय-चाव रुख वियइ मराजि सठिय-सगया
 यय सुजाय सुमगा, अळ्ळीण-पमाण जुत्त सयणा, सुसवणा, पीण
 मसळ कवोळ वेम मागा, अचिरुगय बालवद-सठिय महानिडा
 छा, ठञ्जुवतिरिष-पडिपुळ-सोमवयणा,—छुत्तागारुत्तमगवेसा,
 घयानिषिय-सुवद-कफळण्णय-कूडागार निम-पिडियग्गसिरा,
 हुयवइ-निद्रत भाय तत्तत-वणित्तज रत्तकसत-केस मूमी, सामळी-
 पोंड-वयानिषिय-छोडिय मिड विसत-पसत्थ-सुट्टम-कफळण्ण
 सुगाभि सुदर-सुयमोयग निग-नीळ-कळ्ळव-पइट्ट-ममरण्ण
 निद्र निगुठव-निषिय-कुषिय-पयाडिणावरा-मुद सिरया,
 सुजात सुविमरा सगयगा, कफळण वजळ गुणाववेया, पसत्थ
 वरीसळ कफळण वरा, इसस्सरा, कूचस्सरा, पुवुमिस्सरा, सीह-
 स्सरा, ('ओघ) सरा, मेघसरा, सुस्सरा, मुस्सर, निग्घोसा,
 वन्जारिसइ, नाराय सवयणा, सम चठरंस, सठाण, सठिया,
 छाया उज्जावियगमगा, पसत्थण्णवी, निरातका, ककग्गइयी,
 कबोत परिणामा, सगुण्ये पोम पिट्टत रोकपरिणया, पठमुप्पळ
 सरिस गवुस्सास सुाभिवयण, अण्णोम घाठवेगा, अववाय
 निद्रकाळा विग्गाडिय-उत्तय कूळ्ळी अमयरत्त-फळाहारा, तिगा
 ऊयस मूसिया तिपळिओवमाट्टितिका, तिणिय पळिओवमाई
 परमाठ पाळगिशा ते वि ठवणमति मरण्ण धम्म, अवितत्ता
 कामार्ण । पमया वि य तेमि होति सोम्मा सुजाय सव्वंग सुव
 रीओ पहाण महिका गुणार्दि जुया, अतिकत-विमप्पमाण-मठय-

सुकुमाल-कुम्भ सठिय-सिलिह चरणा, उज्जु-मेउय-पीवर सुसा-
 हतंगुलीओ, अब्भुन्नत—रतित-तलिण-तव-सुहनिद्धनखा, रोम
 रहिय वट्ट-संठिअ-अजहन्न पसत्थ-लक्खण-अकोप्प-जघजुयला,
 सुणिम्मित्त—सुनिगूढ जाणु, मसल-पसत्थ—सुबद्ध-संधी,
 कयली—खंभातिरेक-सठिय—निव्वण्ण-सुकुमाल-प्रउय-कोमल
 अविरल-सम सहित-सुजायवट्ट-पीवर-निरंतरोरु, अट्टावय-वीह-
 पट्ट-सठिय-पसत्थ-विच्छिन्न-पिड्डुलसोणी, वयणायामप्पमाण-
 दुगुणिय-धिसाल-मंसल-सुबद्ध-जहण-वर धारिणीओ, वज्जवि-
 राहय-पसत्थ-लक्खण निरोदरीओ, तिक्खलि-वलिय-तणु नमिय-
 मज्झिमाओ, उज्जुय-समसहिय-जच्चणु-कसिण-निद्ध-आदेज्ज-
 लडह—सुकुमाल-मउय-सुविभत्त—रोमरातीओ, गंगा वत्तग-
 पदाहिणावत्त-तरंगभंग-रविकिरण-तरुण-बोधित-आकांसायंत-
 पासा, सुजातपासा, संगतपासा, भियमायिय-पीण-रतितपासा,
 अकरंडुय—कण्णग-रुयग-निम्मल-सुजाय-निव्वहय—गायलट्टी,
 कंचणकलस-पमाण समसहिय-लट्ट चूचुय-आमेलग-जमल-जुयल-
 वट्टिय-पओहराओ, भुयंग-अणुपुव्व-तणुय-गोपुच्छ-वट्ट-समस-
 हिय-नमिय-आदेज्ज-लडहवाहा, तंभनहा, मसलगहत्था, कोमल
 पीवर वरंगुलीया; निद्ध पाणिलेहा, ससि-सूर-सख-चक्क-वरसो-
 त्थिय-विभत्त—सुविरहय-पाणिलेहा, पीणुणय-कक्ख-वत्थिप्प-
 देस-पडिपुन्न-गल्लकवोला, चउरगुल-सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसगीवा,
 मसलसंठिय—पसत्थ-हणुया, दालिम—पुप्फ-प्पगास-पीवर-
 पल्लव-कुंचित वराधरा, सुंदरोत्तरोट्टा, दधि-दगरय-कुंद-चंद-
 वासंति-मउल-अच्छिह—विमलदम्भणा, रत्तुप्पल-पउमपत्त-सुकु-
 माल-तालुजीहा, कण्णवीर-मउल-सुद्धिल-अब्भुन्नय-उज्जु-तुंग-नासा,
 सारइ-नवकमल कुमुत-कूवल्लयदल-निगर-सरिस-लक्खण-पसत्थ-
 आजिम्हकत नयणा, आनामिय-चाव-रुहल—किण्हवभराइ-संगय-
 सुजाय-तणु-कसिण-निद्ध भुमगा, अल्लीण-पमाण जुत्त-सवणा,

मुस्तसघणा, पीयमह गंडकेहा, अउरगुल्ल-विसाह-सम निहाता,
 कोमुपि रयपिकर विमल-पदिपुल्ल-सोमवदसा, छुत्तन्नप उत्तमगा,
 अकविल-सुनिधिद-दीहसिरया छुत्तन्नय-जूव पू म-वामिपि
 कमडलु-कलस-बाबि-सोहिय पडाग-जव-मच्छ-कुम्म-रहबर
 मकर-ज्मय-अंक-धाक-अकुस अहाषय-सूपइह-अमर-सिरिया
 निमेय-गोरण-मेइणि-उदपिवर-पवर भवण-गिगिधर-वरायन-
 सखलिय-गय-उसम-सीह-चामर-पसहय-वत्तसि सप्तम्ब-
 धरीओ, ईस १सरिच्छु गतीओ, कोइह-महुर-गिराओ, कता,
 मठवसस अणुमयाओ, धषगय-धलि-पलित-धग-दुधवन्न-बाधि-
 वोइरग-सोयमुक्ताओ, उधतण य नाण धावूण नूभियाओ,
 सिंगारागार-चारुवेसाओ, सुदर-धण-जहण-वयण-कर-चरण-
 षणण, साधयणरूव-जोडवण-गुणोववेया, मंणवण-बिबर
 चारिणीओव अच्छुराओ उत्तरकुरु-माणुसच्छुराओ, अच्छुरग
 पच्छुणिजिजयाओ तिसिण पलिआवमाइ परमाउं पाळापत्ता ताओ
 ऽवि उषणभति मरखचम्म, अघातत्ता कामाण ॥ सू ५।१५ ॥

छाया— 'भूयो माण्डलिक-नरवरेन्द्राः, सबळा, प्रान्तपुरा, सपरिवद',-सपुरो
 हितोऽमास्य-दण्डनायक-सेनापति-मन्त्र-नोति कुशळाः, नामामणि-रत्न-विपुल-धन-
 धाम्ब-सद्य-निधि-समृद्ध-कासा राक्षमिर्धविपुल मनुमूव श्युत्-क्रोशन्वी वनेन
 मघास्तेऽप्युपनमन्ति मरण्य बमनविपुला कामेषु । भूक-उत्तरकुह-देवकुह-वन-विबर
 पाद् चारियो नरगयाः, भोगोत्तमाः, भोग सद्यपचरा भोगसभोकाः, प्रद्यत्तसौम्य
 परिपूण-रूपवृक्षनीया सुजाव-सर्वाह-सुन्दराङ्गा रकोत्पपत्र-कान्तकर-चरय
 कोमल वळाः, सुप्रतिष्ठिग-कूम चारु-वचना आतुण्य-सुसहवाऽङ्कुडोअ उभय तनु-
 वाप-सिम्पनळाः, संस्वित-सुसिद्ध-गुह-गुक्ता, एजो-कुकिन्द इस वर्तानु सुविजयाः,
 समुद्रगक-निसर्ग गूह शानबो वरवारण्य मठ-दुल्य-बिद्धम-बिळासित-गतय वरसुरग
 सुजाव गुणवेसा आकीर्ण इसाह निरुपळेया',-प्रमुदिव-वरसुरग-सिहाऽतिरेक बर्विठ-
 कटयो गङ्गावर्त-वसिण्याऽऽवत-तरङ्ग-भङ्गुर-रधिकरण बोधित-बिकोसायमाम पद्य
 गम्भीर-बिळटनाभय संहित-सोवंद- (विपादप्रीठिका) सुसस-वप निगदित-वकनक-

स्वरु सदृश-वरवध्र वलित-मध्याः, ऋजुक-सम-सहित-जात्यतनुक-कृष्ण-स्निग्धादेय लडह
 (मनोज्ञ)-सुकुमार मृदुल-रोमराजय , क्षप-विहग सुजात पीन कुक्षय , क्षपोदरा, पक्ष
 विकट-नाभय, म्रततपार्श्वा, सङ्गत पार्श्वाः, सुन्दरपार्श्वाः, सुजातपार्श्वाः, मितमात्रिक-
 पीन-रत्तिदपार्श्वा, अनस्थि [अकरजुक] कनक-रुचक निर्मल सुजात निरुपहत-देह-
 धारिण , कनकशिलानल प्रशस्त-ममतलोपचिन विच्छिन्न-पृथुल विपुलवक्षस , युग-
 सन्निभ-पीन-रतिद-पोवर-प्रकोष्ठ सस्थित सुश्लिष्ट-लष्ट सुनिञ्चित घन-स्थिर सुवद्धसन्वय ,
 पुरवर वरपरिध-वर्तितभुजा , -भुजगेश्वर-विपुल भोगाऽऽदान-फलिकाच्छूढ-दीर्घ-
 षाहव., रक्ततोप चयिक मृदुक-मासल-सुजात-लक्षण-प्रशस्ताऽऽच्छिद्र-जाल-
 पाणयः, पीवर-सुजात-कोमल-वराङ्गुलय, ताम्र-तलिन शुचि-रचिर-स्निग्ध-
 त्तखाः, स्निग्ध-पाणिरेखाश्चन्द्र पाणिरेखा, सूये-पाणिरेखा, गङ्गापाणिरेखाश्चक्र-
 पाणिरेखा, दिक्स्वतिक-पाणिरेखा, -रवि शश-गङ्गा-वर चक्र-दिक् स्वस्तिक-
 विभक्त सुविरचित-पाणिरेखा, वरमाहिष-वराह-सिंह-शादूल सिंह-नागवर-
 परिपूण-विपुलस्कन्धाश्चतुरङ्गुल-सुप्रमाण-कम्बुवर-सदृशप्रोवा, अवस्थित-पुवि-
 भक्त-चित्र [शोभाद् भुक् कूर्चकेश] मश्रव , उपचित-मासल-प्रशस्त-शादूल-
 विपुलहनुकाः, परिकर्मित-शिल प्रगाल-विम्बफल सनिभाऽधरोष्ठाः पाण्डुर-शशि
 सकल-विमल शङ्ख-गोक्षोर-फेन-कुन्द-दकरजो-मृणालिका-धवल दन्त श्रेणयः,
 अखण्ड दन्ता, अस्फुटित दन्ता अवरल दन्ता , स्निग्ध दन्ता सुजात दन्ता, एकदन्त
 श्रेणिरिव, अनेक दन्ता, हुनवहनिद्धेयन धौत-तप्त तपनीयरक्ततलास्तालुजिह्वा, गरुडा-
 यत-ऋजुतुङ्गनासिका अवदारित-पुण्डरीक नयनाः, विकसित-[कोकासित] धवल-
 पत्रल-पक्ष्माण , [पत्रलाक्षा] आनामित चाप-रचिर-कृष्णाभ्र-राजि-संस्थित सङ्गता-
 यत-सुजातभ्रव , आलोन प्रमाणयुक्त श्रवणा , सुश्रवणा , पीन-मासल-कपोल-देशभाराः,
 अचिरोद्गत घाल चन्द्र-सस्थित महाललाटा लडुपतिरिव परिपूर्ण सौम्यवदनाश्छत्रां-
 कारोत्तमाङ्गदेशा, घनानिचित सुवद्ध-लक्षणोन्नत कूटाकार-निभ-पण्डितामशिरस्का हुत
 वह-निर्द्धूत धौत-तप्त तपनीयरक्त-केशान्त केशभूमय , शालमूली वृन्त फल-घन-निचित-
 छोटित-मृदुविशदप्रशसन-सूक्ष्म लक्षण-सुगन्धि सुन्दर-भुजभोचक मृङ्ग-नोल-कञ्जल-
 प्रहृष्ट भ्रमरगण-स्निग्ध-निकुरम्ब निचित कुञ्चित प्रदक्षिणावर्त मूढेशिरोजा , सुजात सुवि-
 मक्त-सङ्गताङ्गा लक्षण-व्यञ्जन गुणोपपेता , प्रशस्त-द्वात्रिंशलक्षणधरा , ह्रस्वरा , कौ-
 श्वस्वराः, दुन्दुभिस्वरा , सिंहस्वरा , [ओष] स्वरा , मेघस्वरा , सुस्वरा , सुस्वरनिर्घो-
 षा, वृषभ-नाराच-सहस्रना , समचतुरस्र सस्था त-सस्थिताः, छायो वातिवाङ्गोपाङ्गाः,

प्रसस्तच्छ्रवणो निरावहणः कल्पहणोका कपोत परिख्याया, शकुनि पोप-पृष्ठास्त्रोत्त-
परिख्यायाः, पद्मोत्पल-सदृश गण्योच्छ्रवण-सुरभिवदना, अनुकाम वायुप्रेगाः भव
वात-सिग्ध-काष्ठाः, (कृष्णाः) धीमदिकास्तत कुम्भयो मारस फलाहारानि गन्धुर्वि
धमुर्विभूताः त्रिपथ्योपमरिचिकाः, प्राणि च परमोपमानि परमायूप पाकधिरवा
तेऽप्युपनमस्ति मरयन्ममवितृता कामेषु ।

प्रमदा अपि च तेषां भवन्ति मौम्या, सुवात-सवाङ्ग-सुदय प्रवान-महिमा
गुणैयुक्ता-वृत्तिकाम् -विसर्पैन्मुकुल-सुकुमार-हृन्-संस्थित-स्त्रिष्ट चरणाः ऋजु-
शुक्ल-पीवर-सुमहदाऽनुलोका अभ्युन्नत-रतिव तन्निन-ताम्र-सुस्मिन्ननखा,
रोमरहित-वृत्त संस्थित-प्रसस्त छल्लाऽवपन्याऽकोप्य जङ्गा युगला, सुनिर्मित-
सुनिगूढ-जानु मांसल-प्रसस्त-सुवद सधयः, क्वच्छी-स्तम्भानिरेक-संस्थित
निर्विषण्य-सुकुमार-शुक्ल-कोमलाऽविरल-सम सहित-सुजात वृत्त-पीवर-
निरन्तरोरवः, अद्यापद-वीचि-पृष्ठ-संस्थित-प्रसस्त-विच्छिन्न एमुक-भोज्यः
बधनायाम-प्रमाय-द्विगुणित-विशाल-मांसल-सुवद-वपनवर भारिप्यः बध
विराचित-प्रसस्तछल्ल-निष्ठैर्य त्रिवली-वक्षित-तनु-नतमप्या श्रुक्त-
सम-सहित-व्यासगतु-कृष्ण-सिग्धाऽऽदेव-अह (कश्चित्) सुकुमार सूद-
सुविमल रोम राजयो गंगावतक-प्रक्षिप्या वर्तक-तरङ्ग भङ्ग-रवि-चिरव तदुप्योचित
विकसित-पद्म गन्मीर-विकटनामकः, अतुदुमद-प्रसस्त-सुजात-पोनकुम्भ ,
अन्नत पार्थाः सुजात-पार्था मङ्गलपार्था-मित-शुक्ल-मात्रिक-पोन रतिव पार्था,
अकरंजुक-कनक-हृषक-निमल-सुजात निरुपहत-गात्रपृष्ठ, काञ्चन-कसस
प्रमाण-सम सहित छद वृक्षकाऽमेकक वमल युगल वर्तित-पयोधरा, सुकलाऽनुपूष तनु-
गोपुच्छ वृत्त-सम सहित नधिताऽऽदेव-कश्चित् वाह्य ताञ्जनलाः, मांसलाऽभस्ता,
कोमल पोवर बराजुलोकाः सिग्ध पाण्डिसेना, सक्षि-सूर्य-दृक्क चक वर स्वस्तिक
विमल-सुविरचित-पाण्डिसेना, पीनोजन-वक्ष बस्ति प्रवेश परिपूण गल-वपोला
वतुरजुक-सुप्रमोय-कम्बुवर-सदृश मोवाः, मांसल-संस्थित-प्रसस्त-शुक्ला वाहिम
पुष्प प्रकाश-पीवर-प्रसस्त कुञ्जित बराऽभरा, सुन्दरोत्तरोष्ठा, वधि-दक-रव-कुन्द
चन्द्र-वासन्तो-मङ्गला-चिन्द्र विमलवक्षमा रक्षित्यस पक्षपद्म-सुकुमार-तदु द्विहा,
करवीर सुकुल-कुर्विवाऽभ्युन्नत-श्रुतुङ्ग नासिका शारव-मध-कमल-कुमुद-कुम्भक-
दक-निष्कर-सदृश अक्षय-प्रसस्ताऽविद्याकाम्य मपना आनामित-वाप-स्वर्चर कृष्णा
भवावि-सदृश-सुजात-तनु-कृष्ण क्षिप्रप्रुष । आशीत-प्रवाप्युक्त-नवयाः सुभवायाः,

पोनमृष्ट-गण्डलेखा, चतुरङ्गुल-विशाल-सम-ललाटाः, कौमुदी-रजनीकर-विमल-
 प्रतिपूणे-सौम्यवदना, क्षत्रोन्नतोत्तमाङ्गाः, अफण्ड-सुस्निग्ध-दीर्घ शिरोजा, छत्र-
 ध्वज-यूप-स्तूप-दामिनी-कमण्डलु-कलस-वापी-स्वस्तिक-पताका-यव-मत्स्य-कूर्म-
 रथवर-मकर-ध्वजाङ्क-स्थालाऽङ्कुशाऽष्टापद—सुप्रतिष्ठकाऽमर-श्रीकाऽभिषेक-चौरण-
 मेदिन्युदधिवर-प्रवर भवन-गिरिवर-चरादर्श-सतलितगज-ऋषभ-सिंह-चामर-प्रश-
 स्त द्वात्रिंशलक्षण धारिण्यो, इससदृशगतयः कोकिल—मधुरगिरश्च, कान्ताः सर्वेषाम्,
 अनुमता, न्यपगत, बलीरहित—व्यङ्ग दुर्घर्ण—व्याधि दौर्भाग्य शोक मुक्ता, उच्चत्वेन
 नराणां स्तोकोन मुच्छिन्नाः, शृङ्गाराऽगारचारुवेषाः सुन्दर स्तन-जघन—चदन—कर-
 चरण नयना . लावण्य-रूप-सौवन-गुणोपपेनाः, नन्दन वन—विवर चारिण्य इवाऽ-
 पसरसः, उत्तरकुरु मानुष्याधरसः, आश्चर्य प्रेक्षणीयाः, त्रीणि पत्योपमानि परमायूषि
 पाठयित्वा ता अपि उपनमन्ति मरणधम्मवितृप्ताः कामेषु ॥ सू० ५११५ ॥

अन्व०—(भुज्जो महडिय नर वरंदा) फिर मण्डलाधिपति राजा जो (सबका
 सभ्रतेवरा सपरिमा) सैन्य वाले अन्तः पुर तथा परिषद्-उत्तम सभा वाले (सपुरो
 हिया -) पुरोहित सहित याने जिनके पास-शान्ति कर्म कराने वाले हैं, तथा—(अमब-
 दडनायक-सेणावती-मत नीति—कुसला) अमात्य-प्रधान, दण्डनायक-कटक का
 नायक और सेनापति, इन सब से युक्त, और जो गुप्त विचार एव नीति में कुशल हैं
 (नाणामाण-रयण-विपुल-धण-धन्न-सचय-निही समिद्ध कोसा) अनेक प्रकार के
 मणि रत्न तथा विस्तीर्ण धन धान्य के सञ्चय और निधिओं से परिपूर्ण खजाने
 वाले वे (रज्जसिरीं विपुलमणुभवित्ता) विस्तार युक्त राज्य लक्ष्मी को भोगकर
 (विष्कोमता) दूमरों को बुरा कहते हुए या कोष रहित हुए (बलेण मत्ता) अपनेबल से
 मदोन्मत्त (तेवि) वे माण्डलिक नरेन्द्र भी (कामाण अवितत्ता) काम भोगों के विषय
 में अतृप्त बने हुए (मरण धम्म उवणमति) मरण धर्म को प्राप्त करते हैं । (भुज्जो
 उत्तर कुरु-देवकुरु-वण-विवर—पाद—चारिण्यो नरगणा , ऐसे ही फिर उत्तर कुरु-
 और देवकुरु—नामक क्षेत्र के वन प्रदेशों में पै. ल फिरने वाले मनुष्य जो—युगलिक
 कहाते हैं (भोगुत्तमा भोग लक्ष्णधरा भोग सस्सिरीया) भोगोंसे उत्तम भोग सूचक
 उत्तम लक्ष्मणों को धारण करने वाले उत्तम भागों से शोभायुक्त (पसत्थ-सोम-पडि-
 पुन्न-रुव-दरिसणिज्जा) प्रशस्त, सौम्य और प्रतिपूर्ण रूप के कारण देखने योग्य हैं
 (सुजात-सव्वग-सुदरंगा) सुजात सभी अंगों से सुन्दर शरीर वाले (रत्तुप्पल-पत्त-
 कत-कर-चरण—कोमलतजा) रक्त—जाल कमल पत्र की तरह—कान्त और कोमल

हाथ पैर के तब वाले' सुषःट्टिप-कुम्भ-पाठ बस्य्या) अच्छी तरह बैठ हुए कच्छन
 के सेसे सुम्बर परण वाले पेसे (अणुपुम्ब-सुसंख्यगुणीया) कम स बडतो हुई ब
 यटवी हुई परस्पर मिछी हुइ मज्जुकी वाले (उन्नय तणुतंत्र-निश्चनजा) ऊंचे, पतले
 और ताम्बे की तरह कुछ झाल बर्षे के बिङ्गे मस्र वाले (संठित्र-सुसिद्ध-गुहः
 गौका) योग्य आकार वाले अच्छी तरह जुडे हुए और मांस से ढके हुए गुहक हैं
 जिनके (पयो-कुहः बिदावत्-बहुणुपुम्बि-अपाः) हरिणी और कुठ विन् नामक
 वृष के समान क्रम से गोल अंघा वाले (ममुग-निसमा-गुहःपाणू) डब्बे की सन्धि
 के समान निसग गुह-मांस के कारण स्वभाव न छिपे जामु-पुडन हैं जिनके 'पेसे'
 (पर वारण-मठ-सुन्न-बिद्धम-बिद्धासितगति) मरु-गजेन्द्र के समान पराक्रम
 और बिद्धास युक्त गति वाले (बरतुरग सुजाय-गुहःप्रदेसा) वसत घोडे के समान
 सुजाय गुहः प्रदेस-मल द्वार-वाले (आस-इयव्व-निहवडे) जाति सम्पन्न
 घोडे की तरह जिन के मल द्वार के छेद से रक्षित होते हैं (पमुह्य बरतुरग-सोह
 अतिरेग-बट्टिपक्री) प्रमोद युक्त घर न घाडे व सिंह की कमर के समान अधिक
 गोल कठिभाग वाले (गंगावत् हाहणावत्-तरंग-संगुर रवि क्रिय-बोहिय-बिको
 सार्यत-पम्हगंभीर-बिगडनामो) गंगा के भावत की तरह दक्षिण को मार घूमती हुई
 तरङ्ग युक्त सूय की क्रिय से बिछे हुए तिकाम छोळ कमळ क ममान, गम्भोर और
 बिद्ध नामिवाले (साहव-सोणव-मुमळ वण्य-नगरिय-बर-कजग कच्छ मरिस
 बर बहर-बलिबनव्या) समेटो हुई त्रिपादिका मुसल, इष्य-वण्ड युक्त कांथ
 और छुट्ट किये हुए वराम सुपर्ण के कड की मूठ तथा वतम बथ की तरह बुबुका हे
 मध्य भाग जिनका (बग्गुग-सम सार्य-अथ-तणु-कठिण-बिद्ध आदेव-छडइ
 सूमाळ मलय-रोमरारै) सरळ-ममान रूप से मिछे हुए सामाधिक पतले कांठे,
 बिङ्गन या मनोहर औभाग्य युक्त सुम्बर पत्रं मतिशय कोमल और रतजोय रोम राजि
 वाले (इस बिहग-सुजाय पीय-कुच्छी सलोहरा) मलय और पक्षी के समान
 वतम रचना युक्त कुक्षि वाले मठपत्र-इषावरा-मत्स्य जैसे पैठवाले (पम्ह बिगड
 नाभा) ककस की तरह बिङ्गन नामि वाले (संनठपासा संगवपासा सुंरपासा
 सुजायपासा मिठ माइय-पोज-इयपास) अकड्डा तरह नमेहुए मिछे हुए सुहर और
 सुजाय-वतम रचना युक्त परिमित एव मात्रा से युक्त पौन-सिसे गुह और रमणीय
 पार्थ वाले (अकड्डय-कण्ण लयन-निम्मळ-सुजाय निठबहय देवधारी) मांस से
 पुन्व होमे के कारण सुजाय रक्षित-यथ सोने की जैसी कान्ठि वाले निर्मळ सुजाय

और रोग रहित देह को धारण करने वाले (कण्ठ-सिलातल-पमत्थ-समतल-उवठ्य-विच्छिन्न पिह्ल-वच्छा) सुचर्माय शिलातल के समान प्रशस्त, समतल-सब जगह बराबर, मासयुक्त और अत्यन्त विरतीर्ण बड़े वक्षस्थल वाले (जुयरनिभ-पीण-रह्य पीवर-पड्ड-मठिय-सुसिलिट्ट- विस्टिट्ट-लट्ट-सुनिचित- घण्ठिय-सुवद्ध सधी) गाडी के जुए के समान पुष्ट, रमणीय और बड़े कलाची तथा विशिष्ट स्थान वाली, अच्छी तरह मिली हुई प्रिशिष्ट-मनोहर, अत्यन्तभरी हुई, बहुत प्रदेश के कारण सघन, स्थिर और सुवद्ध-नमो से अच्छी तरह बधी हुई साधे-हड्डी की जोड़ है जिनकी (पुरवर-वरफलिह-वट्टिय भुजा) बड़े नगर की श्रेष्ठ परिघा-आगल-के समान गोल भुजा वाले (भुयईसर-विपुल भोग आवाण-फलिउच्छूड-दीहवाहू) बड़े मर्प के विरतीर्ण शरीर के समान रमणीय तथा अपने स्थान में निकाली हुई परिघा के जैसे दीर्घ लम्बी बाहु वाले (रत्ततलोव-तिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ अच्छिद्द जालपाणी) ताल तल वाले, मास से उपचित-भरे हुए या योग्य, मृदु-कोमल, मामयुक्त, सुजात, प्रशस्त-शुभ-लक्षण वाले और मिली हुई अँगुलिओ के कारण छिद्र रहित हाथ वाले (पीवर-सुजाय-कोमल-वरगुली) मास से पुष्ट, सुन्दर और कोमल श्रेष्ठ अँगुती वाले (तव-तलिण-सुद्ध-रुडत-निद्धनखा) ताम्र, पतले, पवित्र, कान्तियुक्त और चिकने नख वाले, (निद्ध पाणि लेहा, चदपाणि लेहा, सूरपाणि लेहा, सखपाणिलेहा, चक्कपाणिलेहा,) चिकनी रेखा वाले, चन्द्र-सूर्ज-शङ्ख और चक्र-की तरह हाथ की रेखा वाले (दिसा सोवत्थियपाणिलेहा) दिशा स्वरितक जैसी दक्षिणावर्त हरत रेखा वाले (रवि-समि-सख-वरचक्क-दिमासो-वत्थिय विभत्त सुविरह्य पाणिलेहा) सूर्य, चन्द्र, शङ्ख, श्रेष्ठचक्र और दिक्स्वरितक के विभागयुक्त अच्छी हरतरेखा वाले (वरमहिस-वराह-सीह-सहूल-सिह नागवर पडिपुन्न-विउलखधा) श्रेष्ठ भैसा, अच्छा बराह-मृकर,-सिंह,-शादूँलसिह, या वृषभ और उत्तम हाथी के जैसे प्रतिपूर्ण और विरतीर्ण खंधे वाले, (चउरगुल-सुप्प-माण-कवुवर-सरिसग्गीवा) चार अँगुल प्रमाण प्रथम शङ्ख के समान शुभ ग्रीवा वाले (अवट्टिय-सुविभत्त-चित्तमसू) अवस्थित-घट बद्ध रहित, खूब शुद्ध और विभागवाली शोभा से अदभुत श्मश्रु-दाढी वाले (उवचिय-मंसल-पसत्थ-सहूल-विपुल-हणुया) मास से पुष्ट-भरी हुई, प्रशस्त शादूँलसिह के समान हणु-चिवुक-दाढी वाले (ओयधियसिलपवाल-विंवफलसंनिभाधरोट्टा) साफ किये हुए,-शिल

प्रवाल-भूगै तथा विषपल क समान लाल नील क होठ बाल (पङ्कससिसकल-
विमल-संख-गोक्षीर-फण-कुव-इगलय-मुणालिया-धयल इत सेडी) खेन चन्द्र
खण्ड की तरह निर्मल शङ्ख, गोक्षीर-गोफावृध, फन-पानी ऊपर क भाग, कुव का
पृष्ठ, पानी के कण, और मृणाक्षिका-पश्चिमी क नावगत सन्तु क जैसे धवल-रूप
दांत की श्रेणि बाल (अस्वद्वंता, अप्पुडिपवता, अविरसर्वता, सुखिद्वंता,
सुजायवता, पगवतसेदिम्ब अणगर्वता) अस्वद्वंता दांत बाल, बिना पूंटे दांत बाले,
मिल ह्रण दांत बाले, खूब धिकने-बमक युक्त दांत बाल, अण्ड वन ह्रण दांत बाल,
अनक दांत भी बिनक एक दांत की पंक्ति के जैसे हैं (हुयवह-निद्वत-धोय-तप्त
तपखिअ-रक्षतला-तालुजीहा) अग्नि स जलाकर घुल गया है मल किसका पम
तपनीय लाल सुवर्ण के समान लाल तल्ल युक्त तालु और जीम वाले, (गरलायत-
चन्द्र-नुग नासा) गरुड के समान लम्बी, सरल और ऊँची नासिका-नाक बाल,
(अचक्षालिय पौंढरीवनयणा) खिल ह्रण कमल क समान नेत्र बाले (दोरामिय-
धयल-पत्तलच्छा) विकसित धौल और पद्म युक्त आँसु बाल (अण्णमिय-बाव-
रहल-रिहहम्मराजि-संठिय-संगयायससुजायभूमगा) योद्ध ममे ह्रण धनुष के
समान मुन्वर, काले मय की रेखा के आकार बाले, मौम्य, लम्बे तथा सुनिष्पन्न
हैं त्रिनक (अज्जीण-पमाणुत्तसबखा) मर्पादा स लीन और प्रमाणयुक्त भ्रषल-
कान बाल (सुसवखा) अण्ड कान बाले (पीण-मंसल-कवल-दसभागा) मोटे,
मांस युक्त कपोल भाग-गाल बाल, (अचिरगय-वालपव-मठिय-महानिहाला)
तत्काल उदय पाये ह्रण बाल चन्द्र के समान आकार क बड़े ललाट-भाल-यान
(उदुबति-रिष पक्षिपुत्र-सोमवयणा) चन्द्र क समान प्रतिपूर्णा क मौम्य मुत बाल,
(छत्तागाकतमंगवसा) छत्र क समान आकार युक्त उत्तमाह्न-मगत क क भाग
बाल (पण-निष्पिय-सुबद्ध-लक्ष्यलुण्य-वृदागारनिम-विद्वियममिरा) लोह
सुरगर क जैसे निबिड-राम-अण्डी तरह द्यापु म र्षया हुआ लक्षण म र्षया
और शिखर युक्त भवन क समान गोल पिएह सहित मस्तक के अग्रभाग बाल (हुय
वह-निद्वत-धातवत-नक्षिण-रत्न कर्मत-कसभूमी) अग्नि में जलाकर पाय हुआ
चार तपण ह्रण तपनीय क समान लाल टै कण का अम्ल और मगत की स्वभा
दिनकी पम (गामधि-वाह-पण-निष्पिय-वृद्धिय-मिडविगय-यमन्-मृदुम-
कवन्ग-सूर्गाव-मृदु-मुयमायग मिंग-नीलकण्ठक-पददु ममरगण-निद्व निरुव-

निचिय-कुंचिय-पयाहिणावत्त मुद्धसिरया) शाल्मली वृत्त के अत्यन्त निविड और छोटित्त-मिले हुए, फूल के समान कोमल, विशद-स्पष्ट, प्रशस्त-मङ्गल कारक, सूक्ष्म-चिकने (पतले) लक्षण सम्पन्न, सुगन्धि वाले सुन्दर और भुज मोचक रत्न व भृङ्ग भँवरा नील-रत्न, कज्जल और प्रसन्न भँवरों के समूह की तरह स्निग्ध-चिकने समूह रूप से मिले हुए, कुंचित-टेढे नमे हुए और प्रदक्षिणावर्त मस्तक के केशवाले (सुजाय-सुविभक्त-सगयगा, लक्खण वजण गुणोववेया) सुजात, सुविभक्त-अच्छी तरह विभागयुक्त और योग्य अङ्ग वाले लक्षण, व्यञ्जन-मशा तिल आदि एवं अन्य गुणों से युक्त हैं (पसत्य वत्तीस लक्खण धरा) उत्तम वत्तीस लक्षणों को धारण करने वाले (हंसस्मरा, कुंचस्सरा दुंदुहिसरा, सीहस्मरा, ओघस्सरा, मेघस्सरा, सुस्सरा) हंस के जैसे स्वर वाले, क्रौंच पक्षी के समान स्वर वाले, दुंदुभि के जैसे स्वर वाले, सिंह के समान स्वर वाले, अविच्छेद मे अभंगस्वर वाले, मेघ जैसे गम्भीर स्वर वाले और सुस्वर-सुन्दर स्वर वाले (सुस्सर निग्घोसा) सुस्वर-ध्वनि वाले (वज्ज-रिसह-नाराय-संघयणा) वज्र-ऋषभ नाराच-संहनन वाले (समचउरंस-संठाण-सठिया) समचतुरस्र सस्थान के आकार वाले (छाया उज्जोवियगमंगा) कान्ति से प्रकाशयुक्त अङ्गोपाङ्ग वाले (पसत्यच्छवी निरातका) प्रशस्त त्वचा वाले, व रोमरहित (कंकग्गहणी, कपोत परिणामा) ककपक्षी के समान नीरोग गुदाशय वाले, कपोत के जैसे आहार की परिणति वाले याने प्रबल पाचन शक्ति वाले (सगुणि-पोस-पिट्ट तरोर परिणया) पक्षी की तरह मलोत्सर्ग में लेपरहित गुदा वाले, तथा पृष्ठ, पार्श्व और उरु-जघा के योग्य परिणाम वाले (पवमुप्पलसरिम-गंधुस्सास-सुरभिवयणा) पद्म-कमल और उत्पल कमल के समान सुगन्धयुक्त श्वास से सुगन्धित मुखवाले (अणुलोमवाउवेगा) श्वनु, फूल वायुवेग वाले (अवदायनिद्धकाला) गौरवर्ण के समान स्वच्छ स्निग्ध-चिकने श्यामरङ्ग वाले, (विग्गहिय उन्नय कुच्छी) शरीर के अनुरूप ऊँचे कुक्षि-उदर वाले (अमयरसफलाहारा) अमृत के जैसे रत्नपूर्ण फलों का आहार करने वाले (तिगा उय समूसिया) तीन कोशकी उचाई वाले (तिपल्लिओवमट्टितिका) तीन पत्थोपम की स्थिति वाले, (तिन्निय पल्लिओवमाइ परमाउ पालयित्ता) तीन पत्थोपम की परमायु को पालकर (ते वि) वेद्युगलिक मनुष्य भी (अबितत्ता कामाण) कास भोगों में अतृप्त हुए (मरण धम्म उवणमति) मरणधर्म-मृत्यु को प्राप्त करते हैं ।

(यमया यि य ते सि) और उनकी दियों भी (सोम्ना) सौम्य गुणवती (मुजाय-मर्ष्वग मुदरीभो) उत्तम रीति से उत्पन्न हुए सर्वाङ्गों से सुन्दर (पहाय महिलागुणहिंजुता) महिलाओं के प्रधान गुणों म युक्त (होति) होती हैं, फिर (अतिक्र-विद्यम्पमाण-मज्य-सुहृन्माल-कुम्भ संठिय-सिलिट्ट बलया) अत्यन्त मनोहर, चलते हुए भी बहुत कोमल, काष्ठके कं आकार क सुन्दर पाँववाली (उज्जु मज्य-पीवर-सुसंइतागुलीभो) सरल, कोमल, मांसयुक्त और अच्छी तरह अन्तर रहित-भ्रंगुली वाली (अम्मुभतरतिह-तरिण-तब-सुहनठनका) ऊँचे, सुलझापी, पतले, ताम्रवर्ण के और स्वच्छ तथा चिकने नखवाली (रोमरहिय-तह-संठिय-अज हम्-पसत्य-लकखण अक्षोप्यजपजुयला) रोमरहित, गाल संस्थान वाली, बँदुत शुभ लक्षणों से युक्त और रमणीय जंघा युगल वाली (सुणिमित्तुनिगूढ वाण मसलपसत्य सुबद्ध सधी) अच्छी तरह बने हुए बहुत गूढ़-दृष्टि में नहीं आने योग्य बालु-पुटनों कं मांसयुक्त प्रशस्त और नसों से अच्छी तरह बंधी हुई संधि-ओढ़वाली (क्यली खंमातिरेक संठिय-निष्पण-सुकुमाल-मज्य कोमल-अधिरल समसहित-सु आय-वट्ट-पीवर-निरंतरोरु) कवली के रतम्भ की उत्तम आकृति युक्त, प्रखररहित अत्यन्त कामल परस्पर नजदीक में रखी हुई, भ्रम-प्रमाणसे बराबर, लक्षणों से युक्त, सुनिष्पन्न, गोल, मांसयुक्त और परपर समान ठरू माघलवाली (अहायय बीह-पट्ट-संठिय-पसत्य-विच्छिन्न पिहुल सोणी) अष्टापद-नूआ ललनेका एक प्रकार का पाशा उसकी या तरङ्ग के आकार की रत्नावाले प्रष्ट के समान संस्थान वाली शुभ और अत्यन्त विन्तीर्य भाणि-कटि मान कमर है जिनकी पिंठी (धयणावामप माण-हुगुणिय-बिसाल-मंसलसुबद्ध-जदखवर-वारियोभो) मुह की लबाई के प्रमाण से दिगुण यान २४ अंशुल की विशाल मांस युक्त और अच्छी तरह बंधे हुए प्रधान जपन कटिके पूर्व भाग वाली (पञ्जविराहय-पसत्वलकखण त्रिरोह्रीभा) मध्य में पतली होने से धम की तरह विराजमान प्रशस्त लक्ष्य वाली और हरा उदर वाली हैं (तिवलि-वलिय-तणु नमिय-मम्भियाभो) तीन रत्नाओं से बल युक्त दुबल आर नम हुए मध्य भागवाली (उज्जुयसम-महिय-अब-तणु-कंनिय-निह-आवण-लहठ-सुकुमाल-मज्य मुदिभन्-रोम रातीभो) सरल, समान, लक्षणों म युक्त, ग्यमाय म उत्पन्न मृदम वृष्ट्य-काल निग्ध-चिकने रमणीय ममिठ, अत्यन्त कामल और अच्छी तरह विभागयुक्त रामराजि वाली (रगापत्तग-वरा

हिणावत्त-तरंग-भग-रवि-किरण-तरुण-बोधित-आक्रोसायत-पद्म-गभीर वि
 गडनाभा) गंगावर्त की तरह प्रदक्षिणावर्त, तरङ्ग के जैसे भङ्गयुक्त, तरुण सूर्य व
 किरणों से प्रबोधित-दिक्राशयुक्त पद्म के समान गभीर तथा विकट नाभि वाले
 (अग्रगुण्ड-पसल्य-सुजात-पीणकुच्छी) योग्यप्रमाणोपेत, प्रशरत, सुजात और मांस
 -कुक्षिवाली (सन्नत पासा, सुजात पासा, संगतपासा, मियमायिय पीण रतितपासा
 अच्छे बने हुए पार्श्व वाली, सुजात पार्श्व वाली योग्य पार्श्व वाली, परिमित मात्रा
 मासल और प्रसन्नता कारक पार्श्व वाली (अकरंडुय-करण-रुयग निग्मल-सुजा
 निरुवहय-गायलट्टी) दृष्टि में नहीं आने योग्य पीठ की हड्डी वाले और सुवर्ण व
 क्रान्ति के समान निर्मल सुजात तथा रोग रहित गात्रयष्टि-शरीरवाली (कंच
 कलस-पमाण-समसहिय-लट्ट-चु चुय आमेलग-जमल-जुयल-वद्विय-पञ्चोहराओ
 सुवर्ण कलस के जैसे प्रमाण के, सम, लक्षणयुक्त, मनोहर, स्तन मुख के शिखरयुक्त
 समश्रेणि में दो गोलाकार पयोधर वाली (भुयंग-अगुपुव्व-तगुय-गोपुच्छ-वट्टस
 सहिय-नमिय-आदेज-लडह वाहा) सर्प के समान क्रम से नीचे पतले तथा, गोपुच्छ
 के जैसे गोल, समान, लक्षणयुक्त, नसे हुए और रमणीय व शोभायुक्त बाहुवाले
 (तब नहा) ताम्रवर्ण के नखवाली (मसलगहत्था) मास से उपचित हाथ के अ
 भाग वाली (कोमल-पीवर-वरंगुलीया) कोमल और स्थूल श्रेष्ठ अँगुली वाले
 (निद्वपाणिलेहा, ससि-सूर-संख-चक्र-वरसोत्थिय-विभक्त-सविरइय-पाणिलेहा
 स्निग्ध हाथ की रेखावाली, चन्द्र, सूर्य, शङ्ख, प्रधानचक्र और स्वस्तिक
 की विभागयुक्त अच्छी रचना सहित हाथ में रेखावाली (पीणुणय-कवर
 वस्थिपदेस-पडिपुन्नगल-कवोला) मासल, ऊँचे, कांख और वस्तिप्रदेश-गुह्य भाग
 वाली तथा प्रति पूर्ण गला व कपोलवाली (चउरंगुलसुप्पमाण-कधुवर-सरिसगीवा
 चार अँगुल प्रमाण के प्रधान शङ्ख के जैसी ग्रीवा-गर्दन वाली (मसल-सठिय-पसल
 हणुया) मासयुक्त और योग्य आकार की प्रशस्त हनु-ठोड़ी वाली (द्वालिम-पुफ्फ-
 प्पगास-पीवर-पलव-कु चित-वराधरा) दाड़िम के फूल जैसा लाल और बड़ा कुह
 लटकता हुआ तथा थोड़ा बक्र ऐसे श्रेष्ठ नीचे के द्योत वाली, (सु द्योत्तरोट्टा) सुन्द
 उत्तरोष्ठ-ऊपर के ओठ वाली (दधि-दग्-रय-कु द-चद-वासदि-मउल-अच्छि
 विमलदसणा) दही पानी के कण, कुन्द-वासन्ति के फूल, चन्द्र और वासन्ती के
 मुकुल की तरह श्वेत निर्मल और छिद्र रहित दात वाली (रत्तुप्पल-पडमपत्त-सुकु-
 माल-तालुजीहा) रक्त उत्पल के जैसे लाल और पद्मपत्र की तरह सुकुमाल ताल

य जीम बाला (बणवीर-मुञ्ज-ऽवुडिल-ऽनुभव-ऽगुजुतु गनामा) करवीर वृक्ष के
 मन्त्र की तरह स्वीधा भाग में उद्य, सरल और ऊँची भासिका वाली (मारद-मब-
 फमल-कुमुत कुवलपदल-निगर-मरिस-ऊबम्बय-पसत्य-अजिम्ह-कंतनयया)
 शरद शत्रुद मूत्र विकारपी मवीम कमल, कुमुव-पन्द्र विकारपी फमल, और कुवलप-
 मीलोत्पल फमल फ-पत्र समूह के समान लक्षणों से प्रशस्त तथा कुटिलता रहित
 मनाहर नयवाली (आनाभिय-पाप-रुइल-किण्डम्भराह-संगय-मुजाय-तणु-
 पमिया-निद्र मुमगा) धाबे से नमाय हुए धनुष की तरह सुन्दर, फाले बाइल की
 रंगारों के समान संगठ, मुजात, पतले, वृष्णपर्या मुक्त और शिथ्य भमुइवाली
 (अल्लोण-पमाख जुध सवणा मर्यादा से लीन और प्रमाण युक्त भयण-कानवाली
 (मुरसवणा) अथ्ये कानवाली (पीणमट्ट-गडलेहा) पीन-माट और शुद्ध कपोल
 स्थल वाली (पत्रंगुल-विद्याल-समण्डाला) पार अँगुल के विराल और विषम
 छा रहित लनाट वाली (फोमुदि-रयणिकर-विमल-पठिपुम-सोमवइया) कार्तिक
 पूर्णिमा के पत्र की तरह निर्मल प्रसिद्ध और सौम्य सुलवाली (छत्तुमय-उत्तमंगा)
 पत्र की तरह ऊँचे शिर वाली (अकविल-मुसिण्ड-दीहसिरया) पीलेपन रहित
 काले, लम्बे व थियने केरा वाली (छत्तगम्भय-जुय-धूम-दामिण्य-कर्मदलु-कलस-
 वाधि-सोत्थिय-पडाग-जय-मच्छ-कुम्भ-रथवर-मकरगम्भय- शंक-घाल-अदुस-अ
 टायय-गुपइट्ट-अमर मिरियाभिमय-तोरण-मेहण्य उदधिवर-पबरभवण-गिरिपर-
 वरायंस-मल्लिय गय-उत्तम-मीह चामर परात्य बत्तीस लक्ष्मण पण्डो) छत्र १
 पत्र २ वृष ३ रतू ४ दामिनी-दारी बिरोव ५ कमरदु ६ कलम ७ वापी ८ रबन्तिक
 ९ पताका १० वय ११ मय्य १२ पूग १३ प्रधान रय १४ कामदेव १५ अष्ट १६ स्थान
 १७ भंजरा १८ अष्टापर १९ सुप्रतिष्ठक धाम शरावे की कीदुह स्थापना २० अमर-
 दक्षया मयूर २१ लक्ष्मी का अभिषेक २२ तोरण २३ पूर्वी २४ उदधि-गमुद्र २५ अष्ट
 णों का प्रधान भवन २६ प्रधानगिरि २७ उत्तम वर्ण २८ और शीलायुक्त गज
 २९ वृषय-बैल ३० गिह ३१ तथा चामर ३२ इन चत्तम पत्तीस लक्षणों को धारण
 करने वाली (इमगारिच्छगतीयो) इत क समान गति वाली (कोइवमदुह गिराया)
 काविल क समान मयूर वाली वापी (बंता गडवारत अष्टमपायो) कम्प और
 गड लोड क निव अभिमन जाहन पाण्य इण दानी दे (बडगत-बलि पभित बंग
 इण्डन कापिहाइया गोगुजायो बनि-अह क गिदुइन तथा पभित मुडाप क

अनुकूल केश पकना आदि विरूपता से रहित, तथा दुर्घर्ण-खराब रंग, व्याधि, दुर्भाग्य और शोक से मुक्त रहने वाली उच्चतैण्य नराण धोवूण मूसियाओ) और ऊँचाई में पुरुषों से कुछ कम ऊँची होती है (सिगारागार-चारुवेसाओ) शृङ्गार के घर के समान सुन्दर वेपवाली (सुन्दर-धण-जहण-घयण-कर-चरण-नयणा) सुन्दर स्तन, जघन, मुख, तथा हाथ पैर व आंखवाली (लावण्य रूव जोववण गुणोववेया) लावण्य, सौन्दर्य, व यौवन तथा अङ्गना समुचित गुणों से शोभित रहने वाली (नंदण-घण विषर-चारिणीओव्व अच्चराओ उत्तरकुरु-माणुसच्छराओ) नन्दन वन की कन्दराओं में विहार करने वाली अप्सराओं की जैसी वे उत्तर कुरु प्रदेश की मनुष्य अप्सरायें (अच्चेरगपेच्छणिज्जियाओ) जो आश्चर्य के साथ देखने योग्य हैं (त्तिन्नि पलिओवमाइं परमाउं पालयित्ता) तीन पल्योपम जितनी परम आयु को पालकर (ताओडवि) ऐसी पूर्व कही गई वे अप्सरायें भी (कामाण-अवित्ता) कामों के विषय में तृप्त नहीं होती हुई (मरणधम्मं उवणमति) मरण धर्म को प्राप्त करती हैं ॥ ५ ॥ १५ ॥

भावार्थ—“इस मैथुनके मोह से व्याकुल हुए अप्सरा सहित देवगण इसका सेवन करते हैं। वे देव इस प्रकारके हैं—असुरकुमार आदि दश भवन पतिदेव, अण पन्निक, पण पन्निक और पिशाच आदि सोलह जाति के व्यन्तर देव । तिरछे लोक में रहने वाले ज्योतिष्क देव और ऊर्ध्वलोक के विमानवासी देव, ये सब देवगण तथा मनुष्य व जलचर आदि पशुगण, काम भोग की तृप्ता वाले घडी इच्छा से व्याकुल और इसी में आसक्त बने हुए जीवगण विषय का सेवन करते हैं। ऐसी तामसी भावना के कारण ये सब अपनी आत्मा के लिये दर्शन मोह और चारित्र मांह का पिजरामा बना लेते हैं। विशेष रूप से मर्त्यालोक के काम प्रधान नर नारिओ का परिचय देते हैं—“चक्रवर्ती-देव, दानव तथा साधारण मनुष्यों के भोग में रति का अनुभव करने वाले, देव लोक में इन्द्र की तरह नरेन्द्र और देवेन्द्र से सत्कार पाने वाले हैं। भरतक्षेत्र के हजारो ग्राम नगर आदि क्षेत्रों में सागर पर्यन्त छ. खण्ड से विभक्त ऐसी पृथ्वी के राज्य को भोगकर वे भी काम भोग में अतृप्त हुए मरते हैं, जो सूर्य चन्द्र आदि अनेक उच्च लक्षणों को धारण करने वाले, बत्तीस हजार राजाओं में धिरे हुए और ६४ चौंसठ हजार प्रधान स्त्रियों के स्वामी हैं। रूप लावण्य और कान्ति से सर्वाङ्ग सुन्दर तथा घमालङ्कारों से सुशोभित होते हैं। शब्द भी उनके

मधुर गन्धीय होते हैं १४ रत्न और ६ निधान इनकी सन्निधि में रहते हैं। १४ रत्नों के नाम—१ मेनापति रूपरत्न, २ गाथापतिरत्न, ३ पुणेहितरत्न, ४ अम्बरत्न, ५ वर्द्ध की रत्न, ६ गज्जरत्न, ७ क्षी रत्न, रूप सात प्राणिरत्न, सात प्राणिमिन्न रत्न जैसे ८ चक्ररत्न, ९ द्युत्र रत्न १० अर्गोरत्न, ११ मणिरत्न, १२ कागणिरत्न, १३ लङ्गरत्न, और १४ वृषभ स्तन ये एकत्रियरत्न होते हैं। हाथी घोड़े रथ और पदाति रूप चार प्रकार की मेनाओं क रवामी, उत्तमकुल व ख्रिस्तीयां कीर्ति वाले वे समस्त भारत भूमि के साथ पूषकृत सुकृत से प्राप्त सुखों को सैकड़ों वर्षों तक मोगते हैं, सैकड़ों वर्षों तक उत्तम क्रियों के साथ विलास करते हुए भी उन राक्ष रपर्याधि सुखों से बिना रुमि के ही वे मरण प्राप्तकर जात हैं। ऐस बलदेव वामुदेव आदि महापुरुष भी जो अतिराय बल सम्पन्न, अनुसारी तथा दुर्जर व शक्ति के सागर होत हैं। वर्तमान के बलदेव वामुदेव का वर्णन करते हैं—“राम कथा कहाने वाले बलदेव वामुदेव रूप इन्नों भाई परिपद पुत्र तथा वसुदेव समुद्र विजय आदि दश दशारों के आ प्यार हैं (व) अनक पादव व प्रद्युम्न कुमार, शंभु कुमार आदि साठे तीन काटि कुमारों क इत्य बल्लग ये। बलदेव की माता रेहिणी और वामुदेव-कृष्ण की माता वेदकी क इत्य को प्रसन्न करने वाले थे। सोलह हजार राजा जिनके पीछे चलते थे। और जिनकी सोलह हजार रानियां थीं। मणि, रत्न, और सुवर्ण आदि वन पान्य से इनके मन्दार पूष-मरे रहते, तथा हजारों हाथी घोड़े और रथों के ये अधिपति थे। मान भगर आदि हजारों बसतिओं से युक्त पर्वतादि से मनारम इच्छिण मरठार्थ के शासन करने वाले थे। ये धोरयशस्त्री अतिराय शक्तिशाली और हजारों शत्रुओं के मान भवन करन वाले, तथा परम दयभु थे। मरठर माव रवित-स्मिर ऋकृति वाले व शान्ध तथा मित मधुर मापी थे। इनका हास्य गन्धीय होता था। शरथागत बल्लस एव कृष्ण इवञ्जन और सुखों से युक्त थे। यावत् पुरानीय थे तब बृह और गम्भ की क्रमशः वानों की स्पष्टाये थी। अत्यन्त अहङ्कारी मौष्टिक और पण्डित नामक मङ्ग के—मान प्राण सर्वन करने वाले भरिष्ठ नामक बैल का दमन करन वाले केरी नामक दुष्ट अन्ध और दुष्ट (काशी) नाग का ममन करने वाले हैं। भारत क अधिपत्य से बृह रूप वत हुए दो विद्याधरों का कृष्ण ने नारा किया अतएव यं यमस्यसु न संजक कर्ताते हैं। महा शकुनि और पूवना नामक विद्याधरियों के शत्रु, कंस के मुहद गिराने वाले

और जरासभ के मानका मथन करने वाले हैं, अनेक विशेषणयुक्त छत्र तथा हंस जोड़े के जैसे समुज्ज्वल चामर से विराजमान थे। हल मूशल वाण रूप अस्त्रधारी बलराम थे, और पाञ्चजन्य नामक शङ्ख, सुदर्शन नामक चक्र और कौमोद की नामक गदा एवं शक्ति व नन्दक नामक खड्ग को धारण करने वाले श्रीकृष्ण थे। शरीर शोभा के अलङ्करणों का वर्णन सहज है। अतः अन्वयार्थ से समझे। यावत् द्वारवती नगरी के लिये पूर्णचन्द्र के जैसे विराजमान वे वलदेव वासुदेव भी कामोपभोग में अतृप्त ही चले गये। ऐसे माण्डलिक राजा भी घल, चाहन, सभा, अन्तःपुर-स्त्री वर्ग खजाना और विस्तीर्ण राज्य लक्ष्मी को अत्यधिक भोगकर घलवीर्य से मदीद्वत दूसरे को बुरा कहते हुए कामोपभोग में अतृप्त ही सत्सार से चल बसे। इसी प्रकार देवकुरु, उत्तरकुरु आदि क्षेत्रों के युगलिक मनुष्य, जो भोग प्रधान जीवन वाले हैं, अन्य विशेषण तथा नख शिख पूर्ण शरीराकृति का वर्णन सहज होने से अन्वयार्थ पर से ही समझे। यावत् सुजात अच्छी तरह विभागयुक्त और उत्तम शरीर वाले होने हैं। लक्षण आदि से युक्त, ३२ लक्षणों के धारक और हस आदि के समान गम्भीर व मधुर स्वर वाले होते हैं। उनकी शारीरिक रचना सर्व श्रेष्ठ होती है। उनके शरीर कान्तियुक्त तथा रुजा रहित होते हैं। मलस्थान भी उनके पक्षिबन्त मल लेप रहित एवं निर्मल होते हैं। उनकी जाठराग्नि कबूतर सी प्रदीप्त रहती है (शेष सुगम है)। वे भी काम भोगों में अतृप्त ही सत्सार से विदा होते हैं। इनकी स्त्रियों भी सौम्या व सर्वाङ्गसुन्दरियाँ तथा प्रधान स्त्री गुणों से शोभा युक्त होती हैं। इनका भी नख शिख वर्णन युगलिक पुरुषों के समान है, अतएव अन्वयार्थ से ही समझ लेवे। छत्र ध्वज आदि ३२ लक्षणों को धारण करने वाली, हस जैसी गति वाली और कोकिला के समान मधुर स्वरवाली, अनिन्य सुन्दरी और सभी के लिये प्रिय दर्शना होती हैं। यावत् नन्दनवन विहारिणी अप्सराओं के समान उत्तरकुरु आदि क्षेत्रों की ये, मनुष्याप्सरारथें होती हैं। तीन पत्य के उत्कृष्ट आयु को भोगकर भोगों में अतृप्त ही ये भी सत्सार से चल बसती हैं। सू० ५। १५ ॥

अब मैथुन जिस प्रकार सेवन किया जाता और जो फल देता है इसको साथ ही कहते हैं—“

मूल—“मेहुणसन्नासंपगिद्धा य मोहभरिया, सत्येहिं हयांति एकमेकं
विसयविसउदीरणसु, अवरे परदारैहिं हम्मंति, विसुणिया धणनासं सयण-

विषयार्थं च पाठयति, परस्सदाराम्भो जे अदिरया, मेहुणसभ संपगिद्धा य मोहमरिया अस्सा हत्थी गवा य महिसा, मिगा य मारेंति एककेककं । मणुपगखा वानरा य पकलीय विरुज्जति, मित्रायि शिष्य भवति सत्त, समये धम्मगेणे य मिदति पारदारी । धम्मगुणरया य धमयारी, खखेण उच्चोद्धए चरिचाम्भो । जसर्मसो सुप्पया य पार्वेति अयसकिधि । रोगसा वाहिया पविद्धिदि रापवाही । दूने य लोया दुआराहगा भवति-इह लोए चैव परलोए, परस्सदाराम्भो जे अविरया । तदेव क्कं परस्सदार गवेसमाखा, गठिया हया य बद्धरुद्धा य एवं जाव गच्छति विपुलमोहामिभूयसभा ।

आया-“मैथुन सहा संप्रगृह्यते मोहमरिता, शत्रुर्धन्ति-एकैकं, विषय-विषे रीरकेपु, केचनाऽपरे परदारैश्चहन्यन्ते, विभ्रुता धननारा, स्वजन-विप्रयाराऽऽप्राप्तुवन्ति, परस्य वारम्भो येऽविरता, मैथुनसंज्ञासम्प्रगृह्यते मोहभृता-अथा, इतिना गापय, महिया मृगाश्च मारयन्ति, परापरमकैकं, -मनुजगया वानराश्च पथि यश्च विरुज्जन्ति, मित्रायि शिष्यं भवन्ति शत्रवः, समयान् धर्मान् गर्णाश्च भिन्वन्ति पारदारिका, धर्मगुणरताश्च ब्रह्मचारिणः क्षणं परावर्तन्ते च परिव्रात-यथादिना सुव्रताश्च प्राप्नुवन्ति-अथशास्कीर्तिम्, रगाहा व्याधिता प्रबद्धयन्ते रोगश्च ग्रीम, इयोर्लोफयोदुरारापका भवन्ति (इत्योक्तौ दुराराभ्यौ भवतः), इह लोके चैव पर लोके चैव, परस्य वारम्भो येऽविरता, तथैव केऽपि परस्य वाराम्भोपपन्नो गृहीता इति च बद्धरुद्धाश्च । एवं भावद्गच्छन्ति विपुल मोहामिभूयसभा ।

अन्व- (मैथुणसभ-संपगिद्धा य मोहमरिया) फिर मैथुन राजा में आसक्त श्री च अज्ञान या काम के भरे हुए (एकमेक सत्त्वहिं द्यति) एक दूसरे को शत्रु स मारत हैं, (विसयविस उचीरप्सु) विषय रूप विष क प्रवर्तकों में (अथरे) दूसरे-कई (परदारोई इर्मति) पर श्री के साथ गमन करत हुए मार जाते हैं (विस्तुयिमा) कुक्ष्य से प्रसिद्धि पाये हुए (अणनाभ सवण विषयार्थं च पाठयति) वन के नारा और स्वजनवियोग को प्राप्त करने हैं, (परस वाराम्भो जे अविरया) पर श्री के गमन से जो अविरत होते हैं । (मेहुणसभसंपगिद्धा य मोह मरिया) और मैथुन संज्ञा मे आसक्त और मोह से भरे हुए (अस्सा, हत्थी गर्ध य महिसा मिगा य मारेंति एकमेक) पाइ, हाथी और बैल जैसे और मृग एक दूसरे को मारते रहत हैं (मणुप गया वानराथ) मनुष्य समूह और वानर (पकलीक

विरुज्जति) और पत्नी परस्पर लड़ते हैं, (भित्ताणि स्त्रियं भवन्ति सत्सु) मैथुन कर्म से भिन्न शीघ्र ही शत्रु हो जाते हैं (समये धम्मगेणे य भिद्वन्ति पारदारी) समय-सिद्धान्त के अर्थ, धर्म और गणों जाति मर्यादा को परदार लम्पट भङ्ग करते याने सद्योष करते हैं, (धम्मगुण रया य वंभयारी खणेण उल्लोदृए चरित्ताओ) और धर्म गुण में रमण करने वाले ब्रह्मचारी क्षण भरमें चारित्र से लौट पड़ते हैं, (जसमंतो सुक्वयाय) कीर्तिमान् और सुव्रती भी (पार्वन्ति अयसकित्ति) अयश-अकीर्ति को पाते हैं (रोगत्ता वाहिया) ज्वर आदि के रोगी तथा कुष्ठ आदि व्याधि से ग्रस्त (रोयवाही पवड्ढति) अपने रोग व व्याधि को बढ़ाते हैं (दुवे य लोया दुआराहगा भवन्ति) और दोनो लोक कठिन से आराधने योग्य (वाले) होते हैं जैसे- (इह लोए षेव पर लोए) इस लोक और ऐसे परलोक-दोनों का आराधन उनको कठिन होता है (परस्स दाराओ जे अविरया) जो परस्त्री से विरत नहीं होते हैं, (तहेव केह परस्स दारं गवेसमाणा) इसी प्रकार कई पर स्त्री की गवेषणा-खोज करते हुए- (गहिया, हया य वद्धरुद्धा य) पकड़े गये और मारे गये तथा बांधकर रोके गये हैं (एणं जाव गच्छति विपुल मोहाभिभूयसन्ना) इस प्रकार याघत् विस्तीर्य मोहसे दबे हुए ज्ञान वाले 'नरक में' जाते हैं ।

मू०—“मेहुणमूलंच सुव्वए तत्थ तत्थ वत्तपुव्वा संगामा जणकखय-करा,—सीयाए दोवईए कए, रुप्पिणीए, पउमावईए, ताराए, कंचयाए, रत्तसुमदाए, अदिञ्जियाए, सुवन्नगुलियाए, किन्नरीए, सुरूवदिञ्जुमतीए, रोहणीए य । अन्नेसु य एवमादिएसु बहवो महिल्लाकएसु सुव्वन्ति अइक्कंता संगामा, गामधम्ममूला इहलोए तावनट्ठा परलोए वियनट्ठा, महया मोह तिमिसंधकारे घोरे तसथावर सुहुमवादरेसु पज्जत्तमपज्जत्त साहारणसरीर पत्तेयसरीरेसु य, अंडज-धोतज-जराउय-रसज-संसेइम-समुच्छिम-उन्धिय-उववादिएसु य नरग-तिरिय-देव-माणुसेसु, जरा-मरण-रोग-सोग-बहुले, पत्तिओवम सागरोवमाहं अणादीयं अणावदग्गं दीहमद्वं चाउरत संसार कंतारं अणुपरियट्ठंति-जीवा मोहवससन्निविट्ठा । एसोसो अबंमस्स फल वि-वग्गो इहलोइओ पारलोइओ य अप्पसुहो बहुदुक्खो महव्वभओ बहुरयप्पगाढो दंरुणो कंकसो असाओ वास सहस्सेहिं सुच्चती, नय अबेदयित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु नायकुल्लनंदणो महप्पा जिणोड धीश्वरनामधेज्जो,

शीण य) और रोहिणी के लिये चसुदेवका युद्ध (अन्नं सु य एवमादिषु) अ
 इत्यादि अन्य (वहवो) बहुत से (महिलाकण्डु) स्त्रियां के प्रयोजनसे (अदक
 सगामा सुव्वंति) भुत पूर्व सग्राम सुने जाते हैं, (गामधम्ममूला) जिनका विप
 भोगही मूल करण है, विषय सेवन करने वाले-(इहलोणतावनट्टा) इस लोक में
 अकीर्तिके कारण नष्ट होते हैं (परलोए वियणट्टा) और परलोक में भी नष्ट होते
 (महया मोह तिमिसंधकारे)महामोहरूप अत्यन्त अन्धकार वाले (घोरे)घोर-परलो
 (तसथावर सुहुमवादरेसु) प्रस म्यावर तथा सूक्ष्म और वादर नाम कर्मवाले (पज्जत्त
 पज्जत्त साहारणसरीर पत्तेय सरीरेसु य) और पर्याप्त व अपर्याप्त तथा साधारण शरीर
 नाम कमवाले और प्रत्येक शरीरीपन में (अदज-पोतज-जराउय-रसज-ससे
 समुच्छिम उट्ठिभय -उववादिणसुय) अण्डज, पोतज, जरायुज क्रमसे अण्डा से पै
 होने वाला अण्डज- पत्नी, पोतज हाथी आदि और जड़ के साथ उत्पन्न होने व
 जरायुज, रसमें पैदा होने वाले रसज, स्वेद-पसीने से पैदा होने वाले सखेदिम, वि
 गर्भ के उत्पन होने वाले समूर्च्छिम, और भूमि को फोडकर पैदा होने वाले उद्धि
 तथा उपपात-एकाएक अन्त्यस्थानसे दूसरेस्थान में जाने वाले सहसाशय्या में पै
 होने वाले जीव औपपातिक-देव तथा नारक आदि, इन जीवों को सत्त्वमें कहें
 (नरग-तिरिय-देव-माणुसेसु) नरक, तिर्यञ्च, देव और मनुष्य रूप यों
 ओमें 'पर्यटन करते हुए जीव,' (जरा मरण रोग सोग बहुले) जरा मरण, रोग
 और शोक की प्रधानता वाले 'ससार में' नष्ट होते हैं, (पलिओच्म-सागरोवमाइं
 अनेक परलयोपम व सगरोपम तक (मोहवस संनिविट्टा जीवा) मोहके कारण अ
 ह्मके सेवन में लगे हुए जीव (अणादीयं अणवद्ग) आदि अन्त रहित-और (दी
 मद्धचाउरंत ससार कंतार) दीर्घ-लम्बे मार्गवाले-चार गतिओं से युक्त इस सस
 रूप अटवी में (अणुपरियट्टंति) भटकते रहते हैं।

उपसंहार-“(एसोसो अवंभस्स फलविवागो) इस प्रकार यह अब्रह्म सेवन व
 फलरूप विपाक-आस्त्रीरी परिणाम (इहलोइओ पारलोइओ य) इस लोक सम्बन्ध
 और परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहुदुक्खो महदभओ) अल्प सुख वाला, बहु
 दु खवाला-तथा महाभयङ्कर है, (बहुरयप्पगाढो, दारुणो, ककसो, असाओ
 कर्मरज की अधिकता से प्रगाढ, भयङ्कर और कठोर, असाता रूप है (वाससहस्ते
 सुसत्ती) हजारों वर्षों से बूटता है (न य अवेदयित्ता अत्थिहुमोक्खोति) बिनाभो

इस कर्म विपाक से मोक्ष-छुटकारा-नहीं होता है, (एवमाहंस्तु नायकुञ्ज मदनो म्हाण्या) हातकुञ्ज नन्दन महास्माने इसप्रकार कहा है, (अिणोठ धीरवर नाम केम्बो) महावीर नामके अिनेन्द्र ने (कहेसीय अथभस्स फलविभाग) और अत्रद्य के फलविपाकमे कहा है (इंगि) (ए यं तं अर्धभविष्यत्त्वं) यह अत्रद्य नामक वह चौथा अधर्मद्वार भी हुआ, (सदेवमगुजास्तस्म लोगरस पत्थक्षिग्धं, पर्व चिरपरि-धियमगुगम दुरत पञ्चत्वं अधम्मद्वारं समत्तं विषेमि) जो वेव, मनुष्य और असुर सहित लोक-संसार का प्रार्थनीय है, इस प्रकार बावत् अधिक कालका परिचित, साधी और दुःख से अगतवाला है। ऐसा चौथा अधर्मद्वार समाप्त हुआ, ऐसा मैं कहता हूँ। सू० ६। १६।

मायार्थ-“इस सूत्र में बताया गया है कि मैथुन संज्ञा के परीमूत जीव एक वृक्ष के को मारते हैं। कई जीव विषय के व्यासङ्ग में लक्ष हुए मारे जाते हैं। कुर्म से प्रथमतः हुए कई धन अन व प्राणों की क्षति उठाते हैं। मैथुन स निवृत्त नहीं होने वालों की यह वृक्षा है। विषय में आसक्त हुए भए पाके, हाथी आदि पशु परस्पर-एक वृक्ष के मारते हैं और नर, धानर पक्षी भी इस कारण से लड़ते हैं। मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। और दुराचारी लोग सम्प्रदाय सिद्धान्त एवं धर्ममार्गों को भी मंग करते हैं। इस कुर्मकृत्य के उपासक लोग सदाचारी रहकर भट नीचे गिरजाते हैं। और कीर्तिमान् भी अकीर्तियुक्त हो जाते हैं। इस अविचार से जीव रोगी बनते और फिर उस रोग को बढ़ाते रहते हैं। संक्षेप में कहना चाहिए कि दुराचारियों के लिये दोनों लोक दुरारात्म-अर्थात् बिफल हो जाते हैं। क्योंकि इस लोक में पकड़े जाने पर वध न्यून आदि दुःख सहने पड़ते हैं और परलोक में भी नरकगामी बनते हैं। इस मैथुन के पड़ते गत काल में कई अनसहारी समाप्त हुए हैं, अिनका निरावर्णन शास्त्रों में सुन पड़ता है। जैसे-सीता के लिये राम रावण का, द्रौपदी के लिये कौरव पाण्डवों का, तथा तारा के लिये छाहसमति व सुधीव का, इत्यादि सैद्धों बुद्ध प्रसिद्ध हैं। विषयी लोग-उभयलोक को अपने हाथ से नष्ट करते हैं। आत्मीर प्रसरबावर पर्याणों में भटकते हुए पतुर्गतिक संसार म परस्पोपम सागरोपम कालतक पर्यटन करते रहते हैं। उपसंहार स्पष्ट ही है। सू० ६। १६।

अथ “पञ्चम आखव” प्रारभ्यते



सम्बन्ध-“पूर्व अध्ययन में अत्रह्य का स्वरूप कहा गया, वह परिग्रह के होने पर ही होता है, इसलिये इस अध्ययन में परिग्रह को पांच द्वारों से कहेंगे,—प्रथम परिग्रह का स्वरूप बताते हुए श्री सुधर्म स्वामी महाराज फरमाते हैं—

मूल-“जंबू ! इत्तो परिग्रहो पंचमो उ नियमा णाणामणि-रयण-कणग-महरिह-परिमल-सपुत्त-दार-परिजण-दासीदास-भयग-पेस-हय-गय-गोमहिंस-उट्ट-खर-अय-गवेलग-सीया-सगड-रह-जाण जुग्ग-संदण-सयणासण-वाहण-कुविय-धणधन्न-पाण-भोयणाच्छायण-गध-मल्ल-भायण भवण विहिं चैव बहुविहीयं, भरहं णग-णगर-णियम-जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड-कवड-मडव-संदाह-पट्टणसहस्स परिमंडियं, थि-मियमेडणीयं, एगच्छत्तं ससागरं भुंजिज्ज वसुहं, अपरिमिय मयांत तरह-मणुगय-महिच्छसार-निरयमूलो, लोभकलिकसाय-महक्खंधो, चिंतासय निचिय विपुलसालो, गारव पदिरल्लियग्ग विडवो, नियडि तथा पत्त पल्लव धरो, पुप्फफलां जस्स कामभोगा, आयास विघ्नरणा, कलह पंकपियग्ग सिहरो, नरवतिसंपूजितो, बहुजणस्स हियय दइओ इमस्स मोक्खवर-मोत्ति मग्गस्स-फलिहभूओ चरिमं अहम्मदारं । १ । १७ ।

छाया-“हेजम्बू । इत, परिग्रह पञ्चमस्तु नियमात्-नाना-मणि-कनक रत्न-महार्ह-परिमल-सपुत्रदार-परिजन-दासीदास-शृतक-प्रेष्य-हय गज गो-महि घोष्ट-खराऽज-गवेलक-शिविका-शकट-रथ यान-युग्य-स्यन्दन शयनाऽऽसन-वाह न-कुत्र्य-धन धान्य पान-भोजनाच्छादनगन्धमाल्य भवनविधिम्, चैवं बहुविध, भारत [नाम] नग-नगर-निगम-जनपद-पुरवर-द्रोणमुख-खेट-कर्कट-मडम्ब-सवाह-पट्टणमहस्त्रपरिमण्डितम्, स्तिमित मेदिनीकमेकच्छत्रं ससागरं मुक्त्वा

वसुधामपरिमिताऽनन्तवृष्णानुगत-महेच्छासार निरयमूला, शोभ कलिकपाय महास्कन्ध, पिन्ताऽऽबास निमित्त निपुलशास्त्रो, गौरवपङ्कविलास विटपा, निकृति त्वचा पत्र पङ्कवधर, पुष्पकर्त्र, यस्य काम मगाः, आयास निरुरणा कर्कह प्रकम्पिताऽऽमशिरा, नरपतिमन्वृषितो बहुजनस्य हृदयस्थितः । अस्य मोक्षवर मुक्ति मार्गस्य परिषी भूत (त) चरममभर्मद्वारम् । सूत्र १ । १७ ॥

अन्व०—“(जंभू ! इत्ता) हे जम्बू ! इस शोभे आश्रय के वाद (परिग्रहो पंचमो च) परिग्रह-पाषाण आश्रय (नियमा) निग्रह से होता है, यह कैसा है ?—(शा यामयि-कृष्ण-रपय-महर्षि-परिमल-सपुत्रदार-परिजय-दासीदास-मयग-पेस-हय-गय-गो-महिस-ऊ-कर-अय-गवेलाग-सीया-सगाह-रुजाय-जुमा-संवष-अय्यासण-वाहण-कुविय-अय-पन्न-पाय मोय्याच्छायय-गधमङ्ग-मायण-भयय विहिं चेश बहुविधीयं) अनेक प्रकार के यण, कनक-सोना, रत्न-कर्मतन आदि, बेराफीमती मुगधि ब्रह्म पुत्र और स्त्री सहित परिवार, दासीदास और काम करने वाले भूतक, तथा खास काम पर भेजने योग्य-प्रेष्य, घोड़े, हाथी, गाव, भैंस, ऊट, गधा, चकरे की जाति और गवेजक व शिबिका-पालकी, शकट-गाड़ी तथा रथ, पान व दुग्ध-बाहन विरोध तथा स्पन्धन-श्रीधारय, शयन, आसन और बाहन व कुच-घर के उपयोगी सामान, धन, धान्य, भक्ष्य खाने के पदार्थ और पेय, आच्छा दन-शरीर ठकने का बन्ध, गंध-कपूर आदि, मारुत-पुष्पमाला, भाजन और मन्त्र के अनेक प्रकार के विधान को (याग-यागर-नियम-अयय-पुरवर-शोषमुह-खेड कम्बड मडंन-संबाह-मृष्टण-सहस्र परिमंथियं) तथा नग-पर्वत, नगर-शहर, निगम-बधिगु लोगों का निवास स्थान-मट्टी, जनपद-वेष्ट, पुरयर-प्रधान शहर, शोषमुह-अकमार्ग और रवकमार्ग दोनों से जाने योग्य नगर, खेड कर्मठ, मडम्न, संबाह और हजारों पत्तनों से संबन्धित (मरुत्) मरुत क्षेत्र को (तिमिय मेदणीयं) निर्मयजनपुष्ट मेकिन्ती बाली (ससागरं वसुहं) समुद्र सहित पृथ्वी को (पगच्छत्र) एकच्छत्र-असह राम्य से (मुबिच्छ) मोगकर, अथ परिग्रह का स्वरूप से वर्णन करते हैं—(अपरिमिय मरुततच्छ मणुगय महिच्छसार-निरयमूला) अपरिमित अनन्त वृष्णा के साथ रहने वाली बड़ी इच्छा ही अक्षय्य और अक्षय्यकला वाले जिसके मूल हैं, (शोभ-कलि-कलाय-महच्छलोपो) शोभ, कलि-कलाह और कपाय-श्लेष मान आदि पतद्रूप महास्कन्ध बासा (पितायास

निचिय विपुल सालो) चिन्ता और मनस्ताप आदि की अधिकता से या निरन्तर सैकड़ों चिन्ताओं से वितीर्ण शाखावाला (गारव पथिरज्जियग विडयो) ऋद्धि आदि के गौरव ही विस्तारयुक्त शाखा के अग्रभाग है जिसमे (नियडि-तयापत-पल्लवधरो) दूसरे को ठगने के लिये किये गये वंचनाप्रकार या कपट रूप त्वचा पत्र और फूल को जो धारण करने वाला है, (पुष्पफलं जस्स कामभोगा) तथा काम भोगही जिस वृत्त के फूल व फल हैं (आयास विसूरणा कलह पकं पियग सिहरो) शरीर और मन का खेद, तथा कलह ये ही जिस वृत्त के कम्पमान होने वाले अग्र शिखर हैं (नरवतिसपूजितो) राजाओं से पूजित (बहुजणस्सहियय द्दहओ) बहुत लोकों का हृदयवल्लभ (इमस्स मोक्खवर मोत्ति मग्गस्स) इस-प्रत्यक्ष-विद्यमान मोक्ष-कर्म मोक्ष-के निलोभितारूप मार्ग का (फलिहभूओ) यह परिग्रह आगल के समान रोध करने वाला है (चरिम अहम्मदारं) यह अन्तिम अधर्मद्वार है । १।१७।

भावार्थ—“सुधर्मस्वामी महाराज जन्वू नामक अपने शिष्य से फरमाते हैं कि अब्रह्म के बाद पाचवा अधर्म द्वार परिग्रह है। अनेक प्रकार के मणि सुवर्ण आदि जङ्गम तथा स्थावर सचेतन और अचेतन रूप बहुत प्रकार के साधनों को तथा गिरि नगर आदि हजारों वसतिओं से मण्डित भरत क्षेत्रको और समुद्र सहित पृथ्वीके एक-च्छन्न राज्य को भोगने पर भी जो वृत्ति रहित हैं। इसकी वृत्त के साथ तुलना करते हैं—अपरिमित अनन्त वृष्णारूप बड़ी इच्छा व अशुभफलही इसका मूल है, लोभ कलह और कषाय इसके बड़े स्कन्ध हैं, सैकड़ों प्रकार की चिन्तायें इसकी विशाल शाखायें और अहङ्कार ही विस्तारयुक्त इसका शिखर है। अनेक प्रकार के छल कपट ही, जिसकी त्वचा पत्र व फूल हैं, कामभोग ही इसके फल फूल हैं। इसी प्रकार अन्य तुलना समर्थे यान्त निलोभितारूप मोक्षमार्ग का यह आगल के समान रोध करने वाला पंचम अधर्म द्वार है ॥ १।१७ ॥

अब परिग्रह के नाम कहते हैं—

मूल—“तस्स च नामाणि इमाणि गोएणाणि होंति तीसं, तंजहा-परिगहो १, संचयो २ चयो ३, उवचओ ४, निहाणं ५, संभारो ६, संकरो ७, आयरो ८, पिंडो ९, दन्वसारो १०, तहामहिच्छा ११, पडि-चंधो १२, लोहप्पा १३, महदी १४, उवकरणं १५, संरवखणाय १६,

मारो १७, संपाटप्यायको १८, कलिकरंडो १९, वित्स्ता २०,
 २१, संयवो २२, अगुची २३, आयासो २४, अविभोगो २५
 २६, तथा २७ अखत्यको २८, आसकी २९, असंतोसोचिषि ३०
 प्याधि यवमादीषि नानवेज्जाधि ही ति तीस । ० । १८ ।

छाया—“तस्य च नामानि इमानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत् तानि अत्र—
 १, सञ्चय २, यव ३, उपचय ४, निधानम् ५, सम्मार ६, सङ्कटम्
 ७, पिबह ८, इष्यसार ९, तथा महेच्छा ११, प्रतिबन्ध (अविभङ्गः) १२, ई
 मात्मा (लोभ स्वभावः) १३, महर्षि १४, उपकरणम् १५, संरक्षणा च १६, च
 १७, संपातोत्पादक १८, कलिकरवह १९, प्रविस्तार २०, अनर्थ २१, संय
 २२, अगुचि २३, आयास २४, अवियोग २५, अमुक्ति २६, लुप्य २७, असा
 २८, आसक्ति (आसङ्ग) २९, असंतोचः ३०, इत्वपिच, तत्त्वैतानि-स्यस्यै
 नामभेदानि भवन्ति त्रिंशत् ॥ सू० २ । १८ ॥

अन्व— “ (तस्य च) किरस्वरूप के बाद उस परिभ्र के (इमाधि) के लक्ष
 कहे गये (गोप्याधि) गुणनिष्पन्न (तीस) तीस (नामाधि) नाम (इति) होने
 (तबहा) जैसे कि वे इस प्रकार हैं—(परियायो) परिभ्र-रातीर आदि का बन्ध
 तरह प्रण करना , (सचरो) सञ्चय-अधिक मात्रा में संग्रह करना (यवो) यव
 यस्तुमों को छुटाना, (उपचयो) उपचय (निदाखं) निधान (संमारो) संमार से
 अचड़ी तरह से धारण किया जाय (संकरा) मङ्कुर-वस्तुओं को एक दूसरे से मिला
 (आररो) आहर-वस्तुओं में आहर बुद्धि करना (पिबह) पिबह (इष्यसारो) इष्यसा
 सार याता (तथा महिच्छा) वैतेही महेच्छा-तीव्र इच्छा (पविबंधो) प्रतिबन्ध-बाधपर
 यमें स्तब्धम् हाना (लोहप्या) लोभात्मा-लोभमय आत्मा यत्ना, (महर्षि) महर्षि
 -अपरिमित धाननावाका (उपकरणं) उपकरण (संरक्षणा च) और संरक्षणा-सं
 यव-रातीर आदि की विशेष रक्षा करना (भारो) भार-आत्मा का विशेषभा
 करने वाला (संपाटप्यायको) संपातोत्पादक-मूठ आदि पातकों का पैदा कर
 वाला (कलिकरंडो) कलिकरंडी पेटी (पविस्तारो) प्रविस्तार-धनपाम्ब आदि का
 विस्तार (अणवी) अनर्थ-अनर्थों का हेतु (संयवो) संस्तव-बाधपरहियों का अवि
 विगय (अगुची) अगुचि-इच्छा के संगोपन स हीन । आयासो) आयास-करा
 कारण (अवियोगा) अवियोग एव आदिका नहीं आहना (अमुची) अमुक्ति नाम

(तद्वा) तृष्णं (अणत्यको) अनर्थक-परमार्थसे निरर्थक अनर्थ को करनेवाला (सत्ती) आसक्ति-अधिकमोह (असंतोसोत्तिविय) इसप्रकार असन्तोष यहमी (न) उस परिग्रहके (एयाणि एवमादीणि नामधेजाणि तीसहोति) ये कहे गये स और इसीतरह के दूसरे नाम होते हैं ॥ २ ॥ १८ ॥

भावार्थ-इससूत्र में परिग्रह के तीस नाम कहे गये हैं जैसे-परिग्रह १ सञ्चय २ तय ३ उवचय ४ निधान ५ सम्भार ६ सङ्कर ७ आदर ८ पिण्ड ९ द्रव्यसार १० महेच्छा ११ प्रतिबन्ध १२ लोभात्मा १३ महार्हि १४ उपकरण १५ और सरक्षण १६ भार १७ सम्पातोत्पादक १८ कलिकरण्ड १९ प्रविस्तर २० अनर्थ २१ संस्तवर २२ अगुप्तिर २३ आयास २४ अवियोग २५ अमुक्ति २६ तृष्णा २७ अनर्थक २८ आसक्ति २९ और असन्तोष ३० इसप्रकार परिग्रह के ये तीसनाम अनर्थक-सार्थक होते हैं । २ । १८ ॥

मूल-“तंच पुण परिग्गहं ममायंति लोभधत्था, भवनवर विमाणवा-
सिणो परिग्गहरुती, परिग्गहे विविह करणबुद्धी, देव-निकायाय, असुर-
भुयग-गरुल-विज्जुज्जलण-दीव-उदहि-दिसि-पवण-थणिय, अणवनि-
यणवनि-इसिवातिय-भूतवाइय-कंदिय-महाकंदिय-कुहंड-पतंगदेवा,
पिसाय-भूय-जकख-रकखस-किन्नर-किंपुरिस-महोरग-गंधव्वा य, तिरिय
चासी पंचविहा जोइसिया य देवा, बहस्सती, चंद-खर-सुक-सनिच्छरा,
राहु-धूमकेउ बुधाय, अंगारकाय, तत्तवणिज्ज कण्ठयैरणा, जे य गहा
जोइसम्मि चारं चरंति, केऊ य गतिरंतीया, अट्टावीस तिविहा य नखत्त-
देवगणा, नाणा संठाण संठियाओय तारगाओ, ठियलेस्स-चारिणो य अवि-
स्साम मंडलगती उवरिचरा, उड्ढलोगवासी दुविहा-वेमाणिया य देवा,
सोहम्मिसाणं-सणकुमार-माहिंद-चंमलोग-लतक-महासुक-सहस्सारं-
आणय-पाणय-आरण-अच्चुया कप्पवर विमाणवासिणो, सुरगणा,
गेवेज्जा, अणुत्तरा दुविहा कप्पातीया विमाणवासी, महिडिहका उत्तमा
सुरचरा एवं च ते चउव्विहा सपरिसाविदेवा ममायंति, भवणवाहण जाण
विमाण सयणासणाणि य नाणा विहवत्थभूसणा पवर पहरणाणि य
नानामणि-पंचवन्नदिव्वं च भावणविहिं; नाणाविह कामरूवे, वे उव्वित

अच्छर गणसवाते, दीवसमुदरे, दिसाम्बो, विदिसाम्बो, चेतियाधि, वरुसडे, पन्वते गामनगराधि प, आरामुचत्राख कास्यद्याधिप, कूव-सर-उलाग धायि-दीहिय देवकुल-सम-प्यव-वसहि माइयाई बहुफाई, किचखाधि व परिगेपिइचा परिगह विपुलदव्वसारं देवाधि सईदगा न तिचिं न तुडिं उवलमंति ।

छाया-“तं च पुन परिष्कं ममायन्ते लोभमस्ता मबनवरविमान वासिन”, परिष्क उचय परिष्के विविध करणपुत्रयो देवनिष्कामाऽऽसुरमुजग-गुरुद विपुलवसलम द्वीपो-एपि दिक्-पवन-स्तनिताऽऽपन्निक-पयपन्निक इधि अद्विवादिक्-सूतवादिक्-अम्बित महाअम्बित-कूमल-पतङ्गा देवा, पिरात्त-भूत-यक्ष-राक्षस-भिर-किम्पुठ-महोरग-गण्यर्था, तिर्यग् यासिन पञ्चविधा ज्योतिष्काऽऽ देवा, इहस्पति चन्द्र सूर्य शुक्र शनिधरा, राहु भूमकेतु बुधशुक्राङ्गारकाऽऽ तप्तपनीय कनक वर्णा, ये च महा ज्योतिष्केतु चार अरुति, केतयश्च गतिरदयः, अष्टाविंशतिविधाऽऽ मन्त्र देव-गणा, माना संस्वानसंस्थिताऽऽ तारका, स्थितकरयऽऽरियऽऽविभाममवल गतय, अपरिचरा ऊर्ध्वलोकासिनो द्विविधा पैमानिकाऽऽ देवाः, सौषर्मेरान-सन कुमार-भाइन्द्र-महालोक-ताम्रक-महाशुक्र-सहस्राराऽऽणत-प्राखताऽऽरणकाऽ-कमुता कल्पवर विमान वासिन सुरगणा, प्रैयेयका अनुचरा द्विविधा कम्पातीता विमानवासिना महर्दिका उचमा सुरवरा । एवञ्चते चतुर्विधा अपरिपशोऽपि देवा ममायन्ते, भजन-वाहन-यान-विमानरायनाऽऽसन्नानिष, नानाविध बस्त्रमूपणानि मवरप्रहरणानिष, नानामयि पञ्चवर्ण-विषयञ्च भाजनविधि, नानाविध कामरुपा विद्वर्षिताऽऽप्सरो गण्य सधाताम्, द्वीपसमुद्रम्, दिशो, विविधरथैत्वानि, वनकरडाय पवठारच, मासनगराधिच, आरामाधानकानतानिष, कूपसरस्तटाक-बापी-दीर्घिका देवकुल-समामपा-वसत्यादीनिषहुफानि, कीर्तनानि च परियुक्त परिष्कं विपुल इव्व सार देवा अपि समुद्रका म वृष्टिं न त्वाष्टमुपलभन्ते ।

आम्भयार्थ-“(तं च पुन परिष्कं) और फिर उस परिष्क का (ममायन्ति) स्वीकार करत हैं (लोभमत्वा मबणपठविमाययासिण्यो) लोभमत्त मयान भवम और विमानयासी देव (परिष्कादृती, परिष्कादे विविध करणपुत्र्यो) जा परिष्क की उधि वाते हैं, स्या परिष्क में इति परमे की मुक्ति वाते हैं, (देव निष्कामा य) और देवसमुद्र (असुर-मुष्क-गठम विष्णुमन्त्र-दीव-उरुहि विधि वरुण-वसिष्ठ

अण्वन्निय-पण्वन्निय-इसिवातिय-भूतवाहय-कंदिय-महाकंदिय-कुहंड-पतंगदेवा) जैसे-असुर कुमार १, नागकुमार २, गरुड-सुपर्णकुमार ३, विद्युत्कुमार ४, अग्नि-कुमार ५, द्वीपकुमार ६, उदधिकुमार ७, दिक्कुमार ८, पवनकुमार ९, और स्तनित कुमार १०, ये दश भवनपति, अणपन्निक १, पणपन्निक २, इपिवादिक ३, भूतवा-दिक ४, क्रन्दित ५, महाक्रन्दित ६, कूष्माण्ड ७, और पतङ्गदेव ८, ये आठ व्यन्तर जाति के देव, (पिसाय-भूय-जक्ख-क्खस-किनर किंपुरिस महोरग-गन्धव्याय) और पिशाच १, भूत २, यक्ष ३, राक्षस ४, किन्नर ५, किम्पुरुष ६, महोरग ७, तथा गन्धर्व ८ ये आठ व्यन्तर विशेष [कुत १६ जाति के व्यन्तर देव] (तिरियवासी पंचविहा जोइसिया ष देवा) और तिर्यग् लोक में रहने वाले पाच प्रकारके ज्यो-तिष्कदेव (वहस्सती, चद-सूर-सुक-सनिच्छरा) बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र व शनैश्वर (राहु-धूम-केउ-बुधा य, अंगारका य, तत्त-तवणिज्ज-कणयवणणा) राहु, धूमकेतु और बुध तथा तपाये हुए लाल सुवर्ण के समान वर्ण वाले अङ्गारक-मङ्गल ग्रहविशेष (जे य गहा जोइसमि चारं चरति) और जो दूसरेग्रह ज्योतिष्चक्र में संचार करते हैं (केउ य गतिरतीया) और केतु, गतिमें प्रसन्नता का अनुभव करने वाले (अट्टावीसतिविहा य नक्खत्त देवगणा) और अट्टाईस प्रकारके नक्षत्र देवोंका समूह (नाणा-संठाण संठियाओ य तारगाओ) फिर अनेक प्रकारके सस्थान-आकारवाले तारक-तारगण (ठियलेस्सा चारियो य अविस्साम मंडलगई उव-रिचरा) स्थिर कान्ति वाले-मनुष्य क्षेत्र से बाहर के ज्योतिष्क, और मनुष्य क्षेत्र के भीतर संचार करने वाले जो तिर्यग् लोक के ऊपरी भाग में वर्तमान तथा अविश्रान्त मडल-वर्तुलाकार-गति से चलने वाले हैं, (उड्डलोगवासी दुविहा वेमाणिया य देवा) और उद्धर्षलोक में वसने वाले दो प्रकार के-कल्पोपपन्न, तथा कल्पातीत-वैमानिक देव हैं। 'कल्पोपपन्न देवों को कहते हैं'-(सोहम्भीसाण-सणकुमार-माहिद धंभलोग-लंतक-महासुक-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्युया कप्पवर वि-माण वासियो सुरगणा) सौधर्म १, ईशान २, सनत्कुमार ३, माहेन्द्र ४, ब्रह्मलोक ५, लान्तक ६, महाशुक्र ७ सहस्सार ८, आणत ९, प्राणत १०, आग्ण ११ और अच्युतकल्प १२ के प्रधान विमानों में रहने वाले देव समूह (गेवेज्जा अणुत्तरा दुविहा कप्पातीया विमाणवासी) प्रवेयक और अनुत्तर विमानवासी ये दो प्रकार के कल्पातीत 'कल्प-मर्यादा-के-अन्धनों से रहित' (महिड्डिका उत्तमा सुरघरा)

महर्षिः, उत्तम और प्रथम देव हैं (एवं च ते) और इस प्रकार वे (चतुर्विधा सपरिसाविदेवा) चार प्रकार के परिपत् सहित भी देव (भवत्य-वाह्य-आण रिमाख-सपखासयाखिव) भवन, याहन-दायी आदि, यान-रथ आदि अथवा घूमने के रिमान और विमान-पुष्पक आदि तथा शरण्या और आसन-भद्रासन सिंहासन आदि, (नाया विहवत्य भूसणा-पवर-पहरयाखिव) और अनेक प्रकार के बन्न, मूष्य तथा उत्तम प्रहरण-शस्त्रों की (नाणामणि-यंपदन्न-दिश्व-च भायणविदि) और नाना भाँति की मणिओं के पंच यज्ञ के दिव्य भाजन आठ की तथा (नायाविह-कामरूपे, वेधेद्वित-अप्वरगाख-सवाते इच्छानुसार घनेक प्रकार के रूपवाले, यज्ञ आदि स विशेषशोभावाली अप्सरा समूह की (दीय-समुदे, दिसाओ, विदिसाओ, चेतियाखि, वयसंडे पद्वते य द्वीपममुद्र, विरा-पूर्व आदि विरायें, ईशान आदि विदिसायें चैत्य-माखिक चैत्य या ऐसे चैत्य स्तूप आदि, वनकरण और पर्वतों की (गाम नगराखि य) ग्राम, नगर और (आरामु ब्याण काणयाखिव) आराम स्थान-वागीचा व कानन-जगलों की और (कूप-सर-तलाग-याविहीदिय-देवकुत्र-सभ-पव-वसहि मादयाई) कूप, सर-सरोवर तालाव, वापी-वावडो, ईर्षिक-जम्बीबापी, देवकुल-देवता घमा, प्रपा-प्याऊ और बसति इत्यादि (महुकाई ऋचयाखि य) और अर्चनीय-स्तुतिके लायक धर्मस्थानों की (ममार्यति) ममत्व भावसे स्वीकार करते हैं (विपुल इवसारं परिमाह) विपुल द्रव्य वाले परिमह को (परिगेयिष्टा) प्रहय करके (सईरगा देवानि) इन्द्र सहित सब देव भी (न तिष्ठि महुद्वि उबलमंति) न रुझि और न सम्तोष को ही प्राप्त करत हैं ।

मूल-“अर्चत विपुल सौमामिभूत सचा, वासहर-इक्सुगार-वह पव्वय-कुडल-रुषगवर-माणुसोचर-कासोदधि-सवखं ससिल-इहपति-रतिकर-अंजयकसेल दक्षिणइवपातुप्याय^१-कंचयिक-चिंच विचिच-जम^२ कवर-सिहर कूडवासी, वक्सार अकम्मभूमिसु, सुविमच-भागदेसासु, कम्मभूमिसु वेऽविपनरा वाउरंठ वळवड्डी, वासुदेवा, बलदेवा, मंडलीया, इस्सरा, सल्लवरा, सेखावती, इष्मा, सेड्डी, रड्डिया, पुरोहिया, कुमारा,

दंडणायगा, मांडंविया, सत्यवाहा, कोडुविया, अमच्चा, एण अन्ने य एव-
माती परिग्गहं संचिणंति, अणंतं असरणं दुरंतं, अधुवमणिच्चं, असासयं
पावकम्मनेम्मं, अवकिरियव्वं, विणासमूलं, वहवंध-परिकिलेस बहुलं,
अणंतं संकिलेस कारणं, ते तं धण-कणग-रयण-निचयं पिंडिता चव
लोभघत्था संसारं अतिवयंति सव्वदुक्ख संनिलयणं । सू० । ३ । १८ ।

छाया-“ अत्यन्त विपुल लोभाभिभूत सत्त्वा, वर्षधरेलुकार-वृत्त पर्वत-कुण्डल
रुचकवर-मानुषोत्तर-कालोदधि-लवण सलिल-हृदपति-रतिकराऽञ्जनक शैल-
दधिमुखावपानोत्पात-काञ्चन-चित्र-विचित्र-यमक-चर शिखर-कूट वासिनः, वक्ष-
स्काराऽकर्मभूमिषु सुविभक्तभागदेशासु, कर्मभूमिषु येऽपिचनराश्चातुरन्त चक्रवर्तिनो
वासुदेवाः, बलदेवा, माण्डलिकाः, ईश्वरास्तलवराः, सेनापतयः, इभ्याः, श्रेष्ठिनो,
रथिकाः, [राष्ट्रिकाः] पुरोहिताः, कुमाराः, दण्डनायकाः, माण्डविकाः, सार्थवाहाः
कौटुम्बिका, अमात्या, एतेऽन्ये चैवमादयः परियह संचिन्वन्ति-अनन्तमशरणं
दुरन्तमनित्यमशाश्वतं पापकर्मनेमिकम्, अपकरणियं, विनाशमूल वधवन्ध परिकले-
शवहुलम्, अनन्त सक्लेशकारणम्, ते तं धन-कनक-रत्ननिचयं-पिण्डयन्तश्चैव
लोभप्रस्ता. संसारमति पतन्ति सर्व दुःखसंनिलयनम् । ३ । १८ ॥

अन्व०-“(अच्यत विपुल लोभाभिभूत सत्ता) अत्यन्त विशाल लोभ से घिरी-
हुई बुद्धि वाले हैं, तथा (वासहर-इवखुगार-घट्ट पव्वय-कुण्डल रुचगवर माणुसोत्तर
कालोदधि-लवणसलिल-दहपति-रतिकर अंजणक-सेल-दहिमुह-वपा-तुप्पाय-
कंचणक-चित्त-विचित्त-जमकवर-सिहर कूडवासो) वर्षधर-हिमवान् आदि वर्षधर
पर्वत, इषुकार,-धातकी खंड और पुष्करवर द्वीप के अर्द्धभाग करने वाले दक्षिण
उत्तर लम्बे पर्वत विशेष, वृत्तपर्वत-शब्दापाति आदि गोलाकार पर्वत, कुण्डल-
जम्बुद्वीप से इग्यारहवें कुण्डलनामक द्वीप में कुण्डलाकार के पर्वत, रुचकवर-तेरहवें
रुचक द्वीप के भीतर मण्डलाकार रुचकवर पर्वत, मानुषोत्तर-मनुष्यक्षेत्र
की सीमा बनाने वाले मानुषोत्तर पर्वत, कालोदधिसमुद्र, लवण समुद्र, सलिला-गंगा
आदि महानदियों हृदपति-पद्महृद आदि महाहृद, तथा रतिकर पर्वत-आठवें नन्दीश्वर
नामक द्वीप के कोण में रहे हुए चार ऋज्वरी के संस्थान के पर्वत, अञ्जनक पर्वत
नन्दीश्वर के चक्रवाल में रहे हुए कृष्णवर्ण के पर्वत विशेष, दधिमुख-अंजनक पर्वतों
के पासकी मोलह पुष्करिणी में रहे हुए १६ पर्वत, अवपात पर्वत-जिनपर वैमानिक

देव आकर मनुष्यघ्न के लिए उतरते हैं, पत्तात पर्वत-भवनपति देव जिन स्वामों से ऊपर उठकर मनुष्यघ्न में आते हैं, वैसे ठिगिच्छ कूट आदि, काञ्चनक-उपरकुठ और देवकुठ घ्न में रहे हुए सुवर्णमय पर्वत, चित्र विचित्र-निपचपर्वत के पासकी शीतोद्वा नदी के किनारे चित्रकूट व विचित्रकूट नामके पर्वत, यमकवर-नीलवान् वर्षघर के समीप की शीतानदीके तटपर रहे हुए २ यमकवर पर्वत, शिलर समुद्रमें रहे हुए गास्तूप आदि पर्वत और कूट-नन्दन वनके कूट आदि इनपर रहने वाले 'ऐसे देव भी प्रति नहीं पावे, फिर अन्य प्राणियों की तो बात ही क्या' ? (बन्सार अकम्भ भूमिस्तु सुचिन्मध भागदेसास्तु कम्भभूमिस्तु) पक्षकार-विजय के विमता करने वाले चित्रकूट आदि, तथा अकर्मभूमि-ईमवत आदि भोग्य भूमि के क्षेत्रों में तथा अक्षी तरह विभागयुक्त देशवासी-कर्मभूमि-भरत आदि पन्द्रह भूमियों में (जेडविपनरा) और जो भी मनुष्य देवों की तरह रहते हैं 'उत्त मनुष्यों का विशेष प्रकार-(बाबर त बकवही, वासुदेवा, बकवेवा) चारों ओर अन्त वाले पद खरड भूमि के स्वामी अकवही, बकवेव, वासुदेव (मंडलीया) माण्डलिक-मण्डलके अधिपति-महाराजा (इसरदा, उलबरा, सेखावती, इम्मा, सेट्टी, रठिया) ईश्वर-युवराज आदि पा भोगिक, उकवर-शिरपर सुवर्णपट्ट को बांधे हुए राजस्थानीय, सेनापति-सैन्य के नायक, इम्प-हाथी को डक देने दितने विराट् पन राशि के स्वामी, अँठी-भीषेवता से अर्द्धकृत चिह्न को मस्तक पर धारण करने वाले अँठी-सेठ-राष्ट्रिक-राष्ट्र-देशकी चिन्ता करने वाले अर्थात् राष्ट्र की उन्नति और अवनति के विचार में निपुण अधिकारी विशेष (पुरोहिता, कुमारा, बंड्यायगा, मांडविका, सत्वरदाश, कोहुविना, अमबा) पुरोहित शांतिकर्म आदि करने वाले, कुमार-युवराज, खड नायक-कोतवाल आदि, मांडविक-छोटे राजा, सार्धयाह-बहुत से लोगों को माय होकर चलने वाले व्यापारी, कौटुम्बिक-ग्राम के मुख्य होकर जो सेवक हैं, अर्थात् राज्यामित मुख्य पुरुष, अमात्य-मन्त्र (ए ए अन्ने य एवमाही) ये पूर्व कहे हुए विशिष्टलोक और इस प्रकार के दूसरे-इत्यादि मनुष्य (परिमाई संभिर्यति) परि माह का सम्बन्ध करते हैं (अर्थात् असरण्य दुरंत अपुवमणिर्यं असास्यं) जो परि माह अतन्त-परिखाम रहित, अराख-दुखसे बचाने में असमर्थ, दुरन्त-दुःखमय अन्तवाजा, अमूव-निश्चयता रहित अनित्य-अस्थिर और प्रतिक्षय विमारा होने में अराखत है (पत्रकम्भनेम्भ अयकिरियम्भं, विद्यास (विमाल) मूर्ज, बह बंध परिच्छेस

बहुलं, अणंत सकिलेसकारणं) पाप कर्म का मूल, ज्ञानियों के लिये त्यागने योग्य, विशाल बहुत गम्भीर या विनाश के मूल वाला, परजीवों के मारने बाधने और क्लेश देने की प्रधानता वाला याने परिग्रह के कारण परजीवों को अधिक मात्रा में बाध बन्धन और परित्याग होता है, चित्त के अपरिमित क्लेश का कारण है (ते तं धण-कण्ण-रयण-निचयं) इस प्रकार के उस धन-सुवर्ण तथा रत्न के समूह को वे देव आदि (पिंडिता चैव लोभघत्या) सञ्चय करते हुए ही लोभ से ग्रसे गये (सब्बदुक्ख संनिलयणं ससारं अतिवयंति) सब प्रकार के दु खों के धररूप ससार में जा पड़ते हैं ।

भावार्थ-पूर्वाक्त परिग्रह को लोभ के वशीभूत भवनपति आदि देव रवीकार करते हैं । देवों के विविध प्रकार और परिग्रह में आने वाले पदार्थों का वर्णन सहज है । अकर्मभूमि और कर्मभूमि के निवासी मानवों में कर्मभूमि के मनुष्य ही अधिक परिग्रह वाले हैं । इसलिए उनका विशेष वर्णन करते हैं-चक्रवर्त्ती आदि परिग्रह वा सञ्चय करते हैं । यह परिग्रह अनन्त अशरण यावत् अनन्त दु खों का कारण है । लोभ के अधीन वे देव आदि इसका सञ्चय करते हुए ही दु खमय ससार में गिर जाते हैं । सू० ३।१८ ।

परिग्रह का सञ्चय जिस प्रकार किया जाता है उसका वर्णन करते हैं—

मूल—“परिग्गहस्स य अट्ठाए सिप्पसयं सिवखए बहुजणो, कलाओ य वायत्तरिं सुनिगुणाओ लेहाइयाओ सउण रुयावसाणाओ, चउसट्ठिं च महिलागुणे रतिजणणे, सिप्पसेवं, असि मसि क्किसि वाणिज्जं, ववहारं अत्थ-सत्थ-इसत्थं-च्छरुगयं, विविहाओ य जोग जुंजणाओ, अन्नेसु एवमादिएसु बहूसु कारणसरसु जावज्जीरं नडिज्जए, संचियंति मंदबुद्धी परिग्गहस्सेव य अट्ठाए करंति पाणाण वहकरणं, अलिय नियडि साइ सपयगो, परदव्व अभिज्जा, सपरिदारं अभिगमणा सेवणाए आयास विसरणं कलह मंडण वेराणिय, अवमाणण विमाणणाओ, इच्छा महिच्छ-प्पिवास सतततिसिया, तएहगेहिलोभवत्था, अत्ताणा, अण्णिग्गहिया करंति कोहमाण मायालोभे, अक्किचण्णिज्जे परिग्गहे, चैव होंति नियमा सल्ला, दंडा, य गारवा य, कसाया, सन्ना य, कामगुण, अएहगा य, इंदियल्लेसा-

ओ, मयश्च मपञ्जागा, सच्चिदाच्चित्तमीमगाहं दध्वाइ अर्थात्काइ इच्छति
परिषेत्तु, सदेवमशुयासुरमिलोए लोमपरिग्गहो जिण्वरहि मच्चिओ,
नत्थिणरिसा पासो पठिबधो अत्थि सच्च्वजीवार्यं सच्च्वसोए । सू० ४।१६॥

ध्याया—“परिग्रहस्य आर्याय शिल्परातं शिष्यतेषुज्जन, कलाश्च द्वासास्ती मुनि
पुण्या लेखादिका शकुनकटायनात्ता (गणित प्रधाना) चतुःपटीश्च महिष्वागुषान्
रत्तिञ्जनकान्, शिल्पसेयाम्, अस्मिन्पिकृपिवाणिस्यं, व्यवहारमर्भशास्त्रेपुरातत्सह,
प्रगत, विविधाश्च योगभोक्षणा अन्वेष्येषमादिषु बहुषु कारणरत्तेषु यावज्जीवमं
नदयन्ति (त्वन्व) सञ्चिन्वन्ति मन्वुदस्य परिग्रहस्यैवार्थायङ्कुर्वन्ति प्राणिनां वप
करणम्, अक्षीक-निकृति-साति सम्प्रयोगे परब्रह्माऽभिज्ञा सपरद्वाराभिगमनाऽऽ-
संपनमा आयासविसूरया कसह भायजनबैराखिच, व्यवमान्न विमानना इच्छा
महेच्छा पिपासा सततवृषिता, वृष्यागृद्विज्ञामप्रस्ता, अत्राखा, अनिगृहीता कुर्व
न्ति क्रोधमान मायालोमान् अकीर्तनीयाम्, परिग्रहे चैव भवन्ति निधमा (१),
शल्यानि, वृहडाश्च, गौरवानिच, कपाया, सञ्जाश्च, कामगुखा आसबाश्च, इन्द्रियक्षेमा,
शयनसम्प्रयोगा, सचिताऽचित्त-मिन्नकावीनि द्रव्याणि, अनन्तकानीच्छन्ति परिग्र-
हीतुं सदेवमनुष्याऽसुरेलोके लोमपरिग्रहो जिनवरैर्मणितो, नाऽरतीहरा पारा प्रतिबन्धो
ऽस्ति सर्वजीवानां सर्वलोके ॥ सू० ४।१६ ॥

अन्व०—“ (परिग्रहस्य च अट्टाप) और परिग्रह के लिये (बहुजण्येसिप्य सर्व
मिच्छन्) बहुत स लोग सैकड़ों शिल्प सीखते हैं (कलाभो य वावत्तरि मुनि
पुण्याओ लेहाइबाओ सचखठयावसायाओ गणियण्यहायाओ) और अतिराव
निपुण वहत्तर कलायें जिनमे ललनकला आदि-प्रारम्भिक हैं, शकुनदत्त-पक्षियों के
शास्त्रज्ञान-जडा अन्तिम और गणित कला जहां प्रधान है ऐसी (चतुसपट्टिच महिष्वा
गुण्ये रतिञ्जण्ये) और की के पौंसठ, गुण्य या कलायें ओ रति-अनुरत्ता पैदा करने
वाले हैं, उन्हें भीखत हैं (सिण्यसव) शिल्प पूर्णक सवा (अस्मि अस्मि किसि वाणिस्यं,
ववहारं, अत्थ सत्थ ईसत्थ च्चइत्तपगवं) अस्मि-खड्गादिराभाय्यास, मपी-क्षिपि वि
ज्ञान कृपि-सेती का कर्म और वाणिस्य तथा व्यवहार को, अर्भशास्त्र-राजनीति
आदि इषु-अद्य-पुर्वे इ शास्त्र छुरिका आदि मुक्ति में ग्रहण करने का उपाय (विवि-
हाओ य साग जु मयाओ) और अनेक प्रकार के बरीकरस्य आदि धोग रचना को
परिग्रह के लिय सौक सीखत हैं, (अन्वन्तु एवमादिण्णु बहुषु कारणसण्णु आबज्जीव

नडिज्जाए) इस प्रकार के अन्य इत्यादि बहुत से-कारणशत-परिग्रह के सैकड़ोंहेतु-
 अर्थों-में प्रवृत्ति करते हुए जीवन पर्यन्त लोक नृत्य करते हैं (मचिण्ति मन्दुद्धी)
 मन्दुद्धि लोक परिग्रह का सञ्चय करते हैं (परिग्रहस्तेव य अट्टाए) और परिग्रह
 के मतलब से ही (पाणाए वहकरण करंति) जीवों की हिंसा के कार्य करते हैं
 (अलिय नियडि साइसंपओगे परद्व्य अभिज्जा) भूठ, आदरपूर्वक दूसरे को
 ठगना, और वस्तु में मिलावट करके उसको उत्कृष्ट घताना, तथा परद्व्य से लोभ
 करना (सपरदार अभिगमणा सेवणाए आयासविसूरणं) स्वदार गमन में शरीर
 और मनके खेद को तथा परस्त्री के मेघन में मानसिक पीडा को प्राप्त करते हैं
 (कलह भडण वेराणि य अवमाणणभिमणणाओ) वचन से कलह, शरीर से
 भाडन-लडाई तथा वैर और अपमान-विनय भद्र एव कर्त्थनाओं को (इच्छा
 महिच्छप्पिवास सतत तिसिया तएहगेहि लोभघत्था) सामान्य इच्छा और चक्र-
 वर्ती के समान बडी इच्छा रूप पिपासा-प्यास से निरन्तर तृषा वाले, तथा तृष्णा
 गृद्धि अप्राप्त अर्थ की अभिलाषा और लोभ से प्रसे- गये (अत्ताणा, अणिग्गहिया
 कंति कोहमाण माया लोभे) त्राण रहित और इन्द्रिय आदिपर निग्रह नहीं रखने
 वाले क्रोध मान माया एव लोभरूप दुर्भाव को करते हैं (अकित्तिण्ज्जे) जो दुर्भाव
 निन्दा के कारण हैं (परिग्रहे चेव नियमा सज्जा दंडा य गारवा य) और परिग्रह में
 भी (ही) निश्चय से शल्य मायाशल्य आदि और दृढ-मनोदृढ आदि और गार्व-
 ऋद्धि,रस तथा सातारूप तीन गारव और (कसाया सत्ता य काम गुण अएहगाय
 इन्द्रियलेमाओ होंति) क्रोध आदि चार कपाय, आहारसज्ञा आदि चार मत्तार्थों
 और शब्दरूप आदि पांच काम गुण, तथा पांच आत्मव, श्रोत्र आदि पांच असृयत
 इन्द्रियों, कृष्ण आदि अशुभ लेशयार्थों होते हैं (सयण सपओगा) स्वजनो के सयोग
 तथा (सचित्ताचित्तमीसगाइ अणतकाइ दव्वाइ परिघेतुं इच्छति) मचित्त अचित्त
 और मिश्र ऐसे अनन्त द्रव्यों को ग्रहण करना चाहते हैं (सदेव मणुया सुसमितोण)
 देव-त्रैमानिक देवता मनुष्य। तथा असुर सहित लोक-ससार में (लोभ परिग्रहो
 जिणवरेहि भणिओ) लोभ से परिग्रह या लोभरूप परिग्रह तीर्थङ्करों ने कहा है
 (नत्थि एरिसो पासो पडिवधो) ऐसा पाश अन्य नहीं है (पडिवधो अत्थि सब्वजी
 वाणं सब्वलोण) सब जीवों के लिये यह परिग्रह देवमनुष्य आदि सब लोक में
 मोहबन्ध का प्रमुख स्थान है । ४ । १६ ॥

मातार्थ—“परिग्रह के लिए ही बहुत से आदमी सैबकों प्रकार की शिल्पशिक्षा ग्रहण करते हैं तथा ७२ बहतर प्रकार की कलाएँ जिनमें सुन्दर लेखन आदि मिश्रित हैं, पक्षियों का शब्द ज्ञान और गणित कला एवं चौंसठ प्रकार के महिलागुण जो अनुरागात्पाक हैं उनको सीखते हैं। तटपार, रुखन, खेती, व्यापार, लोकव्यवहार अर्धशास्त्र याने राबनीति, धनुर्वेद, वशीकरण आदि बाग रचना को मां लोग परिग्रह के लिए ही सीखते तथा यावच्छीघ्रन ंसीमें रमते रहते हैं।

परिग्रह के लिए ही जीबहिसा, मूठ, परवचन, सन्निभय, परद्रव्य में काम आदि पृथिव्य कार्यों में लक्ष्मि रहते हैं। परिग्रही को एवं और परहार में भी शान्ति नहीं मिलती। वह वचन से बहद, शरीर से बहद, तथा निर्वचन और पत्त मान की इच्छा को बनाये रहता है। साधारण धनी सखर बक्रवटीपम की इच्छा से वह स्वतः सन्तुष्ट रहता है तथा अप्राप्त अर्थ की अभिलाषा उसके दिल में अगी रहती है। इस तरह कबशेन्द्रिय बनकर वह क्रोध, मान, माया, एवं कामरूप दुर्मात्मनाओं का शिकार बना रहता है जो निर्वचनीय है। परिग्रह में ही शक्त्य और मनोव्यय आदि तीन वृद्ध, अग्नि, रस तथा सुखानुभवरूप गात्र (गौरव) काय आदि चार कपाय, आहार आदि चार रक्षण और राष्ट्ररूप आदि पांच काम गुण तथा पांच आसव, भोज आदि पांच असयत इन्द्रियां तथा कृष्ण आदि कष्टम नैरयाप होती हैं। परिग्रही, सचित्त, अचित्त और मिश्र रूप से अनन्त इन्द्रियों को सदा ग्रहण करने की इच्छा रखते हैं। सब जीवों के लिए मनुष्य तथा कसुर लोक में दोम परिग्रह के समान दूसरा कोई बंधन नहीं है यही मोह बन्ध का प्रमुख धान है—वेसा जिनवरों ने कहा है। ४। १६ ॥

मूल—“परलोगमि य नद्धा, समंपदिद्धा, महया मोह मोहियमती, तिमि संघकारे तस्यार सुद्धमषादरेत्तु, पज्जत्तमपज्जत्तग एवं जाव परियद्ध ति, दीहमद्वं जीवा लोमवससनिदिद्धा। एसोसो परिग्गाहस्स फलदिबाओ इहलो- इओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो, महप्पमओ, धुरयप्पगाओ, ठाल्लो क्कसो, असाओ वाससइस्सेहि सुबह, नयमपेत्तिआ अत्थिहु मोक्खात्ति, एवं माहंसु नायइत्थनदथो महप्पाजिखोउ धीरवर नाम धेज्जो, क्कहेसी प परिग्गाहस्स फल विपारगं। णमोमो परिग्गाहो पचमोउ नियमा नात्थामयि

कण्ण रयणमहरिह एवं जाव इमस्स भोक्खवर मोत्तिमग्गस्स फलिहभूयो ।
चरिमं अधम्मदारं समत्त । सू० ५।२०॥

झाया—“परलोके च नष्टारत्तम. प्रविष्टा, महामोह मोहितमत्यरत्तमिस्रान्धकारे
त्रसस्थावर सूक्ष्मवादरेषु पर्याप्तपर्याप्तकेषु, एवंयावत्परिबर्तन्ते [पर्थदन्ति] दीर्घ-
मध्वान जीना लोभवशसंनिविष्टा । एषस परिग्रहस्यफलविपाक ऐहिलौकिकः
पारलौकिकोऽल्पसुखो बहुदुःखो महाभयो बहुरज प्रगाढो, दारुण कर्कशोऽसातो
वर्षसहस्रैर्मुच्यते नाऽवेदप्रित्वाऽरित हि मांश्रति, एवमाख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो
महात्मा जिनस्तु वीरवर नामधेयः, कथप्रिष्यतिच परिग्रहस्य फलविपाकम् । एषस-परि-
ग्रह पञ्चमस्तु निश्चयेन (मात् । नानामणि कनकरत्न महार्ह, एवयावदरय मोक्षवर
भौक्तिक मार्गस्य परिघभूतं चरममधमद्वार समाप्तम् ॥ सू० ५।२० ॥

अन्व—“(परलोगमि य नट्टात्तमपविट्ठा) परलोक और इसलोक में सन्मार्ग से च्युत
होने के कारण नष्ट तथा अज्ञानरूप अन्धकार में निमग्न हैं (महयामोह मोहियमती)
अतिशय मोह से मोहित मतिवाते जीव (तिमिसंधकारे तसथावर सुक्ष्मवादरेषु
पञ्चत्तमपञ्चत्तग एव जाव रात्रि की तरह अज्ञानरूप अन्धकार में त्रस, रथावर,
सूक्ष्म और वादर स्थानों में पर्याप्त तथा अपर्याप्त रूप से इस प्रकार यावत् लोभवस
संनिविष्टा जीवा दीहमद्ध परियट्टति, लोभ के कारण परिग्रह में लगे हुए जीव दीर्घ-
लम्बे मार्ग वाते ससार में परिभ्रमण करते हैं (ऐसोसो परिग्गहस्स फलविवागो)
यह वह परिग्रह का फलस्वरूप विपाक (इहलोइओ, परलोइओ, अप्पुरहो, बहुदुःखो,
महद्भओ, बहुरयप्पग ढो, दारुणो, कर्कसो) इसलोक सम्बन्धी, तथा परलोक सम्बन्धी
अल्पसुख और बहुत दुःख वाला, महाभय को उत्पन्न करने वाला, वर्मरजधी
अधिकृता से अत्यन्त गाढ, दारुण और कर्कश—कठोर है (असाओ वाससहस्सेहि
मुच्चइ दुःखरूप वह परिणाम हजारो वर्षों से छूटता है (न अवेत्तिता-अत्थिहुमो-
क्खोत्ति) बिना भोगे उस कटु फल से मोक्ष नहीं होता है (एवमाहंसु नायकुल
नंदणो महापा जिणोउ वीरवर नाम धेज्जो) इस प्रकार ज्ञात कुल नन्दन महात्मा
महावीर नाम के तीर्थङ्कर ने कहा है (कहेसी य परिग्गहस्सफल विवाग) और परि
ग्रह के फलरूप विपाक को कहेगा (ऐसोसो परिग्गहो पचमो उ नियमा) वह [वैसा]
यह परिग्रह पाचवा निश्चयसे अधर्मद्वार है (नाणा मणि कण्ण रयण महरिह एवं
जाव इमस्स भोक्खवर मोत्तिमग्गस्स फलिह भूयो) अनेक प्रकार के मणि सुवर्ण रत्न

आदि मूल्यवान् पार्थिवसम्पत्ति और इम प्रकार जगत् स्थान्तर अन्य सम्पत्ति रूप परिमह इस निर्लोभितारूप मोक्ष क प्रधान मार्ग का आगल क जैसा अवराध करने वाला है (अरिम अभर्मद्वार समत) (अन्तिम अधमद्वार पूर्ण हुआ ॥ सू० ११२० ॥

भावार्थ—परिमह के कारण लोक इस ससार में वैर विरोध आदि से और परलोक में दुर्गति—गमन से नष्ट होते हैं । मोक्ष से मुक्त मति वाले प्राणी त्रसत्यावर आदि पर्यायों को अनुभव करते हुए यावत् बिर काक तक संसार में परिभ्रमण करते हैं । परिमह के इम फल विपाक को प्रभु महावीर ने कहा है आदि । यह परिमह नियम से पांचवां अधमद्वार है यावत् मोक्षमार्ग का विरोधी है । इस प्रकार पांचवां अधर्मद्वार पूर्ण हुआ ॥ सू० ११२० ॥

हिंसा आदि पांचो अधमद्वार का निम्न गाथा से निगमन करत हैं—
मू०—एणहि पचहि असवरोहि, रयमादिशित्तु अणुसमयं ।

चउच्चिह गति (इ) परतं, अणुपरिपट्ट ति संसारं ॥ १ ॥

छाया—एतै पञ्चभिरसवरे,—रज आशित्वाज्जुसमयम् ।

चतुर्विभगतिपर्यन्त,—मनुपरिवर्तन्ते संसारम् ॥ १ ॥

मू०—सम्भगई पक्खदि, काहेति अर्थात् अकपपुपया ।

जे य ख सुयंति धम्मं, मोऊस्य य जे पमायंति ॥ ॥

छाया—सर्वांगतिप्रस्कन्दात्, करिष्यन्त्यनन्तानहृतपुरया ।

जे च न श्चबन्ति धम, भुत्वा च वे' प्रमायन्ति ॥ २ ॥

मू०—“अणुसिद्ध पि बहुविहं, मिच्छादिहीखरा [य जेखरा] 'अणुदीया ।

बदनिकाइयकम्मा, सुखे (य) ति धम्मं न य करेति ॥ ३ ॥

छाया—अनुशिश्रमपि बहुविधं, मिष्यादृष्टयोनरा अनुदिका ।

बदनिकापिसकम्माय श्चबन्ति धमं न च ह्वयन्ति ॥ ३ ॥

मू०—किं सका काठ जे, खं जेच्छह ओसई सुहा पाठ ।

जिखवयखं गुणमधु (इ) ई, विरेपखं सम्भदुस्सार्थं ॥ ४ ॥

छाया—किं शक्यं कटु वे, धन्नेच्छवौषधं सुहा पाठम् ।

जिन वपनं गुणमधुदं, विरेपनं सर्बदुःखानाम् ॥ ४ ॥

मू०-पंचेव य उज्जिभुञ्जं, पंचेव य रक्खिञ्जण भावेण ।

कम्मरय विप्पमुक्का, सिद्धिवर मणुत्तरं जंति (तिवेमि) ॥ ५ ॥

झाया-पञ्चैव चोज्जित्वा, पञ्चैव च रक्षित्वा भावेन ।

कर्म्मरजो विप्रमुक्ता. सिद्धिवर मनुत्तरं यान्ति ॥ ५ ॥ इति ब्रवीमि ॥

* इति पंचास्रवद्वारा समप्ता *

अन्वयार्थ-“(एएहिं पंचहिं असवरेहिं) पूर्वोक्त इन पांच असंवर-आस्रवों से (अणुसमयं) प्रति समय (रयमादिणत्तु) जीवस्वरूप को रंगने के कारण ज्ञाना-धरण आदि कर्म्मरज का सञ्चय करके (चउत्विहगतिपेरंतं संसारं) चार प्रकार की गति रूप अन्त वाले संसार मे (अणुपरियट्ठति) पर्यटन करते हैं । १ ।

(अकयपुण्णाजे) पुण्य से हीन जो प्राणी है 'वे' (अणतए) अनन्त (सव्वगई) पक्खंदे) देव आदि सब गतियों के अनन्त गमनों को (काहेति) करेंगे, कौन ? (जे य ण सुणति धम्मं) जो लोग धर्मको नहीं सुनते और (जे य) जोभी (सोऊण) सुनकर (पमायति) आचरण में प्रमाद करते हैं ॥ २ ॥

(भिच्छादिट्ठीअबुद्धीयानरा) मिथ्या दृष्टिवाले अज्ञानी नर (बद्धनिकाइयकम्भा) आत्मप्रदेश में निकाचित कर्मों को बाधने वाले (अणुसिट्ठं पि बहुविह) गुरुजनो से उपदिष्ट बहुत प्रकार के (धम्म) धर्म को (सुणंति न य करंति) सुनते हैं परन्तु उसका आचरण नहीं करते हैं ॥ ३ ॥

(मुहा) निस्स्वार्थबुद्धि से दिये गये (जिण्णययणं ओसहं) जिनबचन रूप औषध को (ज णेच्छह पाउं) जिसलिये तुम पीना नहीं चाहते हो इसलिये (गुणमहुर) मूलोत्तर गुण से मधुर तथा (सव्वदुक्खाण विरेयणं) सब दु खों का विरेचन यह जिनबचन रूप औषध (किं सक्का काउं जे) क्या कर सकता है ? ॥४॥

(पचेवयउज्जिभुञ्जं) हिंसा आदि पाच आस्रवों को छोड़कर और (पचेवभावेण रक्खिञ्जण) अहिंसा आदि पाचो स्रवों का भाव से पालन करके (कम्मरय विप्प-

मुक्ता) कर्मरज से सर्वथा मुक्त हुए जीव (सिद्धिपरमणुत्तरंजति) सम्पूर्ण कर्मों के दण्ड से मिश्रितने योग्य उत्तम और सर्वश्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥ सर्पया कर्मों से मुक्त हुए जीव उत्तम सिद्धि गति को पाते हैं ।

भाषा—“इन पाँच भाषाओं का सार इसप्रकार है—इन वर्णितरूप वाले पाँच आत्मों में प्रतिमग्न कर्म परमाणुओं का सञ्चय करके जाव संसार में पर्यटन करते हैं । जो पुण्यहीनप्राणी धर्म की नहीं सुनते, अथवा सुनकर धर्ममें प्रमाद करते हैं आचरण में नहीं लाते, व देव आदि गतिधर्मों में अनन्त धार बन्धन ग्रहण करते हैं । मिश्रित आत्मीयता प्राणत गाव अशुभ कर्म के उदय से गुठ के उपदेश किये गये बहुत प्रकार के धर्म का भ्रमण करके भी आचरण में नहीं लाते हैं ॥ ३ ॥ निस्पृह भाव से दिये गये अन्न बचन रूप औषध को जो तुम पीना भी नहीं चाहते, तो तब दुःखों का नाश करने वाला और गुणा से भण्डर यह औषध क्या कर सकता है ? दिसा आदि पाँच आत्मों का त्याग कर और अहिंसा सत्य आदि संशयो का पालन करके सर्वथा कर्मों से निमुक्त हुए जीव उत्तम सिद्धि गति को पाते हैं ॥ १-५ ॥

❁ इति अधर्मद्वार सम्पूर्णं हुण ❁



श्री प्रञ्जन्व्याकरणसूत्रस्य

परिशिष्टम्

विशिष्टपदं द्विष्यन्तानि

* उत्तर खण्ड *

ॐ प्रथमं संवर द्वारम् ॐ

सम्बन्ध-“पूर्व खण्ड मे कर्मबन्ध के कारण भूत हिंसा, भूठ आदि पांच आस्रवों का वर्णन किया। यहाँ उनके विपरीत अहिंसा, सत्य आदि पांच संवर जो कर्म प्रवाह को रोकने के कारण हैं, उनका वर्णन किया जायगा।

सवराध्ययन का उपक्रम करते हुए सर्व प्रथम सूत्रकार संग्रहणी गाथाओं से प्रतिज्ञा प्रकट करते हैं, जो इस प्रकार है—

मू०—“जंबू !—एत्तो संवरदाराइं—पंच वोच्छामि आणुपुन्वीए ।

जह भणियाणि भगवया, सव्वदुहविमोक्खण्णद्धाए ॥ १ ॥

पढमं होइ अहिंसा, वितियं सच्चवयणंतिपन्नत्तं ।

दत्तमणुनाय संवरो य, वंभचेरमपरिग्गहत्तं च ॥ २ ॥

तत्थ पढमं अहिंसा, तसथावर सव्वभूयखेमकरी ।

तीसे सभावणाओ (ए) किंचीवोच्छंगुणुद्देशं ॥ ३ ॥

छाया—‘हे जम्बू । इत संवरद्वाराणि पञ्चवक्ष्यामि आणुपुन्व्या ।

यथा भणितानि भगवता सर्वदु ख विमोक्षणार्थाय ॥ १ ॥

प्रथम भवत्यहिंसा, द्वितीय सत्यवचनमितिप्रज्ञप्तम् ।

दत्त मनुज्ञात सवरश्च, ब्रह्मचर्यमपरिग्रहत्वञ्च ॥ २ ॥

तत्र प्रथमाऽहिंसा, त्रसस्थावर सर्वभूत क्षेमकरी ।

तस्या सभावनाया किञ्चिद्वक्ष्यामि गुणोद्देश्यम् ॥ ३ ॥

१ प्रथम संवराध्ययन का प्रतिज्ञासूत्र-

अन्वयात्—“(जंबू) हे जंबू (एत्तो) आस्रवद्वार के बाद भव वहाँ से (थाणु पुन्त्रीण पंच संवरद्वाराई घोच्छमि) पहल दूमेरे आदि क्रम में पांच संवरद्वारों-अर्थात् कर्म निरोध के उपायों-को करूंगा (मगवाया जह भणियाणि) मगवान् में जीसे उन संवराध्ययनों को बड़े हैं (सव्वदुह विमोक्खणाट्टाय) सब दुस्खों से छुटकारा पान के लिये, मैं इनको करूंगा, पाँचों के नाम-(पद्म) प्रथम (अहिंसा) अहिंसारूप संवर (होइ) हाता है (वितियु) दूसरा (सचचयणंति) सत्य वचनरूप (वत्तम्मणुभाय संवरो य) और हाता स दिया गया य आज्ञा प्राप्त अशन आदि का प्रहय तीसरा संवर (पभत्तं) कहा गया है (वंमचेरमपरिमहत्तं य) अन्नपर्यं और अपरिग्रह चतुर्थ तथा पञ्चम संवर है।

(तस्य) अहिंसा आदि उन पाँच संवरों में (पद्मं अहिंसा) प्रथम संवर अहिंसा है, जो-(तसयावर सस्य भूय खमकरी) प्रवर्थावररूप सब प्राणियों का कर्म करने वाली है (समावणाओठीसे) पाँच भावनाओं से मुक्त उस अहिंसा के (किंभी गुणुहेम वोच्छं) बुद्ध-अल्पमात्र-गुण वर्जित या गुण भाग को करूंगा।

भाष-“प्रथम गाथा म'-आस्रवों के बाद मगवाय क कथनानुसार सयं दुस्खों के विनाशार्थ मैं संवर द्वारों को करूंगा। इस प्रतिज्ञा वाक्य से आस्रव संवर का सम्बन्ध और संवरों का कथनरूप अभिप्रेय तथा दुस्खनाशरूप हेतु बताया गया है। जिससे सम्बन्ध, अभिप्रेय और प्रयोजन की स्पष्टता हो जाती है।

दूसरी गाथा में-अहिंसा १ सत्य २ व्रतानुष्ठान ३ ब्रह्मचर्य ४ और अपरिग्रह ५ ये पाँच संवरों का नाम रूपसे परिचय दिया गया है।

तीसरी गाथा में-कहा गया है कि ब्रह्म स्वभावरूप जीवमात्र का ज्ञेयविधान करने वाली अहिंसा प्रथम संवर है। भावनामुक्त उस अहिंसा के कुछ गुण भाग का कथन करूंगा।

अध्ययन के प्रारम्भ में शास्त्रकार पाँचों संवरों के प्रकीर्तन पूर्वक अहिंसा का उच्यते कहते हैं-

मूल-“वाणि उ इमाणि सुव्वय ! महन्वयाह, 'लोकहित्य सम्बयाह, सुपसागर वेसियाह, तव संजम महत्त्वयाह, सीलगुणवरव्वयाह, सचज्जम-

त्रय्याइं नरगतिरिय मणुय देवगति—विवज्जकाइं, सव्वजिणसासणगाइं, कम्मरयविदारगाइं, भवसयविणासणकाइं, दुहसय विमोयणकाइं, सुहसय पवत्तणकाइं, कापुरिस दुरुत्तराइं, सप्पुरिस निसेवियाइं, निव्वाण गमण मग्ग सग्गपणायगाइं, संवरदाराइं पंच कहियाणि उ भगवया ।

छाया—“तानित्विमानि सुव्रत । महाव्रतानि, लोकहितसद्व्रतानि, श्रुतसागर देशितानि, तप सयममहाव्रतानि, शीलगुणवरव्रतानि, नारकतिर्यङ् मनुजदेवगति विवर्जकानि, सर्वजिन शासनकानि, कर्मरजो विदारकाणि, भवशत विनाशकानि, दुःखशतविमोचकानि, सुखशतप्रवर्तकानि, कापुरूप दुरुत्तरकाणि, सत्पुरूप निपेवितानि, निर्वाणगमनमार्गस्वर्गप्रणायकानि, संवरद्वाराणि पञ्च कथितानि तु भगवत्ता ।”

अन्व०—“(सुव्रय ।) हे सुव्रतमुने । (ताणि उ इमाणि महव्वयाणि) पूर्व कहे गये वे अहिंसा आदि, ये महाव्रत—हैं (लोकहित सव्वयाइ सुयसागर देसियाइ) संसार में धैर्य देने वाले या चित्त की शान्ति रखने वाले सद्व्रत शास्त्र सागर में दिखाये गये हैं, (तव सज्जम महव्वयाइ) अनशन आदि महातप और सयम जिनमें नष्ट नहीं होते अर्थात् तप व सयम के रक्षण करने वाले (शीलगुण वरव्वयाइं) शील और उत्तमगुणों के समूह वाले (सव्वज्जवव्वयाइ) सत्य एवं सरलता प्रधान व्रत (नरग—तिरिय मणुय—देवगति—विवज्जकाइ) नरक, तिर्यङ्च, मनुष्य और देवगतिरूप संसार का विवर्जन—उच्छेद—करने वाले (सव्वजिण सासणगाइ) सब तीर्थङ्करों से कहे गये होने से शास्त्ररूप (कम्मरय—विदारगाइ) कर्मरज के विदारण करने वाले (भवसय विणासणकाइ, दुहसय विमोयणकाइं) सैकड़ों भवों को मिटाने वाले इसीलिये—सैकड़ों दुःखों से छुड़ाने वाले (सुहसय—पवत्तणकाइ) और सैकड़ों सुखों को मिलाने वाले हैं—(कापुरिसदुरुत्तराइ, सप्पुरिसनिसेवियाइ) कायर पुरुषों के द्वारा दुःख से पार करने योग्य और सत्पुरूपों से सेवन किये गये हैं (शिण्वाणगमणमग्ग सग्गपणायगाइ) निर्वाण गमन में मार्ग के समान तथा स्वर्ग में ले जाने वाले (संवरदाराइ पंच कहियाणि उ भगव्वया) ऐसे पांच संवर द्वारों को भगवान ने कहे हैं ।

मूल—“तत्थ पढमं अहिंसा जासा सदेवमणुयासुररसलोगस्स भवति दीवो, ताणं, सरणं, गती पइट्ठा १ निव्वाणं २ निव्वुई ३ समाही ४ सत्ती

५ फिची ६ फती, ७ रती य ८ विरती य ९ सुपग १० तिची ११ दया १२
 यिसुची १३ खती १४ सम्मचाराइया १५ महती १६ बोही १७ पुदी
 १८ धिती १९ समिदी २० रिदी २१ दिदी २२ ठिती २३ पुट्टी २४ नदा
 २५ महा २६ विसुदी २७ लदी २८ विसिद्धिदिही २९ कझाण ३० मंगलं
 ३१ पमोओ ३२ विभूती ३३ रक्खा ३४ सिद्धावासो ३५ अखासवो
 ३६ फेवलीण्ड्याख ३७ सिर्व ३८ समिइ ३९ सील(ल) ४० संजमो ४१ चिय
 सील 'परिचरो ४२ सवरी ४३ य गुत्ती ४४ षवसाओ ४५ उस्सओ
 ४६ जधा ४७ आयवण ४८ जतण ४९ मप्यमावो ५० अस्सासो ५१ वी
 सासो ५२ अमओ ५३ सम्बस्सवि अमाघाओ ५४ ओक्खपविचा ५५
 सुती ५६ पूया ५७ विमल ५८ पमासा ५९ य निम्मलतर ६० चि,
 एवमादीणि निययगुण निम्मियाइ पज्जवनामाणि होति अहिंसाए भगवती
 ए । सूत्रम् १ । २१ ॥

छाया-“तत्र प्रथमं अहिंसा याना सद्य मनुजाऽमुरस्य लोकस्य मयति शीप, प्राण,
 गरण, गति, प्रतिष्ठा-१ निर्वाणम् २ निवृत्ति ३ समाधि ४ शक्तिः ५ कीर्ति ६ कान्ति
 ७, रतिश्च ८ प्रसिद्धि ९ मुठाद्द वृत्ति १० ११, दया १२ यिसुचिः १३ छान्ति
 १४, सम्भक्त्वाऽऽराधा १५, महत्ता १६, वाधि १७, बुद्धि १८ वृत्ति १९, सपुद्धि
 २०, अद्धि २१, वृद्धि २, स्थिति २३, पुष्टि २४, नन्दा २५ भद्रा २६, विगुद्धि
 २७, लक्ष्मि २८, विशिष्ट वृष्टि २९, अण्णायम् ३०, मद्गणम् ३१ प्रमाद ३२, विमूर्ति ३३,
 रक्षा ३४, सिद्धावास ३५, अनाश्रय ३६, कवलिनो म्यातम् ३७, शिष्यम् ३८, समिति
 ३९, शीलम् ४०, मयम ४१ इति च, शीलपरिवृद् ४२, संवर ४३, य गुति ४४, एव
 पमाप ४५, उच्छ्रय ४६ यत्त ४७, आयतनम् ४८, यतना ४९ अममाद ५० आ
 धान ५१, रिधास ५२ अमय ५३ सवरयाप्यमापाठ-अमारि ५४, पाण पवित्रा ५५,
 शुधि ५६ पूता-पूजा ५७, विमवा ५८, प्रभामा ५९ य निमलतरा ६० । इत्येवमादीनि
 नियतगुणनिर्मितानि पयावनामानि भवन्ति-अहिंसाया भगवत्या ॥ सू० १ । २१ ॥

अ २०- प्रथमं गंधर्व का स्वरूप वरुण ई- (मत्पपमं अहिंसा) एत पोप
 गंधर्वो मे अहिंसा प्रथमं स्वर ह (ज्ञा मा) ज्ञा यद् अहिंसा (सर्व-मनुष्य-गुरग्न
 सागम्य दीना तानं भवति) इतना मनुष्य तथा अमुद् गदित साट क सिय गंगार

समुद्र मे डूबते हुए को द्वीप के समान आश्रयदाता या दीपक की तरह मार्ग दर्शक है इसलिये त्राण-विपत्ति से रक्षण करने वाली हाती है, 'फिर यह अहिंसा'-(मरणं गर्हं) शरण-सम्पत्तिदायक या घरके समान रक्षक तथा गति याने कल्याणार्थिओं के आश्रयण करने योग्य है। अब अहिंसा के नाम कहते हैं-(पद्मटा) सब गुण तथा सुख इममे रहते हैं इसलिये इमे 'प्रतिष्ठा' कहते हैं (निन्ध्याण निन्वुर्ड) मोक्ष का हेतु तथा चित्त शान्ति का कारण होने से यह 'निर्वाण' तथा निर्वृति कहाती है, (समाही) समता का कारण होने से 'समाधि' (मत्ती) आत्मबल का कारण होने से यह 'शक्ति' अथवा शान्ति है (क्रिती) सुयश के कारण होने से कीर्ति (कती) कान्ति-कमनीयता का कारण (रती य) और रति-सन्तोष का कारण (विरतीय) और विरति-हिंसा रूप पाप से निवृत्ति वाली (सुग्रगतिती) श्रुताङ्ग-श्रुतज्ञान इमका कारण है, और वृत्ति-आत्मसन्तोष का कारण होने से यह वृत्ति है (द्या) द्या-प्राणिओं की रक्षा (विमुत्ती) विमुक्ति-बन्धमुक्ति का कारण (खती) क्षान्ति-क्रोध निग्रहरूप (सम्मत्ताराहणा) सम्यक्त्वाराधना-सम्यक्त्वधर्म की आराधना करने वाली (महती) महती-सभी धार्मिक अनुष्ठानों का इसमे समावेश होने से यह बृहती है (वोही) सद्धर्म की प्राप्ति अहिंसारूप है, अत अहिंसा को 'वोधि' कहते हैं अथवा सम्यक्त्व का कारण होने से अहिंसा 'वोधि' कहाती है (वुद्धी) बुद्धि-बुद्धि की सफलता का कारण (धिती) धृति-चित्त की स्थिरता से पालने योग्य (समिद्धी रिद्धी) ऋद्धि समृद्धि का कारण होने से अहिंसा भी 'समृद्धि ऋद्धि' नामवाली है (विद्धी) वृद्धि (ठिती) अनादि अनन्त मोक्ष स्थिति का कारण होने से 'स्थिति' (पुद्धी) पुष्टि-पुण्यवृद्धि का कारण, (नंदा) नन्दा-समृद्धि दायक (भदा) भद्रा-कल्याण करने वाली (विसुद्धी) विशुद्धि-आत्मशुद्धि का कारण (लद्धी) लब्धि-विशिष्टलब्धिओं का हेतु (विसिद्धिद्धी) उत्तम दृष्टि रूप होने से विशिष्ट दृष्टि (कल्लाण मगलं) कल्याण और विघ्न विनाशक होने से इसको मङ्गल भी कहते हैं (पमोओ) प्रमोद-हर्षोत्पादक (विभूती) सर्व वैभव का कारण होने से विभूति (रक्खा) रक्षा (सिद्धावासो) सिद्धावास-मोक्षवास-का कारण (अणासवो) अनास्रव-कर्मबन्ध के निरोध का उपाय (केवलीणठाण) केवलियों का स्थान (सिव) उपद्रव रहित होने से शिव (समिई) समिति-सम्यक् प्रवृत्ति (सील) पवित्र आचार रूप होने से शील (सजमोत्ति य) और यत्ना प्रधान होने

स इमं मंत्रं कृत्वा ह्ये, (मील परिघटे) शीत परिघट-परिघट का स्थान (सवरो य) मंत्र और (गुत्ता) गुप्ति-अशुभ योगों का निषेध (पयसाओ) पयसाय-उत्तम प्रकार का निषेध (असओ) उच्छ्वस-भाव की उन्नति (जप्ता) यज्ञ-सङ्ग भाव से पीतराग की आशाराधना के कारण अहिंसा पद कहाती है (आयतण) आयतन-गुणों का मन्दिर, (जयण) यजन-अभयप्रदान अथवा यजन प्राखिरण (अणमाओ) अप्रमाद-प्रमाद का परिहार (अत्सामा) आधास-प्राणियों के लिये आधामनरूप (पीसासा) विश्वास-विधाम का कारण (अमओ सवस्म वि) अभय-प्राणिमात्र के लिये निमय स्थान (अमापात्रा) अमापात-अमाती (पास्य पवित्रा) पास्य पवित्रा-अतिशय पवित्र (मृद) शुद्धि-भावशुद्धिरूप (पूया) पवित्रता का कारण हान से पूना या भाय से दशाराधन का अङ्ग हान से अहिंसा पूजा भी कहाती है (विमल) विमल-अशुभ भावरूप मन्त्र रहित (पमा मा) पमाना-अतिशय हीनिरापी (य निम्नजतर ति) और निम्नजतर-अतिशय निम्न या जीय का निम्न बनान वाली है, (लयमाशीषि निमय गुण निम्बिया) इम प्रकार के निम्न गुणों से या अपने परार्थगुणों से बन हुए (अहिंसा भगवद् ग पत्रव नामानि होति) अहिंसाभगवती के पूर्वोक्त पर्याय नाम ह्यतः हैं ॥ १०० १ ॥ १॥

मात्राण-मूत्रकाण फलतः हि ह्युत्पन्न जंपूमन ? य पूर्वोक्त अहिंसा आदि पंच महाप्रक ममात्र का जूनि इन पाल, भूत मातर मं बह गय और तप मपमाक रसाक हैं । तन्महीअ गुणों की प्रधानता जान, मंत्र एवं मन्त्रनायक और नरक तिरग आदि गतिओ के उत्पन्नक हैं । मन्त्रनायकों से कह गय य कमल के विरक्त याज्ञ हान से गैरुद्धो भरोक दुर्गोका मन्त्रकन पान और गुणक प्रपन्नक हैं । कायर पुत्रों का आप रण करने से बटिन य मन्त्रनाम गभित हैं । यादू इन पाँच मंत्रनामों का भगवान् से कह हैं ।

अहिंसा का स्वरूप-तन पाँचवें अहिंसा प्रथम मंत्र है । या ११ और मन्त्र १०० से पुत्र मन्त्र मन्त्र का ईपक्य हान से स्थल करने वाली है । हात्सर्पियों और कनशास्त्रियों से मन्त्रकन याद है । तन्म गुणगणना नाम इम प्रकार है—
 पतिव्या १ निषाण २ निवृत्ति ३ मयाधि ४ मन्त्रि ५ धार्मि ६ कामि ७ शक्ति ८ और विरमि ९ अन्तर्ह और मन्त्रि १०-११ दया १ निमृत्ति १२ धार्मि १३ मन्त्रक बाग भवा १४ मन्त्रि १५ धार्मि १६ मन्त्रि १७ मन्त्रि १८ धार्मि १९ मन्त्रि २० धार्मि २१ मन्त्रि २२ धार्मि २३ धार्मि २४ मन्त्रि २५ धार्मि २६ धार्मि २७ धार्मि २८ धार्मि २९ धार्मि ३०

मङ्गल ३१ प्रमोद ३२ विभूति ३३ रक्षा ३४ सिद्ध्यावास ३५ अनास्रव ३६ केवलिरथान
 ३७ शिव ३८ समिति ३९ शील ४० संयम ४१ और शील परिगृह ४२ संवर ४३ गुप्ति
 ४४ व्यवसाय ४५ उन्द्धय ४६ यज्ञ ४७ आयतन ४८ यजन या यत्न ४९ अप्रमाद
 ५० आश्राम ५१ विश्वास ५२ अभय ५३ अमाघात-अमारि ५४ चोक्ष पवित्रा ५५
 शुचि ५६ पूता अथवा पूजा ५७ विमल ५८ प्रभासा ५९ और निर्मलतरा ६०
 इत्यादि नियतगुणों से निष्पन्न भगवती अहिंसा के 'पर्यायनाम' होते हैं। मतलब
 यह है कि अहिंसा के भीतर छिपे-जो जो गुण हैं, तावन्मात्र के प्रकाशक ये ६० नाम
 हैं। इनके वाचक नाम तो सहस्रों हो सकते हैं। सूत्र १।२१ ॥

मूल—“एसा सा भगवती अहिंसा, जा सा भीयाण विव सरणं,
 पक्खीणं पिव 'गमणं, तिसियाणं पिव सलिलं, खुहियाणं पिव असणं,
 समुद्धमज्जेव पोतवहणं, चउप्पयाणं व आसमपयं, दुहट्टियाणं च (व) ओ-
 सहिवलं, अडवीमज्जे विसत्यगमणं, एत्तो विसिद्धतरिका अहिंसा जासा
 पुढविजल अगणि मारुय वणस्सइ वीज हरित जलचर थलचर खहचर
 तसथावर सव्वभूय खेमकरी । एसा भगवती अहिंसा जासा अपरिमियणाण
 दंसण धरेहिं, सीलगुण विणय तव संजम नायकेहिं, तित्थंकरेहिं, सव्वजग-
 जीव वच्छलेहिं, तिलांगमहिण्हिं, जिणचदेहिं, सुट्टुदिट्ठा, ओहिजिणेहिं
 विण्णाया, उज्जुमतीहिं विदिट्ठा, विपुलमतीहिं विविदिता, पुव्वधरेहिं
 अधीता, वेउव्वीहिं पतिन्ना, आभिण्णिवोहियणाणीहिं, सुयणाणीहिं, मण-
 पज्जवनाणीहिं, केवलनाणीहिं, आमोसहिपत्तेहिं, खेलोसहिपत्तेहिं, जल्लो-
 सहिपत्तेहिं, विप्पोसहिपत्तेहिं, सव्वोसहिपत्तेहिं, बीजबुद्धीहिं, कुट्टबुद्धीहिं,
 पदाणुसारीहिं, संभिन्नसोतेहिं, सुयधरेहिं, मणवल्लिएहिं, वयवल्लिएहिं, काय
 वल्लिएहिं, नाणवल्लिएहिं, दंसणवल्लिएहिं, चरित्तवल्लिएहिं, खीरासवेहिं, महुआ
 सवेहिं, सप्पियासवेहिं, अक्खीणमहाणसिएहिं, चारणेहिं, विज्जाहरेहिं, चउत्थ-
 भत्तिएहि, एवं जाव छम्मासभत्तिएहिं, उक्खित्तचरएहिं, निक्खित्तचरएहिं,
 अंतरचरएहिं, पंतचरएहिं, लूहचरएहिं, समुदाणचरएहिं, अन्नइलाएहि, मोग-
 चरएहिं, संसड्कप्पिएहिं, तज्जाय संसड्कप्पिएहिं, उवनिहिएहिं, सुद्धेसणि-
 एहिं, संखादत्तिएहिं, दिट्ठलाभिएहिं, अदिट्ठलाभिएहिं, पुट्टलाभिएहिं, आ-

यं विलिखि, पुरिमडिखि, एकासखि, निव्विति, मिअपिंवाइ
 एहि, परिमियपिंवाइ, अताहारहि, पताहारहि, अरसाहारेहि, विरसा-
 हारहि, लूहाहारेहि, तुच्छाहारहि, अतजीविहि, पंतजीविहि, लूहजीविहि,
 तुच्छजीविहि, उवसतजीविहि, पसंतजीविहि, विविचजीविहि, असीर
 मडुमप्पि, अमज्जर्मसासि, ठाशाइ, पडिमंठाइ, ठाणुफडि, धीरासखि,
 खेसज्जि, उठाइ, लंगंठसाई, एगपासगेहि, आया
 वएहि, अप्पावएहि, अखिट्ठवएहि, अकंडूयएहि, घुतकेममंसुलोमनसेहि,
 सन्धगाय पडिकम्मविप्पुवकेहि, समणुचिआ, सुयघर-विदितत्थकाय-
 पुद्धीहि, धीरमतिवुद्धिशो य जेते आसीविस उग्गते य कप्पा, निच्छयववमाय
 पज्जत्तक य मठीपा, शिच्वं सज्ज्जायज्जाय-अणुबद्ध घम्मज्जाया, पंचमह
 ध्वय-अरिचज्जुसा, सभितासभितिसु समित पावा, अड्विहज्जगमच्छला
 निच्चमप्पमचा, एएहि, अन्नहि य जासा अणुपालिया मगवती ।

आया-“एपा सा मगवती अहिंसा, या सा भीतानामिव शरणम्, पश्चिण्यामिव
 गम(ग)नं, वृषितानामिव सलिलम्, ह्युषितानामिवाऽरन्तम्, समुद्रमप्येष पोतवइस्म,
 पतुष्पदानां वाऽऽममपइम्, दुःखस्थितानाञ्चौषधीषकम्, अन्धीमप्य ‘विअस्त’(सर्व)
 गमनम्, इतोविशिष्टतरिकाऽहिंसा, या सा पूषधीषलाऽग्नि मारुत वनस्पति बीज
 हरित जलपदंभलपर लेपर प्रसस्थापर सर्वभूत खेमकरी । एपा मगवती-अहिंसा
 पासाऽपरिमितज्ञान वरानघटै, शीलगुणविनयतप-संयमनारकैस्तीर्यङ्करै, सर्व
 जगज्जीववस्तु, त्रिलोकीमहितैर्मिनचन्द्रै मुन्दुष्टा, अदधितिनेर्बिज्ञाता, अणु
 मतिमिर्विष्टा, विपुत्रमतिमिर्बिचिदिता, पूर्वघटैर्धीतायैर्बुर्बितै प्रतीर्णा, आभिनि
 चोधिच्छान्तिभिः भूतज्ञानिभिः मनःपमयज्ञानिभिः, केवलज्ञानिभिः, आमर्षोपधिप्राप्तै
 सेलौपधिप्राप्तैर्ब्रह्मोपधिप्राप्तैर्बिप्रौपधिप्राप्तै सर्षोपधिप्राप्तै, बोअपुद्धिभिः, सुष्ठ
 पुद्धिभिः, पशानुसारिभिः, सभिन्नलोतोभिः भूतपरैर्मनोवरिकै, बचनवलिक्कै, फाय
 पलिक्कैः-ज्ञानवलिक्कैर्शनवलिक्कैरवरिप्रवलिक्कै चोराअर्थमप्याअचैः, सर्पिराअर्थ
 रधीणमहानसिकैश्चारखैर्बिघापरैअणुर्यमपके रेवं पावत् परमासभक्तकै, रुक्तिपरकै
 निक्षिपरकै रन्तपरकै प्रान्तपरकै रुद्धपरकै, समुद्रानवरकै, रमन्तानै-वोपाऽममा
 जिभिः-मोनपरकै संसृष्टकल्पिकै, म्हात्तसंसृष्टकल्पिकोपनिधिक्कै, हाडैपलिक्कै,
 संघपाएधिकै, एष्टलाभिक्कै, एष्टलाभिक्कै, एष्टलाभिक्कैरापाभिक्कैः, (आपम्बलिक्कै)

पुरिमाद्विकैरेकाशानिकै, निर्विकृतिकैर्भिन्नपिण्डपातिकैः, परिमित पिण्डपातिकैरन्ता-
 ऽऽहारैः, प्रान्ताऽऽहारैरसाऽऽहारैर्विरसाऽऽहारै, रुक्षाऽऽहारैस्तुच्छाऽऽहारैरन्त-
 जीविभिः, प्रान्तजीविभि, रूक्षजीविभिः तुच्छजीविभि रूपशान्त जीविभिः प्रशान्त-
 जीविभिर्विधक्तजीविभिरन्तरीरसधुसर्पिकैरसद्यमांसाशिशिभिः, स्थानायितै (स्थानाभि-
 प्राहकै.) प्रतिमास्थाधिभिः, स्थानोत्कटुकै, घीरासनकैर्नैपद्यिकै, -ईण्डायतिकै, -
 ल्गण्डशाधिभिरैकपाश्विकैरातापनैरप्रावृतै, रनिष्ठीवकैरकण्डूयकै, -धूतकेशश्मश्रुरोम
 नखै, सर्वगात्र प्रतिकर्मधिप्रमुक्तै. समनुचीर्णा, श्रुतधरविदितार्थकायबुद्धिभिर्धीरमति
 बुद्धयश्च ये, ते-आशीर्षिषोप्रतेज.कल्पा निश्चय व्यवसाय पर्याप्तकृतमतिका नित्य
 स्वाध्यायध्यानाऽनुबद्ध धर्मध्याना, पञ्चमहाव्रत चरित्रयुक्ता, समिता समितिषु,
 शमितपापा, षड्विधजगद्वत्सला, नित्यमप्रमत्ता, एतैरन्यैश्च या साऽनुपालिता
 भगवती ।

अन्व०—“ (एसा मा भगवती अहिंसा) यह वह भगवती अहिंसा (जासा)
 जो यह (भीयाण विव सरणं) भीतों-डरे हुए-के लिये रक्षक के समान रक्षा करने
 वालीसी (पक्खीण पिव गमणं) पक्षियों के लिये आकाश-गमन-की तरह हित
 कारी (तिसियाण पिव सलिल) प्यासो के लिये पानी के समान और (खुहियाणं
 पिव असण) भूखों के लिये भोजन की तरह (समुद्धमग्गेव पोतवहणं) समुद्र के
 मध्यमें जहाज की तरह (चउपयाण च आसम पय) चौपाये जीवों के लिये आश्रम
 स्थान-वाडे-की तरह (दुहट्टियाणं च ओसहिवल) और रोगियों के लिये औषधी
 की तरह तथा (अडवीग्गे विसत्यगमण) अटवी में भूले हुए-को जैसे सार्थ-जन-
 समूह का मिलना हितकर होता है (एत्तो विसिट्टतरिका अहिंसा) इन सबसे
 अतिशय विशिष्ट अहिंसा प्राणिओं के लिये हितकारिणी है (जासा) जोकि वह
 (पुढविजल-अगणि-मारुय-वणस्सद्-वीज हरित-जलचर-जथलर-खहचर-तस-
 थावर-सव्वभूय खेमकरी) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और धनस्पतिकायिक तथा
 घीज व हरित एवं जलचर, स्थलचर, खेचर रूप त्रस स्थावर जीवमात्रके लिये क्षेम
 करने वाली (एसा भगवती अहिंसा) यह भगवती अहिंसा है, (जासा) जो कि
 (अपरिमिय नाणदसणधरेहिं) अपरिमित ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले
 (सीलगुण-विणय-तव-सजमनायकेहिं) शील रूप गुण और तप सयम व विनय
 इनके नायक (मव्वजगजीववच्छलेहिं) सभी जगज्जीवोंके वत्सल (तिलोगमहिं-

पहिं) त्रिजोहके पूजित (अिणनदीहिं) अिनसामान्यमेंपन्त्र के समान पस (तिल
 करेहिं) तीर्मङ्गु से (सुदुद्रुविट्टा) अच्यी तरह—केवल ज्ञानरूप प्रत्यहके द्वारा-
 देखी गई है (ओहिअियेहिं विण्णाया), अवधिज्ञानिओं से मम्भगुजानी गई (अजु
 मतीहिंविदिट्टा) अजुमतिओंसे विरोप रूपसे देखीगई (विपुलमतीहिंविचिरिता)
 विरोप प्राहिणीपुद्धि वास मन-पर्ययज्ञानिओंसे अच्य तरह जानी हुई (पुम्भपरहिं
 अपीता) पूर्वयपेसे भूतरूप में पडी गई (वेउसीहिं पतिन्ना) बैकिप्रलम्बिवाप
 मुनिओंसे आशीवन पाली गई है (आभिण्णिवाहियनापीहिं सुयनाखोहिं मणपग्गव-
 नापीहिं) आभिनिबोधिक्-मतिज्ञान वाले, भूतज्ञान वाले और मन-पर्ययज्ञान वाले
 (केवलनापीहिं) केवलज्ञानी (आमोसहिंपत्तेहिं खेत्तोसहिंपत्तेहिं जल्लोसहिंपत्तेहिं)
 जिनका-आमर्ष अङ्ग स्पर्शी औपधिरूप है ऐसे आमर्षीपधि प्राप्त, वे स्लंप्पीपधि
 और जल्लोपधि लम्बिवाल और-जिनके स्लेष्म मेलही औपधि जैसे बन हाते हैं (विप्यो
 सहिं पत्तेहिं सङ्गोसहिंपत्तेहिं) जिनके मलमूत्र औपधिरूप हों वैसी लम्बि बाधेमुनि-
 धिप्रीपधिप्राप्त औरजिनके स्पर्शावादि-सव औपधिका कार्य करते हों वे सर्वोपधिप्राप्त
 करते हैं (बीमसुदीहिं कुट्टसुदीहिं पदानुसारीहिं) बीज की तरह अर्धमात्र को पाकर
 अनक पदार्थों का ज्ञान करने वाली-धीअपुद्धिवाले, कोसपुद्धि-कोठे की तरह एक
 वार जाने हुए विषयों को सवारमृति में रखने वाले, पदानुसारी-एक पद से सैकड़ों
 पदों का अनुसरण करने की मुद्धि वाले, (संभिन्न सोत्तेहिं) संभिन्न वाक्-शरीर के
 सव अवयवों से अवयव करने की लम्बि वाले अथवा प्रत्येक इन्द्रियों से अवयव बनाने
 आदि इन्द्रियविषयों का ज्ञान करने वाले (सुयपरहिं) विरिद्ध भुत को बारण करने
 वाले (मणबलिपहिं वयबलिपहिं कायबलिपहिं) मनोबली-निम्नशक्ति वास, वाग्-
 बली-दृढ प्रतिज्ञावाले और कायबली-परिपहों में स्थिर शरीर वाले, (माणबलिपहिं
 वंसयबलिपहिं अरिपबलिपहिं) ज्ञानबली, वरानबली-स्थिर अद्यावाले, अरिपबली-
 निर्मल अरिज वाले । (सीरासवेहिं महुआसवेहिं सपिआसवेहिं) सीरासव-सीर
 की तरह मधुर बचन वाले, मधु आसव-अिसमें मधु के समान बचन में भाषुर्न हो
 वैसी लम्बिवाले, सर्पिवासव-पुत की तरह-स्निग्ध बचन रूप लम्बि वाले (अक्कीय
 महासिपहिं) अक्कीय महानसिक-अपने लिये लामे मोहन से लाख मनुष्यों को
 क्लिजाने पर भी लज्जतक स्वर्ग में मोहन करस तक्कत को मानन बना रहे, वैसी
 लम्बि वाले (वारयेहिं) आकाश गमन की लम्बि वाले वारण-अंधाचारण और

विद्या चारण ऐसे दो प्रकार के हैं (विज्ञाहरेहिं) विद्याधर-विशिष्ट विद्या वाले (चउत्थभक्तिएहिं एवं जाव छम्मासभक्तिएहिं) चतुर्थ भक्तिक-उपवास व्रत वाले ऐसे षष्ठ अष्टम आदि यावत् पण्मास भक्त-छ मास के तप करने वाले, (उक्खित्त चर-एहिं निक्खित्तचरणहिं) उत्तिष्ठ चरक-पकाने के भाजन से बाहर निकाले गये आहार का ही गवेपण करने वाले, निक्षिप्त चरक-थाली आदि में रक्खे हुए आहार की गवेपणा करने वाले (अंतचरणहिं पंतचरणहिं लूहचरणहिं) अन्तचरक-सेके हुए चने आदि की गवेपणा करने वाले, प्रान्त चरक-खाने से बचे हुए चने आदि तथा चासी पदार्थ की गवेपणा करने वाले, रुक्ष आहार की गवेपणा करने वाले (समु-दाण चरणहिं) सामूहिक भिक्षा के लिये भ्रमण करने वाले (अन्नडलाएहिं) रात्रि के अन्न को खाने वाले (मोणचरणहिं) मौनचर्या वाले (संसट्टकप्पिणहिं तज्जाय ससट्टकप्पिणहिं) संसृष्ट-भरे हुए हाथ या पात्र से आहार लेने के कल्प वाले, जो पदार्थ ग्रहण करने के हैं उसीसे भरे हुए हाथ आदि से भिक्षा लेने के कल्प वाले, (उवनिहिणहिं) समीप में भिक्षा के लिये जाने वाले या पास में रहे हुए पदार्थ को ही लेने वाले (सुट्टेसण्णिएहिं) शुद्ध-दोष रहित एपणा वाले (सखादत्तिएहिं) ५।६ आदि सख्या प्रधान दत्ति वाले (दिट्टलाभिणहिं अदिट्टलाभिणहिं) दृष्ट स्थान से मिली हुई या दृष्ट पदार्थ के भागयुक्त भिक्षा लेने वाले, अदृष्टदाता से अथवा अदृष्ट वस्तु के ग्रहण वाले (पुट्टलाभिणहिं) महाराज ! यह पदार्थ ले सकते हैं क्या ? इस प्रकार प्रश्न पूर्वक मिले हुए आहार को ग्रहण करने वाले (आयंविणिएहिं) आयविल तप वाले (पुरिमड्डिणिएहिं) पुरिमाद्ध-दोषैरुपीके व्रत वाले (एक्कासणिएहिं) एकाशन करने वाले (निक्खित्तिएहिं) विगय घी, दही, दूध, आदि रस रहित भोजना करने वाले (भिन्नपिंडवाइएहिं) फूटे बिखरे हुए ओदनादि-पिण्ड को ही ग्रहण करने वाले (परिमियपिंड वाइएहिं) घर व भोजन के परिमाणयुक्त पिण्ड-आहार को ग्रहण करने वाले (अंताहारेहिं) सेके चने आदि का आहार करने वाले, (पंताहारेहिं) प्रान्त आहारी (अरसाहारेहिं) हिंग आदि के संस्कार रहित अरस आहार करने वाले (विरसाहारेहिं) रस रहित-पुराने पदार्थ का आहार करने वाले (लूहाहारेहिं तुच्छाहारेहिं) रुक्ष आहारी तथा तुच्छ-अल्प आहार करने वाले (अत जीविहिं पंत जीविहिं लूह जीविहिं तुच्छ जीविहिं) अन्त जीवी, प्रान्त जीवी, रुक्ष जीवी और तुच्छ जीवी (उवसंत जीविहिं पसंत

जीविहि) अन्तर्दृष्टि की अपेक्षा-उपशान्त जीवी-उपशान्तः कृपाय वाले, वद्विर्दृष्टि से प्रशान्त जीवी-सौम्य जीवन वाले (त्रिविध जीविहि) विविक्त-निर्दोष मनुष्य आदि स जीने वाले (असीर मनु सपिण्णहि) वृष, मधु और घृत के त्यागी (अमम मसामिण्णहि) मधुमत्त रहित भोजन वाले (ठाणाण्णहि) ऊर्ध्व स्थान-ऊँचे रहने आदि रूप अभिमन्य करने वाले (पडिमं ठाईहि) प्रतिमा-कायोत्सर्ग से या मासिकी आदि मित्र प्रतिमा से रहने वाले (ठाणुण्णहि) उरुकटुक आसन से बैठने वाले (वीरासण्णहि) वीरासन से बैठने वाले (येसत्रिण्णहि) निपद्या-आसन विरोधरूप अर्थात्काल (उंदाण्णहि) दण्ड की तरह लम्बे-सीधे शयनरूप आसन वाले (सगण्डसाईहि) टेढ़े काष्ठ की तरह मस्तक और एड़ी को जमीन पर टेकर कुम्भ सोने वाले (प्यापासगेहि) एक पार्श्व से ही सोने वाले (आयावण्णहि) आतापना लेने वाले (अप्यावण्णहि) देह डकने के लिये चादर आदि नहीं रखने वाले (अधि द्दुवण्णहि) मूँह से घृक नहीं धूकने वाले (अकंहुयण्णहि) शरीर को नहीं लुबकाने वाले (घुत केसमसुशोमनसेहि) केरा, दाही, मूछ और रोम-कास आदि के बाल तथा नखों के संस्कार रहित पाने इनकी काठ छाँट नहीं करने वाले (सम्भ गाव पडिक्कम्भ विप्पमुक्केहि) सम्पूर्ण शरीर की अम्भ आदि से शोभा नहीं करने वाले, पूर्वोक्त विविध गुण-विशिष्ट मुनियों से (समणुण्णिमा) आसेवन की गई 'अहिंसा' तथा (सुमधर विदित्तव काम्मुद्धीहि) भुतधर और शान्त की अथ-रारा को समझे शोम्य बुद्धि वाले महात्माओं से पावन की गई है (धीरमति पुट्टियोध) और शिर अथप्रहादि मतिमुक्त तथा औत्पत्तिकी आदि बुद्धि वाले (जेठे) जो: वे। मुनिवर (आसी विस समत्तेव कप्पा) छत्र विषयरत्नाना के समान छत्र धेज्रवाले (मिच्छम बवसाव पञ्चकयमतीया) मिच्छम-पहार्य ज्ञान और परिपूर्ण पुरुषार्थ में कृत्तमति बान्त (विच्छर्ब) सदा (सम्भ्रयन्नाय अणुवदधम्मम्भ्रया) वाचनावि पञ्च-विध स्वाम्याय तथा ध्यान चित्त निरोध करने वाले व निरन्तर आह्ला विषय आदि धर्म ध्यान बान्त (पंच मद्भववचरित पुत्ता) पंच महाव्रतरूप आरित्र से युक्त (समिता समितिसु)ईर्वा आदि समितिधर्मों सम्यक् प्रवृत्ति वाले (समित पावा) उपराम या कृप कर लिये हैं पाप सिद्धोंने वेसे (सम्बिह जगन्धरता) पूष्णी आदि के छ प्रकार के जीव मुक्त जगत के बरसल विठैपी (ि समप्पमत्ता) सदा प्रभाव रहित (ण्णहि) इन (अन्नेदिय) और इस प्रकार के 'अम्य भी महात्माओं से (जामा अणुपालिया) जो अहिंसा

अनुकूल रूप-से-पालन की गई है (सा भगवती) वह भगवती अहिंसा है। इस प्रकार अहिंसा का स्वरूप कहके अब अहिंसकों को क्या करना चाहिए? इसको कहते हैं—

मूल—“इमं च पुढविदग्ग अगणि मारुय तरुगण तस थावर सव्वभूय संजम दयट्ठयाते सुद्धं उच्चं गवेसियव्वं, अकतमकारिमणाहूयमणुहिट्टं, अकीयकडं, नवहिय कोडिहिं सुपरिसुद्धं, दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं, उग्गम उप्पायणोसणासुद्धं, ववगय चुय चाविय चत्त देहं च, फासुयं च, न निसज्ज कहापयोयणक्खा सुओवणीयंति, न तिगिच्छामंतमूल भेसज्ज कज्ज हेउं, न लक्खणुप्पायसुमिण जोइस निमित्त कहकप्प उत्तं, न विडंभणाए, नवि रक्खणाते, नवि सासणाते, नवि दंभण रक्खण सासणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि वंदणाते, नवि माणणाते, नवि पूयणाते, नवि वंदण माणण पूयणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि हीलणाते, नवि निंदणाते, नवि गरहणाते, नवि हीलण 'निंदण' गरहणाते भिक्खं गवेसियव्वं नवि भेसणाते, नवि तज्जणाते, नवि तालणाते, नवि भेसण तज्जण तालणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि गारवेणं, नवि कुहण याते, नवि वणीमयाते, नवि गारव कुहवणीमयाए भिक्खं गवेसियव्वं, नवि मित्तयाए, नवि पत्थणाए, नवि सेवणाए, नवि मित्त पत्थण सेवणाते भिक्खं गवेसियव्वं, अन्नाए अगट्ठिए अदुट्ठे अदीणे अविमणे अकलुणे अविसाती अपरितंत जोगी जयण घडण करण चरिय विणय गुण जोग संपउत्ते भिक्खु भिक्खेसणाते निरते, इमचणं सव्वजीव रक्खण दयट्ठयाते पावयणं भगवया सु कहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिमदं सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्ख पावाण विउसमणं ॥ सू० २ । २२ ॥

छाया—“इदञ्च पृथ्वी इकाऽग्नि मारुत तरुगण त्रस स्यावर सर्वभूतसयम दयार्थाय शुद्धमुच्चं गवेपणीयम्, अकृतमकारित मनाहूतमणुहिष्टमक्रीतकृतम्, नवभि. कोटिभिः

सुपरिगुह, इशामिन्द्रोपैर्धिप्रमुक्तम्, उग्रमोत्याद्नैपखा शुद्धं स्वपगतं च्युत
 व्यावित स्वच्छेद्वा प्रागुक्तं न निपद्या ज्या मयोचनाऽऽस्या भूतोपनीतमिति, न
 पिहित्सा मन्त्र मूक मैपम्यकार्यहेतुकं, न अक्षयोत्पात स्वप्न [स्मरणे] शौचि
 निमित्त कथा कुहक प्रमुक्तम्, नापि वृम्भनया, नापि रक्षयया, नापि शासनया, नापि
 वृम्भना-रक्षणा-शासनाभिर्भैर्य गवेषयितव्यम्, नापि वृम्भनया, नापि माननया,
 नापि पूजनया, नापि यन्त्रना-मानना-पूजनाभिर्भैर्य गवेषयितव्यम्, नापि हीलनाया,
 नापि निन्दनया, नापि गर्हयना, नापि हीलना निन्दना गह्याभिर्भैर्य गवेषयित
 व्यम्, नापि भीषयया, नापि तर्जनया, नापि ताडनया, नापि भीषया तर्जना
 ताडनाभिर्भैर्य गवेषयितव्यम्, नापि गौरवेण, नापि क्रोधनया, नापि वनीपकतया,
 नापि गौरव क्रोधना (कुभना) वनीपकताभिर्भैर्य गवेषयितव्यम्, नापि मित्रतया,
 नापि प्रार्थनया, नापि सेवनया, नापि मित्रता-प्रार्थना-सेवनाभिर्भैर्य गवेषयित
 व्यम्, अज्ञात अप्रयितः, अगृह्यु, अदुष्ट, अवीन अधिमना अकठयः अवि
 पारी, अपरितान्तरयोगी, यतन घटन करण करण (चरित) विनय गुण योग
 सम्प्रमुक्त्ये मिश्रिर्महोपखायां निरत । इदं च ननु सर्वसौख्य रक्षण इयार्थय प्रवर्तन
 मगवता मुकथितम्, -आत्महितं, प्रैत्यभाषितम्, आगमिष्यद्भद्र, शुद्धं न्यायोपेतम्
 अकुटिलमनुत्तरम्, सर्वदुःखपापानां क्षुपशामनम् । सूत्र २ । २२ ॥

अन्वय-“(इमं च पुढिक् इग अगथि माहय तदगय तसयावर सव्वमूय संबमं
 द्यदुपाव) और पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वृक्ष समूह, और व्रस, स्थावर रूप सब
 जीवों पर संयम व इया के लिये इस (सुद्धं चन्द्रं गवेषियम्) शुद्ध उच्छ्र-मनः
 परों की मिष्टा से प्राप्त आहार की गवेषणा करनी चाहिये जो आहार- (अकृतम
 कारिमयाहममगुटिदर्थ) साधुओं के लिये किया हुआ न हो, न वृक्षों से बनपाया
 हो अनाहुत-गृहस्थ क द्वारा निमन्त्रण पूर्वक दिया हुआ पाने मुत्ताके दिया गया
 भी नहीं हो अगु-उपेक्षा शोपयुक्त नहीं हो, (अक्षीयकटं) साधु के लिये खरीदकर
 लाया हुआ नहीं हो, इमी बात को विस्तार से कहते हैं- (मन्त्रिय आदिहि सुपरि-
 गुहं) और आ नव कोटि स विगुह हा (इसदिव दोमेहि विष्णुमुहं) शक्ति आदि
 इरा श्यों म रहित और (जगम उपाय एतगुमुहं) उद्गम-उत्तरान और एषणा
 स शुद्ध-निर्वाण हा (यदगप पुव आरिमपतदहं च) जिस आहार स स्वयं जीव
 अज्ञात होगये तथा गृष्ठी आदि क जीव जिसमें पच-भर गये अथवा हाता ने जिसे

निर्जीव कर दिये जैसे त्यक्त देह-निर्जीव बने हुए अथवा व्यपगत-सामान्यरूप से अचेतनता प्राप्त, च्युत-जीवन क्रियाओं से भ्रष्ट, च्यावित-आयुक्षय के कारण जीघन क्रियाओं से रहित और त्यक्तदेह-जीव के संसर्ग से होने वाली वृद्धि से हीन (फासुयच) और प्राशुक-निर्जीव आहार को (न निसज्ज रुहापओयणक्खापु षोवणीयंति) 'गोचरी में गया हुआ' घरमें बैठकर दी जाने वाली धर्मकथा के प्रयोजन से या दाता को खुश करने के लिये नट की तरह प्रयुक्त कथा-प्रतिबद्ध श्रुत के कारण जो नहीं लाया गया है वैसी भिक्षा की गवेषणा करनी चाहिए। (गिगिच्छा मंत मूल भेसज्ज कज्जहेउ) चिकित्सा-रोग के प्रतीकार, मन्त्र, मूलकृताञ्जलि आदि औषधी की जड और भैषज-अनेक द्रव्यों से बनी दवा आदि के हेतु से भिक्षा (न) नहीं लेनी चाहिए (नलक्खणापायसुमिणजोइस निमित्तकहक्कप्पउत्त) लक्षण-स्त्री पुरुष आदि के चिह्न विशेष, उत्पात-प्रकृति के अतिशय विकार धूल वृष्टि आदि, स्वप्न, ज्योतिषशास्त्र, निमित्त-चूडामणि आदि निमित्त शास्त्र, कथा-अर्थ कथा आदि और दूसरे को विरमय उत्पन्न करने के प्रयोग इन कारणों से आकृष्ट होकर दाता ने जो द्रव्य देनेको निकाले हैं उनको नहीं ग्रहण करे (नवि डभणाए) माया कपटके प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें (नवि रक्खणाते) दाताके पुत्र आदि की रक्षा के प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें (न वि सासणाते) शिक्षा सिखा कर भी भिक्षा नहीं लें अथवा अनुशासन करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि दभणरक्खण सासणाते) कपट, रक्षा, एवं अनुशासन का एकसाथ प्रयोग करके भी (भिक्खं गवेसियव्व) भिक्षाकी गवेषणा नहीं करनी चाहिए (नवि घंदणाते) वन्दना करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि माणाणाते) आसन आदि से दाता का मान करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि पूयणाते) मस्तक पर चन्दन लगाना या नमकर मुंह पत्ती आदि देने रूप पूजा से भी भिक्षा नहीं लें (नवि वट्ठणाणाणाते भिक्खं गवेसियव्व) वन्दन मान और पूजा के एक साथ प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें (नवि हीलणाते) दाता की जाति आदि की हीलना करके भी नहीं लें, (नवि निंदणाते) दाता की या देय वस्तु की निन्दा करके भी नहीं लें, (नवि गरहणाते) हीलना करके भी नहीं लें (नवि हीलणनिंदणागरहणाते भिक्ख गवेसियव्वं) हीलना, निन्दा और गर्हणा के एक साथ प्रयोग करके भी भिक्षा की गवेषणा नहीं करनी चाहिए, (नवि भेसणाते) भय दिखाकर भी भिक्षा नहीं लें, (नवि तज्जणाते) तर्जन करके भी नहीं लें (नवि तालणाते) चपेटा आदि

की साधना से भी मिच्छा नहीं लें। (न वि भेसस्य तन्त्रयण धातनाते भिक्षुं गणे
 सियस्य) भय प्रहर्शन, धर्जन और साधना इन तीनों के साथ प्रयोग से भी मिच्छा
 नहीं लें (न वि गारबेस्य) मैं राज पूजित हूँ इस प्रकार गर्भ से भी मिच्छा नहीं लें।
 (न वि कुह्यथाते) इच्छिता के भाव से या क्रोध करके भी नहीं लें (न वि
 वशीमयाते) मंगलों की तरह हीनता दिखाकर भी नहीं लें (न वि गारब
 कुह्यमीमयाप भिक्षुं गणसियस्य) गर्भ, क्रोध तथा पाषण्डता इन तीनों के प्रयोग
 से भी मिच्छा की गबेपया नहीं करे (न वि भित्तयाप) मित्रता करके भी मिच्छा नहीं
 लें (न वि पत्वयाप) प्रार्थना करके भी न ले (न वि सेवयाप) सेवा करके भी
 मिच्छा नहीं ले (न वि भित्त पत्वय सेवयाते भिक्षुं गणसियस्य) मैत्री, प्रार्थना व
 सेवा इन तीनों के साथ प्रयोग से भी मिच्छा की गबेपया नहीं करनी चाहिए
 (अभाप) अपना सम्बन्ध नहीं कड़न स जो गृहस्थों से नहीं आना गया है
 (अगद्विप) तथा जान लेने पर भी मोह रहित अवस्था आहार में गृप्नुता रहित,
 (अहुष्टे) अहुष्ट-आहार पर या हाथा पर ह्ये नहीं करने वाले (अहीय) जोम
 रहित (अविमये) उदासीनता रहित (अकुरुये) हीनता रहित (अविसाठी)
 बिपाद रहित (अपरित्तत जोगी) सरकम में बकावट रहित मन, वचन आदि
 योग बाधा होने से (अयण धयण करण बरिय विखय गुय जोग संपत्ते) यवन
 प्राप्त संयम योग में उद्यम और अप्राप्त संयम योग की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने
 बाधा तथा विनय का सेवन करने वाला व क्षमा आदि गुणों से युक्त जो (भिक्षु)
 साधु (भिक्षुसेसयाते निरते) मिच्छा की पपया से निरत-तपर रहता है (इमं बर्थ
 सम्बन्धीव रक्त्तय इयद्वाते) और सब अगत के जीवों की रक्षा रूप द्या के लिये
 इस (पावपण) प्रबचन को (भगवया) भगवान् ने (सुकृदिय) सम्यक प्रकार से
 कहा है (अत्तरिय) जीवों के हित रूप आर (पेस्वाम विर्य) परलोक में सुख
 देने वाला है (आग्रेसिभई) भविष्य में कल्याण का कारण व (सुद्ध) शुद्ध
 है (नेयाउव) न्याययुक्त, (अकृदिकं) अहुटिल-सरस, (अणुत्तरं) सब अष्ट
 तथा (मन्वदुत्तरपावाण) सब दुःख और पदकों का (विउत्तमस्य) उपराम
 न करने वाला है ॥ २ । २२ ॥

भाषा—“यह अहिंसा भगवती प्राणियों की परम रक्षा करने वाली है।
 भवभीत प्राणिजों का जैम शत्रु का पक्षियों का आकारमाग का, व्याम का पानीप,

भूखे को भोजन का, समुद्र में डूबते हुए को जहाज का, चतुष्पदोंको आश्रयस्थानका, रोगियों को औषधिका और अटवीमें भूले हुए को सार्य का आधार होता है। इससे भी अधिक अहिंसा प्राणियों के लिये हित साधिका है। क्योंकि भयभीत आदि को शरण आदि से कभी हित के बदले अहित भी हो सकता है, परन्तु अहिंसा से होने वाला हित ध्रुव और अटल है। जो पृथ्वी जल आदि त्रसस्थावर जीवमात्र के लिये क्षेम व रक्षण करने वाली है, वह अहिंसा ही संसार में भगवती है अन्य नहीं।

इसको जानने वाले व सेवन करने वाले भी विशिष्ट ज्ञानी महापुरुष हैं, जैसे अनन्तज्ञानी शीलसयम आदि गुणों के प्रधान नायक, त्रिलोकी पूज्य और जगत् के हितैषी तीर्थङ्कर महाराज ने केवलज्ञानसे इसका सम्यक् निश्चय एवं अनुभव किया है। अवधिज्ञानी और सामान्यविशेष दृष्टिवाले मनःपर्यवज्ञानियों से अच्छी तरह जानो व देखो गई है। पूर्वधारियों ने शान्त में इसका अभ्ययन किया है। वैक्रिय लब्धिवाले तथा मतिज्ञानी व केवलज्ञानी महात्माओं ने आजीवन इसका पालन किया है।

तपस्या की विशिष्ट साधना से कई महात्मा अतिशय शक्ति सम्पन्न होजाते हैं, जिनको लब्धिधारक कहते हैं। २२ प्रकार के लब्धिधारियों में से कुछ का यहां निम्नलिखित उल्लेख मिलता है। जैसे कि स्पर्शमात्र से रोग निवारण करने की लब्धि वाले आमर्षोपधिक। ऐसे कइयों के श्लेष्म रोगनिवारक होते हैं। एक ऐसीलब्धिधारी होते हैं कि उनके शरीर पर का मल रोगनिवारक होता है। कई महात्माओं के मलमूत्र तक रोगनिवारक होते हैं। किसी महात्मा के शरीर की सभी चीजें औषधिवत् रोगनिवारक होती हैं। बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि और पदानुसारी आदि ये सब विशिष्टबुद्धिधारक होते हैं। मन, वाणी और शरीर के स्थिर बल को धारण करने वाले तथा निर्दोष ज्ञानादि रत्नत्रय को धारण करने वाले हैं। इसलिये इनके वचन मानो क्षीर मधु और घृत के जैसे मधुर स्निग्ध एवं पौष्टिक होते हैं। अक्षीण महानस लब्धिवाले स्पष्ट हैं। जघा या विद्या के बल से आकाश मार्ग में चलने की विशिष्ट शक्ति वाले चारण कहते हैं। चतुर्थभक्त-उपवास से लेकर छः मास तक के तपस्वी मुनिओं ने इसका आराधन किया। ऐसे ही उत्तम आदि

विधिष्वभिप्रर्हो से जो मित्रा करने वाले हैं जैसे उपशान्त वशा बान्हे निर्दोष आहार के प्राइक मुनिर्षोसे सेवित हैं ।

सामान्यतया मुनि लोग मद्य मांस रहित भोजन वाल, और अभिक्ता से दूष पृत तथा मधु के वजन करने वाले होते हैं । कई अनुकूलता के अनुसार खान-यित एवं विधिष्व आसन बान्हे होते हैं ।

विशेष इस प्रकार है-सिंहासन पर पाँच कटका के बैठा हुआ पुरुष जब आसन के हटाने पर भी वसी तरह बैठा रहे उसको वीरासन कहते हैं । आतापना करने वाले यावत्, जो सदा प्रमाद रहित हैं । ऐसे और अन्य विशिष्ट प्रतिष्ठा से जो पालन की गई वह मगधती अहिंसा प्रथम संवर रूप है ।

आगे अहिंसकों को कैसी और किस प्रकार से मित्रा लेनी चाहिए ? इस बातको दिखाते हैं ।

पृथ्वी आदि सभी प्राणी मात्र के संयम तथा दया के क्रिये मुनि को निम्न प्रकार की शुद्ध मित्रा लेनी चाहिए, जो आहार साधु क क्रिये नहीं किया हो और कराया गया भी नहीं हो । मुलाकर दिया हुआ और साधु के क्रिये करीब हुआ भी नहीं हो । नव कोटि शुद्ध तथा ४२ प्रकार के पपणा होयों से रहित यावत्, निर्दोष निर्दोष हो वैसा ले सकते हैं । किन्तु अविधिष्वों को टालकर लेना यह बताना आता है—

परमैर्बैठकर कथा सुनानेसे मिला हुआ नहीं लेना । चिकित्सा, मन्त्र, मूत्र आदि प्रयोग बताने में मित्रा नहीं लेनी चाहिए । इसी प्रकार शारीरिक कष्टय आदि बताने में मित्रा प्राप्त नहीं करे । कपट, रक्षा और अनुरासन करके तथा सुवि, मान या पूजा के द्वारा भी मित्रा ग्रहण नहीं करे । गृहस्थकी हीलना, निम्बा और गर्दा करके अम्बा बराना, साहना और सर्जना से भी मित्रा नहीं ले । गर्व क्रोध या मित्रा की तरह शीनता दिखाकर पय मैत्री, प्रार्थना तथा सेवा के द्वारा भी मित्रा प्राप्त नहीं करे अथा गृहस्थ को विना किसी प्रकार का स्वार्थ भय और शीनता विरूपे मुनि मित्रा ग्रहण करे । इससे अपनी मोह-पृथि और गृहस्थों में स्वार्थ बुद्धि नहीं होगी विस मुनिर्षों का स्वरूप निम्न प्रकार है—

व अपना परिचय गृहस्थों को स्वर्न नहीं दते और न आहार आदि में आसक्त होते हैं । द्वेष शोभ व परासीनता से दूर, नहीं मिलन पर भी

खेद ग्लानि नहीं करते । बिना विश्रान्ति के योगशील बने रहते है । यादत् ऐसे भिक्षु भिक्षुपणा मे तत्पर रहते है । अहिंसा एवं अहिंसकासाधु के स्वरूप धो कहने वाले इस प्रवचन को भगवान् महावीर ने जगज्जीवो के रक्षणार्थ कहा है । यह आत्मा को हितकारी व परलोक में सुखदायी और भविष्य मे भद्र का कारण है । शुद्ध न्याययुक्त तथा मोक्ष का सर्व श्रेष्ठ सरल मार्ग है । इससे सब दुःख और पापो का शमन होता है ।

अत्र पूर्वोक्त अहिंसा व्रत की पांच भावनाओं को कहते है—“

मूल—“अस्स इमा पंच भावणातो पढमस्स वयस्स होंति पाणातिवाय-
चेरमण-परिरक्खण्डयाए, पढमं ठाण-गमण-गुण-जोग-जुंजण-जुगंतर निदा-
तियाए दिट्ठीए ईरियव्वं, कीडपयंग-तस-थावर-दयावरेणनिच्चं पुप्फ-
फल-तय-पवाल-कंद-मूल-दग-मट्टिय-बीज-हरिय-परिवज्जिएण समं,
एवं खलु सव्व पाणा न हीलियव्वा, न निंदियव्वा, न गरहियव्वा, न
ईसियव्वा, न ख्खिदियव्वा, न भिदियव्वा, न वहेयव्वा, न भयं दुक्खंच
किंचिल्लम्भा पावेउं, एवं ईरिया समिति जोमेण भावितो भवति अंतरप्पा
असवलमसंकिलिड्ड-निव्वण-चरित्त-भावणाए अहिंसए संजए सुसाहू ॥ १ ॥

वित्तीयं च मण्णेण पावणं पावगं अहम्मियं दारुणं निस्ससं वहवंध
परिकिलेस बहुलं, (भय) जरा मरण परिकिलेस-संकिलिड्डं न कयावि
मण्णेण पावतेणं पावगं किचि वि भायव्वं, एवं मणसमित्तजोगेण भावितो
भवति अंतरप्पा, असवलमसंकिलिड्ड-निव्वण-चरित्त भावणाए अहिंसए
संजए सुसाहू ॥ २ ॥

तत्तियं च वतीते पावियाते पावगं न किंचिवि भासियव्वं, एवं वति
समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा, असवलमसंकिलिड्ड-निव्वण-
चरित्त भावणाए अहिंसओ संजओ सुसाहू ॥ ३ ॥

चउत्थं आहार एसणाए सुद्धं उंछं गवेसिययव्वं, अन्नाए अगहिते
अदुद्धे, अदीणे, अकलुगे, अविसादी, अपरितंत जोगी जयण-घडण-करण

१—क० अहम्मिक दारुणं निस्ससं वह वंध परिकिलेस बहुलं जरा मरण परि-
किलेस संकिलिड्डं, नकयाविवदए पावियाए (ओ) पावग ।

२ क अकहिए ।

३ असिट्ठे ।

धरिय-दिशय-गुण ओग संपओगजुचे मिदस्व मिक्खेसखाते जुचे, सहु
 दाखेऊण मिक्खचरियं उळ्ळ वेचुण आगतो गुरु जयस्स पासं, गमथा
 गमथातिचारे पडिक्कमथा पडिक्कते, अक्षोयखदायणं च दाऊण गुरुअणस
 गुरुसंदिट्ठस्सवा, ज्होदएसं निरइयारं च अप्पामत्तो पुसरमि क्खेसखाते
 पयतो पडिक्कमिधा पसंते आसीण सुवनिमन्ने सुदत्तमेव च भाव-सुखओग-
 नाण-सन्नाय-गोदिण शे, इम्ममखे, अदिमखे, सुदमखे, अदिमाइमखे,
 समाहियमखे, सदा संवेगनिच्चरमखे, पदतण वच्छल्लमादियमखे, उट्ठे ऊणप
 पइहु'तुट्ठे ज्हारायणियं निर्मत्तइत्ता प, साइवे मावओ य दिइयणे य गुरु-
 ञणेष उपविट्ठे, संपमज्जिऊण ससीसं कायं, उहा करतल, अमुच्चिणे,
 अग्निदे, अगडिप, अगरहिते, अण्णोवदएणे, अथाइले, अट्टवे, अइ
 चट्टिणे, असुर सुरं अचव' चर्षं, अइतमविलंबियं, अपरिसाडिं, आलोप
 मायणे जयं पयणेष ववगयसंओग मखिगालं च, दिगय धूमं, अक्खोर्षं
 जयाणुलेवणभूय सजम जाया माया निमित्तं संजम भार-वहसइयाए
 सुजज्जा, पाण धारणइयाए सजएण समियं, एषं आहार समितिओगेर्षं
 मायिओ मवति अंतरंप्पा, असवल्लमसंकिळिहु-निच्चण धरिच मावसाए
 अहिंसए संजए सुसाहु ॥ ४ ॥

दाया-“तस्येमा पञ्चभावना प्रथमस्य प्रथस्य भवन्ति, प्राणातिपात विरमण
 परिदण्डणार्थः । प्रथमं स्वानं गमन्तु इयोगयोजना-युगान्तरनिपातिकया दृष्टया
 इरयित्तव्यम् ॥ १ ॥

कीट-वतङ्ग-अस स्थावर-इपापरेण नितवं पुण्यफला-त्वक्-प्रवास कन्धमूल-
 एक श्रुतिज्ञा-बीजइरित-परिवर्जनवासमम् । एयं क्तु सर्वे प्राणा न हीन
 यित्तव्या, न मिन्दित्तव्या, न गदित्तव्या, न इन्तव्या, [दिसित्तव्या] न लेत्तव्या, न
 मेत्तव्या, न वधित्तव्या, न गर्भं दुःखं च विद्धित् क्खवा प्रापयिट्ठम्, पयसीर्षासमि
 तियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा, अरावलाऽसक्खिण-निर्गण्णपरिअ भावनया
 अहिंसक संयत सुसाधु ।

द्वितीयस्य मनसा पापकेन पापकर्मभारिकं, बारुणं, घ्रांसं वषट्कार-परिक्रेश
 वहुतं मय मरण संज्ञेश-[परिक्रेश] संकिण्णं, न क्वापि मनसा पापकेन

पापकं किञ्चिदपि ध्यात्वयम् । एवं मनः समिति योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा
अशबलाऽसंक्लिष्ट-निर्त्राण-चारित्रभावनया अहिंसक संयत सुसाधु ।

तृतीयञ्च वाचा पापकया पापकं न किञ्चिदपि भाषितव्यम् , एव वचन-समि-
ति-योगेन-भावितो भवत्यन्तरात्मा अशबलाऽसंक्लिष्ट-निर्त्राण-चारित्र भावनया
अहिंसक संयत सुसाधु ।

चतुर्थमाहारैपणाया शुद्धमुच्छ्रं गवेपयित्वयम्, अज्ञातोऽगृह्णतुष्ट अदीणो-अदीनो
ऽवरुणोऽविपादी अपरितान्तयोगी यत्न-घटन-करण-चरित्र-दिनगुण योग-संग्र
योगयुक्तो भिक्षुभिर्नैषणाया युक्तः, समुदानयित्वा भिक्षाचर्या उच्छ्रं गृहीत्वाऽऽगतो
गुरुजनस्य पार्श्वं, गमनाऽगमनातिचारान् प्रतिक्रमण प्रि क्रान्तान् आलोचनाऽऽदान
कं च दत्त्वा, गुरुजनस्य गुरुसन्दिष्टस्य वा यथोपदेश निरतिचारं चाऽप्रमक्तः । पुनर-
प्यनेपणायां प्रयत प्रतिक्रम्य प्रशान्त आसीन सुखनिपण्णो मुहूर्तमात्रं च ध्यान
शुभयोग-ज्ञान गोपितमना, धर्ममना, अधिमनाः, सुखमना, अदिग्रहमना , समाहित
मना , श्रद्धा सवेग-निर्जन्मना , प्रवर्तनायत्सलभाषितमना उत्थाय च प्रहृष्टतुष्टो,
यथारात्निकं निमन्त्र्य च साधून् , भावतश्च वितीर्णं च, गुरुजनेन, उपदिष्ट समाज्यं
सशीर्षं कायं, तथा करतलममूर्च्छितोऽगृह्णोऽप्रथितोऽगर्हितोऽनायुपपन्नोऽनावितोऽलु-
ब्धोऽनात्मरियतोऽसुरसुरम्-अचवचधम्-इति ध्वनि रहितम् अद्रुतमविलम्बितम्,
अपरिसादितम् , आलोकभाजनेजयं प्रयत्नेनव्यपगत संयोगमनिङ्गाल च, विगत धूम
मत्तोपाञ्जानानुलेपनभूतं, संयम-यात्रा मात्रा-निमित्तं, संयम भार वहनार्थाय भुञ्जीत,
प्राणधारणार्थाय संयत समितम् । एवमाहार समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा
अशबलाऽसंक्लिष्ट-निर्त्राण-चारित्र भावनयाऽहितक. संयतः सुसाधुः ।

अन्व०-“(तस्स) अहिंसा रूप एस (पढमस्स वयरस) प्रथम व्रत की (इमा
पंच भावणातो) ये आगे कही गईं पांच भावनार्ये (ह्येति) होती हैं, (पाणातिवाय
वेरमण परिक्खणट्टयाए) प्राणातिपात विरमण रूप अहिंसा व्रत की रक्षा के लिये
(पढम) पहली भावना (ठाण गमणगुण जोग जुंजण जुगतरः;निवातियाए)
ठहरने और चलने में स्वपर की पीड़ा रहित गुण योग को जोड़ने वाली तथा गाड़ी
के जूवे प्रमाण भूमि पर गिरने वाली (द्विटीए) दृष्टि से (हरियव्वं) चलना चाहिए
(कीड पतग तस थावर दयावरेण) कीट पतग आदि व्रस और स्थावर जीवों पर

व्या भय दास्ते (निष्कंपुष्क पक्षत्य पचास ६६ मूल वृगमद्विय बीज हरिष परि
 रक्षिष्य) रुधा पूरु पव गीवी द्वाव प्रदाव कूपरु वन्द, मूल वृक्षादि के मूल
 और वृक्षा उत्, खान कादि बी वधी रिष्टी बीज रुधा वृक्ष कादि हरित इनका
 दवाय करने दास्ते दो (रुम्भ) वृक्षी दरु दस्त से वरुना कादिप (एवं बालु)
 टेसे ही (रुष्प पाया) कीव मात्र (नई लिख्या) हीवना करने योग्य नहीं (न
 निदिदव्या) निम्वा करने योग्य नहीं (न गरहियव्या) गहाँ-किसी के सामने मुटाई करने
 योग्य नहीं है (न द्विसियव्या) हिंसा करने योग्य नहीं (न द्विदियव्या) छदन करन-
 काटने योग्य नहीं (न निदियव्या) रुधा भाल आदि से भेदन करन योग्य
 नहीं (न वहेपव्या) पीडा पहुचाने योग्य नहीं (न भवं दुष्कलं वकिचि कम्भा
 पावेठ) और बुद्ध भी मय तथा दुष्कल पहुचाने योग्य नहीं है (एव) इस
 प्रकार (हरिया समितिजोग्य) इयांसमिति के योग से (भाधितो) भाधित
 पवित्र (अतरण्या) अन्तरात्मा (असवलमसंकिरिदृनिद्वयश्चरित भावण्या)
 मलिनता रहित शुद्धिमय विचार और अस्वद्व चारित्र की भाधना
 याता (भवति) होता है वह (अहिंसय) अहिंसक (संजय) संयत-मृपावाद्
 आदि साधन बर्नो स अलग रहने वाला, (सुसाह) सुसाधु है ।

(वितीर्य) और दूसरी भावना (मणेशं पावण्य) पापकारी अज्ञान मन से
 (पावर्ग) पापयुक्त (अहम्मियं) अधार्मिक-धर्मविरुद्ध (वार्या) वारुण (निस्संसं)
 मृदांस-दया रहित (वद्वं प्रपरिक्षेस बहुलं) बध, बन्ध और परितापकी अधिकता
 वाला (मय मरणपरिक्षेस संकिरिद्वर्ठ) मय, मृत्यु और क्लेशों से क्लेशजनक
 (न क्पाति मस्य पापवर्णं किचि विष्मत्पावर्णं) पाप युक्त मन से पैसे पाप
 कारी विचार मे कभी थोड़ा भी नहीं करना चाहिए (एवं) इस प्रकार दूसरी
 (मणममिति जोग्य) मन की समिति मन की मन्मक् प्रवृत्ति के योग से (भाधितो)
 भाधित (अतरण्या) जीव (असवलमसंकिरि दृनिद्वयश्चरित भावण्या) मलिनता
 और मंसरा रहित अस्वद्व चारित्र की भाधना म (अहिंसय) हिंसा नहीं करने
 वाला (संजय) और पाप मंक से शृण् हाने से संयत (सुसाह) सुसाधु
 (भवति) होता है ।

अब तीसरी भाधना-वाक् भूमिनि रूप-(, नतिर्यं) और तीसरी भाधना-
 (पनीने पाधिवाने) अज्ञान भाग म (किचिचि) बुद्ध भी (पावर्ग) पाप-युक्त

अधन (न भासिद्व्यं) नहीं दोलना चाहिए (एवं) इस प्रकार (दृति समिति जोगेण) धाक्-समिति-भापा समिति के योग से (भाधितो) भाधित (इतरप्पा) जीव (असवलमसंकिलिट्टु निव्यण चरित्त भादणाए) निर्मल, संक्लेशरहित और अखण्डित चारित्र की भावना वाला (अहिसओ) अहिसक (संजओ) मुनि (सुसाह) सुसाधु (भवति) होता है ।

चौथी एपणासमिति (चउत्थं) चौथी भावना (आहार एपणाए) आहार आदि की एपणासे (सुद्धं) दोष रहित (उद्धं) सामूहिक अनेक घरों से प्राप्त भिक्षा की (गवेसिद्व्यं) गवेपणा करनी चाहिए (इत्राए) इच्छात सम्बन्ध वाला (अगदित्ते) मोह रहित (अदुट्टे) दुष्टता रहित (इदीणे) क्षोभ से दूर (अकलुणे) दीनता रहित (अबिसादी) खेद रहित (अपरितंत जोगी) भ्रमण में आहारादि नहीं मिलने पर भी अथकयोगरूप प्रवृत्तिवाला (जयण घडण करण चरिय विणय गुण जोग संपओग जुत्ते) प्राप्त संयम प्रकृति में यत्ना और अप्राप्त सत्वर्म के लिये प्रयत्न करने वाला विनय का सेवन करने वाला तथा क्षमा आदि गुणयोग से जो युक्त है (भिक्खु) वैसा भिक्षु (भिक्खेसणाते) भिक्षा की एपणा में (जुत्ते) युक्त लगा हुआ (समुदाणेउण) अनेक घरों में फिर कर (भिक्ख चरियं उद्धं) थोड़ी २ भिक्षा (चेतूण) ग्रहण करके (आगतो गुरुजणस्स पासं) गुरुजन के पास आया हुआ, (गमणागमणातिचारे) गमनागमन के अतिचारो का (पडिक्कमण पडिक्कते) ईर्ष्यापथिक प्रतिक्रमण से प्रतिक्रमण करके (गुरुजणस्स गुरुसदिट्टुसवा) गुरु या गुरु से अधिकार पाये हुए उपाध्याय आदि के पास (आलोयण दाणं च) ग्रहण किये हुए आहार पानी की यथावत् आलोचना कर उनको दिखादे (दाउण) गुरुजनों को देकर (जहोपदेस) उपदेश के अनुसार (निरइयारं च) और अतिचार रहित (अप्पमत्तो) प्रमाद से दूर रहने वाले साधु (पुणरवि) फिर भी (अणे सणाते) अज्ञात रूपमें छुटे हुए एपणा के दोषों को (पयतो) यत्नवान् (पडिक्कमिन्ता) कायोत्सर्ग से प्रतिक्रमण करके (पसते) प्रशान्त दशा वाला याने उत्सुकता रहित (आसीण सुहनिसन्ने) और आसन पर सुख पूर्वक निरावाधपने बैठा हुआ (माणसुहजोगानाणसज्जाय गोवियमणे) ध्यान गुरुजनों की सेवा आदि शुभ योग, ज्ञान-तत्त्वचिन्तन और स्वाध्याय-शास्त्र पाठ रूपसे मनको गोपन करके (धम्ममणे) श्रुत चारित्ररूप धर्म में मन वाला, (अविमणे सुहमणे) शून्य चित्त

नहीं बना हुआ शुभ विचार वाला, (अविनाहमये समाहिममस्य) कदाह मृत्यु
 या दुःप्रह से रहित मन वाला और त्यस्य मम वाला (सदा रुषेगनिश्चरन्ने)
 अज्ञा-रुषेगज्ञान तथा संयममें निश्चल विश्वास, संवेग-मोहमारा में अमिलाया वा
 संसार से भय, और कर्म निर्जरा में उत्तर मन वाला (पवयस्य दपयक भाविदन्ने)
 प्रवचन-शास्त्र तथा शासन के प्रेम से भरपूर विचार वाला (मुहुत्तमेत्) मुहुर्त भर
 ऐसा बैठा रहे (छ्दहेऽस्य य) फिर बैठकर (पद्ममुद्वे) अविशय प्रसोद सहित
 (जहारादणियं) ओ सीधा आदि से दहे हों उनके अनुसार (भावधो) भाव-
 आदर बुद्धि से (साहवे) साधुओं को (निमहत्ता) निमन्त्रण करके अर्थात्
 उसमें से लेने की प्रार्थना करके (विश्रये य) और वेद के (गुरुमनेसं) गुरुजनों
 से आहार के विधीयं कर लेने व सप्तकी वे चुकने पर बाह आका देने पर (न्य
 विद्वे) योग्य आसन पर बैठा हुआ । ससीस काँच दहा करतर्क सपमम्बिडस्य)
 मस्तक सहित शरीर तथा हाथ कतसे को रखोहरस्य से अच्छी तरह प्रमार्जन-
 पूज करके (अमुच्छिते) आहार में मूर्च्छा रहित (अगिद्वे) पाई वस्तु में
 लालसा रहित (अगद्विप) अमात वस्तुओं में अमिलाया रहित
 (अगद्विते) प्रतिकूल पदार्थों में नहीं करना हुआ (अशम्भेवदन्ने
 रसों में लक्ष्मी नहीं होता हुआ (अयाश्ले अलुद्वे अखत्तद्विते) हृदय की मरिक्ता
 रहित, पदार्थों का लोभ नहीं करने वाला व परमार्थ बुद्धिवाला साधु (अमुरसुरं
 अक्षयचर्यं) सुर सुर, भव नय आदि ध्वनि नहीं करता हुआ (अतुतमविहोविर्ष)
 अधिक बल्मी या अधिक वेरी से नहीं अर्थात् मोहनके योग्य काल में (अपरिसाहिं ।
 नीचे नहीं गिराते हुए (आक्षोभमारये) प्रकाश में और प्रकाशमान पात्र में (अर्ष)
 मन व इन्द्रियों के संयम पूर्वक (पवसेय्य) प्रयत्न पूर्वक (पययस्य सजोग मणिमाहूष)
 रूप व सज्ज के संयोग नहीं मिलाने रूप संयोजना होय रहित और धरस आहार
 पर राग करने रूप इंगाल होय से दूर और (विगय पूर्व) नीमस आदि प्रतिकूल
 पदार्थ पर ईष्य करने रूप घृणहोय से रहित (अक्लोयं) गाड़ी के चाकमें तेल लगाने
 और (अयाणुक्षेयस्य मूर्धं) घाय पर ज्ञेय करने के समान जैसे परिमित आहार को
 (संजम जाया माया निमित्तं) संयम भार का बाह्न करने के लिये (संजम भार
 पद्वद्वृपाप पाण धारणद्वये) संयम रक्षा के लिये और केवल प्राण धारण मात्र
 करने लिये (समिर्षं) समिति से मुक्त संजपण्य) साधु । भुञ्जन्ता) आहार करे ।

(एवं) इस प्रकार (आहार समिति जोगेण) आहार ग्रहण आदि की योग्य प्रवृत्ति के योग से (अंतरप्पा) अन्तरात्मा (भावितो) भावित (असबलमसकिलिट्टु निव्वण चरित्त भावणाए) निर्मल व संक्लेश रहित और अखंडित चरित्र की भवना वाला (अहिंसए) अहिंसक (संजए) संयत (सुसाहू) सुसाधु (भवति) होता है । -

मूल—“पंचमं आदान निक्खेवणा समिई—पीठ फलग—सिज्जा—संथा—रग—वत्थ—पत्त—कंबल—दंडग—रयहरण—चोलपट्टग—सुहपोत्तिग—पायपुंछणादी, एयंपि संजमस्स उववूहणट्टयाए वात्ता—तवदंस—मसग—सीय—परिरक्खणाट्टयाए, उवगरणं रागदोसरहितं परिहरित्तव्वं, संजमेणं गिच्चं पडिलेहण—पप्फोडण—पमज्जणाए अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइसययं, निक्खियव्वं च, गिरिहयव्वं च, भायण भंडोवहि उवगरणं, एवं आयाण भंड—निक्खेवणा—समिति जोगेण भाविओ भवति अंतरप्पा, असबलमसकिलिट्टु—निव्वण—चरित्त भावणाए अहिंसए संजते सुसाहू ॥ ५ ॥

एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं 'संवरियं' होति सुप्पणिहियं, इमेहिं पंचहि-विकारणेहिं, मण—वयण—काय—परिरक्खिण्हिं, गिच्चं आमरणंतं च एस जोगो षेयव्वो, धितिमया, मतिमया, अणासवो अककुप्पो अच्छिहो असंकिलिट्टो, सुद्धो सच्चजिणमणुत्तातो, एवं पढमं संवरदारं फासियं, पालियं, सोहियं, तीरियं, किट्टियं, आराहियं आणाते अणुपालियं भवति । एवं नायसुणिणा भगवथा पन्नवियं, परुवियं, पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवरसासण मिणं आवचित्तं, सुदेसितं, पसव्यं । पढमं संवरदारं समत्तं त्तिवेमि । सूत्र ३ । २३ । इति पढमं संवरदारं ।

छाया—“पञ्चमी—आदान निक्षेपणसमिति—“पीठ फलक—शय्या—संस्तारक—वत्त, पात्र—कम्बल—दण्डक—रजोहरण—चोलपट्टक—मुखपोतिका—पादपुञ्जनादय, एतदपि सयमस्योपबृंहणार्थं, वाताऽऽतप दंश मशक शीतपरिच्छेदार्थमुपकरणं, राग द्वेपरहितं परिहर्तव्यम्* सयमे(ति)न नित्यं प्रतिलेखन—प्रस्फोटन—प्रमार्जनाभि अहञ्च

- १ क सचरिय । २ क अकुलसो । ३ क अच्छिहो अपरिस्माती ।

* वारयितव्यमित्यर्थः ।

नहीं बना हुआ शुभ विचार वाला, (अगिगहमये समाहितमय) कसूर मूय
 या दुराग्रह से रहित मन वाला और स्वस्थ मन वाला (सदा स्वैगनिष्करमये)
 भद्रा-तत्त्वज्ञान तथा संयममें निष्कल भिन्नास, सयोग-सोदमाग में अभिलाषा या
 संसार संभव, और कर्म निर्जरा में तत्पर मन वाला (पययय यच्छक माधिरमये)
 प्रयत्न-शास्त्र तथा शासन के प्रेम से भरपूर विचार वाला (मुहुत्तमेत्) मुहुत्त भर
 पेसा बैठा रहे (ददठेऽण्य य) फिर डठकर (पहदुदुदुठे) अहिंसा प्रमोह सहित
 (अहारादधिर्ष) ओ शीघ्र आवि से पडे हो उनके अनुसार (भावयो) भाव-
 आवर बुद्धि से (छाहये) साधुओं को (निमठइत्ता) निमन्त्रण करके अर्थात्
 वसमें से लेने की प्रार्थना करके (विइये य) और बेदर के (गुरुजयेषुं) गुरुजनों
 से आहार के वितीर्ण कर लेने व सबको वे चुकने पर भाव आका देने पर (छप
 यिट्ठे) योग्य आसन पर बैठा हुआ (ससीस कार्य रुहा करतसं संपसञ्जिठय)
 मस्तक सहित शरीर तथा हाथ कटले को रजोहरण से अच्छी तरह प्रमाद-
 पूष करके (अमुष्णते) आहार में मूर्च्छा रहित (अगिदे) पाई वस्तु में
 लालसा रहित (अगदिप) अमात वस्तुओं में अभिलाषा रहित
 (अगरहिते) प्रकृत पदार्थों में नहीं करना हुआ (अणमोपयन्ते
 रसो में सस्तीन नहीं होता हुआ (अशाहले अमुद्रे अयत्तट्टिये) इत्य की यत्नता
 रहित, पदार्थों का लोभ नहीं करने वाला व परमार्थ बुद्धिवाला साधु (असुरसुरं
 अणवपपं) सुर सुर, अण अण आवि अणि नहीं करता हुआ (अदुठमयिर्षिर्ष)
 अधिक जस्ती या कथिक बेरी से नहीं अर्थात् मोक्षके दोष्य काल में (अपरिसप्रिठि)
 नीचे नहीं गिरते हुए (आलोयभारये) प्रकाश में और प्रकाशमान पात्र में (अर्ष)
 मन व इन्द्रियों के संयम पूर्वक (पययय) प्रयत्न पूर्वक (यययय सयोग मण्णिकाकप)
 दूष व सञ्चर के संयोग नहीं मिजाने रूप संयोगना होय रहित और सरम आहार
 पर राग करम रूप इंगल हाप से दूर और (विगय पूय) नीरस आवि प्रकृत
 पदार्थ पर होप करने रूप भूषहोप से रहित (अकलोर्ष) गाड़ी के वाकमें तेज लगाने
 और (अण्णाल्लेषय भूयं) पात्र पर होप करने के समान जैसे परिमित आहार को
 (संयम जाया मावा निमित्तं) संयम मार का पाइन करने के लिये (संयम मार
 यइयदुयाय पाय पारण्टुये) संयम रक्षा के लिये और केवल प्राण्य पारण्य मात्र
 करने लिये (समिर्ष) समिति से मुक्त संयमण) साधु । मुञ्जेग्रा । आहार करे ।

(एवं) इस प्रकार (आहार समिति जोगेण) आहार ग्रहण आदि की योग्य प्रवृत्ति के योग से (अंतरप्पा) अन्तरात्मा (भाधितो) भाधित (असवलमसंकिलिट्ट निव्वण चरित्त भावणाए) निर्मल व संक्लेश रहित और अखंडित चरित्र की भावना वाला (अहिंसए) अहिंसक (सजए) संयत (सुसाहू) सुसाधु (भवति) होता है ।

मूल—“पंचमं आदान निक्खेवणा समिद्धं पीठ फलग-सिज्जा-संथा-
रग-वत्थ-पत्त-कंवल-दंडग-रयहरण-चोलपट्टग-मुहपोत्तिग-पायपुंछ
णादी, एयंपि संजमस्स उववृहणट्टयाए वाता-तददंस-मसग-सीय-परि
रवखणट्ठयाए, उवगरणं रागदोसरहितं परिहरितव्वं, संजमेणं णिच्चं
पडिलेहण-पप्फोडणा-पमज्जणाए अहो य रात्रो य अप्पमत्तेण होइसययं,
निक्खियव्वं च, गिण्हियव्वं च, भायण भंडोवहि उवगरणं, एवं आयाण
भंड-निक्खेवणा-समिति जोगेण भावित्रो भवति अंतरप्पा, असवलमसं-
किलिट्ठ-निव्वण-चरित्त भावणाए अहिंसए संजते सुसाहू ॥ ५ ॥

एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं 'संवरियं होति सुप्पणिहियं, इमेहिं पंचहि-
विकारणेहिं, मण-वयण-काय-परिरक्खिण्हिं, णिच्चं' आमरणंतं च एस
जोगो षोयव्वो, धित्तिमया, मत्तिमया, अणासवो अकलुप्पो अच्छिद्धो
असंकिलिट्ठो, सुद्धो सव्वजिणमणुत्तातो, एवं पढमं संवरदारं फासियं,
पालियं, सोहियं, तीरियं, किट्टियं, आराहियं आणाते अणुपालियं भवति ।
एवं नायमणिणा भगवथा पन्नवियं, परुवियं, पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवरसासण
मिणं आववित्तं, सुदेसित्तं, पसत्थं । पढमं संवरदारं समत्तं त्तिवेमि । सूत्र ३ ।
२३ । इति पढमं संवरदारं ।

छाया—“पञ्चमी-आदान निक्षेपणसमिति—“पीठ फलक-शय्या-सस्तारक-
वल्गु, - पात्रं-कम्बल- दण्डक- रजोहरण- चोलपट्टक-मुखपोतिका-पादपुञ्जनादय ,
एतदपि सयमस्योपवृ हणार्थं, वाताऽऽतप दंश मशक शीतपरिरक्षणार्थमुपकरण, राग
द्वैपरहितं परिहर्तव्यम्* सयमे(ति)न नित्यं प्रतिलेखन-प्रस्फोटन-प्रमार्जनाभि अहश्च .

१ क सचरिय । २ क अकुलसो । ३ क अच्छिद्धो अपरिस्तातो ।

* वारयितव्यमित्यर्थः ।

रात्रिश्च अप्रमत्तेन भवति सततम् निश्चेत्तुपञ्च प्रहीतरुपञ्च, मानजनमयबोपभ्युपकरणम् एवमादान-भण्ड निश्चेपया-समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा-अरावसाज्ज-किश्ट-निर्वाण-चारित्र्य भावनयाज्जिंसक सयत सुसाधु ।

एवमिदं संवरस्य द्वार सम्यक् सवृत भवति सुमखिहितम्, एतै पञ्चभि कारखे र्मनो वचन कायपरिरक्षितैर्नित्यमामरय्यान्तं शैपयोगेनेट्शोघृतिमता मतिमता अनालबोडकलुपोडकिद्राज्जसंक्षिप्त, ह्युद्ध सर्वजिनानुज्ञात, एव प्रथम संवरद्वारं, सृष्ट, पालितं, शोषितं, सीर्यं, कीर्तितमाराधितमाह्वयाज्जुपालितं भवति । एवं ज्ञातमुनिना भगवता प्रहृषित प्ररूपितं, प्रसिद्धं, सिद्धं सिद्धपरशासनमिहमभौषित [अभययापितं] सुवेरितं, मरास्तं, प्रथमं संवरद्वारं समाप्तमितिब्रवीमि । सूत्र १।२३।

• इति प्रथमं संवरद्वारम् •

आदान निश्चेपया समिति रूप भावना-

अन्व०—“(पंचमं) पांचवी भावना (आदान निश्चेपयस्यमिह) आदान निश्चेपया समिति (पीठ फलन सिञ्जासंवारग वत्स पत्त कवल हंडग रयहरण बोझ पट्टग-मुहपोसिग, पाम पु झखापी) पीठ फलन-पाट शय्या संस्तारक-छोटा बिहौना, वस, पात्र, कवल, हंडक रजोहरण, बोझपट्टक पहनने का कपड़ा, मुहपोसिक-मुक बक्षिका, पादप्रोन्नहन, आवि (एषधि) एह सब भी (संजमरस) समय क (उवबूहस ट्टयाप) पोषण क लिप (वातातब-बंस मसगसीय परिक्कयट्टयाप) धामु, आतप-पूप, हंरा, मराक, मप्यर और सर्कीकी रक्षाके लिखे (उवगरण) उपरोक्त उपकरणों के (राग होसरहित) राग द्वेष से रहित (परिहरितव्यं) धारण करना आविप (संभ मेर्या) संयम पूर्वक, (शिक्क) सदा (परिष्केण्य पप्फोण्य पमकय्याप) प्रति लेखना-वेखना, प्रस्पेटेन-मटकना व प्रमाज्जन करने से (अहेयराभोय) दिन व रात्रि में (सयब) सदा (अप्पमत्तेय) प्रमाद रहित (भिक्षियव्यं व) रखने योग्य और (गिण्हियव्यं) प्रणय करने-लेने योग्य (होइ) होता है (भायण भंजोवदि उवगरण) माज्ज-पात्र, मिट्टी के भाँड और उपधि-वस आवि उपकरण-वपयोगी सामग्री जो हैं (एवं) इस प्रकार (अयाण भंड निश्चेपया समिति योगेय) आदान भावना निश्चेपया समिति के भाग से (भाविभो) भावित-युक्त (अंतरप्य) अन्तरात्मा

(असबलमसंकिलिट्टु निव्वण चरित्त भावणाए) निर्मल व संक्लेश रहित और अखण्डित चरित्र की भावना से (अहिसाए संजए सुसाहू) अहिंसक, संयत सुसाधु (भवति) होता है ।

(एवमिण संवरस्सदारं) इस प्रकार यह प्रथम संवरद्वार (सम्मं) अच्छी तरह (संवरियं) अङ्गीकृत (सुप्पणिहियं) उत्तम रीति से प्रणिधान में लाया हुआ, (होति) होता है (इमेहिं पंचहिंवि कारणेहिं) इन पांचों कारणों से (मण वयण-फाय परिरक्खिण्हिं) मन वचन कायो से परिरक्षित (णिच्चं) सदा (आमरणांतंच) मरण पर्यन्त (एसजोगो) यह योग (धितिमया मतिमया) धैर्यवान् व बुद्धिमान् से (अणासवो) आस्रव रहित (अकलुणो) कायरता रहित (अच्छिदो) त्रुटि रहित (असंकिलिट्टो) संक्लेश रहित (सुदो) शुद्ध अतएव (सब्वजिण मणुत्तातो) सर्व जिनों से अनुज्ञात-अनुमत है । (एवं) इस प्रकार (पढमं) पहला (संवर दारं) संवरद्वार (फासियं) स्पृष्ट-गृहीत (पालिय) पालित (सोहियं) शोधित-शुद्ध किया (तिरियं) पूरा पाला हुआ (किट्टियं) कीर्तित (आराहियं) आराधित (आणाते अणु पालिय) आज्ञा से अनुपालित (भवति) होता है । (एवं) इस प्रकार (नायमुणिणा भगवया) भगवान् ज्ञातमुनि महावीर-ने (पन्नवियं) प्रज्ञापित (परूवियं) प्ररूपित (पसिद्धं) प्रसिद्ध (सिद्धं) सिद्ध है (सिद्धवरसासणमिणं) यह सिद्धवर शासन (आघवितं) बहुमूल्य (सुदेसितं) उपदेशित (पसत्थं) प्रशस्त (पढमं) पहला (संवरदारं) संवरद्वार (समत्तं) समाप्त हुआ (तिवेमि) ऐसा मैं कहता हूँ । सूत्र ३ । २३ ।

भावार्थ-इस सूत्र में अहिंसाव्रत को विशुद्ध रूप से पालने के लिये पांच भावनायें कही गई हैं । ये भावनायें अहिंसाव्रत का रक्षण तथा पोषण करने वाली हैं । इन भावनाओं के बल पर ही अहिंसा-प्राणातिपात विरमणरूप व्रत पालित हो सकता है, अन्यथा नहीं । अतएव उन पांच भावनाओं के स्वरूपों का निरूपण किया जाता है ।

अहिंसा-व्रत की पांच भावनाओं में पहली भावना-ईर्ष्या समिति-गमन आगमन की क्रिया में हिंसा न होने की सावधान प्रवृत्ति है । इसमें पहली बात यह है कि युग प्रमाण-प्राय चार हाथ तक भूमि पर दृष्टि रखते हुए पवित्र भूतल पर चलना चाहिए, जिससे कीट पतङ्ग आदि व्रस स्थावर जीवों की दया पाली जाय ।

दूसरी बात-पुष्प, फल, वृक्ष की गीली त्वचा, हरे पत्ते, फन्दा, मूल, जल, मिट्टा, मीठ और हरी चीजें, इन सब वस्तुओं को नहीं छूना । किसी भी प्राणी की हीलना, निन्दा, गद्दी, हत्या, खेदन, मेहन, बध नहीं करना । किसी भी प्राणी को मय में बाहु-कर्म नहीं पहुँचाना । इस ईर्ष्या समिति योग से भावित अन्तरात्मा वाक्ता अहिंसक, संयत एवं सुसाधु होता है ।

दूसरी भाषना यह है कि पापयुक्त मन से किसी भी पापमय कर्म को नहीं करना चाहिए । मनतक में घुरे विचारों को स्थान नहीं देना चाहिए । इस प्रकार मन समिति योग से अन्तरात्मा भावित होता है ।

तीसरी भाषना है कि-पापमयी वाणीसे पापयुक्त वचनको नहीं बोलना चाहिए । इस प्रकार वचन समिति योग से अन्तरात्मा भावित होता है ।

चौथी भाषना आहारवैय्या है-इसमें मिष्टा शुद्धि के लिये साधु अपना विरोध परिचय नहीं दे । उत्तम भोजन में आसक्त नहीं हो । नहीं मित्रने पर हीनता या द्वेष प्रगट नहीं कर । विधि पूर्वक निर्दोष भिक्षा को ग्रहण करने पर मा अहिंसा की आराधना के लिये यह आवश्यक है कि बहू भिक्षा गुठजनों को दिगार्ई जाय । भिक्षा में लगन वाल शायों की गुठ के पास आलोचना की जाय । और गुठ की भाक्षा प्राप्त हानि पर सावधानता के साथ सर्पया शान्तभाष से तृणभर बैठकर ध्यान किया जाय । इसके बाद अपने प्राप्त आहार से वात्मरूढ भत्र पूर्वक छठकर मुनिओं को आमन्त्रण कर । मोह या स्वार्थ शुद्धि से नहीं किन्तु भद्रता, संबेग और कर्म निजरा के भाव से । इस प्रकार गुठ और स्वधर्मी-मुनिओं का आहार करके स्वयं भोजन को बैठे । भोजन के पूव मतक में लफर सारी बेह और विरोधत कर तल का प्रमाजन किया जाय । फिर शान्ति एवं मन्नाप के साथ प्रकाश वाले स्थान तथा पात्र में भोजन किया जाय ।

भोजन करते गुरुगुर या बचपय आदि प्यनि नहीं कर । अति जल्दी या अधिक विनम्य भी नहीं कर ।

संयम यात्रा और रह की रक्षा हो आहार का प्रधान मनु है अतएव नीच नहीं गिरान हूय पूण यतना के साथ भोजन करें ।

अहिंसक मापुओं की कितनी पदराल दिनचर्या है । भूय के समय भी कैसे धीरज का उचरग दे । भाविर्षा के साथ कैसा आदर भाव दे ? तमी परी बान बुद्धि में

भी क्या भोजन जन्य मनोमालिन्य हो सकता है ? नहीं । अहिंसा की यह चतुर्भावना है । इस प्रकार आहार समिति योगसे अन्तरात्मा भावित होता है ।

पांचवीं आदान निक्षेपणा समिति है—

इसमें समय के साधन उपकरण जैसे, पीठ, फलक, शय्या, संस्तरक, वरपात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका, पाद पुंछन आदि । सब भी केवल संयमवृद्धि के लिये होते हैं जो हवा, धूप, दंश, मशक, ठढी आदि से आत्म रक्षार्थ राग-द्वेष रहित धारण करने योग्य हैं । प्रतिदिन इन भाण्डोपकरण की देखभाल और प्रमार्जना रूप क्रियाओं से शुद्धि करनी चाहिए । इसके लिये अहर्निश प्रमाद रहित होना चाहिए । इस प्रकार भाण्डोपकरण सम्बन्धी आदान निक्षेपणरूप समिति के योग से अन्तरात्मा भावित होता है । निर्मल असांस्कृतिक तथा अखण्डित चरित्र की भावना से अहिंसक, संयत, सुसाधु होते हैं । इस प्रकार यह संवरद्वार सम्यग् अङ्गीकृत व सुपालित होता है । मन वचन एवं काय से सुशुद्धित इन पांच कारणों से सदा मरणकाल पर्यन्त यह योग धैर्यवान् व मतिमत् सयमिओं से पालने योग्य है । इसमें आस्रव नहीं हो, मलिनता न हो—त्रुटि न हो, सकलेश न हो, अर्थात् सर्वथा विशुद्ध होना चाहिए । ऐसा ही सर्व जिनेन्द्रों के द्वारा कहा गया है । ऐसी ही आराधना से यह संवरद्वार स्पृष्ट, पालित, शोधित, तीव्र कीर्तित और आराधित होता है । और भगवान् की आज्ञानुसार अनुपालित होता है । इस प्रकार ज्ञातमुनि-भगवान् महावीर ने फरमाया है जो सिद्ध है और प्रसिद्ध है । यह श्रेष्ठ सिद्ध का अनुशासन है, बहुमूल्य है । उपदिष्ट है । प्रशस्त है । इस प्रकार यह प्रथम संवरद्वार पूर्ण हुआ । सू० १ । २३ ।

❀ समाप्तं प्रथमं संवरद्वारम् ❀

❀ सच्चिदानन्दं सान्त्वयार्थं भावयार्थम् ❀

* अथ *

ॐ द्वितीय संवर द्वारम् ॐ

पहले संवरद्वार में प्राणतिपात विरमणप्रत कहा गया अब शूपावाद विरमणप्रत कहते हैं। अहिंसा की संयोजनस्थापना के लिये शूपावाद विरमण—सत्य की आवश्यकता है। सत्य के बिना अहिंसा का पूर्ण पालन नहीं हो सकता। इसलिये अहिंसा के बाद शूपावाद विरमणरूप दूसरा संवरद्वार कहा जाता है। जिसका प्रथम सूत्र निम्नलिखित है—

सत्य का महिमाशाली स्वरूप—

मूल—” अंबु ! पितृय च सप्तवयस्य सुदं सुधियं सिधं सुजायं सुमा—
 सिधं सुख्यं सुकहिं सुदिह सुपतिष्ठियं सुपदद्वियजतं सुसंजमिय वयस्य सुह्यं
 सुर धर नर बसम पथर बसवग सुविहिय जस्य बहुमयं, परमसाहु धम्मचरस्य
 तव नियम परिग्गहिं, सुगतिपहदेसगं च सोगुचम वयमिणं विआहर ग
 गयगमस्य विआससाहकं, सम्म मग्ग सिद्धि पहदेसकं अविहहं संसंघं उज्जुपं
 अकुदिसं भूपत्यं, अत्यसां विसुदं उज्जोयकरं पमामकं भवति सम्भमावास्य
 जीवलोगे अविंसवादि अहत्य मधुरं पथसुतं दमिषयं वजंतं अन्धेरकारकं
 अवत्यंतरेसु बहुणसु माणुसार्यं सन्धेस्य महाससुद मज्जेवि विह्व ति न
 निमज्जति म्हाशिया वि पाया सन्धेस्य य उदग संममं मिधि न पुज्जइ न प
 भरति धाहति समंति । सन्धेस्य अगसि संममं मिधि न इज्जति उज्जुगा

मणूसा । सच्चैण य तत्ततेल्ल तउ लोहसीसकाइं छिन्नंति धरेंति नय डज्झंति,
मणूसा । पव्वयकडकाहिं मुच्चंते न य मरंति । सच्चैण य परिग्ग
हिया असि. पंजरगया समराओ विण्णिइंति, अण्णहाय सच्चवादी वह-
बंधभियोगवेर घोरेहिं पमुच्चंतिय अमित्तमज्झाहिं निंइंति अण्णहा य सच्च-
वादी । सादेव्वाणिय देवयाओ करेंति सच्चवयणे रताणं ।

छाया-“जम्बू ? द्वितीयञ्चसत्यवचनं शुद्धं सुचितं शिषं सुजातं सुभाषितं सुव्रतं
सुकथितं सुदिष्टं सुप्रतिष्ठितं सुप्रतिष्ठितयशस्कं सुसंयमित, वचनोक्तं सुरवर नर वृषभ
प्रवर बलवत्सुविहितजन बहुमत परमसाधु धर्मचरणम् तपोनियम परिगृहीतं सुगति-
पददेशकं च लोकोत्तमं व्रतमिदं विद्याधर गगन गमन विज्ञान साधकं स्वर्गमार्गं सिद्धि
पद देशकम् अवितथं तत्सत्यऋजुकम् अकुटिलं भूयोऽर्थमर्थतो विशुद्धमुद्योतकरं प्रभा-
सक भवति सर्वभावानां जीवलोकेऽविसंवादि यथार्थं मधुरं प्रत्यक्षं दैवतकमिष यत्त
दाश्चर्यकारकम् अवस्थान्तरेषु बहुषु मनुष्याणां सत्येन महासमुद्रमध्येऽपि मूढानीका
अपि पोता । सत्येन च उदकसम्भ्रमेऽपि न निमज्जन्ति न म्रियन्ते तीरते लभन्ते ।
सत्येन च वह्नि सम्भ्रमेऽपि न दहन्ते ऋजुका मनुष्याः सत्येन च तप्ततैल तप्तलौहसीस-
कानि क्षिपन्ति, धरन्ति न च दहन्ते मनुष्याः । पर्वतकटकद्विमुच्यन्ते । न च म्रियन्ते
सत्येन च परिगृहीता असिपञ्जरगता. समरादपि निर्यान्ति, अनघाश्च सत्यवादिनो
बध वन्धाभियोगवैर घोरेभ्य. प्रमुच्यन्ते चामित्रमध्यादपि निर्यान्ति अनघाश्च सत्य-
वादिन सादेव्यानि (सान्निध्यानि) कुर्वन्ति सत्यवचनेरतानाम् ।

अन्व०-“(जवू ?) हे शिष्य जम्बू ! (वितियंच) अहिंसारूप प्रथम संवर के
बाद फिर दूसरा संवर (सच्चवयण) सत्यवचन जो सज्जनों के लिये अथवा द्रव्य
और गुणों के लिये हितकारी है (शुद्धं) दोष रहित (सुचियं) पवित्र (सिष)
उपद्रव रहित (सुजायं) शुभ विचार से उत्पन्न (सुभासियं) अतएव सुभाषित
(सुव्वय) सुव्रत-श्रेष्ठ व्रत रूप (सुकहियं.) और सम्यक् विचार पूर्वक कहा गया
(सुदिट्टं) कल्याण के साधन रूप से ज्ञानियों के द्वारा अच्छी तरह देखा गया
(सुपतिट्ठियं) सुप्रतिष्ठित-सभी प्रमाणों से प्रतिष्ठा प्राप्त है (सुपतिट्ठियजम्)
अच्छी तरह स्थिर कीर्ति वाला (सुसंजमिय वयणं बुहयं) सम्यक् प्रकार के संयम
युक्त वचनों से बोला गया, (सुरवर) उत्तम जाति के देव (नर वमभ) प्रधान
पुरुष (पवर बलवग सुविहितयणवहुमयं) अनिश्चय बलधारी और सुविहित मनुष्य

सत्यन पुरुष का सत्यव्रत बहुत माना हुआ है (परम साधु धम्म परमं) नैतिक सुनिष्ठा का धार्मिक अनुष्ठान (तव नियम परिभाषित्यं) और तप नियम से स्वीकार किया गया है (सुगतिपहृदेसगं) सुगति मार्ग का उपवेशक (च) और (लोयुत्तमं) लोक में उत्तम (वसमिण्यं) यह सत्य व्रत है, (बिजाहर गगण्य गमय्य विद्याया साहकं) विद्याधरों की आकाश गामिनी आवि विद्याओं का साधन (सम्य ममा सिद्धि पद्द बेमक) स्वर्ग के मार्ग और सिद्धि पथ का प्रवर्तक तथा (अविदह) असत्य से रहित है (स सत्त्व) वह सत्य नाम का दूसरा स्वर (उग्रमुच्यं) सरल भाव से प्रवर्तित होने से अज्ञु तथा (अकुर्विजं) कुटिलता रहित (भूयत्वं) सद् भूत अर्थात् वास्तव (अत्यतो विसुखं) अर्थ प्रयोजन से विरुद्ध (उग्रोयकर) परार्थ का प्रकारक (सख्य भाषाण्यं) सख पक्षों का (जीव लोके) जीव लोक में (पमामकं) अक्षी तरह कथन करने वाला (भवति) होता है (अविसेधादि) हाथ विरोध रहित (अहत्य मधुरं) यथार्थ होने से मधुर (पक्कसं) प्रत्यक्ष (इयिवयं) ईश्वर वच-की तरह (जं) जो (माणुसाण्यं) मनुष्यों की (बहुपसु अवत्पत्तरेसु) बहुत सी अवस्थाओं में-वरा विरोध में (तं) वह सत्य (अख्खेर कारकं) आश्चर्य कारक होता है (सख्खेण) सत्य के कारण (महासमुदमम्मोधि) बड़े समुद्र के मध्य में भी (मूढाधिवा वि) मूढान्तिक शिग्नम में पड़े हुए बालकसमूह वाले भी (पोवा) पोत-नौका अहाज 'पार लगते हैं (सख्खेण्य) और सत्य से (उग्रसंममं मिदि) जल के तेज प्रवाह में या भँवर में भी (न मुग्गह) नहीं डूबते (न य मरंति) और अपमृत्यु से नहीं मरते हैं (याहं वे लमंति) गिरे हुए वे सत्यव्रती रताप-मूमि तल को प्राप्त करते हैं अर्थात् हूयने के प्रसङ्ग में भी वे सत्यव्रती सत्य के प्रभाव से आभय पा लेते हैं (सख्खेण्य) और सत्य से (अगणि संममं मिदि) अग्नि के पककर में भी (न डग्गंति) नहीं जलत हैं (उग्रुगा मणुसा) सरल हृदय वाले मनुष्य (सख्खेण्य) फिर सत्य के प्रभाव से (तत्त तल्ल तत्त कोहसीस काई) उप हुए तेज, चान्दा, सोह और सीसे को (द्विपति) धू लेते (य) और (धरंति) हाथ में धर लेते हैं । (न डग्गंति) अज्ञते नहीं (मणुसा, पक्कस कडकादि मुक्कपति) मनुष्य पर्वतके शिखरने गिराये जाते हैं, (नप मरंति) फिर भी वे नहीं मरते हैं यह सत्यका प्रताप है (सख्खेण्य परिगाहिवा) और सत्य से परिगृहीत माने सत्य व्रत बाल पुरुष (अमिपंजलया) असिपंजलगत-विजरे की तरह पारो और गड्ढ धारिओं से

धरे हुए (समरात्रो वि) समरभूमि से भी (अणुहा) अक्षत-वाल वाल बचे हुए (गिहति) निकल जाते हैं (य) और (सबवादी) सत्यवादी (सहबंध भियोग वेर धोरेहि) घघ बन्ध, अभियोग-बलात्कार पकड़े जाना और भयङ्कर शत्रुता के प्रसंगों से (पमुच्चंति) छूट-जाते हैं (य) और (अमित्तमज्भाहि) शत्रुओं के समूह से (अणुहा) विना बाधा के (सबवादी) सत्यवादी मनुष्य (गिहति) निकल जाते हैं (य) और (सबवयणे रताणं) सत्य वचन में रत रहने वाले मनुष्यों की (देवयाओ) देव लोग (सादेव्वाणि) सान्निध्य-साहाय्य (करेंति) करते हैं ।

मूल—“तं सच्चं भगवं तित्यकर सुभासियं, दसविहं चोदसपुन्वीहिं पाहुडत्यविदितं महरिसीणय समयप्पदिन्नं देविदनरिद भासियत्थं वेमाणिय साहियं महत्थं मंतोसहि विज्जासाहणत्थं चारणगण समण सिद्धविज्जं, मणुयगणाणं वंदणिज्जं, अमरगणाणं अचणिज्जं असुरगणाणं य पूयणिज्जं अयेगपासंडि परिग्गहितं । जं तं लोकंमि सारभूयां, गंभीरतरं महासमुदाओ । थिरतरगं मेरुपव्वयाओ । सोमतग्गं चंदमंडलाओ । दित्तरं सूरमंडलाओ । विमलतरं सरयनहयलाओ । सुरभितरं गंधमादणाओ जेविय लोगम्मि अपरिसेसा मंतजोगा जवा य विज्जा य जंभका य अत्थाणि य सत्थाणि य सिक्खाओ य आगमा य सव्वाणिविताइं सच्चे पइड्डियाइं । सच्चंपि य संजमस्स उवरोहकारकं किंचि न वत्तव्वं हिंसासावज्जसंपउत्तं । भेय विककहकारकं, अणत्थवाय कलहकारकं । अणज्जं अववायविवाय संपउत्तं बेलवं,ओजधेज्जवहुलं, निज्जज्जं, लोयगरहणिज्जं, दुद्धिट्ठं दुस्सुर्यां, अमुणियं । अप्पणो धवणा परेसु निंदा । न तंसि मेहावी, ण तंसि धनो न तंसि पियधम्मो न तं कुलीणो न तंसि दाणव(प)ती न तंसि सरो न तंसि पडिरुवो न तंसि लडो न पंडिओ न बहुस्सुओ नवि य तं तवस्सी ण यावि परलोगखिच्चिय मतीऽसि सव्वकालं जातिकुल रूव वाहिरोगेण वाविजं होइ वज्जणिज्जं दुहिलं (दूहओ) उवयार मतिककंतं एवं विहं सच्चंपि न वत्तव्वं । अहकेरिसकं पुणाइ सच्चं तु भासियव्वं ? जं तं दव्वेहिं

पञ्चवेहिय गुणेहि कम्मेहि बहुविहेहि सिप्येहि आगमेहि य नामक्याप
 निधा उवसग्ग तद्विय समास सैवि पदहेउ ओगिय उखादि किरिया वि
 हाय धातु सर विमत्ति वन्नशुचं विवम्भत्त दसदिहपिसन्वं बह मखियं तह
 य कम्मूया होइ दुवालसविहा होइमासा, वयशापि य होइ सोलंसविह ।
 एवं भरइत मणुभायं समिक्खियं संखण्ण कालमिय वत्तन्वं ॥ ५११ । २४ ।

१. छापा-तत्सत्यं मगवशीर्षकर सुमापितं दराविर्षं चतुर्हाराशुर्भिः प्राकृतार्थं
 विहित महर्षीणां च समयप्रवृत्तं वेवेन्द्र नरेन्द्र मापितार्यं वैमानिकसाधित महाबं मन्त्र-
 पधिविशासापनार्यम् । आरयगण्य ममया सिद्धयेयं मनुजगणानाञ्च मन्त्रनीयम् कमर
 गणानाञ्चाऽर्पनीयम्, असुरगणानाञ्च पूजनीयम्, अनेकपापरिहपरिशुद्धीतम्, एत
 श्लोकं सारमूठं शम्भोरत्तर महासमुद्रान् स्थिरतरकं मेरुपर्वतात्, सौम्यतर चन्द्रमण्ड
 लान्, दीप्ततरं सूर्यमण्डलान्, विमलतरं शारद्वनभस्तलान्, सुरमितरं गन्धमादनान् ।
 वेऽपिचलोकेऽपरिशेषा मन्त्रयोगा अपाञ्च विद्याञ्च जन्मकाञ्च अस्त्राणि च शस्त्राणि
 च शिवाञ्चाऽऽगमाञ्च सत्यानि च तानि सत्ये प्रतिष्ठितानि, सत्यमपि च संस-
 स्योपरोपकारक किञ्चिदपिनोयच्छस्यम् हिंसासाधनसम्प्रयुक्तं मेह-विषयाकारकम्
 अतयबाह्यलङ्कारकम् अनार्यम् अपवाद् विद्यायु सम्प्रयुक्त-विदम्ब्यम् ओजोपैर्बहुर्भुं
 निर्लम्बं लोकाग्रणीयं दुष्टष्ट दुःभुतममनोहम्, आसन रथापमा परेषु निरा,
 न तत्रमेपायी, न तत्रभव्यो न तत्र प्रियघर्मो न तत्कुञ्जीनो न तत्र शानपतिर्न तत्र शूरो
 न तत्र प्रतिरुपा न तत्र लक्षो न परिहृतो न बहुभुतो नापिच तत् सपस्वी न चापि पर
 काक निश्चित मतिररित । सत्यकाल जातिवृत्त-रूप-व्यापिरोगण-धापि यद्भवति
 वजनीयम्, दुःखत उपकारमतिक्रान्तेवेवंविध सत्यमपि न वच्छस्यन, अयकीदराकं
 पुनरपि सत्यन्तु मापितम्यम् । यत्तद्वृत्त्यै -यथावैश्व, गुणै कर्ममिबहुविधै रिक्तै
 रागमैश्च नामाऽऽयात निपातीपमर्ग-तद्वित समाससम्भिवद्दत्तु यौगिकीणादि क्रिया
 दिपात धातु ग्बरदिभक्तियर्यायुक्त त्रिकालं दराविषमपिसत्यं-यथा मखियं तथा च
 कमला भवति इन्द्राविधा भवति भाया वयनमपि च भवति वाइराविधम् । एव
 म्पाईदनुगत समीकितं गदमिना फाळं च वच्छस्यम् । सूय १ । २४ ।

च-४०-“ (त राधं) इम प्रवत्त का वद सत्य महामन (भगवत्) मगपाप-
 अनिराय मगवत्त (तित्वापर गुभासिर्ष) मीधपूर्ये स अरुहो तरद वदा गया
 (इगविह) दग प्रवत्त का द (चादम पुर्वीदि) चतुरंरा पूर्व पारिवो न (पादुद

त्यत्रिदितं) जिसे पूर्वका एक अंश होने के कारण अर्थ रूप से जाना है । (महर्षि-
सीण्य) और महर्षि-मुनिओं को (समयप्पदिन्तं) सिद्धान्त रूप से दिया गया
अर्थात् साधुओं के द्वितीय महाव्रत में सिद्धान्त के द्वारा सत्य स्वीकार किया गया
है । (देविन्द नरिन्द भासियत्थं) देवेन्द्र तथा नरेन्द्र-राजाओं ने लोगो में जिसका अर्थ
कहा है, अथवा देवेन्द्र आदि को जिसका प्रयोजन तत्त्वरूप में कहा गया है वैसा
(वेमाणिय साहिय) वैमानिक देवों से समर्थित एवं आसेवित है (महत्थ) बड़े
प्रयोजन वाला (मतोसहि विज्जासाहणत्थं) मन्त्र, औपधि और विद्याओं के
साधन में अर्थयुक्त याने साधना का कारण है (चारण गण समण सिद्धविज्जं)
विद्या चारण आदि मुनिवृन्द की विद्याओं को सिद्ध करने वाला (मणुयगण्ण
वन्दणिज्जं) मनुष्य गणों का वन्दनीय-स्तुति पात्र (अमर गण्ण अञ्जणिज्ज)
देवगणों का अर्चनीय-आदर पात्र (असुरगण्ण च पूजनीय) असुरकुमार आदि
भवनपति-देवों का पूजनीय-बहुमान पात्र और (अरोग पासडि परिगहितं) विविध
प्रकार के व्रतधारिओं से धारण किया गया है (जं) जो पूर्वोक्त महत्त्व वाला है (तं)
वह सत्य (लोगमि सारभूय) लोकों में सारभूत (महा समुद्दाओ गभीरतर) एवं
महा समुद्र-त्वण आदि विशाल समुद्र से अधिक गम्भीर (मेरु पव्वयाओ थिरतरग)
मेरु पर्वत से भी अधिक स्थिर (चन्दमंडलाओ सोमतरगं) चन्द्र मण्डल से
विशेष सौम्य तथा (सूरमडजाओ वित्तर) सूर्य मण्डल से अधिक दीप्ति वाला
(सरयनहयलाओ तिमलतर) शरत् काल के आकाश तल से अधिक निर्मलता
वाला और (गंधामादणाओ सुरमितर) गन्धमादन नामक गज दन्त से विशेष
सुगन्धि वाला है (जेविय) और जो भी (लोगमि) ससार में (अपरिसेसा मत-
जोगा) हरिणगमेपी आदि के सर्व मन्त्र तथा व्रशीकरण आदि योग (जघाय)
और जप (विज्जा य) प्रज्ञप्ति आदि विज्ञायें और (जभका) जम्भक देव (य)
और (अत्थाणि) धनुष आदि अस्त्र (सत्थाणि य) और शस्त्र अर्थ शास्त्र आदि
शास्त्र या खड्गादिशस्त्र (सिक्खाओ य) और कलायें (आगमा य) सिद्धान्त-ज्ञान
के तत्त्व शास्त्र हैं (सर्व्वाणि वित्ताइ) वे सभी पूर्वोक्त मन्त्रादि (सच्चे पइट्टियाइं)
सत्य में प्रतिष्ठित हैं (सच्चमिं य) और सत्य भी (सज्जमस्स उवरोह कारक) समय
में बाधक हो वैसा (किंघिन वत्तव्वं) किंचिन्मात्र भी नहीं बोलना चाहिए जैसे
(हिंसा सावज्जसमउत्त) हिंसा व पाप युक्त क्रिया के योग वाला (भेयधिकह

कारक) इतान तथा आदित्र में भेद करने वाली भी आदि को विदधा मुक्त वचन (अयत्नयाय कदाह कारक) निष्प्रयोजन वचन और कदाहकाठी (अरुम्भ) अनार्थ के योग्य अथवा न्याय हीन वचन (अववाय विषाण संपत्ता) अववात्-मिन्वा और विरोध मुक्त वचन (वेत्तं) दूसरों की विदम्बना कारी वचन (भोज भेम्भबहुत्) वल और घृष्टा-धिठार्ह की अधिकता वाता (नित्कवर्ज) कजा रहित (सोपगच्छयिग्मं) लोक में निवन्तीय वचन (इरिद्दु) अथवा तरह नहीं देखा हुआ (दुस्सुयं) घुठी तरह से सुना हुआ, (असुणियं) पूर्ण रीति से नहीं वाला हुआ, पाने अज्ञात विषय का क्यन (अणखो यषणा) अपनी स्तुति तथा (परेतुर्निता) दूसरों के सम्बन्ध में निन्दा करना जैसे कि- (न तंसि मेहावी) तू महल-पारणा शक्ति सम्पन्न मेधावी नहीं है (य तंसिपन्नो) तू धन पाने योग्य नहीं है (न तंसि पियधम्मो) तू प्रिय धर्मा-धर्म प्रेमी नहीं है (न तं कुलीयो) न तू कुलीन है (न तंसिवाणपती) दान देने वाला भी तू नहीं है (न तंसिसुरो) तू शूर नहीं है (न तंसि पबिह्वो) तू रूप सम्पन्न भी नहीं है (न तंसिकट्ठो) न तू सौमत्प्रयासी है (न पंडिधो) न परिदत्त है (न बहुस्सुधो) तू बहुत शास्त्र का ज्ञानकार नहीं (न विपत्तं तवस्सी) तू तपस्वी भी नहीं है (य पाणि पर जोगणियिद्धयमतीप्सि) और तू पर लोक के विषय में निम्नित बुद्धि वाला भी (सच्च कार्त्त) सर्व काल-भाज्यम् (नप्सि) नहीं है, इस प्रकार (आति कुल रूप बाहिरोगेखवादि) आति-मातृवंद, कुल-पितृ वंश, रूप, व्याधि-कुल आदि अववा रोग-व्वर आदि से जो भी वचन (वज्रविम्भं पर पीडाकारी होने से वर्जनीय (होह) है (दुह्मो) दुष्प्र और भाव से (वषमार मतिक्कंठं) वषचार-आदर वा वषकार रहित हो (पर्व विहत्त च्चपि) इस प्रकार का सत्य भी (न वचम्भं) नहीं बोलना चाहिए।

जब जो सत्य वचन बोलने योग्य होता है प्रथम पूर्वक इसका स्वरूप कहते हैं- (अह केरिसर्कं पुच्छाह सच्चत्तु मासियम्भं) अथ फिर कैसा सत्यमी वचन बोलने योग्य है ? अत्तर-(अ) जो सत्य (इन्नेहिं पज्जेहेहिं) दुष्प्र और पर्याय-व्यवस्थाओं से गुणोर्हि कम्भेहिं) वर्ण आदि गुणों से ऊपि आदि कर्मसे (वहुविहेहिं सिम्भेहिं) बहुत प्रकारक पिच आदि शिल्प (आगमेहिं) और सिद्धान्त के अर्थों से (नाम वच्चाव) नामपद देवदत्त आदि, आख्यात- क्रियापद भवति आदि (निवा ववसम्भ तद्धित समास अथि चह देव जोगिव अथादि विरिया विहाय पातु सर विममि वक्तवुत्त) निपात-

ष घा आदि, उपसर्ग-धातु के साथ लगने वाले प्र परा आदि, तद्धित-तद्धित प्रत्यय जिनके अन्त में हों जैसे नाभेय आदि पद, समास-अनेक पदों को एक साथ मिला कर एक पद करना जैसे राजपुरुष आदि, सन्धि-समीपतासे पदों का सम्यन्ध विशेष जैसे ध्यानय आदि, हेतु-अनुमान का अङ्ग विशेष, यौगिक-दो आदि के संयोग वाला पद अथवा जिस पद के अवयवार्थ से समुदायार्थ जाना जाय जैसे पाचक पाठक आदि, उणादि-उण् आदि उणादिगण के प्रत्यय जिनके अन्त में हों जैसे साधु, स्वादु आदि क्रियाविधान-क्रिया का विधान करने वाला पाचक आदि पद, धातु-क्रियाका कथन करने वाले भू आदि,स्वर-आकार आदि या षड्जादि सप्तस्वर विभक्ति-प्रथमा आदि सात विभक्तिपद और वर्ण-ककार आदि व्यञ्जनों से युक्त (तिकल्लं) त्रिकाल विषयक (दसविहंपि) दश प्रकार का भी (जहभणियं) जैसे वचन (तह्य) वैसे ही (कम्मुणा) लेखन व चेष्टा आदि क्रिया से दश प्रकार का (सक्चं) सत्य (होइ) होता है (दुवालस विहा होइ भासा) वारह प्रकार की भाषा होती है (वयणपि यहोइ सोलसविहं) और वचन भी सोलह प्रकार का होता है (एणं) इस प्रकार (अरहंत) तीर्थङ्करों से (मणुजायं) अनुज्ञात (य समिक्खियं) और अच्छी तरह विचार पूर्वक सोचा हुआ वचन (संजएण) संयमी साधु को (कालमिय) बोलने के अवसर पर (वत्तव्वं) बोलना चाहिए । २ । २४ ॥

भावार्थ-हे जम्बू ! अहिंसा व्रत के बाद फिर दूसरा सत्य वचन रूप संबन्ध है, जो शुद्ध-सुयोग्य शिव-कल्याण कारक यावत् उत्तम देव और श्रेष्ठ पुरुषों का बहुमत है, साधु धर्म का अनुष्ठान तथा सुगति मार्ग का देशक है । तप और नियमों में इसका प्रधान स्थान है । यह लोकोत्तम व्रत विद्याधरों की विद्याका साधन तथा स्वर्ग व मोक्ष मार्ग का प्रवर्तक है । मृषासे रहित यह सत्य नामका संबन्ध कुटिलता रहित सरल और वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने वाला यावत् संसार में पदार्थ मात्र का सम्यक् कथन करने वाला है, विरोध रहित, यथार्थ, मधुर और जो वह सत्य मनुष्यों की विविध दशाओं में प्रत्यक्ष देवों की तरह उपकारक होता है, सत्य के प्रताप से महा समुद्र में भी सत्यशील मनुष्य नहीं डूबते हैं, और अपमृत्यु से भी नहीं मरते हैं तथा सत्य में निष्ठा रखने वालों की सन्निधि में देव भी आते हैं, इत्यादि विविध विशेषतावाली सत्य भगवान तीर्थङ्करों से अच्छी तरह कहा गया है यह अस्व दूरा प्रकार का है, चौदह पूर्व के ज्ञानियों ने पूर्व भुत में इसको सम्यग् जाना

और साधुओं को महा व्रत रूप से दिया गया है, देवेन्द्र आदि के समक्ष कहा गया
 तथा वैमानिक वेधों से, सेवित है मन्त्र आदि की सिद्धि का साधन तथा वेद-दान
 और मानवों के लिये बन्वनीय, आश्चर्यीय एवं दुर्लभ है, अनन्त प्रकार के प्रतिष्ठाओं
 से धारण किया गया जो यह सत्य समस्त लोक में सारभूत है, गम्भीरता में समुद्र
 जैसा अति गम्भीर और गिरता, में, मेरु जैसा अकम्प है ऐसे सौम्य शक्ति और
 निर्मलता में चन्द्र सूर्य तथा स्वच्छ आकारा चन्द्र-गन्धमान्तर की उपमा जिस सत्य,
 को ही गई है, संसार में आत्मी-मन्त्र यन्त्र आदि हैं वे सभी सत्य में प्रतिष्ठित हैं,
 सत्य होकर भी जो वचन समय में बाधक हो वह नहीं बोलना चाहिए-जैसे ईसा,
 आदि पाप मुक्त तथा सत्परित्र में भेद करने; बाकी की आदि की, विष्णु मुक्त
 निरर्थक व कलह वर्जक व न्याय विरुद्ध वचन तथा लोक निन्दनीय तथा दुर्दिष्ट।
 आदि वचन अबाध्य है, अपनी स्तुति, पक्ष पर निन्दा के, वचन भी नहीं बोलना,
 चाहिए, जैसे कि सु-सुखिमान नहीं है आदि आदि कुछ रूप आदि से जो भी वच,
 वर्जनीय है इस प्रकार का सत्य भी नहीं बोलना चाहिए सत्य होने, पर भी कैसा,
 वचन बोलना चाहिए ? यह, विज्ञाते, हैं जो वचन इत्य पर्याय गुण (वर्ष और)
 विविध प्रकार के शिल्प, तथा, सिद्धान्त के, अथ से) मुक्त हो, नाम, क्रिया, निपात,
 उपसर्ग आदि से मुक्त त्रिकाल विषयक, त्रस, प्रकार का-भी, सत्य वचन, बोलने,
 और कलन आदि क्रिया से सत्य होता है, प्राकृत, संकृत आदि, बारह प्रकार की
 माप्याय तथा तीन शिल्प आदि से १६ प्रकार के वचन हैं इस प्रकार, तीर्थहरे, से-
 ब्युहाव सुचिन्तित वचन ही अवसर, पर, बालना आदि, अन्यथा, नहीं बोलना
 चाहिए।

असत्य परिहार के लिये (जिन शासन और) सत्य वचन की पाण्डु-मावना-

मूल-“इर्मन्त्र-अक्षिप पिसुस फलस कड्य ववल वप्रल परिरक्खस्यईयाप
 पावयण भगवया मुकहियं अचहियं पंचामात्रिकं आगमेसिमर्दः सुदं
 नेयाठर्यं अकृदिलं अशुचरं, सम्बदुक्खपावायं विओसमयं, तस्स इमा
 पन्न मावसाओ-चितियस्स, वयस्स अक्षिप वयसस्स वेरमसु-परिरक्खस्यइ-
 याप पढमं सोऊयं संवरु परमइ सुदु जायित्थ न वेगियं न तुरियं न-
 चवलं न कड्यं न फलसं न साहसं नय परस्स पीलाकरं सावज्जं सज्जं च-
 हियं च, मियं च गाहागं च सुदं संगयम, काहलं च समिक्खितं संवत्ते क कालं मिय-”

वत्तव्वं, एवं अणुवीति समितिं जोगेण भावित्रो भवति अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सरो सच्चज्जव संपुन्नो । वितियं कोहोणसेवियव्वो, कुद्धोचंडिकियो मणूसो अलियं भणेज्ज, पिसुणं भणेज्ज फरुसं भणेज्ज अलियं पिसुणं फरुसंभणेज्ज, कलहं करेज्जा वेरं करेज्जा विकहं करेज्जा कलहं वेरं विकहं करेज्जा सच्चं हणेज्ज सीलं हणेज्ज विणायं हणेज्ज सच्चं सीलं विणायं हणेज्ज वेसो हवेज्ज वत्थुं भवेज्ज गम्मोभवेज्ज वेसोवत्थुं गम्मो भवेज्ज, एयं अन्नं च एवमादियं भणेज्ज कोहग्गि संपलित्तो तम्हा कोहो न सेवियव्वो, एवं खंतीइ भावित्रो भवति अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सरो सच्चज्जव संपुन्नो । ततियं लोभो न सेवियव्वो, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं खेत्तस्स व वत्थुस्स व कतेण १ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं कित्तीए लोभस्स व कएण २ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं रिद्धीय (ए) वसोक्खस्स व कएण ३, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं भत्तस्स व पाणस्स व कएण ४, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं पीढस्स व फल्लगस्स व कएण ५, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं सेज्जाए व संधारकस्स व कएण ६, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं तत्थस्स व पत्तस्स व कएण ७, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं कंवलस्स व पायपुं छणस्स व कएण ८ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं सीसस्स व सिस्सिणीए व कएण ९, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं अन्नेसुय एवमादिसु बहुसु कारणासतेसु, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं तम्हा लोभो न सेवियव्वो, एवं मुत्तीय भावित्रो भवति अंतरप्पा संजयकर चरण नयण वयणो सरो सच्चज्जव संपुन्नो ।

छार्या-“इदञ्चाऽलीकं पिशुनं परुषं कटुकं चपलं वचनं परिरक्षणार्थाय प्रवचनं भगवता सुकथितमात्महितं प्रत्येभाविक्कम् आगमिष्यद्भद्रं शुद्धं न्यायोपेतम् अकुटिलम् अनुत्तरं सर्वदुःखं पापानां व्युपशमनम् । तस्येमां पञ्चभावनां द्वितीयस्य व्रतस्य अलीकवचनस्य विरमणं परिरक्षणार्थतायै प्रथमं भूत्वा संवरोर्थं परमायं सुष्ठु ज्ञात्वा न वेगितं न त्वरितं न चपलं न कटुकं न परुषं न साहसं न च परस्य पीडाकरं सावद्यं सत्यञ्च हितञ्च मिलञ्च ग्राहकञ्च शुद्धं सङ्गत्तं काहलमपोपञ्च समीक्षितं सयतेन काले च वक्तव्यम् । एवमनुविचिन्त्य समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा

संयतकर चरखनयनवदनं शूटः सत्सार्जव सम्पूर्णं (सम्पन्नं) । द्वितीयं क्रोधो न सेवितम्बः क्रुद्धापरिहृषितो मनुष्योऽस्तीकं मयात्, पैशुन्यं मयेत्, पदं मयेत्, अतीकं पैशुन्यं पदं मयात् । कर्तुं कुर्यात्, विरं कुर्यात्, विक्रमां कुर्यात्, कर्तुं वैरं विक्रमां कुर्यात् । सत्यं इत्यात्, शीकं इत्यात्, वितयं इत्यात्, सत्यं शीकं विनयं इत्यात्, द्वेषो भवेत्, वस्तु (क्रोधस्यात्) भवेत्, प्राम्भो भवेत्, द्वेषो वस्तु प्राम्भो भवेत् । एतद्व्यक्तवैवसादिकं मयेत् क्रोधाग्निं सम्प्रदीतं तस्मात् क्रोधो न सेवितम्बः, एवं ज्ञान्त्या भावितो भवत्यन्तरात्मा संयतकर चरख नवनवदनः शूटः सत्सार्जव सम्पन्नः । तृतीयं क्रोधो न सेवितम्बो सुष्यो क्रोशो मयेत् अतीकं क्रेश्च वा वस्तुनम्रहृत् १ सुष्यो क्रोशो मयेत्-अतीकं कीर्तयेत् क्रोमस्व वाक्ये २ । सुष्यो क्रोशो मयेत्कीकम्पुदयेवासौष्यस्य च कृते ३ । सुष्यो क्रोशो मयेत्कीक मच्छस्य वा पात्रस्य च कृते ४ । सुष्यो क्रोशो मयेत्कीकं पीठस्य वा फलकस्य च कृते ५ । सुष्यो क्रोशो मयेत्कीकं शय्याया वा संस्तारकस्य वा कृते ६ । सुष्यो क्रोशो मयेत्कीकं बस्त्रस्य वा पात्रस्य च कृते ७ । सुष्यो क्रोशो मयेत्कीकं कम्बुजस्य वा पादप्रोम्बुजस्य च कृते ८ । सुष्यो क्रोशो मयेत्कीकं शिष्यस्य वा शिष्यायाश्चकृते ९ । सुष्यो क्रोशो मयेत्कीकं मन्त्रेषु चैव मादिषु बहुषु कारगरतेषु, सुष्यो क्रोशो मयेत्कीकम् । तस्मात्क्रोधो न सेवितम्बः एवं सुक्षया भावितो भवत्यन्तरात्मा संयत कर चरण नयन वदनं शूटः सत्सार्जव सम्पन्नः ।

अन्व०—“(इमं) और यह (पापपूर्ण) प्रवचन (अक्षय पिसुख पदस्य क्रुद्ध वचन वपण परिरक्षणादुवाप) क्रुद्ध, पिशुन-परोक्ष में दूसरे के रूपक करने रूप, पठन-पठने क्रुद्ध और अस्फुटा से बिना विचारे बोले हुए वचन से आत्मा की अच्छी तरह रक्षा करने के हेतु (भगवता) भगवान् महावीर ने (सुकदिवं) सम्यक् रीति से कहा है (अच्छदिवं) आत्मा के लिये हितकारी (वेदामादिकं) परलोक में शुभ फल देने वाला (आगमेसिमाहं) भविष्य में कल्याण का कारण तथा (सुदं) शुद्ध (नेयाश्वं) न्याय युक्त (अक्षुदितं) कुदित कथा रहित (आणुचरं) सर्व भेद और (सम्बहुक्लपाकार्यं) सब दुःख एवं पापों का (विचसमणं) उपशान्त करने वाला है (तस्य) उस (विधियस्त वपस्य) दूसरे ऋषि (इमा) ये नीचे बड़ी जाने वाली (पंच भाष्याधो) पांच भाष्यतायें (अक्षिपवपयस्य वेरमण्य परिरक्षणादुवाप) अक्षय वचन विरमण्य याने अक्षय

याग रूप व्रत को रक्षा के लिये होती है जैसे (पढमं) पहली भावना, विचार पूर्वक
 बोलना (संवरट्ठं) सद्गुरु के पास मृपावाद विरमण रूप सचर के अर्थ को
 (सोऊण) सुनकर (परमट्टं) योग्य अयोग्य वचन के परमार्थ-सार को (सुट्टु)
 अच्छी तरह (जाणिएण) जानकर (नवेगिय) विकल्प की व्याकुलता से वेगयुक्त
 नहीं बोलना चाहिए (न तुरियं) त्वरायुक्त नहीं (न चवल) व चंचल वचन
 भी नहीं बोले (न कडुयं) उर्थ से कट्टु नहीं (न फरुसं) वर्ण से कठोर
 नहीं (न साहस) साहस प्रधान-सहसा वचन नहीं (न य परस पीलाकरं) दूसरे
 को पीडाकारी (माचज्जं) सटोप वचन नहीं बोलना चाहिए (सच्चंच) भत्य और
 (हियच) हितकारी (मियंच) और मित-परिमित (गाहगंच) वस्तुओं का यथावन्
 प्राहक-और (सुट्ट) शुद्ध-पूर्वोक्त दोष से रहित (सगयम काहलंच) संगत-योग्य
 और मन्मन-अव्यक्ताक्षर रहित (समिक्खितं) विचार पूर्वक देखा गया ही वचन
 (संजतेण) साधु को (कालमिय) अवसर पर (वत्तव्वं) बोलना चाहिए (एवं)
 इस प्रकार (अगुयीतिसमिति जोगेण) विचार पूर्वक बोलने रूप समिति के योग
 से (भाविओ) भावित (अतरप्पा) अन्त करण वाला (सजय कर चरण नयण
 षयणो) कर, चरण, नेत्र और मुख के संयम वाला (सूरु) शूर भाधु (सच्चजव
 सपुत्तो) सत्य व सरलता से युक्त (भवति) होता है । (वित्थिय) दूसरी भावना
 क्रोधनिग्रह रूप जैसे-(कोहोण सेवियव्वो) क्रोध का सेवन नहीं करना चाहिए (कुद्धो)
 क्रुद्ध (चडिक्कियो) प्रचण्ड रूप बना हुआ (मणूसो) मनुष्य (अलिय भणेज्ज)
 झूठ बोलता है (पिसुनं भणेज्ज) परोक्ष में दूसरे के दोषों को कहता है (फरुसं भणेज्ज)
 कठोर बोलता है (अलिय पिसुण फरुस भणेज्ज) झूठ, पैशुन्य और कठोर वचन
 तीनों बोलता है (कलह करेज्जा) कलह करता (वेरं करेज्जा) विरोध करता है
 (विकहं करेज्जा) धर्म विरोधी स्त्री आदि की विकथायें करना है (कलह वेरं विकहं
 करेज्जा) कलह वैर और विकथा इन तीनों को करता है (सच्च हणेज्ज) सत्य को
 नष्ट करता है (सीलं हणेज्ज) शील-पवित्र आचार या समाधि का हनन करता है
 (विणयं हणेज्ज) विनय का हनन करता है (सच्च सीलं विणय हणेज्जा) सत्य
 शील और विनय इन तीनों का हनन करता है (वेसो हवेज्ज) असत्य भाषी लोक
 में द्वेष्य-अप्रिय होता है (वत्थुं भवेज्ज) दोष का घर होता है (गम्मो भवेज्ज)
 अनावर का स्थान होता है (वेमो वत्थु गम्मो भवेज्ज) द्वेष के पात्र दोष का घर

और अनादर का स्थान तोनों हाता है (पुंय अन्नं च एवमादिषुं) यह असत्य और
 बूट लखन आदि अन्य इस प्रकार के वचन (कोहमि संप्रसिद्धो) क्लृप्तान्त म
 जल हृद्य वाला,) मण्डेज) बोलता है (ठग्दा) इसलिये (बोहो) काप (न स
 विषया) सचन नहीं करना चाहिए (पुंय) इस प्रकार (सतीह) इमास (मा
 विद्या) मुक्त (अतरणा) अन्त करमु घाला (सजय कर परण मयण बदलो)
 कर, परण, मय आर मुस क समययुक्त सापु (सूरो) पूर तथा (सक्यत्रब संज्ञा)
 मस्य और सरसता म सम्पन्न (मवति) हाता है (ततियं) इतीय भावना राम
 निमहस्य (लाभा) लाभ (म मयिदम्या) नहीं करना चाहिए क्योंकि (तुडो
 लाभा) सुष्य-भाभी प्रतमें पचल बना हुआ (रासस व बयुरस व कण्ठ) इत्र-
 जमीन या पर क निय (भगज्ज अलियं) असत्य बोलता है ॥ १ ॥ (तुडो बोहो)
 लाभी तथा पचल प्रत बाला (दितीय लोमस व कण्ठ) कीर्ति अथवा शय-
 पन प्राप्ति क लिय (भगज्ज अलियं) मूठ बोलता है ॥ २ ॥ (तुडो बोहो) बोभी
 व पंचल प्रती (दितीय व माकराम व कण्ठ) अदि या मुरा के निब (भगज्ज
 अलियं) मूठ बोलता है ॥ ३ ॥ (तुडो बोहो) बोभी व पञ्चल प्रत बाला (म
 स व पाण्म व कण्ठ) मात्रन व पानी क लिये (मण्डेज अलियं) मूठ बोलता
 है ॥ ४ ॥ (तुडो लाभा) लाभी व पचल (पीठस व कण्ठस व कण्ठ मण्डेज
 अलियं) पीठ व कण्ठ-पाठ क लिये मूठ बोलता है ॥ ५ ॥ (तुडो लाभा) लाभी
 व पंचल (मात्रण व मयारवाम व कण्ठ) शय्या अथवा संनारक-स्रोत विमा क
 लिय (भगज्ज अलियं) मूठ बोलता है ॥ ६ ॥ (तुडो लाभा) लाभी व
 पंचल (पाण्म व पतन व कण्ठ) बग्य अथवा पात्र क निब
 (भगज्ज अलियं) मूठ बोलता है ॥ ७ ॥ (तुडो लाभा) लाभी व पंचल
 (कवलम व पाणु मण्म व कण्ठ) कवल या वासुपात्रक राजादरु क
 लिय (भगज्ज अलियं) मूठ बोलता है ॥ ८ ॥ (तुडो लाभा) लाभी व पंचल
 (वागम व मिमीगीण व कण्ठ) शय्य अथवा शिथिली क लिय (भगज्ज
 अलियं) मूठ बोलता है ॥ ९ ॥ (तुडो लाभा) लाभा व पचल (अत्रमुद
 पवमादिषुं) विर अत्र इग प्रकार क (बदुगु वासुपात्रक) बदुगु वा शीतदा
 बाला) व (भगज्ज अलियं) मूठ बोलता है (तुडो लाभा) मण्डेज अलियं) लाभी
 व पचल इहमि अनुप्य पूर बोलता है (कण्ठ लाभा व मयिदम्या) इगनिब बो-

का सेवर्त्न नही करना चाहिए। (एवं) इस प्रकार (मुत्तीय भावित्रो) मुक्ति-
निर्लोभिता से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (संजय कर चरण नयण वयणो)
हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु (सूरु) शूर एवं (सच्चज्वसपन्नो) सत्य
वं सरलता से युक्त (भवति) होता है।

मूल—“ चउत्थं न भाइयव्वं भीतं खु भया अइत्ति, लहुयं भीतो अचि-
त्तिज्जओ मणूसो भीतो भूतेहिं विप्पइ, भीतो अन्नं पिहु भेसेज्जा, भीतो
तव संजमं पिहु मुएज्जा भीतो य भरं न नित्यरेज्जा सप्पुरिसनिसेवियं च
मग्गं भीतो न समत्थो अणुचरिउं, तम्हा न भातियव्वं भयंस्स वा वाहि-
स्स वा रोगस्स वा जराए वा मच्चुस्स वा अन्नस्स वा एगस्सवा (एवमादि-
यस्स) एवं धेज्जेण भावित्रो भवति अंतरप्पा संजयकर चरण नयण वयणो
सूरु सच्चज्जव संपन्नो । पंचमकं हासं न सेवियव्वं अलियाइं, असंतकाइं
जंपंति हासइत्ता परपरिभव्व कारणं च हासं परपरिवायप्पियं च हासं पर
पीलाकारंगं च हासं भेदविमुत्तिकारकं च हासं अन्नोन्नजणियं च होज्जहासं
अन्नोन्नगमणं च होजमम्मं अन्नोन्नगमणं च होजकम्मं कंदप्पाभियोगमणं
च होज्जहासं आसुरियं किन्विसत्तणं च जणेज्जहासं तम्हा हासं न सेवियव्वं
एवं सोयेण भावित्रो भवइ अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सूरु
सच्चज्जव संपन्नो, एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं
इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं मण वयण काय परिरिक्खएहि निच्चं आमरणं
तं च एस जोगो णेयव्वो धित्तिमया मत्तिमया अणासवो अकलुमो अच्छिइो
अपरिस्सावी असंकलिट्ठो (सुद्धो) सव्वजिणमणुत्ताओ, एवं वित्तियं संवर
दारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्ठियं अणुपालियं आणाए आ-
राहियं भवति, एवं नायमुणिया भगवया पन्नवियं परूवियं पसिद्धं सिद्ध-
वर सासणमिणं आघवित्तं सुदेसित्तं पसत्थं वित्तियं संवरदारं समच्चं ति-
बेमि ॥ सू० ॥ २५ । इति वित्तियंदारं ।

छाया—“चउत्थं न भेतव्यम्, भीतंखलु भयान्यायान्ति लघुकम्, भीतोऽद्वितीयको
मनुष्यः, भीतो मूलै क्षिप्यते गृह्यते, भीतोऽन्यानपिभेषयेत् भीतस्तपः सयमानपि-
मुञ्चेत्, भीतश्चभारं न निस्तारयेत् सत्पुरुष निषेवित्तं च मार्गं भीतो न समर्थोऽनुचरि-

और अनादर का स्थान तीनों होता है (एष्य अन्य च एवमादिषु) यह असत्य और
 मूठ लेखन आदि अन्य इस प्रकार के वचन (कोइमि संप्रकृतो) कोनामस्य स
 जसे हृदय वाला,) भयेश्च) बोधता है (ठम्हा) इसलिये (कोइो) भ्रम (न से
 चियम्बा) सेवन नहीं करना चाहिये (एष) इस प्रकार (संतीइ) जमासे (मा
 भिभो) मुक्त (अतरप्पा) अन्त करण बाका (सञ्जय कर चरस्य जयस्य बरसो)
 कर, चरण, नेत्र और मुख के समययुक्त वायु (सूर) शूर तथा (सञ्चञ्चव संभ्रा)
 सत्य और सरलता से सम्पन्न (भवति) होता है (ततिष्य) तृतीय भावना काम
 निग्रहस्व (कामो) लोभ (न सेचियम्बा) नहीं करना चाहिये क्योंकि (सुद्यो
 लोको) लुब्ध-लोभी प्रथमें चंचल तथा दुष्ठा (सेचस्व व बत्सुरस व क्तेण) कर्त-
 जमीन या घर के लिये (भण्ड्य अलिष्य) असत्य बोलता है ॥ १ ॥ (सुद्यो बोला)
 लोभी तथा चंचल प्रथ वाला (किलीय लोभस्व व कण्य) कीर्ति अथवा लोभ-
 धन प्राप्ति के लिये (भण्ड्य अलिष्य) मूठ बोलता है ॥ २ ॥ (सुद्यो बोला) लोभी
 व चंचल प्रती (रिडीय व सोचसरस व कण्य) शक्ति या सुख के लिये (भण्ड्य
 अलिष्य) मूठ बोलता है ॥ ३ ॥ (सुद्यो बोला) लोभी व चंचल प्रथ वाला (भत्
 स्व व पाण्यस्व व कण्य) भोजन व पानी के लिये (भण्ड्य अलिष्य) मूठ बोलता
 है ॥ ४ ॥ (सुद्यो बोला) लोभी व चंचल (पीठस्व व फल्यस्व व कण्य) मद्य
 अलिष्य) पीठ व फलक-पाट के लिये मूठ बोलता है ॥ ५ ॥ (सुद्यो बोला) लोभी
 व चंचल (सेग्राण व र्भवारकरस व कण्य) शय्या अथवा रसतारक-छोटे बिस्तर के
 लिये (भण्ड्य अलिष्य) मूठ बोलता है ॥ ६ ॥ (सुद्यो बोला) लोभी व
 चंचल (पत्यस्व व पत्तस्व व कण्य) वस्त्र अथवा पात्र के लिये
 (भण्ड्य अलिष्य) मूठ बोलता है ॥ ७ ॥ (सुद्यो बोला) लोभी व चंचल
 (बंवलस्व व पापपुङ्गवस्व व कण्य) चंचल या पाहपोहन रजोहरण के
 लिये (भण्ड्य अलिष्य) मूठ बोलता है ॥ ८ ॥ (सुद्यो बोला) लोभी व चंचल
 (सोमस्व व मिन्मीलीपव कण्य) शिष्य अथवा शिष्यिणी के लिये (भण्ड्य
 अलिष्य) मूठ बोलता है ॥ ९ ॥ (सुद्यो बोला) लोभी व चंचल (अन्मनुष्य
 एवमादिषु) फिर अन्य इस प्रकार के (बहुषु कारणमतसु) बहुत से सौद्यों
 कारणों में (भण्ड्य अलिष्य) मूठ बोलता है (सुद्यो बोला भण्ड्य अलिष्य) लोभी
 व चंचल मनुष्य मनुष्य मूठ बोलता है, (ठम्हा लोभो न सेचियम्बा) इमलिये लोभ

(भावित्रो) युक्त (अंतरप्पा) अन्तः करण वाला—(संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु (सूरु) शूर (सच्चञ्जवसपन्नो) सत्य व सरलता से सम्पन्न (भवति) होता है । (पंचमकं) पाचवी भावना हास्य त्याग (हास न सेवियव्वं) हास्य का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि (हासइत्तर) हास्यरस के वशीभूत नर (अलियाइं) सत्य अर्थ को छिपाने रूप अलीक और (असंतकाइं) मिथ्या बात बनाने रूप असत्य वचन को (जंपति) बोलते हैं (परपरिभवकारणं च हासं) और हास्य दूसरों के अनादर का कारण है (परपरि-वायपियं च हासं) और हास्य दूसरे के दूषण कथन को प्रिय समझने वाला है (च) फिर (हासं पर पीला कारणं) हास्य दूसरे को पीड़ा देने वाला है (च) और (हास भेइविमुत्तिहारक) हास्यचारित्रभेइ और शरीर को विकृत-विकारयुक्त करने वाला है जो मोक्ष मार्ग का भेइ करने वाला है (अन्नोन्नजनिंयं च हास) और हास्य अन्योन्य-एक दूसरे से क्रिया हुआ (होज्ज) होता है (अन्नोन्नगमन च होज्ज मम्मं) और फिर हास्य परस्पर में परदार गमन आदि मर्म कुचेष्टा का कारण होता है (अन्नोन्नगमन च होज्जकम्मं) फिर हास्य परस्पर गमन योग्य कर्म रूप होता है (कंइप्पाभियोग गमण च होज्जहास) कन्दर्प हास्यकारी और आभियोगिक-आज्ञाकारी देव जाति विशेष में गमन का हास्य हेतु होता है । आसुरिय, असुर जाति के देवपन को (किंविंसत्तणं च) और किल्बिषिक-नीच जाति के देवपन को (जणेज्ज हास) हास्य-हंसी मजाक उत्पन्न करता है (तम्हा) इसलिए (हास न सेवियव्वं) हास्य-परि-हास नहीं करना चाहिए (एवं मोणेण भावित्रो) इस प्रकार मौन से युक्त (अंतरप्पा) अन्त करण वाला (संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु (सूरु) शूर (सच्चञ्जव संपन्नो) सत्य सरलता से युक्त (भवति) होता है (एय मिणं) इस प्रकार यह (सवरस्सदारं) संवर का दूसरा द्वार (सम्म) सम्यक्-अच्छी तरह से (सवरियं) सुरक्षित (होइ) होता है, - (इमेहिं पच हिंवि कारणेहिं-) इन ऊपर कही गई पांच भावना रूप कारणों से (मण वयण काय परिरक्खणहिं) जो मन वाणी और काय से सुरक्षित हैं उनसे (सुप्पणिहिं) उत्तम निधान की तरह (निच्चं) सदा (आमरणंत) भरण पर्यन्त (एसजोगो) यह योग (धितिमया मतिमया) धीर तथा बुद्धिमान् साधु को (णेयव्वो) पार ले जाने योग्य है (अणामवो) आस्रव रहित (अकलुसो) पाप रूप मल रहित

तुम्, तस्मान्नमेतद्व्ययम्, मयस्य वा ध्याधेर्वा रोगस्य वा जराया वा मृतोर्वाऽन्वस्य वा
 एवमादे । एवं चैर्यण भावितो भवत्यन्तरात्मा संयतकर परश्चनयनयद्वा दृष्टः सत्वा
 र्जयसम्पन्नः । पञ्चमकं हास्यं न सधितद्वयम् अलीकान्यसत्कानि व्यस्पन्ति हास्यायत्ता
 परपरिमबकारणञ्च हास्यं परपरिषाद्भ्रियञ्च हास्यं परपीडाकारकं च हास्यं मेदवि
 मुक्तिकारकं च हास्यमन्योऽन्यदनिष्ठं च भवेद्दास्यम् अन्योऽन्यगमनञ्च भवेत्सर्म
 अन्योऽन्यगमनं च भवेत्कर्म कन्वर्पाभियांगमनञ्च भवेद्दास्यम्
 आसुरं किस्विपित्तं च जनयेद्दास्यं तस्माद्दास्यं न सेधितद्वयम् एव मौनेन भावितो
 भवत्यन्तरात्मा संयतकर परश्च नयन यद्वा शूरः सत्यार्जयसम्पन्नः । एवमिदं संवरत्न
 द्वारं सम्यक् सङ्गतं भवति सुप्रणिहितमेतै पञ्चभिः कारणैर्मनोवचन काय परिचितै
 नित्यमामरयान्तं चैव योगेनेतद्व्योऽधृतिमत्ता मतिमताऽनाजवाऽबल्लुपोऽध्वद्वाऽ
 रिक्षाधी-असंकिष्टः सर्वजिनाऽनुज्ञातः । एवं द्वितीयं संवरद्वारं स्पष्टं पाक्तिं
 शोधितं तीर्थं कीर्तितमनुपाशितमाह्वयाऽऽराधितं भवति । एवं ज्ञातमुनिना मगधता
 प्रहृतं प्ररूपितं प्रसिद्धं सिद्धवर शासनमिहमाहृतं सुवेशितं प्रशरतं द्वितीयं संवरद्वारं
 समाप्तमिति ज्ञेयमि । इति द्वितीयं द्वारम् । सूत्र । २५ ।

अन्व०—“ (चक्रवर्त्त) चौथी भाषना मय का त्यागना रूप (न माह्वयञ्च भय नदी
 करना चाहेण (मीतञ्च) मयमीत मनुष्य को (मया अर्हितं लक्ष्यं) राष्ट्र ही मय
 प्राप्त कर लेते हैं (मीता अवितिष्ठन्नधोमणुसो) जरा हुआ, मनुष्य अद्वितीय सदा
 यता रहित होता है (भीतो मृतोर्हि धिप्पह) भीत मनुष्य मृत प्रेतों में पर लिवा
 जाता है (मीतो अन्नं पिबु मेसेञ्च) जरा हुआ वृद्धों को भी जरा देता है (मी
 तो तव संजम पिबु सुएञ्च) जरा हुआ मनुष्य तप संभम को भी जोड़ देता है (मी
 तो य भरं न नित्वरेञ्च) और मीत मनुष्य कर्तव्य भार को भी पाल नहीं सकता
 है (सत्पुरिसरिमेविषं च) और मत्पुरुषों में मेवित (मर्म) मार्ग को (मीतो)
 जरा हुआ मनुष्य (अणुपरित) आचरण में जाने के लिये (न समात्वा) समर्थ
 मक्ष होता है (तम्हा न मातियव्वं, इसलिये मय नहीं करना चाहिए । (मवरसवा)
 मय हनु-दुष्ट मनुष्य आदि न चाहिसूवा रोगस्य वा) अथवा रोग से या व्याधि
 स अथात् अर आधि स या दीर्घ कालिक दुष्ट आदि से (जराए वा) अथवा
 बुद्धावस्था से (मणुस ना) अथवा मृत्यु से (अमरस वा प्यमाहियरम) अथवा
 पक्ष ही दूसरे कारणों से जरा नहीं चाहिए (पन्) इस प्रकार (येञ्चेश) पय से

(भावित्रो) युक्त (अंतरप्पा) अन्त. करण वाला—(संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु (सूरु) शूर (सच्चज्जवसंपन्नो) सत्य व सरलता से सम्पन्न (भवति) होता है । (पचमकं) पाचवीं भावना हास्य त्याग (हास न सेवियव्वं) हास्य का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि (हासइत्ता) हास्यरस के वशीभूत नर (अलियाइं) सत्य अर्थ को छिपाने रूप अलीक और (असंतकाइ) मिथ्या बात बनाने रूप असत्य वचन को (जपति) बोलते हैं (परपरिभवकारणं च हासं) और हास्य दूसरों के अनादर का कारण है (परपरि-वायपियं च हासं) और हास्य दूसरे के दूषण कथन को प्रिय समझने वाला है (च) फिर (हासं पर पीला कारणं) हास्य दूसरे को पीड़ा देने वाला है (च) और (हास भेइविमुत्तिकारक) हास्यचारित्रभेइ और शरीर को विकृत-विकारयुक्त करने वाला है जो मोक्ष मार्ग का भेइ करने वाला है (अन्नोन्नजनिगं च हास) और हास्य अन्योन्य-एक दूसरे से किया हुआ (होज्ज) होता है (अन्नोन्नगमन च होज्ज मम्मं) और फिर हास्य परस्पर में परदार गमन आदि मर्म कुचेष्टा का कारण होता है (अन्नोन्नगमन च होज्जकम्मं) फिर हास्य परस्पर गमन योग्य कर्म रूप होता है (कंइपाभियोग गमण च होज्जहास) कन्दर्प हास्यकारी और आभियोगिक-आज्ञाकारी वेव जाति विशेष में गमन का हास्य हेतु होता है (आसुरिय असुर जाति के देवपन को (किंविंसत्तणं च) और किल्बिषिक-नीच जाति के देवपन को (जणेज्ज हास) हास्य-हंसी मजाक उत्पन्न करता है (तम्हा) इसलिए (हास न सेवियव्वं) हास्य-परि-हास नहीं करना चाहिए (एव मोणेण भावित्रो) इस प्रकार मौन से युक्त (अंतरप्पा) अन्त करण वाला (संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु (सूरु) शूर (सच्चज्जव संपन्नो) सत्य सरलता से युक्त (भवति) होता है (एव मिण) इस प्रकार यह (सवरस्सदारं) सवर का दूसरा द्वार (सम्म) सम्यक्-अच्छी तरह से (संवरियं) सुरक्षित (होइ) होता है, (इमेहिं पच द्विवि कारणेहिं) इन ऊपर कही गई पाच भावना रूप कारणों से (मण वयण काय परिरिक्खणहिं) जो मन वाणी और काय से सुरक्षित हैं उनसे (सुप्पणिहियं) उत्तम निधान की तरह (निच्चं) सदा (आमरणत) मरण पर्यन्त (एसजोगो) यह योग (धितिमया मतिमया) धीर तथा बुद्धिमान् साधु को (रेणव्वो) पार ले जाने योग्य है (अणामवो) आत्मव रहित (अकलुसो) पाप रूप मल रहित

(अश्विभ्रा) कर्म प्रदण्ड कं योग्य विद्वर रक्षित (अपरिगृह्यामी) कर्म जल का नहीं बहाने वाता तथा (अर्जुनितित्तु) संस्कार रक्षित और (सत्वत्रिणमणुजायो) सत्र तीर्थद्वयों से अनुकूल है (एवं) इस प्रकार (वितियं संवरारं) दूसरा सत्वत्रय रूप संवरार (कासियं) वचन से स्पर्श-स्वीकार किया हुआ (पालियं) मन से पाला गया (सोदियं) शेष के निवारण करने से शुद्ध किया गया (तिरिबं) पूर्णता तक पहुँचाया हुआ, (किद्विबं) सद् भाव से प्रशंसा योग्य किया गया (अणुपालियं) अनुकूलता से पाला गया (आखाय आरादियं भवति) आशा की आराधना करने वाला होता है (एवं) ऐसा (नाय मुणिया भगवया) इति मुनि भगवान महावीर ने (पत्तवियं) कहा है (पत्तवियं) उदाहरण पूर्वक समझाया है (पसिद्धं सिद्धवर सास्य मियं) यह प्रसिद्ध और उत्तम सिद्ध पुरुषों का शासन है (आभविषं) देव आदि का सम्मान पात्र (सुद्वेदियं) पूर्ण ज्ञानियों से सम्बन्ध कहा गया है तथा (पस्यं) प्रशस्त है ऐसा यह (वितियं) दूसरा (संवरारं) संवरार (समर्थं) पूर्ण हुआ (तिनेमि) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २ ॥ २५ ॥

भाषार्थ—“सत्वत्रय का पूर्व कथित यह प्रवचन भगवान् महावीर ने असत्य कदु आदि अवाच्य वचनों से आत्मा को रक्षित रखने के लिये कहा है। जो कि आत्मा के लिये हितकारी व परलोक और भविष्य के कल्याण का कारण है। शुद्ध वाच्य युक्त वाच्य सब दुःखों का शमन करने वाला है। असत्य वचन त्यागरूप उस दूसरे प्रश्न की पाँच भाषना व्रत की रक्षा के लिये कही गई हैं। इनमें प्रथम भाषना—सत्वत्रय के स्वरूप को सुनकर तथा परमार्थ को सम्यक् जानकर बोलना चाहिए। बेग बुद्ध आदि सावध वचन नहीं बोलना, किन्तु सत्य और हितकारी आदि परिमित वचन ही साधु को समय पर बोलना चाहिए। इस प्रकार विचार पूर्वक बोलने वाला संयमी सत्य और आर्जव से युक्त होता है।

दूसरी भाषना क्रोधवशा नहीं बोलना। क्रोधवशा मनुष्य असत्य बोलता है, पैशुन्य और कठोर वचन बोलता है। वैर, कलह और धर्मविरुद्ध कथा को क्रोधी करता है। सत्य और शील का इनमें करता, बिनय को रंग करता, और लोकमें अधीति का भाजन बनता है। क्रोध से सम्प्रत इत्येक वाक्य मनुष्य इस प्रकार अन्य भी अवाच्य बोलता है इसलिये क्रोध नहीं करना चाहिए। समायुक्त साधु सत्य का वासन करने वाला होता है।

तीसरी भावना—लोभके वश होकर नहीं बोलना, क्योंकि लोभी चंचलचित्त होकर खे तवाड़ी व धरके लिये झूठ बोलता है। ऐसे ही कीर्ति और अर्थ प्राप्ति के लिये ऋद्धि तथा सुख सामग्री के लिये और खान पान के साधनों के लिये अथवा पाट आदि आसनों के लिये तथा अनेक प्रकार शय्याओं के कारण या वस्त्र पात्र आदि के लिये अथवा कंबल और रजोहरण तथा शिष्य आदि ऐसे सैकड़ों कारणों पर असत्य बोलता है। इसलिये लोभ नहीं करना चाहिए। निर्लोभत, युक्त साधु सत्यव्रत का आराधक होता है।

चौथी भावना—भय त्यागरूप है—डरा हुआ मनुष्य अनेक प्रकार के भयों को पाकर असहाय अकेला हो जाता है। भयभीत को ही भूत भी पकड़ते हैं। भयभीत दूसरों को भी डरा देता है। डरा हुआ तप सयमको भी त्याग देता है। भयभीत मनुष्य सत्पुरुषों से सेवित सत्यमार्ग पर नहीं चल सकता है। इसलिये रोग, व्याधि, जरा, मृत्यु आदि ऐसे किसी भी भय के हेतु से नहीं डरना चाहिए। धैर्ययुक्त संयमी सत्यव्रत का पालक होता है।

पाचवी भावना परिहास त्यागरूप—क्रोध, लोभ, भय और अविचार की तरह हंसी भी असत्य का कारण है। हसी करने वाले असत्य या मिथ्या बोलते हैं। परिहास का वचन दूसरे के अपमान का कारण, निन्दाप्रिय पीडाकारक और चारित्रभेद आदि का कारण है। एक दूसरे से किया गया हास्य परस्पर की कुचेष्टा और परदार गमन आदि दुष्कर्म का प्रवर्तक होता है। हंसी करने वाला साधु देवगतियोग्य आयु सञ्चय करके भी कान्दर्पिक या आभियोगिक रूप कुदेवपन में जाता है। असुरभाव और किल्बिषिकपन को हास्यरस उत्पन्न करता है। इसलिये हास्य का सेवन नहीं करें। इस प्रकार वचन के संयम वाला साधु सत्यव्रती होता है। इस प्रकार यह सत्यव्रतरूप संवर का दूसरा द्वार इन पांच कारणों से सुरक्षित होता है आदि उपसहार पूर्ववत्। यह दूसरा संवरद्वार पूर्ण हुआ।

❀ समाप्तं द्वितीयसंवरद्वारम् ❀

❀ सञ्चार्यं सान्धार्यं भावार्थम् ❀

७ तृतीय संवर द्वारम् ७

सम्बन्ध-द्वितीय अध्यायन में मृपावाद्-असरय-निवृत्तिरूप दूसरे संवर का प्रतिपादन किया है, उस सत्यव्रत का पालन शौर्य कर्म के स्वागत पर ही मुकर होता है, इसलिये इस अध्यायन में अक्षतादान विरम्यारूप संवर का वर्णन किया जावगा। सूत्र क्रम में सम्बन्धित पक्ष अस्त्रैयव्रत का स्वरूप दिखाने हुए शास्त्रकार इस प्रकार कहत हैं-

मूल-“अशू ! दक्षमणुभाय संदरो नाम होति तसियं सुखता ! महव्यसं । गुणव्यसं परदम्ब हरण-पडिदिरइ-करण्यशुसं, अपरिमिय मखत-तण्हा-णुगय-महिच्छ-भस्स-प्रयस-कलुस-आयास सुनिगगहियं । सुसंअमिय मशो'हत्य-पायनिमियं, निर्गंग शोडिकं निरुषं निरासवं निमयंअियुषं । उत्तम-नरवसम-पवरबलवग-सुविहित अश्वसंमतं, परमसाहुधम्मवरखं, जत्य य गामागर-नगर-निगम-खेड-कण्वड-मठव-दोखसुह-संवाइ-पडुखासमगपंच, किंचि दव्वं मेसि-सुत्ते-सिलप्यवाल-कंस-दूस-रयय-वर कण्णग-रययमादि, पडियं पम्हुट्ठं विप्यसहु, न कप्पति कस्तति कडे उं वा, गेयिहउ वा । अहिरअ सुबभिकेश समलेट्ठु कंचशेयं अपरिमाइ संशुडेयं शोर्गमि विहरियव्वं । वंपिय होज्जाहिदव्वजातं खलगतं खेचगतं रअमंतरगतं वा किंचि पुष्क-फल-वय-प्यवाल-कद-मूल-वय-कहु-सक-रादि, अप्पं च बहु च, अणु च पूलंग वा, नकप्पति उग्गाहमि अदियंसमि गियिहउ जे । हसि हसि उग्गाहं अणुअविय गेयिहयव्वं । वज्जेयव्वो य सव्वकालं अचियच धरप्यवेसो । अचियच मत्तं पाखं । अचियच-पीड-फलग-सेज्जा-संयारग-वत्य-पच-कंबल-वडंग रयहरय-निसिज्ज-चोत्त-पडुग-सुहपोत्थिय-पायणु क्खसाइ-मायखमंडोवहि उवकरखं, परपरिवाओ,

परस्स दोसो, पर-ववएसेणं जं च गेएहइ । परस्स नासेइ जं च सुकयं,
दाणस्स य अंतरातियं, दाण विप्पणासो, पेसुन्नं चैव मच्छरित्तं च ।

छाया-“जम्बू ? दत्ताऽनुज्ञातसंवरौ नाम भवति तृतीयम् सुव्रत ? महाव्रतं ।
गुणव्रतं परद्रव्यहरण-प्रति विरति-करणयुक्तम् अपरिमिताऽनन्त-वृष्णाऽनुगत-
महेच्छ-मनो-वचन-कलुषाऽऽदानसुनिगृहीतं, सुसंयमित मनोहस्त पादनिभृतं,
निर्ग्रन्थं नैष्ठिक निरुक्तं निरास्रवं निर्भयं विमुक्तम् । उत्तम नर वृषभ-प्रवर-बलवत्सु
विहितजन संमतं, परमसाधु धर्मचरणम् । यत्र च ग्रामाकर नगर-निगम-खेट-कर्बट
मडम्ब-द्रोणमुख-सवाह-पट्टणाऽऽश्रमगत च किञ्चिद् द्रव्यं मणि-मुक्ता-शिला
प्रवाल-कांस्य-दूष्य-रजत-वृर कनक-रत्नादि पतित प्रमुष्टं विप्रणष्टं, न कल्पते
कस्यापि कथयितुं वा ग्रहीतुं वा । अहिरण्य सौवर्णिकेन समलेष्टुकाञ्चनेन अप-
रिग्रह संवृतेन लोकेविहर्तव्यम् । यदपि च भवेद् द्रव्यजातं खलगतं क्षेत्रगतमरण्याऽ-
न्तर्गतं वा किञ्चित् पुष्प-फल-त्वक्-प्रवाल-कन्द-मूल-तृण-काष्ठ-शर्करादि अल्पं
च बहु च, अणुच स्थूलकं वा, न कल्पतेऽव्यग्रहेऽदत्ते ग्रहीतुम् । अहन्ग्रहन्ति अवग्रह-
मनुज्ञाप्य ग्रहीतव्यम् । वर्जयितव्य सर्वकालमप्रीत गृहप्रवेश । अप्रीतिकारक भक्त
पानम् । अप्रीतिकारक पीठ फलक-शय्या-संस्तारक-वस्त्र-पात्र-कम्बल-दण्डक-
रजोहरण-निषद्या-चोल पट्टक-मुखवस्त्रिका-पादप्रोञ्छनादि-भाजनभण्डोपध्युपकरणं
पर परीवाद, परस्य दोष, परव्यपदेशेन यच्चगृह्णाति, परस्य नाशयति यच्च सुकृतं,
दानस्य चान्तराधिकं, दानविप्रणाश, पैशुन्यञ्चैव मत्सरित्त्व च ।

अन्व०-(सुव्रया जबू) हे सुव्रत जम्बू ! (ततियं) तीसरा (दत्तमणुत्रायसवरौ
नाम होति) दिये गए अन्न आदि और ग्रहण करो इस प्रकार आज्ञा पाये हुए पीठ
आदि जिसमें लिये जाय वह दत्तानुज्ञात नामका संवर होता है (महव्यय) यह
महाव्रत है (गुणव्यय) सदगुणों का कारण होने से गुणव्रत है (परद्रव्यहरण
पडि विरहकरणजुत्त) पर द्रव्य के हरण की निवृत्ति वाला (अपरिमिय मणंततयहा
गुणय महिच्छ मण वयण कलुष आयाण सुनिगहियं) अपरिमित असोम द्रव्यों में
अनन्त-समाप्ति रहित जो वृष्णा उससे अनुगत-युक्त और अतिशय इच्छावाले
विचार तथा वचन से मलिन जो अदत्त ग्रहण उसका सम्यक्-निग्रह करने वाला
(सुसजमिय मण हत्य पाय निभिय) अशुभ भावना में सकोच शील मन के कारण
परधन ग्रहण से रुके हुए हैं हाथ पैर जहा पर ऐसा (निगय) चाब्य आभ्यन्तर

७ तृतीय संवर द्वारम् ७

सम्बन्ध-द्वितीय अध्ययन में मृपावात्-असत्य-निवृत्तिरूप दूसरे संवर का प्रतिपादन किया है, इस सत्यव्रत का पालन पूर्व कर्म के त्यागन पर ही मुक्त होना है, इसलिये इस अध्ययन में अक्षतावान् यिरम्यरूप संवर का वर्णन किया जाया। स्व कर्म से सम्यन्वित इस असत्यव्रत का स्वरूप दिखाते हुए शास्त्रकार इस प्रकार कहते हैं-

मूल- "अंभू ! दत्तमणुभाय मन्वरो नाम होति ततियं सुम्भता ! मह्यत्वं । गुणान्वत्तं परदत्त्वं हरण-पडिदिरह-करणजुप्त, अपरिमिय मन्वत-तप्याणुगय-महिच्छ-मन्व-वयण-कन्नुम-आयाद्य सुनिगगहियं । सुसंजमिय मणो'इत्थ-पायनिमियं, निगर्तं शोद्धिकं निरुत्तं निरासत्तं निम्भयं'मुत्तं । उत्तम-नरवसम-पवरषलवग-सुधिवित अण्यसंमत्तं, परमसाहुभम्मपरखं, अत्थ य गामागर-नगर-निगम-खेड-कण्ड-मडंभ-दोशगुह-संभाह-पह्यासमगयंथ, किंचि वृत्तं मन्धि-मुत्तं-सिलप्यवाल-कंस-दूस-रयय-वर कखग-रययमादि, पठिय पम्हुट्ठं विप्यण्ड, न कप्पति कस्सति कहे त वा, गेयिहउ वा । अहिरभ सुवभिकेण समलेट्ठु कंचखेखं अपरिग्गह संवुडेणं लोर्गमि विहरियव्वं । अंपिय होज्जाहिदव्वजात्तं खलगतं खेत्तगतं रभमंतरगत वा किंचि पुप्फ-फल-वय-प्यवाल-कंद-मूल-तख-कह-सक-रादि, अप्यं च वहु थ, अणु च भूलगं वा, न कप्पति उग्गहमि अदिएखंमि गियिहउ जे । इथि इथि उग्गाहं अणुभयिय गेयिहयव्वं । वज्जेयम्यो य सम्बकान्तं अयियत्त धरप्यवेसो । अयियत्त मत्तं पायां । अयियत्त-पीड-फल्लग-सेज्जा-संयारग-वत्थ-पत्त-कंसल-इंठग रयहरख-निसेज्ज-घोल-पहग-गुहपोथिय-पायपु क्ख्याह-मायखमडोवहि उवकरखं, परपरिवाओ,

पर ले सकते हैं, ऐसा पूछकर (गेण्हयन्वं) ग्रहण करना चाहिए । (सम्बकालं) सर्वदा (अचियत्त घरप्पवेसो) अप्रीति कारक घर में प्रवेश (वज्जेयन्वो) छोड़ना चाहिए, और (अचियत्त भत्तपाणं) अप्रीति कारक के घर का आहार पानी और (अचियत्त-पीठ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पत्त-कंवल-डंडग-रय हरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पाय पु छणाइ) अप्रीति करने वाले के पीठ, फलक-पाट, शय्या, संस्कारक, वस्त्र, पात्र, कंवल, दण्ड-सकारण लेने योग्य स्त्री, रजोहरण, निषया-आसन, चोल पट्टक-पहने का वस्त्र, मुख पोतिका-मुख षस्त्रिका और पादप्रोच्छन्न आदि (भायण मंडोवहि उवकरणं) पात्र मिट्टी के भाण्ड और बख आदि उपकरण 'वर्जन करना चाहिए' (परपरियायो) दूसरे की निन्दा (परस्स दोसो) दूसरे के साथ द्वेष करना (ज च पर ववएसेण) और जो अचार्य आदि दूसरे के नाम से (गेण्हइ) ग्रहण करता है (जंच) और जो (परस्स) दूसरे के (सुकयं) उपकार या सुकृत को (चासेइ) नष्ट करता या छिपाता है (दाणस्स य अंतरात्थिय) और दान में अन्तराय करता (द्राण विप्पणासो) दाता के नाम को छिपाता-अपलाप करता और (पेसुन्न) पैशुन्य-चुगली (चेष) और (मच्छरित्त) अत्सरता-द्वेष करता है ।

मूल-“जेविय पीठ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पाय-कंवल-डंडग-रय हरण-निसेज्ज-चोल पट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणादि-भायण मंडोवहि उवकरणं असंविभागी, असंगहस्ती, तवतेणे य, वदतेणे य, आयारे चेष भावतेणे य । सहकरे, ऋभकरे, कलहकरे, वेरकरे, विकइकरे, असमाहिकरे । सया अप्पमाण भोती, सत्त अखुबद्धवेरे, य निच्चरोसी से तारिस-ए नाराहए वयमिणं । अहकेरिसए पुणाइं आराहए वयमिणं ? जे से उवहि भत्तपाण-संगहण-दाणकुसले, अच्चंतवाल-दुधवल-गिलाण-बुड्ड-खमके, पवत्ति-आयरिय-उदज्जाए-सेहे-साहम्मिके, तवस्सी-कुल-गण-संघ-चेइयट्ठे य निज्जरड्डी वेयावच्चं अणिसिसयं दसभिहं बहुभिहं करेति । न य अचियत्तस्स गिहं पवसइ । न य अचियत्तस्स गेण्हइ भत्तपाणं । न य अचियत्तस्स सेवइ पीठ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पाय-कंवल-डंडग-रयहरण-निसेज्ज-चोल पट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ-भायण मंडोवहि

प्रथम रहित (गेहिक) सब धर्मों में परमन्तवर्ती याने यह सब धर्म की निष्ठा वात्सा
 है (निरुक्त) सर्वज्ञों के द्वारा अच्छी तरह कहा गया अतः निरुक्त (निरासर्ग)
 चौरी के आसव से रहित (निष्मय) निर्मय (निर्मुक्त) छोम रूप शेषसे मुक्त हुआ
 हुआ (उत्तम नर पक्षम पदर बल वगमभिविहितजण संमत्) प्रधान बलधारी उत्तम
 मनुष्य और क्रियापात्र साधु साध्वियों से सम्मत तथा (परमस्तादु मन्मथरस)
 उत्तम साधुओं का धर्मापराण है (अत्य य) और जिस वृत्तीय क्षेत्र में (गामागर-
 नगर-निगम-खेड-कण्डक-मठ-ब-शेखमुह-सवाह-पट्ट्यासमगयंय) ग्राम, आकर-
 सुवर्ण आदि के उत्पत्ति स्थान, नगर, निगम-यशिशु घसति, खेड, कर्कट, मठ, ब-
 शेखमुह, सवाह, पत्तन और आभम में रहा हुआ (विधिपूर्व) कोई भी इन्म
 (मधि-मुक्त-सिलप्यवाल-कस-इस-रय-यर कणग-रयणमार्धि) मधि-क-
 फान्त आदि, मौक्तिक-मोती, शिला मबाल-मू गा, कांस्य कांसी के पात्र आदि,
 बूस-उत्तम मन्म, रजत-चांदी, उत्तम सोना और रत्न आदि (पठियं) किसी
 का गिरा हुआ हो। (पम्बुदर्थ) भूला हुआ हो (यिप्यण्ट) सोजने पर भी
 मालिक को नहीं मिला हो, वैसा इन्म (फससति) किसी गृहस्थ आदि को (बरेष
 वा) कहना गेहिक या) अथवा मह्य करमा (न कल्पति) योग्य नहीं है। (अदिज
 सुचमिकेण) हिरण्य सुवर्ण को नहीं रखने वाले साधु को (लोममि) लोक में
 (समलेदु कंचयेण) पत्थर और सुवर्ण में समदृष्टि तथा (अपरिगह सजुडेवं)
 अपरिग्रह-धन आदि के संग्रह रूप से ज्ञ मूर्च्छा से रहित व संयतुक्त होकर (विहरि
 पम्ब) विचरना आदि (जपिय) और जो भी (होखहि) होते हैं (इय्य जार्त)
 इय्य समूह (अकगर्त) अन्ते में रहा हुआ, (खेतगर्त) खेत में पड़ा हुआ (वा)
 या (रक्षमंतरगर्त) अरण्य जंगल के भीतर पड़ा हुआ (विधि) कोई (पुष्प-
 फल-तय-प्यवाल-कद-मूक-तय पट्ट-सकचरारि) फूल, फल, लक्ष्मी-छाल, मबाल,
 कन्द, मूल वृण, फास और बालू-धूलि आदि पदार्थ है (अल्पं य बहु य) थोड़ा
 या बहुत (अणु य धूलगं) छोटा या बड़ा (उमाहमि अदिशणमि) घर तथा
 जंगल आदि अथवा स्थान में स्थामी के नहीं देने पर या आशा नहीं मिलने पर
 (गिरिह म पप्यति) कोई भी पत्तु मह्य करमा को नहीं बहपती याने दिना बिसे
 मह्य करमा योग्य नहीं है। इसलिये (इयि इयि) मठिकित्त (उमाह अणुप्रिय)
 अथवा की आशा लेकर आशा आपके स्थान पर अमुक वस्तु है जो कि आशा देने

पर ले सकते हैं, ऐसा पूछकर (गेण्हियव्वं) प्रहण करना चाहिए । (सम्बकालं) सर्वदा (अचियत्त घरप्पवेसो) अप्रीति कारक घर में प्रवेश (वज्जेयव्वो) छोड़ना चाहिए, और (अचियत्त भत्तपाणं) अप्रीति कारक के घर का आहार पानी और (अचियत्त-पीठ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पत्त-कंवल-डडग-रय हरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पाय पुंछणाइ) अप्रीति करने वाले के पीठ, फलक-पाट, शय्या, संथारक, वस्त्र, पात्र, कंवल, दण्ड-सकारण लेने योग्य स्त्री, रजोहरण, निषया-आसन, चोल पट्टक-पहने का वस्त्र, मुख पोतिका-मुख वस्त्रिका और पादप्रोच्छन्न आदि (भायण मंडोवहि उवकरणं) पात्र मिट्टी के भाण्ड और वस्त्र आदि उपकरण 'वर्जन करना चाहिए' (परपरिवायो) दूसरे की निन्दा (परस्स दोसो) दूसरे के साथ द्वेष करना (ज च पर ववएसेण) और जो अचार्य आदि दूसरे के नाम से (गेण्हइ) प्रहण करता है (जंच) और जो (परस्स) दूसरे के (सुकरं) उपकार या सुकृत को (नासेइ) नष्ट करता या छिपाता है (दाणस्स य अंतरात्थि) और दान में अन्तराय करता (दाण विप्पणासो) दाता के नाम को छिपाता-अपलाप करता और (पेसुन्न) पैशुन्य-चुगली (चेष) और (सच्छरित्त) मत्सरता-द्वेष करता है ।

मूल—'जेविय पीठ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पाय'-कंवल-डडग-रयहरण-निसेज्ज-चोल पट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणादि-भायण मंडोवहि उवकरणं असंविभागी, असंगहस्ती, तवतेणे य, वड्ढतेणे य, आयारे चेत्र भावतेणे य । सहकरे, भज्जकरे, कलहकरे, वेरकरे, विकइकरे, असमाहिकरे । सया अप्पमाण भोती, सत्त अप्पुवद्धवेरे, य निच्चरोसी से तारिस-ए नाराहए वयमिणं । अहकेरिसए पुणाइं आराहए वयमिणं ? जे से उवहि भत्तपाण-संगहण-दाणकुसले, अच्चंतवाल-दुच्चल-गिलाण-बुड्ढ-खमके, पवत्ति-आयरिय-उड्ढक्काए-सेहे-,साहम्मिके, तवस्सी-कुल-गण-संघ-चेह्यट्ठे य निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिसिसयं दसविहं बहुविहं करेति । न य अचियत्तस्स गिहं पवसइ । न य अचियत्तस्स गेण्हइ भत्तपाणं । न य अचियत्तस्स सेवइ पीठ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पाय-कंवल-डडग-रयहरण-निसेज्ज-चोल पट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ-भायण मंडोवहि

उद्योगरथ । न य परिचार्य परस्स जं पति, ख्याधि दोसे परस्स गेयइति, परवधएसेस्सवि न किञ्चि गेयइति, न य विपरिणामेति कञ्चिजस्स, न यापि खासेति दिव्व सुकय, दाऊस्स प काऊस्स य न होइ पच्छाताविण । संमागसीले सगहोवग्गहक्कुसले से वारिसते आराइते वयमिणं ।

ध्याया-“षोऽपिच पीठ-पत्रक-शय्या-संस्तारक-वस्त्र-पात्र-कम्बल-मुखपोषिका पादप्रोच्छन्नादि-भाजनमण्डपोभ्युपकरणम् असंविभागी-असंप्रहृदपिस्तपस्तेन, वाक्स्तेन रूपस्तेन, आचारं चैव भावस्तेन । शब्दकरो मन्त्राकर-कलाकरो वैरकरो विक्रमाकर-असमाधिकरः । सहाऽप्रमायामोत्री, सततमनुबद्धवैरश्च नित्यरोपी, यथा हरौ नाऽऽराधयति प्रथमिवम् । अथकीदृशं पुनराराधयति प्रथमिवम् ? षोऽस्य पथिमक्ष्यान-संप्रहृय-दानपुरालोऽत्यन्त-बाल-दुर्बल-ज्ञान-वृद्धरूपके, प्रवर्तकाऽऽपार्योपाध्याये, शौचे, सार्धमिके, उपरिब-कुल-गण्ड-संघ-वैस्वर्षी च निर्जरार्थी वैवा-दुत्वमनिभित्तं वराविषं बहुविषं करोति । न चाऽप्रीतिकरस्य गृहं प्रविशति । न चाऽप्रीतस्य गृहाति मक्ष्यान । न चाऽप्रीतिकारकस्य सेवते पीठ-पत्रक-शय्या-संस्तारक-वस्त्रपात्र-कम्बल-वृण्ड-रजोहरण-निपद्या-आलपट्टक मुखपोषिका-पादप्रोच्छन्नादि-भाजन-मण्डपोभ्युपकरणं, न च परीषाद् परस्य अस्पति । न चापि होषण परस्य गृहाति । परकप्रदेशेनाऽपि न किञ्चिद् गृहाति । न च विपरिणमयति कम पिज्जने, न चापि नारायति वत्सुकृतम् । इत्था च कृत्वा च न भवति पञ्चातत । सम्माग शीत संन्धोपमहकुराणं स साहराक आराधयति प्रथमिवम् ।

अर्थ- (अविष) और भी (पीठ-पत्रक संत्रा-मंभारण-वस्त्र-पात्र-कम्बल वृण्ड-रजहरण-निधन्त्र-आलपट्टक-मुखपोषिक-पथ्य पु ङ्ग्यादि) पीठ, पत्र, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, वृण्ड, रजोहरण, आसन, भोलपट्टक, मुखवस्त्रिका और पादप्रोच्छन्न आदि (मायण-मंभारदि उद्योगरथ) पात्र-मिट्टी के भाण्ड और पत्र आदि उपकरण का (असंविभागी) आचार्य आदि के लिये जो संबंध भाग नहीं करता (असंगहृती) गण्ड के उपभोगो पाठ आदि उपकरणों के सम्प्रद में रुपि नहीं रक्षता (तथ लेख्य) और उपस्था का धोर अर्थानु सपत्नी न हाकर भी शोक में तपस्वी तरीके अपना परिषय देने वाला (वश्येय य) धिर पाण्य स्तेन-वचन का धोर पाने वचन लक्षि नहीं होने पर भी जनता में मूठे वचन से सिद्ध पदज्ञान पाहा (कर लेख य) तथा शरीर की सुन्दरता या किश पात्र सापु-का यथा वेच गी होत हुए मो लोक में उत्तरूपसे परिषय देने वाला-रूपस्तेन और

(आचारे चैव) ऐसे ही आचार-साधु-आचार में बनावटीपन करने वाला, और (भाव तेण्येय) दूसरे के ज्ञानादि गुणोंसे अपने को जानी कहने वाला भावस्तेन और (सहकरे) रात्रि में जोर से बोलने वाला या गृहस्थ की जैसी सावद्य भाषा बोलने वाला, (भङ्गकरे) गच्छ में भेद पट करने के कार्य करने वाला, (कलहकरे) कलहकारी (वैरकरे) वैर विरोध करने वाला (विकहकरे) स्त्री आदि की धर्म विरुद्ध कथा करने वाला (असमाहिकरे) असमाधि-चित्त की अस्वस्थता को करने वाला (सया अप्पमाणभोती) सदा विना प्रमाण के भोजन करने वाला (सतत अणुवद्धवेरे य) और निरन्तर वैर को बाधने वाला तथा (निच्चरोसी) सदा क्रोध में रहने वाला (से तारिसए) इस प्रकार की वृत्ति वाला वह मनुष्य (नाराहए वयमिण) इस व्रत को आराधन नहीं करता है। (अह) अब (केरिसए पुणइं) फिर कैसा मणुष्य, (आराहए वयमिण) इस व्रत का आराधन करता है ?

उत्तर- (जे) जो साधु (उवहि-भत्तपाण-संगहरण-दाणकुसले) उपधि और खान पान के दान और सप्रहरण में कुशल है (अचवंत वाल-दुव्वल-गिलाण-बुड्ढ-खमके) अतिशय बालक बहुत दुर्बल, ग्लान-रोगी, वृद्ध और तपस्वी के विषय में (पवत्ति-आयरिय उवज्जाए) प्रवर्तक-तप सयम आदि में यथायोग्य साधुओं को लगाने वाला, आचार्य और उपाध्याय के विषय में (सेहे) नव दीक्षित साधु (साहम्मिके) साधुभिर्भक्त-समान धर्म वाले के सम्बन्धमें और (तवस्सी कुल) तपस्वी, एक गुरु से वाचना लेने वाले साधुओं के समूह रूप कुल (गण-सघ-चेइ यट्टे य) गण-अनेक कुलों का समूह, संघ-साधु साध्वी श्रावक और श्राविका रूप इन सबके चित्त की प्रसन्नता के लिये (निज्जरट्टी) निर्जराथी-कर्मक्षय की इच्छा वाला साधु (अणिसियं) कीर्ति आदि की अपेक्षा विना (दसविहं) सेव्य की अपेक्षा दश प्रकार की (वेयावच्चं) सेवा को (बहुविहं) अन्न पानादि दान रूप से अनेक प्रकार की (करेति) करता है, (से) वह (अचियत्तस्स) अप्रीतिकारक गृहस्थ के (गिहं) घर में (नय पविसइ) प्रवेश नहीं करता और (नय अचियत्तस्स) न अप्रीतिकारक के यहां का (भत्त पाण गेएहइ) आहार पानी प्रहरण करता है- (न य अचियत्तस्स सेवइ पीढ-फलग-सेज्जा-सथारग-वत्थ-पाय-कंबल-डंडग-रयहरण-निसेज-चोल पट्टय-मुह पोत्तिय-पाय-पुंछुणाइ) और अप्री-

ति कारक के पीठ, फल्लग, शय्या, संस्कारक, यज्ञ, पात्र, कर्म्यल, द्युह, रजोहरण, आसन, परिधान वस्त्र, मुखवस्त्रिका और पादप्रोक्षण सेवन नहीं करता है (मास्य भंडोवहि उपकरणं) पात्र, माण्ड एवं वस्त्र आदि उपकरण भी नहीं लेता (नय परि वायं परस्व जंपति) और दूसरों की निन्दा नहीं करता है (न यावि दोसे परस्व गेवृति) और दूसरे के दोषों को भी ग्रहण नहीं करता है (पर वषप सेणवि न किधि गेवृति) और जो दूसरे के नाम से भी कुछ नहीं लेता है (नय विपरिणा मेति किधिस्यं) और न किसी मनुष्य को दान आदि धन से विमुक्त करता है (न यावि यासेति विम सुक्यं) और दूसरे के हानिरूप सुकृत या धर्माचरण को नहीं मिटाता है (दाऊण य) और देकर (काऊण्य) करके (पच्छातादिय) पश्चात्ताप करने वाला (न होइ) नहीं होता है (तारिसप) पैसा (से) वह (समागसीले) आचार्य आदि समूह के लिये भक्ष आदि का संभोग करने वाला (संगहोवगाह कुसले) संपद और आहार व ज्ञान आदि से उपकार करने में कुराज (वषमियं आराहते) ऐसा साधु इसत्रय का आराधन करता है ।

भावार्थ—सुधम स्वामी महाराज अपने शिष्य जन्म से कहते हैं कि हे जन्म ! हीसरा संपर इचानुज्ञात नाम का है । यह महात्रय सदगुणों का कारण और पर ब्रह्म हरण से निवृत्ति करने वाला है । अपमि मित्र ब्रह्म में अनन्त वृष्ट्या वाला और क्लुपित अव्यक्त ग्रहण का निग्रह करने वाला है । संयम युक्त मन के कारण यह हाथ पाँव को अदृष्ट ग्रहण से रोकने वाला है । निग्रह्य आदि विरोधय युक्त उत्तम पुरुष और जिना पात्र अर्थात् से सम्मत तथा उत्तम साधुओं का धर्माचरण है । इसत्रय में प्राप्त बगैरु क्षेत्र में रहे हुए मणि सौमिक आदि कोई भी परार्थपक्षे हुए भूले हुए भा-
— लोअने परभी नहीं मिले हुए भगर दृष्टि में आजाय तो ब्रती को न किसी से कहना चाहिये और न स्वयं ही लेना चाहिये । क्योंकि साधु सुवर्ण आदि का स्वागी है । उसको कंचन और मिट्टी पर समनुद्धि होकर रहना चाहिए । अपरिग्रह भाव उसका मुख्य धर्म है । बाहे कोई ब्रह्म जले में हो क्षेत्र में या जंगल में पड़ेहों जैसे, फल फल आदि अल्पमूल्य वस्त्रे या बड़ी कीमत के, छोटा अथवा बड़ा कोई भी ब्रह्म स्वामीके बिना दिये ग्रहण करना मर्षादके बिकृत है । इसलिये ब्रती को प्रतिदिन गृहपति आदि की आज्ञा ग्रहण करना चाहिये । जिस परमें जाने से गृहपति को अप्रीति हो उस पर में ब्रती को कभी प्रवेश नहीं करना चाहिए, तथा अप्रीति का कारण माह्यम

हो तो वैसा आहार पानी पीठ पाट भण्ड आदि उपकरण भी नहीं लेना चाहिए । दूसरे की निन्दा और परदोष कथन भी त्यागना चाहिए । क्योंकि तीर्थङ्करों से निषिद्ध होने के कारण इनका सेवन अदत्त रूप है । अचौर्य व्रत वाले को दूसरे के नाम से कोई वस्तु ग्रहण करना और दूसरे के सुकृत को मिटाना तथा दान में अन्न-राय देना दाता के नाम को छिपाना और दूसरे की चुगली या मत्सरता करना वर्जित है । ऐसा करने से अचौर्य व्रत में दोषापत्ति होती है । फिर कैसा व्यक्ति अचौर्यव्रत को नहीं पाल सकता ? इसे दिखाने हुए कहा गया है कि जो पीठ आदि भण्डोपकरण का सविभाग नहीं करता । गच्छवासी होकर भी स्वधर्मियों के योग्य साधन संग्रह में रुचि नहीं रखता । दूसरे के तपोबल व वाग्बल से अपनी क्याति कराता है । सुसाधु के वेष आचार और ज्ञान आदि भावों की चोरी करता अर्थात् इन गुणों के अभाव में भी वैती मझिमा चाहता एवं दूसरों के सामने वचन का छल करता है । प्रहर रात्रि के बाद जोर से बोलता और समूह में भेद डालता है । कलह तथा घैर को करने वाला, स्त्री आदि की कथा करने वाला एवं असमाधि करने वाला जो सदा बिना परिमाण के खाता है । निरन्तर वैर वांधता, तथा सदा रुष्ट रहता है । वह अचौर्य व्रत का पूर्ण पालन नहीं कर सकता । कौन पालन कर सकता है ? इसको दिखाने हैं,—“उपधि और भक्त पान के योग्य संग्रह व दान में कुशल, और जो बाल, वृद्ध, दुर्बल, ग्लान आदि की प्रसन्नता के लिये निर्जरार्थी होकर विविध प्रकार से सेवा करता है । जहा जाने से अप्रीति हो जैसे घर में नहीं जाता और न जैसे घर के आहार पानी और पीठ आदि भण्डोपकरण ही लेता है । फिर जो दूसरे की बुराई नहीं करता और दूसरे के दोषों को ग्रहण नहीं करता है । दूसरे के नाम से स्वयं कुछ नहीं लेता है । न किसी को धर्म से विमुख करता है । दूसरे के दान आदि सत्कर्म को भी नहीं छिपाता और न देकर या करके स्वयं पश्चात्ताप ही करता है । सविभाग करने वाला और जो गच्छ समूह के उपयुक्त सामग्री का संग्रह करके उसका उपकार करने वाला है । वह अचौर्यव्रत का पूर्ण पालन कर सकता है ।

मूल—“इमं च परदव्य हरण वेरमण-परिरक्खणइत्थाए पावयणं भगवया सुकहितं, अत्तहितं पेच्चाभावितं, आगनेसिमदं. सुदं नेयाउयं, अकुडिलां,

१—सामीजीवादत्तं तित्थयरेण तदेव य गुरुहिं,-स्वामि-अदत्त, जीव-अदत्त, तीर्थङ्कर और गुरु का अदत्त इस तरह चार प्रकार के अदत्त हैं ।

अणुत्तर, सम्बदुक्ख-पादाश विभोवसमर्था । तस्स इमा पच मावस्थातो वति
 पस्स होंति परद्व्यहरण वेरमण परिरक्खणहृयाए । पढमं-देवकुल-सम प्पवा
 दराह-रुक्खमूल आराम-कंदरागर-गिरिगुहा-कम्म-उज्जाण-जाससाला
 क्वितमाला-भंबव-सुभपर-सुसाण, लेख-आवण अन्न मियएव मादियंभि,
 दग-मङ्गिर-बीजहरित-तस पाण अंससत्ते अहाकडे फासुए विदिसे
 पसत्ये उवस्सए होइ विहरियध्वं । आहाकम्म बहुले प जे से आसित
 संमञ्ज-उस्सिच-सोहिय-छायख-दूमस-लिपण-अणुलिपण-जसख-मड
 चालखे अतो बहिं च अंसजमी जत्य बड्ढती, संजयाख अहुा वज्जेपव्वोहु
 उवस्सओ से तारियए सुचपडिकुडे । एवं विविचवास-वसहि-समिति
 जोगेण भावितो भवति अंतरप्या निच्चं अहिकरण-करण-कारावख-पाष
 कम्म-विरतो दत्तमणुभाय ओग्गइरुती ।

बितीर्य-आराधुआण-काणख- वयाप्यदेसमागे खं किंचिइकडं व फठि-
 षणं च संतुगं च परामेर-कुख-कुस-डधम-पलाल-मूयग-वक्कय-पुप्फ-
 फल-वय-प्यवाल-कंद-मूल-तख-कडु-सक्करादी गेयइह सेज्जोवहिस्स
 अट्टान कप्पए उग्गहे अदिन्नंमि गेयिइउंजे, इण्णि इण्णि उग्गहं अणुभविय
 गेयिइयव्व । एवं उग्गहसमिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्या निच्चं
 अहिकरण-करण-कारावण-पाष-कम्मविरते दत्तमणुभाय ओग्गइरुती ।

तवीर्य-पीठ-कलग-सेज्जा-सवारगहृयाए रुक्खा न छिंदियव्वा, न
 छेत्रखेण मेयणेण सेज्जा कारयव्वा, जस्सेव उवस्सत वसेज्ज सेज्ज तत्येव
 गणेसेज्जा, न य विसमं समं करेखा, न निषाय पदाय उस्सुगर्घ, न डसमस
 गेसु सुमियध्वं, अग्गी धूमो न फायव्वो । एवं संजम बहुले संयर बहुले
 संपुठ बहुले समाहि पडुल धीरे काण्य फासयंतो सयर्य अज्जप्पज्जकाय
 षुचे समिय एगे चरअवम्मं । एवं सेज्जा समिति जोगेण भावितो भवति

अंतरप्पा निच्चं अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्मविरते दत्तमणुनाय उग्गहस्ती ।

छाया-“इदञ्च परद्रव्यहरण-विरमण-परिरक्षणार्थाय प्रवचनं भगवता सुकथि-
तमात्महितं प्रेत्यभावितमागमिष्यद्भद्रं, शुद्धं न्यायोपेतमकुटिलमनुत्तर सर्वदुःख-
पापानां व्युपशमनम् । तस्येमा. पञ्चभावनास्तृतीयस्य भवन्ति परद्रव्यहरण-विर-
मण-परिरक्षणार्थाय ।

प्रथमं-देवकुल-सभा- प्रपाऽवसथ- वृत्तमूलाऽऽराम- कन्दराऽऽकर- गिरिगुहा-
कर्मोद्यान-यान शाला-कुपितशाला-मण्डप-शून्यगृह-श्मशान-लयनाऽऽपणे, अन्य-
स्मिश्चैवमादिके-उदर-मृत्तिका-बीज-हरित-त्रय प्राण्यसप्तष्टे यथाकृते, प्रासुके,
विधक्ते, प्रशस्ते-उपाश्रये भवति विहर्तव्यम् । आधाकर्मबहुलश्च यः स आसिक्त-
संमार्जितोत्सिक्त-शोभित-च्छादन-धवलन-लिम्पनाऽनुलिम्पन-ज्वलन-भाण्ड चाल-
नम् अन्तर्बहिश्चाऽसंयमो यत्र वर्द्धते, सयतानामर्थे वर्जयितव्यो हि उपाश्रयः सतादृशः
सूत्र प्रतिक्रुष्ट । एव विधक्त्वास वसति-समिति योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा
नित्यमधिकरण-करण-कारणा-पापकर्मविरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचि ।

द्वितीयमारामोद्यान-कानन-वनप्रदेश भागे यत्किञ्चिद्वृक्षदं वा-ढढण सदृश तृण-
विशेष, कठिनकञ्च, जन्नुकञ्च, परामेरा-(मुञ्जसरिका) कूर्च-कुश-दर्भ-पलाल-
मूयक-बल्वज-पुष्प-फल-त्वक्-प्रवाल-रुन्द-मूल- तृण-काष्ठ- शर्करादि गृह्णाति
शय्योपधेरर्थाय । न कल्पते अग्रग्रहेऽदत्ते ग्रहीतुम् । अहन्यहनि अग्रग्रहमनुज्ञाप्य
ग्रहीतव्यम् । एवमवग्रह समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण-
करण-कारणा-पापकर्म विरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचि ।

तृतीयं-पीठ-फलक शय्या-सस्तारकार्थाय वृत्ता न छेदनीया । न छेद्
नेन भेदनेन शय्या कारयितव्या । यस्मैवोपाश्रयेवसेत्, शय्य तत्र धरा वेधणीया न च
विषमां समां कुर्यात् । न च नित्रात-प्रवातोऽसुकत्व, न दशमशकेषु लुभितव्यम्-
अभिर्धूमो न कारयितव्य । एवं सयम बहुत सवर बहुल सवृत बहुल समाधि
बहुल । धीर कायेन स्पृशन् सततमध्यात्मध्यानयुक्त समित्या एव अर्द्धर्म । एवं
शय्या समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण-करण-कारणा-
पापकर्म विरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचि ।

अन्व०-“(इमच) और यह अचौर्य व्रत सम्बन्धी (पावयण) प्रवचन (पर-
द्रव्य हरण-विरमण-परिरक्षणद्वयाए) पर द्रव्य हरण-विरति रूप व्रत की रक्षा के

लिये (भगवत्या) भगवान् महावीर ने (मुकहित) अच्छी तरह स कहा है जो
 (अचहित) आत्म हितकारी (पेक्षाभाजित, आगमोसिभरं) परलोक में शुभ फल
 जाता और-मविष्य में कल्याण का-कारण है- (सुदं नेपाउर्य अकुञ्ज) शुद्ध-नाप
 युक्त एवं कुटिलता रहित है (अणुचर) सर्व भेद (सव्यवृत्त पावाक बिभोवसम्भ)
 सर्व दुःख एवं पापों का उपशान्त करने वाला है (तस्य) उस अचौर प्रत की
 (१मा पंच भावणाद्यो) ये पांच भावनायें (ततियस्व परव्यवहरणवेरमण-परि
 रक्खणदुपाय) सीसरे परव्यव हरण विरति रूप प्रत की रक्षा क लिये (होठि)
 हाठी हैं । (पठमो) पहली भावना-विविक्त वसति सेवन रूप बीसे (देवकृत-सम-प्यवा
 वसह-स्वस्वमूह-आराम-कंदराग्न- गिरिगुहा-कम्म-अव्याण जाण साक्षा-कुवित
 सात्वा-मठव-सुमपर-सुसाण-जेण-आपणे) देवज्ञ-देव स्थान, समा-विचार स्थान
 या व्याख्यान समझ, प्रपा-व्याड, आवसथ-परिव्राजकों का स्थान, इण मूव,
 आराम-लता मण्डप आदिमे युक्तवनविशेष, कन्दरा-गुफा, आकर-स्थान, गि-गुहा,
 कर्म-सुधा आदि बनाने का स्थान रत्तराला आदि, उद्यान-वर्गिका, यान्त्रास्ता-
 वाहनादि रखने का घर, कुपित शाला-पुण आदि सामान रखने का घर, मठप-
 विवाह आदि प्रसङ्ग में बना हुआ समा मण्डप, मूय पर श्मशान, लपन-पहाड़ में
 बना हुआ घर और दुकान में (अन्नामि य एव मादियमि) और इस प्रकार के
 अन्य स्थान में जो (वग-मद्विय बीज हरित-तस्य पण्य-असंसरी) सञ्चित जल, मिट्टी,
 बीज वृक्ष आदि इरी और प्रस प्राणिमों मे रहित ह्ये (अहाकडे) गृहस्थ ने अपन
 जिय जिमे बनाया हो एसे (फसुण) प्राणु-निर्जीव (विविशे) परकन्त अतण्य
 (पस-ये धवस्सए) प्रशस्त-वचन उपाश्रय में (विहरियव्व हांइ) बिचरना बाहिमे
 (आहाकम्म वहुअं य जे) साधुओं के निमित्त जिसमें हिंसा की जाय बीसे आधा
 कम रूप दोष की अधिकता वाला और जो (आसित-संमञ्जि-वस्सित-सादिब-
 छावण-वूमण-तिपण-अणुपिय-अलण भंड चाकण-अंतो वहिं व) आसित
 पानी स बाड़ा सींचा हुआ संमार्जित-काण्ड से र्ममार्जन किया हुआ, वस्सित-सूत्र
 पानी सींचा हो, रोमित-पुण्य माला आदि स रोमित हा, चावल-दान आदि से
 दान किया हो, वूमन-काड़ी आदि से पोता हो, तिपन-ग्रेषर आदि से तिपा हा
 अणु तिपन-तिपे हुए को पुन लोपा हो ज्वलन-अग्नि जला कर उपाया हो या
 प्रकाशित किया हो, माधु क तिय मर्दों का हटाया हो और घर क भीतर या बाहर

(जल्य अमत्रमो वडुनी) जहा असंयम-जीवों की विराधना बढती हो (संजयाण अट्टा से वज्जेयन्धो हु उवन्सओ) साधुओं के लिये वह उपाश्रय निश्रय से वर्जनीय है, क्योंकि (तारिसए) घैसा स्थान (सुत्तपडिक्कुट्टे) सूत्र से निपिठ है (एवं विविच वास-वसहि समिति जोगेण) इस प्रकार निर्दीप चास स्थान में व सतिरूप समिति के योगसे (भावितो) पवित्र किये हुए (अंतरप्पा) अन्त-करण वाला मुनि (निच्च अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्म विरतो) सदा, दुर्गति के कारण पापकर्म-के करने व करवाने से निवृत्त (दत्तमणुत्राय-ओग्गहरुती) दत्त अनुज्ञात अवग्रह मे रुचि वाला (भवति) होता है।

(द्वितीय) दूसरी भावना-अनुज्ञात संस्तरक ग्रहण रूप, जैसे-(आरामुज्जाण काणण-वण-प्पदेस भागे) आराम, उद्यान-बगीचा, कान्त-नगर के समीपवर्ती सामान्य वन, वन-नगर से दूर का वन प्रदेश इन सब स्थानों में (जं किंचि) जो कुल्ल भी (इक्कड) इक्कडजाति का घास, तथा (कठिणगं) कठिन-तृण जाति (च) और (जंतुगं) जन्तुक-पानी मे पैदा हुआ तृण (च) और (परामेर-कुच्च-कुम-डम्भ-पलाल-मूयग चक्कय-पुप्प-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ट-सक्करादी) परा-एक प्रकार का तृण, मेरा मुंज की तन्तु, कूर्च-जुलाहे के कूंची बनाने का तृण कुश और डाम, पलाल-वान्य विशेष का डाट, मूयक-एक प्रकार का तृण, बल्कज, पुष्प, फल, त्वचा, प्रवाल, कन्द, मूल, तृण, काष्ठ और शर्करा आदि द्रव्य (गेण्हइ) ग्रहण करता है (सेज्जोवहिस्स अट्टा) शय्या और उपधि के लिये (उग्गहे अदिन्नं मि) उपाश्रय के भीतर की ग्राह्य वस्तुओं को दाता के बिना दिये (गेण्हइ) लेना (न कप्पए) नहीं कल्पता है इसलिये (हण्हणि) प्रति दिन (उग्गइ अणुत्रविय) ग्राह्य वस्तु की आज्ञा लेकर (गेण्हयव्व) ग्रहण करना चाहिए। (एव) इस प्रकार (उग्गहसमिति जोगेण) अवग्रह समिति योग से (भावितो) युक्त (अतरप्पा) अन्तःकरण वाला साधु (निच्चं) सदा (अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्म विरते) दुर्गति के कारण स्वरूप पाप कर्म के करने व कराने से विरक्त हुआ (दत्त मणुत्राय य ओग्गहरुती) दत्त और अनुज्ञात अवग्रह-पदार्थ को रुचि वाला (भवति) होता है।

(ततियं) तृतीय भावना-शय्या परिकर्मवर्जन रूप, जैसे-(पीठ-फलग सेज्जा-सथारगट्टयाए) पीठ, पाट, शय्या और सम्तारक के हेतु (रुक्खा) वृक्ष (न

द्विद्विषया) नहीं धन करना चाहिए (खेरण्य) वृक्ष आदि के खेवन व (मेयखण) मदन से (मेखा) शय्या (न कारेयखा) नहीं करवानी चाहिए (अस्तेय उचसस्ते) त्रिची कं उपाग्रभ में (वसेख) उदरे (ठत्येख) वहाँ पर ही (सेख) शय्या की (गयेसेखा), गवेपखा करे (य) किन्तु (बिसम समं न करंखा) विषम को सम नहीं बनावे (न निबाव पवाम उत्सुगर्ष) ; पवन बाला या वायु रहित स्थान में उत्सुकता नहीं करे (न बंस-मत्तगेसु सुभियद्व्य) बंस और मच्छर आदि के विषम में धुम्ब नहीं होना चाहिए (अग्नी घूमो न कामखो) बंस आदि इटान क लिय अग्नि अथवा घूमो नहीं करना चाहिए (पय) इस प्रकार (संजम बहुजे) संजम-जीव रक्षा की प्रपन्नता बाला (सवर बहुजे) संवर की अधिकता बाला (सबुद्धबहुले) कपाय व इन्द्रियों के सवृत्तपन की प्रचुरता बाला (समाहियदुसे) अतः समाधि सम्पन्न (धीरे) धीरे साधु (काप्य फासर्षतो) शरीर से इस व्रत का पालन करता हुआ (सर्व) निरन्तर (अभ्यस्य-भ्याखजुत्ते) अभ्यात्म ध्यान से मुक्त (समिप) समिति बाला (एगे धम्मं खरेख) रागादि रहित पकाही होकर धर्म का आचरण करे (एवं) इस प्रकार (सेखा-समिति ओग्य) शय्या समिति के योग से (मावितो) मुक्त (अतरप्या) अन्त करण बाला (निष्कं) सदा (अहिकरण-करण-काराबय-पाव कम्म विरते) अधिकरण को करने व कराने रूप पाप कर्म से विरत (एत्तमसु भाय-उम्हाइरुती) विय गण और आत्मा प्राप्त अथम्ह की उचि बाला (मवति) होता है ।

मूल—' चतुर्थ—साहारख पिठपातलामे मोचख्वं संखण्य समियं, न साय खयाहिकं, न खदं, ख वेगित, न तुरियं, न खत्तं, न ग्गाद्वं, नग परस्स पीलाकरं, सावज्ज, उह मोचख्वं खइसे ततियबयं न सत्तिदि । साहारख पिठपात लामे सुहुमं अदिआदाख वय-नियम वेरमणं [विरमण वथ नियमणे] एवं साहारख पिठपाय लामे समितिजोगेख मावितो मवति अंतरप्या, निष्कं अहिकरण-करण-काराबय-पावकम्मविरते दत्तमणुभाय उम्हाइरुती । पचमर्ग-साहम्मिण विशब्धो पठ जियख्वो, उवगरख पारखासु विखमो पठ जियख्वो, वायण परियइयासु विखमो पठजियख्वो, दाख गइख पुच्छखासु विखमो पठ जियख्वो, निक्खमख पवसखासु विखमो पठ जियख्वो । अन्नेसु य पवमादिसु बहुसु कारखसणसु विखमो पठ जियख्वो । विखमोवित्तो

तवोविधम्मो, तम्हा विण्णो पउंजियञ्चो । गुरुसु माहूसु तवस्मीसु य ।
एवं विण्णतेण भाविणो भवति अंतरप्पा णिच्चं अधिकरण-करण-कारावण
पावकम्मदिरते दत्तमणुनाय उग्गहर्ई । एरमिणं संवरस्सदारं सम्मं संवरियं
होइ सुपणिहियं एवं जाव आघवियं सुदेसितं पसत्थं ॥ तृतीयं संवरदारं
समत्तं तिणेमि ॥ सू० २ । २६ ॥

छाया-“चतुर्थं साधारण पिण्डपात्रलाभे भोक्तव्य संयतेन सम्यक्-नशा-
कसूपादिकं, नाऽधिकं न वेगित, न त्वरित, न चपल, न साहस, न च परस्य
पीडाकर सावयं, तथा भोक्तव्यं यथा तस्य तृतीय व्रतं न सीदति । साधारण
पिण्डपात्र लाभे सूक्ष्ममदत्ताऽऽदानव्रतनियम विरमणम् । एवं साधारण पिण्ड
पात्रलाभं समित्तियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण करण, कारणा पाप
कर्मविरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचिः । पञ्चमकं साधर्मिके विनयः प्रयोक्तव्य उपकरण
पारणासु विनय प्रयोक्तव्यो, वाचनपरिवर्तनासु विनयः प्रयोक्तव्यः । दान ग्रहण
पृच्छासु विनय प्रयोक्तव्यो निष्कमण प्रवेशेषु विनयः प्रयोक्तव्यः । अन्येषु चैवमादि
केषु बहुषु कारणशतेषु विनयः प्रयोक्तव्यः । विनयोऽपितप, तपोऽभिधर्मः तस्माद्वि-
नयः प्रयोक्तव्यो गुरुषु साधुषु तपस्विषु च । एवं विनयेन भावितो भवत्यन्तरात्मा
नित्यमधिकरण-करण-कारणा पापकर्म विरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचिः । एवमिदं
सवरस्य द्वारं सम्यक् सवृतं भवति सुप्रणिहितम् एव यावत् आह्वयं सुदेशितं प्रश-
स्तम् । तृतीयं संवरद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि । २ । सू० २६ ।

अन्व०-“(चउत्थ) चतुर्थं भावना-अनुज्ञात भक्तादि भोजन रूप (साधारण पिण्ड-
पात्रलाभे) सब साधुओं के लिये सम्मिलित आहार आदिके मिलने पर (सजएण)
साधु को (समिय) सम्यक् यतना पूर्वक (भोक्तव्यं) आहार करना चाहिए, जैसे
(न सायसूयादिकं) शाक और सूप की अधिकता वाला नहीं खाना चाहिए (न
खद्ध) साथ बैठकर स्वयं अधिक या जल्दी २ नहीं खावे (न वेगितं) वेग युक्त नहीं
खाना (न तुरिय) जल्दी २ भी नहीं खाना (न चवलं) न चचलता युक्त
(न साहस) न बिना विचारे खाना चाहिए (न य परस्स पीलाकर सावज्जं)
और दूसरे को पीडाकारक तथा सदोष रीति से नहीं खाना चाहिए (तह
भोक्तव्य जह से ततिय वय न सीदति) उस प्रकार आहार करना चाहिए जिस
प्रकार से उस साधु का तीसरा अचौर्य व्रत नष्ट नहीं हो (साधारणपिण्ड-

पापत्रय) साधारण विद्वत्ता के लाभ में (सुदुर्म) यह सूत्र (अधिभाषण-व्य निवर्तन) अर्थात् को प्रजनियम से रोकने वाला अथवा अर्थात् निवर्तन मखत्रय आत्मा का निवर्तन करने वाला है (एवं) इस प्रकार (साधारणपिड पापत्रय) साधारण पिड पातक लाभमें (समितिशोभेण समिति के योग में (माभिता अन्तरणा) युक्त अन्तःकरण वाला साधु (निवर्त) सदा (अधिकरण-करण-कारण-पापकर्मविरते) अधिकरण रूप पापकर्म के करने कराने रूप कम से विरत (इत्तमगुणाय उमादृती) दत्त और अनुशात अवमह की कवि वाला (भषति, होता है।

(पंचम) पाँचवी भाष्यना-माभर्मिक विनय करने रूप, जैसे- 'साम्प्रति वि श्रमा पत्र विद्वत्) माभर्मिक के सम्बन्ध में विनय करना आदि (उपकरण पार यस्तु) उपकार और उपस्था की पारणा-पूर्ति-में (विश्रमा पत्र विद्वत्) विनय-प्रयोग करना आदि (वाच्य-परियट्टणस्तु) मूत्र प्रहृत्य पाचना में और मूत्र की, आशुति में-पुन' पठन में (विश्रमा पत्र विद्वत्) विनय करना आदि, (वाच्यगणपुच्छणस्तु विद्वत् पत्र विद्वत्) मित्रे हुए अन्न वि माधुष्यो का इन में और दूममें से प्राप्त करने एवं विम्वन मूत्रार्थ की पुन-पृच्छामें विनय करना आदि (निवर्तव्य पत्रेणस्तु विद्वत् पत्र विद्वत्) म्यन्त मनिवर्तन य प्रकाश करने में आराधीय आदि विनय करना आदि (अन्तमु य पत्रमादिमु) और इत्यादि-इस प्रकार के दूमर (पहुनु कारणमापु) बहुत से मैद्वों कागणों में (विश्रमा पत्र विद्वत्) विनय करना आदि। (विद्वत् वि-सर्वो) विनय भी तप और (तपो वि पत्रा) तप भी धर्म है (उम्हा विश्रमा पत्र विद्वत्) इसलिये विनय करना आदि।

विनये सम्बन्ध में विनय कर्तव्य है ?

उत्तर-(गुह्यु सामु त्वस्मीमु य) गुह्यों में साधुओं में और तपस्विनों में। (एवं) इस प्रकार (विश्रमा माभिता) विनय से युक्त (अन्तरणा) अन्तःकरण वाला साधु (निवर्त) सदा (अधिकरण-करण-कारण पापकर्म विरत) अधिकरण रूप पाप के करने से विरत (इत्तमगुणाय उमादृती) दत्त और अनुशात अवमह में कविवाला (भषति) होता है (पंचमिणं सवरम्प दारं) इस प्रकार अर्थात् प्रत्येक यह संबन्ध (मर्म) अर्थात् तरह (संबन्ध) पाकन

क्रिया गया (सुष्पण्डित्य) सुरक्षित (क्षोड) होता है। एवं जाय) इम प्रकार यावत् (आयवियं मुद्रेसितं) देव आदिओं के माननीय ज्ञानियों के द्वारा अच्छी तरह कहा हुआ (पसत्यं) प्रशस्त है।

(ततिय संवरदारं समत्तं तिवेमि) तीसरा संवरद्वार समाप्त हुआ ऐसा मैं कहता हूँ। सूत्र २। २६।

भावार्थ—“पर द्रव्य हरण से निवृत्तिरूप इस व्रत की रक्षा के लिये यह प्रवचन भगवान् महावीर ने अच्छी तरह कहा है। जो आत्महितकारी और यावत् सवदुःख एव पापों का उपशमन करने वाला है। व्रत की रक्षा के लिये इस तीसरे व्रत की पांच भावनायें हैं, जैसे—

पहली भावना गृहस्थ के द्वारा उनके अपने लिये बनाये गए, संचित्त जल आदि अस स्थावर जीव रहित प्राणिक, स्त्री आदि विकारी साधन शून्य गक्रान्त और प्रशस्त उपाश्रय में रहना चाहिए। देवकुल, सभा आदि १८ प्रकार के और ऐसे अन्य निर्दोष स्थान में ठहरना चाहिए। जो मकन साधु के लिये आरम्भ करके बनाया हो, या पानी में सींचा हो, फूल माला आदि से सजाया हो, डाम आदि में छत बनाना, चूने खड़ी से पोतना, गोबर में लीपना अग्नि जलाना, और भाण्ड वर्तन वासन इधर उधर करना ये सब क्रियायें जहाँ घर के भीतर या बाहर साधु के लिये की गई हों साधुओं को वैसा हिंसायुक्त उपाश्रय वर्जन करना चाहिए, क्योंकि ऐसा म्यान सूत्राज्ञा से निषिद्ध है। इस प्रकार यह विविक्त-वित्र वाम वस्तुत्प प्रथम भावना है।

ऐसे वगीच आदि के वन प्रदेश में जो कुछ इक्कड़ आदि घास और फूल, फल त्वचा आदि वनरपत्ति के शृङ्ग तथा काष्ठ आदि कोई ग्रहण करता है व्रती-साधु को उनमें से कोई भी पदार्थ स्वामी की आज्ञा लिये बिना ग्रहण करना योग्य नहीं है। इसलिये प्रति दिन प्राण्य पदार्थों की आज्ञा लेकर ही ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार अबग्रह समिति रूप दूसरी भावना है।

पाट पाटिया व शय्या के लिए वृत्त नहीं कटाने चाहिए। छेदन भेदन से पाट आदि शय्या नहीं बनवानी चाहिए, किन्तु जिस उपाश्रय में ठहरें वहाँ पर ही शय्या की गवेषणा करनी चाहिए। विषम म्यान को सम नहीं बनाना, वायु रहित अथवा अधिक वायु वाले स्थान में उत्पुक्तता नहीं करना। बांस मच्छर

आदि से घृष्य नहीं जाना और उनके निवारणार्थ अग्नि या घूम का प्रयोग भी नहीं करना, इस प्रकार संयम आदि माव की प्रधानता से समाभिपुक्त भीर मुनि शरीर से सदा अचौर्य व्रत का पालन करे। आत्मन्यासे युक्त सम्यक् प्रवृत्ति बाह्या और राग द्वय रहित होकर धर्मका आपरण्य करे। यह शम्भा समिति रूप तृतीय भावना है।

चौथी भावना—साधु समूह के लिये माधारण्य पिण्ड के मिलने पर प्रती की पठना पूर्वक सेवन करना चाहिए। शक आदि सं प्रचुर भोजन को अधिक अथवा जल्दी २ नहीं करे चपलता युक्त बिना विचारे और दूसरे के लिए पीडा कारक सहोप आहार का वर्जन करे। साधु को उस प्रकार जाना चाहिए जिस प्रकार से अचौर्य व्रत का मङ्ग नहीं हो। यह अदत्तादान विरमण्य व्रत का सूत्रम नियम है। यह साधारण्य पिण्ड लाम की समिति रूप चौथी भावना है।

साधर्मिक साधुओं के साथ योग्य विनय करना चाहिए। उपकार और पारण्यक आदि विभिन्न प्रसङ्गों पर गुरु, सामान्य साधु-व्रती और तपस्विओंके विषयमें विनय करना चाहिए। क्योंकि विनय भी एक प्रकार का तप है और तप भी धर्म है। इसलिये विनय साधन करता चाहिए। इस प्रकार विनय समितिरूप पांचवी भावना होती है।

इस प्रकार प्रत्येक भावना सं युक्त अन्तःकरण ध्याना साधु सदा अभिचरण्य रूप पाप कर्म के करने व कराने से विरत होकर वृत्तानुज्ञात अथवा अचौर्य व्रत की रुचि बाह्या होता है। इस प्रकार यह अचौर्य व्रत तृतीय संवर का धार है। उपरोक्त भावनाओं के द्वारा अच्छी तरह पाज्ञा आता है। उत्तम है। इस प्रकार सुषम स्वामी कहते हैं कि यह तीसरा संवरदार पूण बुधा। सू० ॥ २ ॥ २६ ॥

साटीरा—इस अभ्यसन में इन्द्र और माव दोनों प्रकार के अचौर्यकर्म का निषेध किया गया है। क्योंकि काठक के यह और साहित्य का अंश लेकर अपनी विद्वत्ता बताना भी एक प्रकार की चोरी है। इस व्रत की रक्षा के लिये पांच बातें परम अपेक्षित हैं। निर्हास व एकांत स्थान का सेवन करना बिना दिये दण्ड तक भी ग्रहण नहीं करना शम्भा आदि के लिये वृद्ध आदि नहीं कृतवन्ता, और प्रतिकूल परिस्थिति में भी घृष्य नहीं जाना मित्रा सं प्राप्त आहार का विधिवत् सेवन करना, गुरु, और साधुओंमें यथा योग्य विनय करना, साधुओंको इन्हें पानमें रखना चाहिए।

ॐ समाप्तं तृतीयसंवरद्वारम् ॐ

० अष्टमं शान्यवार्धं मावार्धम् ०

ॐ चतुर्थ संवरद्वारम् ॐ

सम्बन्ध-तृतीय संवर में अचौर्यव्रत का विधान किया गया है। वह ब्रह्मव्रत के धारण करने पर ही निर्वाध पाला जा सकता है, इसलिये चतुर्थ अध्ययन में सूत्र क्रम से सम्बन्धित ब्रह्मचर्यव्रत का निरूपण करते हैं-

मूल-"जंबू ? एत्तो य वंभचेरं उत्तम-तव-नियम-शाण-दंसण-
 चरित्त-सम्मत्त-विणायमूलं, जम-नियम-गुणप्यहाणजुत्तं, हिमवंत महंत-
 तेयमंतं, पसत्थ-गंभीर-थिमित्त-मज्झं, अज्जव-साहुजणा चरित्तं, मोक्ख-
 मग्गं, विसुद्ध-सिद्धिगति-निलयं, सासयमव्वाचाहमपुण्णभवं, पसत्थं सोमं
 सुभं सिवमचलमक्खयकरं । जतिवर-सारक्खित्तं, सुचरियं सुभासियं,
 नवरिमणिवरेहिं महापुरिस-धीर-खर-धम्मिय-धित्तिमंताण य सया
 विसुद्धं, भव्वं भव्वजणाणुचिन्नं, निस्संक्रियं, निब्भयं, नित्तुमं, निरायासं,
 निरुवलेवं, निव्वुतिवरं, नियम निप्पकंपं तव संजम-मूल-दलियणोम्मं,
 पंच महव्वयं सुरक्खियं, समिति गुत्ति गुत्तं, भाणवर-कवाड-सुकयमज्झप्प
 दिन्नफलिहं, संनद्धोच्छइयदुग्गहपहं, सुगतिपहदेसगं च, लोगत्तमंच व-
 यमिणं, पउमसरत्तलाग-पालिभूयं, महासगड अरगतुं व भूयं, महा-
 विडिमरुक्खक्खंधभूयं, महानगर पागार कवाडफलिहभूयं, रज्जु पिण्णिद्धो
 व-इंदकेत्तु विसुद्ध खेग गुण संपिण्णदं । जंमिय भग्गमि होइ सहसा सव्वं
 संभग्ग-मथिय-चुन्निय-कुसल्लिय-पल्लद-पडि-खंडिय-परिसडिय-विणा-
 सियं, विणयसील-तव-नियम गुणसमूहं, तं वंभं भगवंतं-गहगण न
 क्खत्त तारगाणं वा जहा उडुपती १, मणिमुत्त-सिल-प्पवाल-रत्त रयणा-
 गाराणं व जहा समुदोर, वेरुलिओ चेव जहा मणीणं ३, जहा मउडो चेव
 भूसणाणं ४, वत्थाणं चेव खोम जुयलं ५, अरविदं चेव पुप्फजेट्ठं ६, गोसी-
 सं चेव चंदणाणं ७, हिमवंतो चेव ओसहीणं ८, मीत्तोदा चेव निजगाणं ९,

स्वण्डित-परिशाटित-विनाशितं । विनश्रील-तपो-नियम-गुणसमूहं, तद्ब्रह्मचर्यं
 भगवद्, प्रहगण नक्षत्र तारकाणां वा यथोद्भूतः १, मणिमुक्ताशिला-प्रवाल-रत्न
 रत्नाऽऽकराणां च यथा समुद्रः २, वैदूर्यञ्चैव यथामणीना ३, यथा मुकुटञ्चैव भूष-
 णानां ४, वस्त्राणाञ्चैव जौमयुगलम् ५, अरविन्दञ्चैव पुष्पपत्रेष्ठ ६, गोशीर्षञ्चैव
 चन्दनानां ७, हिमवारश्चैव औपधीनां ८, शीतोदाञ्चैव निम्नगानाम् ९, उदधिषु यथा
 स्वयम्भुरमण १०, रुचःरश्चैव माण्डलिक पर्वतानां प्रवरः ११, ऐरावत इव कुञ्ज-
 राणाम् १२, सिंशोयथा मृगाणां प्रवरः १३, पावकानां चैव वेणुदेवो १४, धरणी
 यथा पन्नगेन्द्रराजा १५, कल्पानाञ्चैव ब्रह्मलोकः १६, सभासु च यथा भवेत्सुधर्मा
 १७, त्वितिषु लवसप्तमावा प्रवरा १८, दानानाञ्चैवाऽभयदानम् १९, कृमिराग इव
 कम्बलानाम् २० संहननेषु चैव वज्रर्षभ २१, सस्थाने चैव समचतुरस्रम् २२, ध्यानेषु
 च परमशुक्ल ध्यानम् २३ ज्ञानेषु च परमकेवलं तु सिद्धम् २४ लेशयासु च परमशुक्ल
 लेश्या २५, तीर्थङ्करो यथा चैव मुनीनाम् २६, वासेषु यथा महाविदेहो २७, गिरिराज
 श्चैव मन्दारवरः २८, वनेषु यथानन्दनवनं प्रवरम् २९, द्रुमेषु यथा जम्बूः सुदर्शना
 विधुतयशा यस्यानाम्नाचायं द्वीपः ३० तुरगपति रजपतीरथपतिर्नरपतिर्यथा विश्रुत-
 श्चैव राजा ३१, रथिकश्चैव यथा महारथगतः ३२ । एवमनेके गुणा अहीनाभवन्ति
 एकस्मिन् ब्रह्मचर्ये । यस्मिन् चाराधिते आराधितं व्रतमिदं सर्वम् । शील तपश्चविन-
 यश्च संयमश्च, ज्ञान्तिगुणिवृत्तिः तथैव ऐदित्तौक्तिक पारलौकिक यशश्च कीर्तिश्च प्रत्य
 यश्च तस्मान्निवृत्तेन ब्रह्मचर्यं चरितव्यम् । सर्वतो विशुद्ध यावज्जीवन यावच्छ्रेयोऽर्थं
 सयमिनेति, एवं भणितं व्रतं भगवता ।

अन्व०“(जंबू !) हे जंबू ? (एतोय) फिर इस तृतीय व्रत के आगे (वंभचेर)
 ब्रह्मचर्य व्रत है, जो (उत्तमनव-नियम-शाखा-दृग्ण-चरित्त-सम्मत-धिणयमूल)
 उत्तम अनशन आदि तप, नियम-उत्तर गुण, ज्ञान, दर्शन, धारित्र, सम्यक्त्व और
 विनय का मूल है (जम-नियम-गुणपहाणजुत) अहिंसादि पाच यम और गुणों
 की प्रधानता वाले नियम से युक्त (हिमवत महत्तनेयमत) हिमवान् पर्वत के समान
 बढ़ा और तेजस्वी (पसत्यगभीरथिमितमग्भ) प्रशस्त गम्भीर और स्थिर मध्य याने
 मनुष्य के अन्तःकरण घाला, (अज्जय साहु जणा चरितं) सरल भाव युक्त साधु
 पुरुषों से आमेयित (मोक्खमग्ग) मोक्ष का मार्ग (विशुद्ध सिद्धिगति निलय)
 विशुद्ध रागादि रहित निर्मल सिद्धि गति रूप घर घाला (सासयमव्वासाहमपुण

'भ्रमं' शान्त, बाधरहित और पुनर्जन्म को रोकने वाला (पञ्चमं सोमं भ्रमं)
 प्रशस्त-उत्तम गुण वाला तथा सौम्य, शुभ अथवा सुख रूप-(सिवमचक्रमन्त्रायकरे,
 शिव-निरुपद्रव अथवा और अक्षय या पूर्ण पर को करने, वाला (अतिवर सार
 क्लिप्त) प्रधान मुनिओं से सुरक्षित (सुरक्षितं सुमासिर्गं) अथवा तरह प्राचरण
 क्रिया हुआ, सम्यक प्रकार से उपदिष्ट नवरि) केवल (सुखिबरेहि) उत्तम मुनिओं
 से 'उपदिष्ट है' (महा पुरिस-धीर-सूर-धम्मिय-भित्तिमंताय य) उत्तम महा पुरुष
 अत्यन्त साहसी और धार्मिक व धृति वाले पुरुषों का व्रत (सया) सदा (विमुद्धं)
 शेष रहित अथवा सभी अवस्थाओं में शुद्ध पाला गया है (भव्यं) कल्याण का
 कारण तथा (भव्यजसाणुचिन्तं) भव्यजनों से पाला गया है (निस्संकिणं) यह
 शंकररहित (निष्मयं निपुसं) मिर्मय और शुच-निस्वारता से रहित है (निरापासं
 निरुपलेवं) खेद रहित व स्नेह के अप-क्षेप से रहित (निम्नुतिषरं) चित्त शान्ति
 का घर (नियम निप्यकंपं) निम्न से अविचल (तवसंजम-मूल-वृद्धि-वेद्यं)
 उप और संयम के मूल इतके समान (पंचमह्यं यमुचिक्खं) पांच महाव्रतों में
 विशेष सुरक्षित (समिति-गुणितुत्तं) पांच समिति और तीन गुणियों से गुप्त (म्हा
 खबर-कबाड-सुक्य-मम्मपदिमकलिहं) रक्षा के लिये उत्तम ध्यानरूप सुविशेषित
 कपाटवाला और अध्यात्म-सर्वमावनामय चित्त ही यहाँ ही हुई अगता है, ऐसा
 (संनयोच्छ्रय-दुमाहर्षं) बड़े हुए और बड़े हुए की तरह ही दुर्गतिमार्ग का प्रति
 बन्धक (च) और (सुगतिपहरेसं) सुगति के मार्ग को दिखाने वाला (जोगुत्
 संच) और लोक में उत्तम (वयमिच्छं) यह व्रत (पञ्चमसत्-तहाग-न्यात्रिभूवं) यथा
 सतेपर क पालनस्य (महासगड-धरग-नुव-मूर्धं) बड़े लकड़े बन्धों लगे हुए
 बन्धियों के लिये नामितुल्य (महाविद्धिमठकस्त-कसंभमूर्धं) तथा अतिशय
 विस्तार वाले बड़े हुए के स्वरूप के समान (महानगर-पागार-कबाड-कलिहमूर्धं)
 बड़े नगर के प्रकार में कपाट की आगल के समान, [धर्मरूपनगर-कपाट की
 प्रथमत आगत है] (रज्जुपिण्डोय-ईरडेणु) डोरी से बनेहुए इन्द्र वज्रकी तरह
 (पिण्डुवण-गुण-संपिण्डं) अनेक विशुद्ध गुणों से युक्त है (वीमिय ममांमि)
 और जिसके मंग होने पर (सहसासम्भं) सहसा सब विषयवर्षित-तव-नियम-
 गुणममूर्धं) विनय, शील, उप और नियम आदि गुणसमूह संभवा-प्रथिय-पुत्रिय
 इत्येव पञ्च-पथिय-वृद्धिय-वग्निमृद्धिय-विष्णुसिर्गं) पूठे हुए पत्नी तरह संभय,

वही के जैसे मथा हुआ, आंटे के जैसा चूर्ण किया हुआ, कांटा लगे शरीर के समान शल्ययुक्त, पर्वत से शिला की तरह धर्म से लुढ़का हुआ, गिरा हुआ, लकड़ी के जैसे दो भाग होकर टूटा हुआ, बुरी हालत में पहुँचा हुआ और अग्नि में जल कर उड़े हुए काष्ठ के समान विनष्ट (होइ) होता है, (तं बंभ भगवतं) इस प्रकार का वह ब्रह्मचर्य भगवान् अतिशय सम्पन्न है ।

अब ३२ उपमाओं से इस ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हैं—(गहगण-नखत्त-तारगाणं वा जहा उडुपती) ग्रह नक्षत्र अथवा तारकों के बीच जैसे चन्द्र (मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-रत्त-रयणागराणं च जहा समुद्रो) और मणि, मोती, विद्रुम अथवा पद्मराग आदि रत्न खानों में समुद्र के समान (वेरुलित्रो चैव जहा मणीणं) और मणिओं के बीच जैसे वैडूर्यमणि प्रधान है (जहा मउडो चैव भूसणाण) आभूषणों के बीच जैसे मुकुट और (वत्याण चैव खोमजुयलं) वस्त्रों के बीच जैसे क्षौमयुगल कपास का वस्त्र ही उत्तम है (अरविंदं चैव पुप्फजेट्टं) फूलों में जैसे अरविन्द-कमल ही श्रेष्ठ है (गोसीसं चैव चंडणाण) चन्दनों में गोशीर्ष जैसे प्रधान है और (हिम-षतो चैव ओसहीण) औषधी-चमत्कारिक औषधिओं का जैसे हिमवान् उत्पत्ति स्थान है (सीतोदा चैव निन्नगाण) और नदियों के बीच जैसे शीतोदानदी प्रधान है (उदहीसु जहा सयंभुरमणो) समुद्रों में जैसे स्वयम्भुरमण समुद्र बड़ा है (रुयंग वरे चैव माडलिक पठ्वयाणपवरे) माण्डलिक गोल पर्वतों में जैसे रुचकवरगिरि प्रधान है (एरावण इव कुजराणं) हाथियों के बीच जैसे ऐरावण प्रवर-श्रेष्ठ है (सीहोव्व जहा भिगाणं पवरे) मृग-जंगल के चतुष्पद प्राणिओं में जैसे सिंह प्रधान है (पावकाणं चैव वेणुदेवे) सुवर्ण कुमारों के बीच जैसे वेणुदेव (धरणो जह पण्णाग इदराया) नागकुमारों में जैसे धरणेन्द्र नागराजा प्रधान है (कप्पाण चैव बंभलोए) कल्प-देवलोक में जैसे ब्रह्मलोक बड़ा और (सभासु य जहा भवे सुहम्मा) सभाओं में जैसे सुधर्मा-देव सभा प्रधान है (ठैतिसु लव सत्त मव्वं पवरा) स्थितिओं में जैसे अनुत्तर विमान वासी देवों की स्थिति प्रधान बड़ी है (दाणाण चैव अभय दाण) अनेक प्रकारों के दानों में जैसे अभयदान (किमिराउ चैव कंबलाणं) कम्बलों में जैसे कृमिराग-रक्त कम्बल प्रधान है (संघयणे चैव वज्जरिसभे) संहननों में जैसे वज्र ऋषभनाराच सहनन और (संठाणे चैव समचउरंसे) छः-संस्थानों में जैसे समचतुरस्रसंस्थान प्रधान है (भाणेषु य परम-सुकम्भाणं)

चार प्रकार के ध्यान में जैसे परम शुद्ध ध्यान और (याज्ञेयु य परम
 केवतं तु सिद्धं) पांच ज्ञानों में जैसे केवल ज्ञान पूरा रूप से प्रसिद्ध है और
 (सप्तसुप्तमसुक्कलेत्सा) छः क्षरराशियों में परम शुद्ध क्षरणा जैसे उत्तम
 है (ठित्यंकरे अहा चेव सुखीयं) मुनिओं में जैसे तीर्थहर प्रधान हैं (व सेसु अहा
 महा विदेहे) वर्ष क्षेत्रों में जैसे मद्राश्रिते क्षेत्र, (गिरिताया चेव मंरु वरे) पर्वतों
 में जैसे मन्दर पर्यन्त गिरिराज है, (ययापु अहा नरखवयं) वनों में जैसे मन्वत वन
 (पवर) श्रेष्ठ है (तुमेसु अहा अंशु सुसंया पीसुय असा) पृथ्वी में जैसे अन्ध सुसंयत
 वृक्ष विमुक्त-विस्मयत कीर्ति वासा है (क्षीम नामेणव अयंवेपो) जिसके नाम से
 यह क्षीम-अन्ध क्षीय कहा जाता है (तुरगवती गववती रक्षती नरखती अह पीसुय
 चेव राया) अश्वपति, गजपति, रक्षपति और नरपति राधा जैसे विस्मयत है, यैने
 यह ब्रह्मव्रत भी उत्तम और विस्मयत है (रक्षिष चय अहा महा रक्ष गय) वने रथ पर
 बैठा हुआ जैसे रक्षिष वृक्षों का अभिभव करने वाला होता है (एवमखेगा गुखा
 अदीसा मरति) इस प्रकार अनेक गुण पूर्ण और स्वाधीन होते हैं (अमिष) और
 तिस (एषंभिर्बमपेरे आराशिवमि) एक ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर
 (आराशिवं वयमिषं सख्यं) यह सब निम न्यत्रत पाजित होता है । [व्रत गिनाते हैं]
 (सोलं) शील-समाधान (सपो य) और तप (त्रिषमो य) विनय और (संजमा
 य) संयम तथा (लंजो गुची सुची) जमा, गुणि, मुक्त-निकोम शक्ति (लहेव) इसी
 तरह (इह लोश्य पारलोश्य असे य कित्तो य) इह लोक और परलोक सम्बन्धी यश
 और कीर्ति-दान पुत्र्य के फल भूत अथवा एक शिगन्त अगपिनो प्रसिद्धि और
 (पञ्चधो य) प्रत्यय-विश्वास का कारण है (लम्हा) इसत्रिये (निद्रुण्य) त्विर
 विच से (सख्यमो विमुद्धं बंमवेरं चरियक्यं) सर्वमा पाने त्रिहरण त्रिगग से
 विमुद्ध होय रहित ब्रह्मचर्य का पाजन करना चाहिये । (आयस्योपाय आव संवट्टि
 संवट्टि) आजीवन के त्रिये वाचन् अभाज्यी या सपस्या से निर्मास जाने के कारण
 साधु रवेतास्मि कहाता है । (एवं भण्डिर्बं ययं भगवया) इस प्रकार भगवान्
 महावीर ने ब्रह्मचर्य व्रत को कहा है ।

भाय-दे अंशु १ तीसरे संवर के बाद अशुभ संवर ब्रह्मचर्य है । यह प्रधान तप,
 नियम और ज्ञानादि का मूल तथा यम निबन्ध आदि प्रधान गुण धारा है । क्षिप्त
 पाप् के समान बहा वेदारी प्रशान्तगम्भीर हृदयवाला आदि अनेक विरोधय स्पष्ट

है। जिस ब्रह्मचर्य के भङ्ग होने पर सहसा विनयशील और तपनियम आदि गुण समूह सब नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। अतिशय सम्पन्न होने से वह ब्रह्मचर्य भगवान् है। षत्तीस उपमाओं से इसका महत्त्व कहा गया है।

जैसे—नक्षत्र मण्डल में चन्द्रमा के समान १, मणि आदि रत्नों की खानों में समुद्र के समान २, मणिओं में वैदूर्य के समान ३, आभूषणों में मुकुट के समान ४, वस्त्रों में क्षौमयुगल-कपास वस्त्र के समान ५, पुष्पों में कमलके समान ६, चन्द्रनों में गोशीर्ष के समान ७, औषधि स्थानों में हिमवान् के समान ८, नदियों में शीतोदा नामकी नदी के समान ९, समुद्रों में स्वयम्भू रमण के समान १०, माण्डलिक पर्वतों में रुचक्रगिरि के समान ११, हाथियों में ऐरावण हाथी के समान १२, जंगली पशुओं में सिंह के समान १३, सुपर्ण कुमारों में वेणुदेव के समान १४, नागकुमारों में धरणेन्द्र के समान १५, बारह देवलोकों में ब्रह्मदेवलोक के समान १६, सभाओं में सुधर्मा के समान १७, स्थितिओं में अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थितिके समान १८, दानों में अभयदान के समान १९, कम्बलों में कुमिराग-रक्त कम्बलों के समान २०, शरीर के सहननों में वज्रऋषभनाराच के समान २१, छः प्रकार के स्रंठाणों में समचतुरस्र संस्थान के समान २२, चार ध्यानो में शुभल ध्यान के समान २३, पाच ज्ञानो में केवल ज्ञान के समान २४, छ लेश्याओं में परमशुक्ल लेश्या २५, मुनिओं में जैसे तीर्थङ्कर २६, क्षेत्रों में जैसे महाविदेह प्रधान है २७, पर्वतों में सुमेरुके समान २८, वनों में नन्दनवन के समान २९ वृक्षों में जंबू वृक्ष के समान ३०, तुरगपति आदिओं में जैसे चक्रवर्ती राजा ३१, रथिकों में जैसे महारथी उत्तम है ऐसे ही व्रतों में ब्रह्मचर्यव्रत बड़ा और प्रधान है ३२। इस प्रकार एक ब्रह्मचर्याव्रत में अनेक गुण पूर्ण तथा निवास किये रहते हैं। ब्रह्मचर्याव्रत के पालन करने पर यह निर्ग्रन्थ प्रव्रज्यारूपव्रत अखण्ड पालन क्रिया होता है। शील, तप, विनय, संयम, क्षमा, गुप्ति और निर्लोभता तथा सिद्धि एवं इस लोक परलोक की यश कीर्ति का भी आराधन हो जाता है। इसलिये स्थिर भावसे ब्रह्मचर्य का त्रिकरण त्रियोग की शुद्धि पूर्वक पालन करना चाहिए। जीवन पर्यन्त इसमें स्थिर रहना आदि, इस प्रकार श्री महावीर प्रभु ने ब्रह्मचर्याव्रत को कहा है वह इस प्रकार है। जैसे—

मूत्र-“तंच इमं-पव'मद्वय-सुम्बय-मूलं, समसमशाइल-साहुसुचिन्नं ।

वेर विरमय-पञ्चबसायं, सम्बसमुद्-महोदधितित्यं ॥ १ ॥

तित्वकरेहि सुदेसिय-मगं, नरय तिरिच्छ-विषजिअयममं ।

सम्बपवित्ति-मुनिभिन्मयसारं, सिद्धिविमाय-अवंगुयदारं ॥ २ ॥

द्व-नरिद-नमसियपूर्यं, सव्वजगुत्त-प्रंगलमगं ।

दुद्धरिसं शुक्कनायगमेद्धं, मोक्खपइस्त वडिसकभूर्यं ॥ ३ ॥

अथ सुद्धचरियस भवइ सुबंमसो, सुममशा सुसाह, सइसी समुष्ठी
ससंअप सएवमिक्खु जो सुद्धं चरणि बमचेरं ।

इमं च रति-राग-दोस-मोह पवद्धयकरं किमज्झ-पमाय-दोसपासत्त्व-
सीलकरयं अम्मंगसायिय तेह मज्झसायिय य अमिक्खुयं कक्खा-सीस-कर
चरय-इदय-वोदय-संभाइय-गायकम्म- परिमदशाणुलेवय- दुम इत्त
पूवय-सरीर परिमदय-आउसिक (य) इसिय-मखिय-नडुगीय-
वाइय-नड-नडुक-अह-मह पेरुय-वे संचक वायिय सिंगारागागयिय य
अभायिय एवमादियायि तय-सजम-वमचेर-धातोवधातियाइ अणुचर
मायेय वंमचेरं वज्जेपव्वाइं सन्दकालं ।

माबेपव्वो भवइ य अंतरप्या इमेहिं तव नियम-सील-जोगेहिं निवकालं,
कित्ते !-अयहायक-अदंतभायय-सेय-मल-अह-धारयं मूषाय-कंसलोण
य सुम-दम-अचेसग-सुप्पिवास हापव-सीतोसियकडुसेजा-भूमिनिसेजा
परचर पवेस-लद्धावलद्ध-मासाभमास-निदय-इस-मसगफास नियम-
तव-गुय विवयमाविण्णि अहा से पिरतरंग होइ वंमचेरं । इमं च अवंमचेर
विरमय परिरक्खसुद्धयाण पावपयं मगवया सुकडियं (अचहितं) पंथामा
विकं भागमसिमइं सुद्धं नेयाउयं अकुडिळं अणुचरं सम्बदुक्ख पावाय
वित्तसययं ।

प्रावा-“तच्छरं-“ पञ्चमहावत सुद्धतमूलं समनकाज्जाविल सासुष्ठीर्यम् ।

वेर विरमइपयंसानं, सर्वसमुद्रमहावधि तीर्थम् ॥ १ ॥

तीर्थङ्करै सुदेशितमार्गं, नरक तीर्थं विवर्जितमार्गम् ।

सर्वं पथिन्न (प्रवृत्ति) सुनिर्मितसारम्, सिद्धि विमानाऽपबुद्धारम् ॥ २ ॥

देवनरंन्द्र नभंत्यितपूज्यम्, सर्वजगदुत्तम मङ्गलमार्गम् ।

दुर्द्वर्षं गुणनायक मेरुम्, मोक्षपथस्याऽवतन्तकभूतम् ॥ ३ ॥

येन शुद्धाऽऽचरितेन भवति सुब्राह्मण सुश्रमण. सुसाधुः, सच्छ्रमि. समुनि. स संयतः स एवभिद्धुः, य शुद्धं चरति ब्रह्मचर्यम् । इदञ्च रति-राग-द्वेष-मोह प्रवर्द्धन करं किमप्य (मद्य) प्रमाद-द्वेष-पार्वस्थ-शीलकरणम्, अभ्यङ्गनानि च तैलमज्ज-नानि (मर्दनानि) च, कक्ष-शीर्षं-कर-चरण-वदन-यावन-सवाहन-गात्र कर्म-परिमर्दनाऽनुलेपन-चूर्णवास धूतन-शीर-परिमण्डन-वाकुशिक-हमित-भणित-नृत्य-गीत-वादित-नट-नर्तक-जङ्ग-मङ्ग-प्रेक्षण वेलंबका (त्रिदूषका) नि, ये शृङ्गारगृहाश्च, अन्यानि चैवमादिकानि तप. सयम-ब्रह्मचर्यं-घातोपघातकानि, अनुचरता ब्रह्मचर्यं वर्जनीयानि सर्वकालम् । भावयितव्यो भवन्त्यन्तरात्मा, एभिस्तपो-निमयशीलयोगैर्नित्यकालम् । केते ? (तद्यथा) अस्नानकम् अदन्तधावनम्, स्वेदमङ्ग-जङ्गवारणम् मौनव्रतकरलो रश्च क्षमा-दमाऽचेलक-क्षुत्पिपासा लाघव-गीतापण-काष्ठ शय्या-भूमि निपद्या-परगृहप्रवेश-लाभालाभ-मानाऽपमान-निन्दन-दंश-मशक-स्पर्श-नियम-नपो-गुण, विनयादिकैर्यथा तत् स्थिरतरं भवति ब्रह्मचर्यम् । इदञ्च अब्रह्मचर्यं विरमण परिरक्षणार्थाथ प्रवचन भगवता सुकथित प्रेत्यभाषिकम् आगमिपत्रभद्रं शुद्ध न्यायोपेतम् अकुटिलम् अनुत्तरं सर्वदुःखपापाना व्युप-शमनम् ।

‘अन्व०—“(तं च) और ब्रह्मचर्य विषयक वह वचन इस प्रकार है—(पच महव्य य सुव्ययमूल) पच महाव्रत रूप सुव्रतों का जो मूल की तरह मूल है अथवा साधुओं के शुभ व्रत और अणुव्रतों का जो मूल है तथा है सुव्रत ? ऐसा सम्बोधन मानकर भी अर्थ किया गया है (समणमणाऽलसाहुसु चिन्तं) भाव पूर्वक शुद्ध रघभाव वाले साधुओं से सम्यक् सेवन किया गया (वैर विरमणपज्जवसाण) वैर की निवृत्ति और अन्त करने वाला (सब्ब समुद्द-महोदधि-तित्थ) सब समुद्रों में बड़े स्वयम्भुरमण समुद्र के समान दुस्तर तथा तैरने का उपाय होने से तीर्थ है ॥ १०॥ (तित्थकरेहि सुदेशितमग्ग) तीर्थङ्करो से अच्छी तरह दिखाये गये मार्ग वाला (नरय-तिरिच्छ-धिवज्जियमग्गं) नरक तथा तीर्थञ्च गति के मार्ग को बंद करने

धाता (सठत्र-पबिधि-सुनिम्नियसारं) सब पवित्र अनुष्ठानों को सार मुक्त करने
 धाता (सिद्धि विमायु अद्युयहारं) सिद्धि और वैमानिक गति के द्वार को खोलने
 धाता ॥ ॥ (देव नरिह नमस्त्रियपूर्ण) देव तथा नरेन्द्रों से नमस्कृत अनुष्म के
 नित्ये पूजनीय (सखत्रगुत्तम-मगलमग्ग) जगत् के सब मङ्गलों का मार्ग या उनमें
 प्रमान है (दुद्धरिसं) दुर्घर्ष-किसी से परामर्श नहीं पाने धाता, अथवा दुष्कर
 (गुण नायगम्मेस्कं) अद्वितीय गुणों का नायक (मोक्ष पदस्त) सम्यग वरानादि
 मोक्ष मार्ग का (वदिसकभूर्यं) शोकर भूत है ॥ ३ ॥ (जेष मुद्ध चरिण्य) जिसके
 मुद्ध भासेवन करने से (मयह सुबंमयो सुसमयो सुमाह) सुजाहय-सबा प्र हण
 यथार्थ तपस्वी और निर्वाण साधक सबा साधु होता है तमा (जो मुद्धं चरति र्मभेरे)
 का मुद्ध रीति से ब्रह्मचर्य का पालन करता है । (स इसी) वह अपि यथावत् पस्तु
 इष्टा है (स मुणी) वह यथोक्त मुनि तथा (स संखय) वह संयत-संयम्बान और
 (स एव भिक्षु) वही भिक्षु है । अब ब्रह्मचर्य में त्यागने योग्य व्यवहारों को कहते
 हैं (इमं च) और इस (रति-राग-दोम-मोह-पवबुडयाकरं) रति-विषय राग-राग
 स्नेह राग द्वेष और मोह को बहाने धाता (किमम्ह-पमाय-दोस-पासत्य-सीक
 करणं) निस्तार प्रमाह दोष और छानादि आचार से बहिर्भूत नकली साधुओं का
 सा व्यवहार करना (अर्भगणाणि य) भूत आदि की मालिश और (शिक मञ्ज्याधिरे)
 तेषकगाकर छानकरना तथा (अभिबक्ष्यं) बारम्बार (ककल सीस कर-चरण परख
 धोरय-संवाह्य गायकम्म-परिमह्याणुलेपण-बुमवास-भूयण-सरीर परिमंढस्य-
 धा तसिक-इसिब-मधिय-नह-गीय-वारय नह-महक-जल-मल-पेच्छय बेलवक)
 कार्य-यगल शिर, हाय पाँव और मुख को धोना, संवाहन-महंत करना, पैर आदि
 अङ्गों का अपन आदि करना, सब ओर से देह को मलना, और धिलपन करना,
 गूर्ण पास-सुगन्धित इत्र से शरीर को सुपासित करना, अगर आदि से भूष देना,
 शरीर का मरहल करना, आदि का रंग निर्ग करके बाकी नख केरा आदि की
 रचना करना, क्षित-हास, व विकार पुक्त बोजना, नाभ्य गीत और भरी आदि
 वाद्य की ध्वनि, मट-माटक करने वाले नर्तक-नृत्य करने धाल, अल्ल-डोरी पर
 रो देने धाले तथा मङ्ग-कुठरी छानने धाले-इन सबका देरना, और दिवूपक सम्बन्धी
 हाय वेष्टाय (पाणि य) और जो (सिगारागाराणि य) गृह्णार रसके परकी ठरह
 (अमाणि य) और अन्य इम प्रकार की वस्तुयें (तय-संजम-बंसवेर धालोत्र

घातियाहं) तप, संयम और ब्रह्मचर्य के घात व उपघात को करने वाली जाने तप आदि का आशिक्ष वा सर्वथा नाश करने वाली हैं (बंभचेरं अगुचर माणेण) ब्रह्मचर्य के आसेवन करने वाले को उपरोक्त घातों (सवकालं) सर्वदा (वज्जेष व्याइ) वर्जन करने योग्य हैं । (इमेहिं तव-नियम-शील-जोगेहिं) इन आगे कहे जाने वाले तप नियम और शील के व्यापारों से (निष्कालं) सदा (अंतरप्पा) अन्तः करण भावेयवो भवइ) भावित करने योग्य होता है (किते ?) वे व्यवहार कौनसे है ?

उत्तर--(अग्रहाणरु-अदंतधावणसेय-मज्झ-जल्लधारणं) स्नान नहीं करना, दन्त धावन नहीं करना, पसीना और मल को धारण करना (मूणवय-केस लोए यं) और मौनव्रत व केश का लुञ्चन करना, (खम-दम-अचेत्तग-खुपिवास-लावव-सीतोसिण-कट्टसेज्जा-भूमिनिमेज्जा-परघर पवेस-ज्जद्धावलद्ध-माणावमाण-निदणं हंस मसग फास-नियम तव-गुण विण्यमादिर्णहिं) क्षमा, दम-इन्द्रियनिग्रह, अचेत्तरु-अल्पवत्त रखना, या वत्त रहित होना, मूख, प्यास, उपग्रि से हल्कापम, ठंडी और गर्मी, काष्ठशय्या-पाट-आदि की शय्या, भूमि निवद्या-भूमि का आसन तथा पर घर में जाने पर कुञ्ज मिलना या नहीं मिलना मान अपमान, निन्दा और डास मच्छर आदि का कष्ट सहना, द्रव्य आदि के अभिग्रह रूप नियम, तप, मूल व्रत आदि गुण और विनय आदि से अन्त करण को भावित करना चाहिए (जहा से थिर तरंग होइ बंभचेरं) जैसे उस व्रती का ब्रह्मचर्य अत्यन्त स्थिर हो । (इमंच) और यह (अग्रभचेर-विरमण-परिरक्खणदुयाए) अन्न-नैशुत के निवृत्तरूप व्रत की रक्षा के लिये (पावयणं) प्रवचन (भगवया) भगवान् महावीर ने (सुद्धियं) अच्छी तरह कहा है 'जो कि' (पेखाभाविकं) परलोक में शुभ फलदायक (अ ग-मेसिमहं) भविष्य में कल्याण का कारण (सुद्धं) शुद्ध (नेमाउयं) न्याययुक्त (अकुडिलं) कुटिलता रहित (अगुत्तरं) सर्व श्रेष्ठ और (सव्यदुक्ख पावाणं विउसवणं) सब दुःख व पापों का उपशमन करने वाला है ।

मूल--"तस्स इमा पंच भावणाओ चउत्थयस्स होंति अवंभचेर वेरमण-परिरक्खणदुयाए, पढमं सयणासण-घर-दुवार-अंगण-आगास-गावक्ख-सात्त-अभिलोयण-पच्छवत्थुक-पसाहणक-एहाणिकावकासा अवकासा

जे प वेसियायां, अर्च्छति य जटव इत्यिकामा, अभिचल्लस मोह राम-रति
 राग वद्धयीमो कर्हिति य कदाभो बहुविहाभो, तेऽविदु वल्लमिजा, इरिय
 संसप्त-सकिलिहा अन्नेवि य एवमादी अवकासा तेहु वल्लमिजा, जत्थ
 मखोपिम्ममो वा, मंगो वा मंसया (मंसगो) वा अष्ट रु व हुज्जम्भावं
 त तं यज्जेञ्ज वज्जमीरु अशायतथां । अंत पतवासी एवमससप्त-वास-वसही
 समित्तियोगेण भावितो भवति अतरप्पा आरतमथ-दिरय-गामभम्मे जित्तें
 दिए पमचेर गुत्ते ॥ १ ॥

वित्तिर्यं नारीञ्जणस्स मज्जे न कइएव्वा कडा, दिदिप्ता विम्भोय-
 विलास-सपउत्ता हास-सिगार लोइयकइव्व मोहज्जशशी, न आवाह-वि
 वाह-यरकडावि व इत्थीर्यं वा सुमग, दुमग कडा, चउअट्ठिं च महिला
 गुथा, न वभ-वेस-जाति-कुल-रुव-नाम-नेवत्थ परिप्रथकडा (व) इत्थि
 पाण अभाषि व एवमादियाभो कडाभो सिगार कलुग्गाभो तव-संजम
 पमचेर-पातोवपातियाभो, अणुवरमाशेशं पमचेर न कइएव्वा, न सुथे
 यव्वा, न चित्तेयव्वा । एवं इत्थी कइ विरति समित्तियोगेण भावितो भवति
 अतरप्पा आरत-मथ-विरय गामभम्मे जित्तिदिरे पमचेर गुत्ते ॥ २ ॥

ततीर्यं नारीण इसित्त मभित्तं चेद्धिय विप्येविस्सत-गइ-विलास कील्लियं,
 विम्भोतिय-नट्ट-नीत-भातिय-सरीर सठाव-वभकर-परथ-नयव-ला
 षण्ण रुव-जीव्वण-पयोहरापर-अरयाल्लंकार-भूसणाणि य गुज्जमोवका
 सियाइ अभाषि य एवमादियाई तव-संजम-पमचेर-पातोवपातियाई
 अणुवरमाशेशं पमचेरं न अक्खुसा, न मणसा, न वयसा पत्थेयव्वाई पाव
 कम्ममां । एवं इत्थीरुव विरति-समित्तियोगेण भावितो भवति अतरप्पा
 आरतमथ विरय गामभम्मे जित्तिदिरे पमचेरगुत्ते ॥ ३ ॥

अउय्य पुप्परय-पुप्पकील्लिय-पुप्प संगंय-गंय संघुया, जेतते आवाह

विवाह—चोल्लकेसु य तिथि मुजन्ने सु उस्सवेसु य सिंगारागार—चारु वेमाहिं
 हाव—भाय—पल्लिय—विक्खेव—दिलाम—सालिणीहि अणुकुल पेम्भिकारिं
 सद्धि अणुभया सयण—संपओगा, उदुसुइ—वरकुसुम पुरभिचंदण सुगंधि-
 वर वास—धूव—सुइ फरिस—वत्य—भूसणगुणोयवेया, रमणैज्जा उज्जगेय
 पउर—नड नइक(ग)—जल्ल—मल्ल—मुद्धि—रेलवग—कइग—यवग—लासग—ग्राइ
 वखग—लंख—मंख—तूणइल्ल—तूव वीणिय—जालायर—पकरणाणिय वहुणिय
 महुरसर—गीत सुस्सराइं, अन्नाणिय य एवमादिगणिय—तय—संजम—वंभ
 चेर—घातोवघातियाइं अणुचरमाणेणं वंभचेर न तातिं समयेण लब्भा
 दट्ठं न कहेउं, नविसुमरिउं जे । एवं पुव्वरय—पुव्वकीलिय—विरति समिति
 —जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरयमण—विरत—गामधम्मो जि इंदिए
 वंभचेर गुत्ते ॥ ४ ॥

पंचमगं आहार—पणीय—निद्ध भोयण—विवज्जते, संजते सुसाह,
 ववगय—खीर—दहि—सप्पि—नव नीय—तेल्ल—गुल्ल—खंड—मच्छंडिक—महु-
 मज्ज—मंस—खज्जक—विगति—परिचत्तकयाहारे ण दप्पणं, न, चहुसो, न
 नितिकं, न सायसुपाहिकं, न खद्धं तद्वा भोत्तव्वं जह से जाया माता य
 भवति । नय भवति विवमो न भंसणा य धम्मस्स । एवं पणीयाहार विरति
 समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरयमण विरत गाम धम्मो
 जिइंदिए वंभचेर गुत्ते ५ । एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सु-
 पण्हितं इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं मण—वयण—कायपरिरक्खिएहिं णिच्चं
 आमरणंतं च एसो जोगो णेयव्वो, धित्तिमता (या) मतिमता (या) अणासवो,
 अकलुसो अच्छिदो अपरिस्सावी असंकिलिदो, सुद्धो सव्व जिणमणुनातो,
 एवं चउत्थं संवरदारं फासियं पालित सोहितं तीरितं किद्धितं आणाए
 अणुपालियं भवति, एवं नायमुणिया भगवया पन्नवियं परूवियं पसिद्धं

सिद्धं वर सामर्थ्यमिच्छं आशुष्यं सुदेसितं पत्न्यं चउत्वं संतरदारं समर्थं
चिन्तेमि । सू० २ । २७ ।

श्यामा-तरुणैता पञ्चभाषणाश्चतुर्ष्वेभ्यः भवन्ति, अमहाचर्यं विरमणं परिरेण
श्यामा । प्रथमं-शयनाऽऽसन-गृहद्वाराऽङ्गणाऽऽकारा- गवाह- शालाऽमितोक्त
पञ्चाङ्गास्तुक्त-पञ्चाङ्ग-भ्रूतिकोऽङ्गकारा-कवचाशा, ये च वेद्यानामासवे च यत्र
क्षिप । अमीश्वरं मोहं शोषं रतिं रागवर्द्धिन्यं कथयन्ति च कथा चतुर्विधा, तेऽपि हि
वर्जनीयाः स्त्री संसक्त सक्लिष्टाः अन्येऽपि शैबमाद्योऽङ्गकाराते हि वर्जनीयाः । यत्र
मनो-विभ्रमो वा मङ्गो वा भ्रूराको वा आर्षं रौद्रं च भवद्भ्यान् सत्तद्वर्जयेत् वर्ज्यं
भारुः अनायतनमन्तं प्रान्तवासी । एवमसंसक्त वास यस्मिन् समिति योनेन भावितो
भवत्यन्तरात्मा आरतमना विरतप्रामथर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्तः ॥ १ ॥

द्वितीयं-नारी जनस्य मध्ये न कृन्नीया कथा, विधिना विष्णोक्तं विज्ञास-सम्भ
युक्ता हास्यगृह्णार कौञ्जिककयेव मोहजननी, न आवाह-विवाह-वरकयेव स्त्रीया वा
सुमगदुर्मगकथा, चतुर्पक्षि मद्भिज गुण्या, न चर्य-वरा-आति-कुञ्ज-रूप-नाम
नेपथ्य परिजनकथा स्त्रीयामस्याभपि च एवमाहम कथा शृङ्गार कथना तप
संपन्न-ब्रह्मचर्यं धातोपधातिका अनुचरता ब्रह्मचर्यं न कृन्नीया, न भोतक्या न
विस्तयितक्या । एवं स्त्री कथा-विरति-समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा आरत
मनाविरतप्रामथर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्तः ॥ २ ॥

तृतीयं-नारीणां हसितमयिष्ठं वेष्टित-विप्रेक्षित-गतिविलासक्रीडितम्, विष्णो
क्रित्तुल्यगीत-वार्तिक-शरीर संस्थान-वर्ण-कर-चरण-नयन-लावण्य-रूप-शौक्ल
पयोपराऽभर ब्रह्मलङ्कार मूष्यानि च गुह्यावकारिकाणि अयानि च एवमादिकानि
तप संपन्नब्रह्मचर्यं धातोपधातिका अनुचरता ब्रह्मचर्यं न कृन्नीया न मनसा न
बचसा प्रार्थयितक्यानि पापकर्मणि । एवं स्त्रीरूप विरति समितियोगेन भावितो
भवति अन्तरात्मा आरतमनाविरत प्रामथर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्तः ॥ ३ ॥

चतुर्थं-पूर्वरत-पूर्वक्रीडित-पूर्वसम्भ-सम्भसंस्तुता, ये ते-आवाह-विवाह-
शौक्लेषु च विधिषु यज्ञेषु कस्तवेषु च शृङ्गाराऽङ्गार पाठयेयामिर्वावभाष प्रकलित वि
द्युप विज्ञास शान्तिनीमि अनुकृतप्रेमिकाभि सार्धमनुभूता शयनसम्प्रयोगा चतुस्तुल्य
पर (कर) हनुम-सुरमिचन्दन-सुगन्धिचर वास यूप सुतम्परा-बभ्र-भूर य गुणोपयेता
रमणीया आतोयगपप्रचुर (पद्मोय प्रचुर) नट-नर्तक-ब्रह्म-मङ्ग-मौष्टिक-विद्यम्यच

कथक-एतवक-ला (रा) सकाऽऽरुगापक-लख-मङ्ग-तूणइल्ल-तुम्बवीणिक-ताला-
चर-प्रकरणानि च द्रूनि मधुरस्वर गीत सुस्वराणि-अन्यानिचैवमादिवानि तपः
संयम ब्रह्मचर्य-घातोपघातिकानि-अनुवरता ब्रह्मचर्यं न तानि श्रमणेन लभ्यानि
द्रष्टुं, न कथयितुं, नापिस्मर्तुम् । एवं पूर्ववत्-पूर्वक्रीडित-विरति समितियोगेन भा-
वितो भवत्यन्तराऽऽत्मा आरतमना विरतप्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ ४ ॥

पञ्चमकम्—आहार पानीय-स्निग्ध भोजनविवर्जक. संयत सुसाधुर्व्यपगत
क्षीर-दधि-सर्पि-नवनीत-तैल-गुड़-खण्ड-मत्स्यरिडक- मधु-मद्य -मास-खाद्यव-
विकृति परित्यक्त कृताऽऽहारो न दर्पणं, न बहुशो, न नैतिक, न शाक सूपाधिकं,
न भ्रूत । तथा भोक्तव्यम्, यथा तस्य यात्रामात्रायभवति । न च भवति दिभ्रमो
न भ्रंशना च धर्मस्य । एवं प्रणीताऽऽहार-विरति समिति-योगेन भवितो भवत्य-
न्तरात्मा आरतमना विरतप्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ ५ ॥

एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यग् संवृतं भवति सुप्रणिहितम् । एतैःपञ्चभिः कारणै
र्मनोवचन कायपरिरक्षितैर्नित्यमामरणान्तं चैष योगो नेतव्यो धृतिमता मतिमताऽना
सबोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽपरिस्रावी असक्लिष्ट शुद्ध सर्वजिनाऽनुज्ञातः । एवं चतुर्थं
सवरद्वारं स्पृष्टं पाजितं शोधित तीर्णं कीर्तितम् अज्ञयाऽनुपालितं भवति । एवं
ज्ञातमुनिना भगवता प्रज्ञप्तं प्ररूपितं प्रसिद्धं सिद्धवर शासनमिदमाज्ञापितं सुदेशितं
प्रशस्तम् । चतुर्थं सवरद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि ॥

अन्व०—“ (तरस) उस (चउत्थयस्स) चतुर्थं ब्रह्मचर्यं व्रत की (इमा) ये
निम्नोक्त (पचभाषणाओ) पाच भावनार्थे (अबंभचेर-वेरमण-परिरक्खणट्टयाए)
अब्रह्मचर्यं के निवृत्तिरूप व्रत की रक्षा के लिये (होति) होती हैं ।

(पढम) प्रथम भावना-स्त्री युक्त आश्रय वर्जन रूप जैसे—(सयणासण-घर-
दुवार- अगण- आगास-गवक्ख-साल-अभिलोयण- पच्छवत्थुक-पसाहणकण्हा-
णिहावकासा-अवकासा) शय्या, आसन-विस्तर, गृह द्वार, आगन-घर का चौक
आकाश ऊपर से खुला स्थान, गवाक्ष-जाली ऋखा, भाड आदि रखने की शाला,
अभिलोकन-बैठकर देखने का ऊंचा स्थान, पञ्चाद् गृह-पीछे का घर, प्रसाधन-
शरीर के मडन और स्नान करने के स्थान, स्त्री ससक्त त्यागने योग्य है (जे य)
और जो (वेसियाण अवकासा) वेश्याओं के आश्रय स्थान हैं (अच्छति य जत्थ
इत्थिकाओ) और जहां स्त्रियां बैठती हैं (अभिक्खण) और बार बार (मोह दोस

रति राग और बड़बुझीओ) मोह-अज्ञान द्वेष रति-कामराग और स्नेह राग को बढाने वाली (बहुविहाओ कहाओ कहिति) बहुत प्रकार की कथाओं को कहती हैं (से विदुवञ्जशिञ्जा) वे भी पूर्वोक्त शयनादि रपागने काम्य हैं (इत्थि संसत्त-संलिङ्गा) जो सम्बन्ध से उपास-संलिङ्ग (अन्नवि य) और दूसरे भी जो (अयकासा) म्यान (एयमाही) इस तरह के हैं (तेदुवञ्जशिञ्जा) वे इस प्रकार के स्यात वर्जनीय है (अत्य) जहां (मयो विरममो वा) मन की भ्रान्ति अस्थिरता हो या (मगोथा) ब्रह्मचर्य का भंग, अमवा (संसगोवा) कुञ्ज अंरा में प्रथ का भग हो तथा (अहू रूद्व) आर्त और रौद्र (बुञ्जकाण्य) ध्यान हो (तं त बञ्जे रञ्जवञ्ज भीरू अणायतन) अस्त अस्त अनायतन-अयोग्य स्थान का पाप भीरू त्याग करे (अतपंत वासी) साधु इन्द्रियों के प्रतिद्वन्द्व स्थान में रहने वाला है । (पवमसंसत्त पास वसही समिति योगेय) इस प्रकार श्रियों के सम्बन्ध रहित निवास वाली वसति के समिति-योग से (मावितो) युक्त (अतरप्पा) अन्त-करय्य वाला भारत मय-विरय गाम भग्ने) ब्रह्मचर्य में मर्वादा से आसक्त मन वाला तथा विपत्र मय्य रूप इन्द्रिय स्वभाव से निरुचि वाला (अितेदिय) अितेन्द्रिय (वंमबेर गुत्तो) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति होता है ॥ १ ॥

(अितियं) दूसरी भाषना-श्री कथा विवर्जन रूप जैसे—“(नारी अणारस) श्री अनों के (मग्ने) बीच में (अिभिता कहा न कड़े यञ्जा) विभिन्न प्रकार की कथा नहीं कहनी चाहिए, कैसी कथा ? (अिदगोय विज्ञास-संपउता) विद्वानों-श्रियों की कामुक चेष्टा, विलास-स्मित कटाक्ष आदिके वर्णनोंसे भरी हुई (हाससिगार-साइय-कइय) हास्य व गृ गार रस प्रपात शौकिक कथा की तरह (मोहबण्यी) मोह को हलन करने वाली (न आवाह विवाह वर कहा वि व) द्विरागमन गौना य विवाह की कथा भी नहीं कहनी चाहिए (इत्थीयं वा सुमग दुभग कहा) अथवा श्रियों के सौभाग्य दुर्भाग्य को कथा भी तथा (अउसद्वि य महिला गुणा) श्रियों की अँसठ कथायें और (न बभ-देस-जाति-कुञ्ज-रुव-नाम-नेवत्य-परिजय कहा) श्रियों के वर्ण-वंशरूप, दश, जाति, कुञ्ज, रूप-सौंदर्य-पध्दिनी धिग्रणी आदि मेव, वेग और परिजनों की कथा तथा (अभाजिय) अन्य भी इस प्रकार की जो (कहाओ टिगार कनुणाभा) कथायें गृहकार मार्यय से युक्त हो तथा (सव संत्रम-वमबेर-पातोव पातियाओ) तप, संवम और ब्रह्मचर्य की पात उपपात करने वाली हैं (वंमबेरं

अणुचरमाणेण) ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले साधुओं को वैसी कथायें (न कहे-
यव्वा) नहीं कहनी चाहिए (न सुणेयव्वा) न सुननी चाहिए (न चित्तेयव्वा) न
चिन्तन करनी चाहिए (एवं) इस प्रकार (इत्थी कह विरति-समिति जोगेण)
स्त्री कथा से विरतिरूप समिति के योग से (भावितो अंतरप्पा) युक्त अन्तःकरण
चाला (आरतमण विरतगामधम्मे) ब्रह्मचर्य में लीन मन वाला, और स्त्री संभोग
रूप इन्द्रिय विकार से दूर रहने वाला (जित्तिदिण) जितेन्द्रिय (वमचेरगुत्ते) ब्रह्म
चर्य से गुप्त (भवइ) होता है ॥ २ ॥

(ततीयं) तीसरी भावना-स्त्रीरूप दर्शन के निषेधरूप है, जैसे-(नारीण)
स्त्रियों के (हसितभणियां) हास्य और विकारयुक्त भाषण को तथा (चेद्विय-विप्पे
क्खिन-गइ-विलास-कीलियां) हाथ आदि की चेष्टा, विप्रेक्षण- कटाक्षयुक्त देखना,
गति-गज हस के समान चलना तथा विलास और क्रीडा को (विव्योतिय-नट्ट-
गीत-वातिय-शरीर सठाण-वन्न-कर-चरण नयण लावण-रुव-जोव्वण-पयोहरा
धर-वत्थालंकार-भूसणाणि य) अनुकूल वस्तु मिलने पर अभिमान वश किया गया
तिरस्कार भाव, नाट्य, नृत्य, गीत-गाना, वीण आदि वजाना, शरीर का आकार
और गौर श्याम आदि वर्ण हाथ पैर व आंखों का लावण्य-मनोहरपन, रूप, यौवन
स्तन, अधर-नीचे के ओष्ठ, वस्त्र अलङ्कार और सौभाग्य चिन्ह भूत तिलक आदि
भूषण इन सबको (य) और (गुज्जोवकासियाड) गुह्य प्रदेशों को (अन्नाणि य
और अन्य प्रकार के स्त्री सम्बन्धी चेष्टा व अङ्गोपाङ्ग आदि जो (तव-मज्जम-वंभ-
चेर-घातोवघातियाइ) तप, संयम और ब्रह्मचर्य के घातोपघात करने वाले हैं
'ऐसे विकारी भावों को' (वमचेरं अणुचरमाणेण) ब्रह्मचर्य वन पालन करने वालों
को चाहिए कि (न चक्खुसा न मनसा न धयसा) आंखों से न देखें, मन से न सोचें,
और वचनों से न बोलें और (न पत्थेयव्वाइं पावकम्मइं) पाप युक्त कर्मों की प्रार्थना-
इच्छा भी नहीं करें (एवं) इस प्रकार (इत्थीरुव विरति समिति जोगेण) स्त्रियों
के रूप दर्शन की विरति-विरमण रूप समिति के योग से (भावितो) युक्त (अंत-
रप्पा) अन्तःकरण वाला साधु (आरत मण विरत गाम धम्मे) ब्रह्मचर्य में लीन
मन वाला और स्त्री संभोग से निवृत्ति वाला (जित्तिदिण) जितेन्द्रिय (वमचेर गुत्ते)
ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ ३ ॥

(चउत्थं) चौथी भावना-कामोत्तेजक वस्तुओं के स्मरण दर्शन आदि का त्याग

रति राग और बहइच्छीओ) मोह-अज्ञान द्वेष रति-कामराग और स्नेह राग को बढाने वाली (बहुबिहाओ कहाओ कहिति) बहुत प्रकार की कथाओं का कहती हैं (ते विदुवञ्छिञ्जा) वे भी पूर्वोक्त शयनादि रथागने योग्य हैं (इति संसत्त-सन्निहिता) जो सम्प्रदाय से क्या-संकेत (अन्नविषय) और दूसरे भी जो (अयकासा) स्थान (एवमाही) इस तरह के हैं (तेदुवञ्छिञ्जा) व इस प्रकार के स्थान वर्धनीय है (अत्य) जहाँ (मणो विष्णमो वा) मन की भांति अन्धरता हो या (भगोया) ब्रह्मचर्य का भंग, अथवा (भंसगोवा) कुछ अंश में प्रत का भंग हो तथा (अदृश्य च) आर्त और रौद्र (बुद्ध्याय) ध्यान हो (तं सं वञ्चे ब्रह्मचर्य मीरु अयायतन) उस प्रस अनायतन-अयोग्य स्थान का पाप मीरु त्याग करे (अंतर्पत वासी) साधु इन्द्रियों के प्रतिकूल स्थान में रहने वाला है । (एवमसंसत्त वास वसही समिति ओगेय) इस प्रकार शियों के सन्वन्व रहित निवास वाली वसति के समिति-योग से (मावितो) युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला भारत मण-विरय गाम घन्मे) ब्रह्मचर्य में मर्षाश से आसक्त मन वाला तथा विषय प्रदय रूप इन्द्रिय रवमान से निवृत्ति वाला (जितेन्द्रिय) जितेन्द्रिय (वमचेर युतो) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ १ ॥

(वितियं) दूसरी भाषना-श्री कथा विवर्जन रूप जैसे—“(नारी अग्रस्त) श्री जनों के (मन्के) बीच म (भिषिता कहा न करे यका) विचित्र प्रकार की कथा नहीं कहनी चाहिए, कैसी कथा ? (विष्णोय विज्ञास-संपत्ता) विष्णो-शियों की कामुक चेला, विलास-स्मित फटाक आदिके वर्णनोंसे भरी हुई (हाससिगार-सोइय-कृष्ण) हास्य व शृ गार रस प्रधान लौकिक कथा की तरह (मोहअच्छी) मोह को धरम करने वाली (न आबाह बिताह धर कहा नि ब) त्रिरागमन-गौना व विवाह की कथा भी नहीं कहनी चाहिए (इत्थीयं वा सुमग दुमग कहा) अथवा शियों के सामान्य दुर्भाग को कथा भी तथा (अदृष्टि च महिजा गुया) शियों की चँसठ कथायें और (न बन्न-वेस-जाति-कुल-रूप-नाम-नेवरय-परिचय कहा) शियों के वर्ण-रंगरूप, देश जाति, कुल, रूप-सौंदर्य-पदिनी पित्रयी आदि भेद, धर्म और परिजनो की कथा तथा (अज्ञाविय) अन्य भी इस प्रकार की जो (कहाओ त्रिगार कतुलाओ) पद्यायें शृङ्गार मार्दव से युक्त हो तथा (सव संप्रम-वमचेर-चातोव पातियाओ) तप, संपम और ब्रह्मचर्य की पात उपपात करने वाली हैं (वंभवेर

(न वहेड) कहने के योग्य भी नहीं हैं (न वि सुमरिड') स्मरण करने के योग्य भी नहीं हैं (एवं) इस प्रकार (पुष्वरय-पुवकीगिय-विरति-समिति जोगेण) पूर्व्वरत, पूर्व्वक्रीडिन-स्मरण विरतिरूप समिति के योग से (भावितो) युक्त अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (आरयमण-विरतगामधम्मे) ब्रह्मचर्याराधन में लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त (जिइदिय) जितेन्द्रिय, (वंभचेर गुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवइ) होता है ॥ ४ ॥

(पचमगं : पांचवीं भावना-प्रणीत भोजन त्याग रूप, जैसे—(आहारपाणीय-शिद्ध-भोग्य विवज्जते) प्रणीत भोजन-सरस आहार और स्निग्ध-चिकने भोजन का परिहार करने वाला (सज्जते) संयमी (सुसाहू) सुसाधु (वचगय-खीर-ददित्ति-सि-नवनीय-तेज-गुज-खड-मच्छुडिक-महुमज्ज-मस-खज्ज-विगतिपरिचत्त कयाहारे) दूध दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, खांड, मच्छंडी-मीसरी, मधु, मद्य, मांस, खाद्यक-पक्वान और धिगई के भोजन रहित आहार करने वाला (रा दप्पणं) दर्प कारक आहार नहीं 'खावे' (न बहुसो न नितिकं) दिन में बहुत बार नहीं 'खावे', लगातार नित्य नहीं 'खावे', (न साय सुपादिकं) न दाल और सालनक-व्यञ्जन की अधिकता वाला (न खद्ध) और ज्यादा भी नहीं (तहा भोत्तवं) वैसे खाना चाहिए (जहा , जैसे (से) उस ब्रह्मचारी के (जाया माता य) व्रत निर्दाह मात्र के लिये (भवति) होवे । ऐसा आहार सेवन करने से (न य भाति विट्ममो) विभ्रम-मन की चंचलता नहीं होती (नय भंसणा धम्मस्त) ब्रह्मचर्य धर्म का नाश भी नहीं होता (एवं) इस प्रकार (पणीयाहाद-विरति-समिति जोगेण भावितो) प्रणीताहार विरति रूप समिति के योग से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (आरयमण-विरत-गाम धम्मे) ब्रह्मचर्याराधन में लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त अतएव (जिइदिय) जितेन्द्रिय (वंभचेरगुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ ५ ॥

(एवमिणं संवरस्स दारं) इस प्रकार यह ब्रह्मव्रत रूप संवरद्वार (सन्मं त्रंवरियं) अच्छी तरह संवरण किया गया (सुप्पणिहियं) सुरक्षित (होव) होता है (इमेहि पंचहि वि कारणे हिं मण्ण वयण-काय परिक्खणहिं) मन, वचन काय इन तीनों से सुरक्षित इन पूर्व्वोक्त पाच भावना रूप पाच कारणों से (णिच्चं आमरणं तं) ब्रह्म संवरण पर्यन्त (एवो जोगो) यह योग-व्यवहार (धित्तिमता भित्तिमता)

रूप, जैसे—(पुण्ड्ररथ-पुण्ड्रकीलिय पुण्ड्रसंगम-गणसंयुता) पहले के विषय भोग
 पूर्व क्रीडित-धन्यती द्वारा के जूना आदि श्लेष तथा पूर्व सप्रन्व-गृहस्य द्वारा के
 अशुर कुल सम्बन्धी शाले आदि और उनसे सम्बन्धित शाले की स्त्री आदि तथा
 पूर्व के परिचित (जे त) जो ये लोग (भ्राताह-विवाह-बोझकेसु) द्विरागमन-
 गौमा, विवाह, ब्रूवा कर्म-प्रथम मृगहन अर्थात् बालकों के शिक्षा धारण प्रसङ्ग में
 (य) और (तिमिस्रु धन्नेसु धस्तभेसु य) पवतिभिर्भों में, यज्ञों-नागादि पूजाओं में
 व अस्त्रों में (सिंगारागार-बारु वेसादि) शृङ्गार के घर की तरह सुन्दर बेरा वाली
 (हाव माय-पलक्षिव-पिकशेय-बिसास साक्षिणीदि) हाव-मुल की शेटा, माय-
 चित्त के अभिप्राय, प्रकलित-ज्ञातिय युक्त कटाक्ष विशेष और विलास स्थान
 आसन व नेत्र आदि की क्रिया का प्रयोग विशेष इस सब से शोभित होन वाली
 (अणुकाः पेभिमकादि) अनुकूल प्रेम वाली पेशी लेखों के (छदि) साथ (अणु
 भूया सयस्य संरचोगा) अनुमय दिये हुए जो शयन आदि विविध काम शालोक्त
 प्रयोग (उदुसुहृत्पर हस्तम सु(भिर्वदण सुर्गधिपर वास-भूव-सुह र्धिस-वत्स-मूचण
 शुणोषवेया) अणु के अनुसार कूल वाले उत्तम फूलों की सुवास तथा श्रेष्ठ बन्दन
 की सुगन्धि, चूण दिये हुए अच्छे वासद्वय, धूप, सुन्दर स्पर्श वाले वस्त्र और
 भूषण इनके सुर्गों से युक्त (रसकिञ्च) रसखीय (आसन्न-गेव-पठर-नङ्ग-नहृक
 अङ्ग-मङ्ग-मुष्टिक-वेङ्गवग-इङ्ग-पवग-हासग-आङ्गकमा-लङ्क-मङ्क-तूणशङ्क-गु व
 भीक्षिय-तात्कार-पकरखाक्षिय) आठोय-याद्य अन्ति, गन, बहुत से मठ तथा
 मठक-नाचने वाले, अङ्ग-होरी पर खेजने वाले, मङ्क-जुली करने वाले व मौष्टिक
 मङ्क आदि, विहम्बक-भिरूफक-पिविध-पि हास कया करने वाले, पत्रक-जुलने
 वाले, रासगान वाले, दामाशुम करने वाले लङ्क-बड़े पांसपर खेतने वाले, मत्स-
 चित्रमय पाणिषा लेकर फिरने वाले, मिष्टक-तूण नामक वाद्य बजाने वाले, पीणा-
 या छन्द्या बजाने वाले और तालकर इन सबकी क्रियाए (य) और (बहुषि
 महुर-सर-गीठ-सु-छरार्) बहुतसे मधुर अन्ति वाले गायकों के गीत और सुन्दर
 स्वर (अम शि य) और अम्भ इस प्रकार कं (एयमादिव सि) इत्यादि । ठब
 सज्जम-य,म बरे-आठोवपातिवाहं) ठप संयम तथा ब्रह्मचर्य क घात करने वाले कार्य
 (अणुचरमाषेण बभवेरं) ब्रह्मचर्य के पाठन करने वाले (समण्य) साधुको
 (न नास्तिभ्यः वदतु) कामोदीपन करने वाले ने यह पदार्थ देखने योग्य नहीं हैं

(न वहेउ) कहने के योग्य भी नहीं हैं (न वि सुमरिउं) स्मरण करने के योग्य भी नहीं हैं (एवं) इस प्रकार (पुव्वरय-पुव्वकीलिय-विरति-समिति जोगेण) पूर्वरात, पूर्वक्रीडिन-स्मरण विरतिरूप समिति के योग से (भावितो) युक्त अंतररप्पा) अन्तःकरण वाला (आरयमण-विरतगामधम्मो) ब्रह्मचर्याराधन में लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त (जिइंदिय) जितेन्द्रिय, (वंभचेर गुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवइ) होता है ॥ ४ ॥

(पचमगं) पांचवीं भावना-प्रणीत भोजन त्याग रूप, जैसे—(आहारपाणीय-णिद्ध-भोयण विवज्जते) प्रणीत भोजन-सरस आहार और स्निग्ध-चिकने भोजन का परिहार करने वाला (संजते) संयमी (सुसाहू) सुसाधु (वचगय-खीर-दहि-सपि-नयनीय-तेत्त- गुत्त-खड-मच्छुडिक- महुमज्ज-मस- खज्ज-विगतिपरिचत्त कयाहारे) दूध दही, घी, मक्खन, तेल, गुड, खांड, मच्छुडी-सीसरी, मधु, मद्य, मांस, खाद्यरू-पक्वान और विगई के भोजन रहित आहार करने वाला (ण दप्पणं) दर्प कारक आहार नहीं 'खावे' (न वहुसो न नितिकं) दिन में बहुत चार नहीं 'खावे', लगातार नित्य नहीं 'खावे', (न साय सूपाहिकं) न दाल और सालनक-व्यञ्जन की अधिकता घाला (न खद्धं) और ज्यादा भी नहीं (तहा भोत्तव्वं) वैसे खाना चाहिए (जहा) जैसे (से) उस ब्रह्मचारी के (जाया माता य) अत्र निर्वाह मात्र के लिये (भवति) होवे । ऐसा आहार सेवन करने से (न य भाति विवममो) विभ्रम-मन की चंचलता नहीं होती (नय मंसणा धम्मस्स) ब्रह्मचर्य धर्म का नाश भी नहीं होता (एवं) इस प्रकार (पणीयाहार-विरति-समिति जोगेण भावितो) प्रणीताहार विरति रूप समिति के योग से युक्त (अंतररप्पा) अन्तःकरण वाला (आरयमण-विरत-गाम धम्मो) ब्रह्मचर्याराधन में लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त अतएव (जिइंदिय) जितेन्द्रिय (वंभचेरगुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ ५ ॥

(एवमिणं संवरस्स द्वारं) इस प्रकार यह ब्रह्मव्रत रूप संवरद्वार (सन्मं संवरियं) अच्छी तरह संवरण किया गया (सुप्पणिहियं) सुरक्षित (होइ) होता है (इमेहि पंचहि वि कारणे हि मण्य घयणा-काय परिक्खणहिं) मन, वचन काय इन तीनों से सुरक्षित इन पूर्वोक्त पांच भावना रूप पांच कारणों से (शिच्चं आमरणं तं) यदा मरण पर्यन्त (यस्सो जोगो) यह योग-व्यवहार (धिम्मिता भविमता)

वैर्यवान् य मुद्रिमान् साधुको (शयन्वो) कृचक्रना आहिये । ओ (अद्यासयो)
 आस्य रहित (अकलुप्तो) मदिनता रहित (अच्छिद्रो) मादच्छिद्र रहित (अप-
 रिसात्री) कर्म का आस्यवण नहीं करने धासा (असंभित्तिष्ठो) सवशेश रहित
 (सुद्रो) ह्यद और (सभ्यदिएमगुजातो) सब तीव्रहृत् से अनुज्ञात है (एष प
 एषं सवरदार) इस प्रकार आधा संवरधार (फासिय पाण्डिय) देह से स्पर्श किया
 गया पालन किया गया (सोहित तीरित) अटिचार-शेष-से ह्यद किया हुआ
 और पूर्ण किया गया (कित्तिष्ठ) वचन से कीर्तित, (आयाप अनुपासिय) तीव्र
 हृत् की आज्ञा के अनुसार अनुपासित । भवति, होता है (एषं नायमुद्रिखा भग
 वया) इस प्रकार ज्ञातमुनि भगवान् महावीर ने (पन्नविथं बहा है, परुविथं
 पसिद्धं) युक्ति पूर्वक समझाया है प्रसिद्ध है (तिस्रवर सास्यमिण) मन्विरित
 सिद्ध अर्हन्तो का यह उत्तम शासन है (आपयिथं) देव आदि के मानपात्र
 (सुवेसितं पसत्वं) अच्छी तरह तीव्रहृत् से कहा गया और प्रशात है (अश्वं
 संवरदार समत्तं ति बेमि) अतुर्थ संवरधार पूर्ण हुआ ऐसा मैं कहता हूँ
 (सुचर्मा) । १ । १७ ॥

माय-ब्रह्मचर्य का महत्त्व इस प्रकार है—“यद् ब्रह्ममहाश्रतो का मूल है । निर्मल
 चित्त वाले साधुओं से मायपूर्वक सबन किया हुआ है । वैर विरोध का अन्त करने
 वाला और बड़े समुद्र की तरह दुस्तर है । तीव्रहृत् ने इसका मार्ग अच्छी तरह
 दिखाया है । नरक तिर्यक्य आदि दुर्गति से बचाने वाला, सब पवित्र अनुष्ठानों
 का सार और सिद्धिगति व वैमानिक गति के द्वार जोड़ने वाला है । देवेन्द्र और
 नरन्द्रो से ममस्कार पाने योग्य अग्रज के सब मङ्गलों में प्रधान और दुर्लभ है । राम
 हम आदि गुणों का अद्वितीय नायक एवं मोक्षमार्ग का मूपख है । १ । इसके द्वारा
 आचरण करने से प्रती पभाव ब्राह्मण भ्रमण और सुसाधु होता है । अर्थात्, सुनि,
 संयमी और मित्रु वही है जो ह्यद ब्रह्मचर्य का पालन करता है । ब्रह्मचर्य की साधना
 में निम्न काय बर्त्सनीय है । उसे—काम राग आदि बहाने वाला मिस्तार प्रमाद,
 तथा संयम को शिथिल करने वाले सशेष व्यपहार निषिद्ध है । पीठी, वेदमर्दन,
 और हाम पैर मुह व शिर आदि को बार बार धोना, मर्दन करना, अङ्गों को,
 धपाना, विलेपन करना, सुगन्धिचूर्ण से शरीर को सुवसिष्ठ करना, और पूष देना;
 बर्त्स्य है । शरीर की सजायद, हास्य, विकारयुक्त वचन, शीघ्र श्लेष गीत वाप्य आदि

जो इन्द्रियपोषक प्रसङ्ग हैं और अन्य भी ऐसे शृङ्गार रसके घरके समान तप संयम और ब्रह्मचर्य का घात करने वाले हैं ब्रह्मचारियों को उन सबो का त्याग करना चाहिए । नीचे के इन तप नियमादि योगों से सदा आत्मा द्योयुक्त रखना चाहिए । जैसे-१ स्नान व दन्त मंजन नहीं करना, स्वेद आदि को धारण करना, २ मौनव्रत और ३ केश का लुञ्चन करना, ४ वस्त्र के अभाव में या उनकी अल्पता में तथा भूख, प्यास, ठढी गर्मी में सहिष्णुता व जितेन्द्रिय होना ५ काष्ठशय्या, भूमिशय्या । ६ भिन्ना आदि के हेतु घरों में जाने पर लाभ अलाभ या मान अपमान आदि कुछ भी हो तथा डाश मच्छर आदि का प्रतिकूल रपर्श सहन करना चाहिये । और तप नियम विनय आदि गुणों से आत्मा को पवित्र करना चाहिए । इस प्रकार-उसका ब्रह्मचर्य स्थिर हो जाता है । ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये प्रभु महावीर ने यह अच्छा प्रवचन कहा है, जो परलोक में सुखदायी यावत् सब दुःख और पापों का शसन करने वाला है । इस चतुर्थ व्रत की रक्षा के लिये पाच भावनार्यें होती हैं-जैसे-१ स्त्री सम्बन्ध रहित वसति का सेवन करे । स्त्री सम्बन्ध से सक्लेश युक्त शय्या, आसन, और घर द्वार आदि सब स्थान और जो वेश्याओं के स्थान हैं तथा जहा रित्रयां रहती और मोह राग आदि दुर्भाव बढ़ाने वाली अनेक प्रकार की कथार्यें वारंवार कहती हैं, ऐसे ही स्त्रियों के विशेष सम्बन्ध वाले अन्य स्थान भी वर्जनीय हैं । जहां मनकी स्थिरता या व्रत का भङ्ग हो, अथवा इष्ट वस्तु मिलाने और अनिष्ट निवारण की चिन्तारूप आर्त ध्यान व रौद्रध्यान हो । साधारण या इन्द्रियों के प्रतिकूल स्थान में रहने वाला पाप भीरु साधु पूर्वोक्त स्थानों का त्याग करे ।

२-स्त्री कथा त्यागरूप दूसरी भावना-व्रतों को स्त्रियों के बीच विचित्र प्रकार की कथा नहीं करनी चाहिए । जो कथा हास्य और शृङ्गाररस प्रधान लौकिक कथा की तरह विव्रोक्त विलासयुक्त हो । आवाह और विवाह कथा की तरह मोह उत्पन्न करने वाली, तथा स्त्रियों के अच्छे बुरे भाग्य का वर्णन करने वाली हो और स्त्रियों की चौंसठ कलाओं के परिचयरूप या उनके रङ्ग रूप देश जाति और वेश आदि के वर्णन करने वाली हों । ऐसी अन्य भी जो शृङ्गाररस से भरी हुई और संयम की घातक हैं ब्रह्मचारी को वैसी कथार्यें न कहनी चाहिए, और न श्रवण व चिन्तन ही करना चाहिए ।

३-रूप दर्शन विरति रूप तीसरी भावना-स्त्रियों का दृशना, विचार युक्त मोहना

श्रेष्ठा, कदाचिद्वादि क्रियायै और शरीर के बङ्गोपाङ्ग य व्याकार तथा वस्त्रालंकार आदि धेय भूषा और गोप्य ऋग वेसे अन्य भी ब्रह्मचारी को नहीं देखना चाहिए, मन में इनका विचार करना चाहिए और न इन विनियुक्त पदार्थों की प्रायना हा करनी चाहिए। कश्चिद् इनके वर्जन स्मरण्य तप संयम के पाठक हैं।

४-पूर्व स्त्रीहित भोग आदिके स्मरण्यका त्यागरूप चौथी भायना पूर्वमीधन की रति स्त्रीडा और पूव के जो विविध सम्बन्धी हैं तथा विवाह आदि विविध प्रसङ्गों पर सुन्दरी और प्रेमवती स्त्रियों के साथ जो संभोग आदि अनुभव किये हैं। शत्रु के अनुहूग सुखा चतन क्रम आदि सुगम्य और स्पर्श आदि अन्ध गुण युक्त, पाप आदि के कई रमण्योव साधन और गवैवों के मधुर गीत तथा वेसे अन्ध प्रसङ्ग ओ तप संयम के पाठक हैं, ब्रह्मचारी को उनका पर्यन करना, देखना और स्मरण्य करना योग्य नहीं है।

५-प्रणीत भोजन त्याग रूप पाँचवीं भायना-संयमी मुसाधु सरस एवं तिम्य भोजन का त्यागी हीता है। जो दूध दूह पी आदि विहित कारक पदार्थों का आहार नहीं करने पाता है। भोजन के विशेष नियम-काम वर्तक आहारनहीं करना १ पदरित में बहुतवार नहीं खाना २ प्रतिदिन लगातार नहीं खाना ३, शाक य हाल की अधिकता पाता भोजन भी नहीं करता, ४ सर्पादा से आदा मी भोजन नहीं करना ५

सर्परा-स प्रकार खाना चाहिए जिससे व्रतीकी संयम यात्रा निर्वाच्य पलती रहे। ऐसा करने से मनकी अस्थिरता और व्रतका भङ्ग-नहीं होता। इस प्रकार प्रणीताहार विरति से कुछ अन्तःकरण पाता साधु ब्रह्मचर्य में लीन तथा मैमुन से निवृत्त हाता है। अतएव त्रितम्रिय और ब्रह्मचर्य गुप्त रहता है। ५। इस प्रकार संवर का यह पार्थुर्ध्वार सम्बन्ध संवरण क्रिया हुआ सुवर्धित रहता है। मन, वाणी और कायस सुरक्षित इन पाँच कारणों से सदा मरण्य पर्वन्त यह योग धीर बुद्धिमान् को निमाना चाहिए। यह आशय उचित यापन् सपत्नीर्षद्वयों से अनुसृत है। इस प्रकार चौथा संवर द्वार स्पर्शन किया गया यापन् तीषद्वयों की आदास पात्रित होता है। इस प्रकार षाठ मुनि प्रमुमहावीर ने इसे कहा है। यह चर्हन्तों का शासन यापन् उत्तम है ॥ चौथा संवर द्वारपूर्ण हुआ।

ॐ समाप्तं चतुर्थं संवरद्वारम् ॐ

● एतद्व्यं तान्तर्यामं मारार्धनं ०

ॐ पञ्चम संस्करण ॐ



सम्बन्ध-पूर्व अध्ययनमे मैथुन विरमण रूप अतुर्थत्रतका घर्णन किया । यह परिग्रह से भिद्युत होने पर ही सुख होना है । इसलिये अब सूत्र क्रमसे सम्बन्धित अपरिग्रह अत्रका रूप अध्ययनमें वर्णन करते हैं । उसका पहला सूत्र निम्न लिखित है—,

मूल—“जंजू ! अपरिग्रह संवुडे य समये आरंभ परिग्रहात्तो विरते, विरते कोहमाण माया लोभा । एगे असंजमे, दो चय राग दोसा, तिन्नि य दंडगारत्राय गुत्तीओ, तिन्नि, तिन्नि य विराइयाओ, चत्तारि कसाया, भाण—सन्ना—विकहा—तहा य हुंति चउरो, । पंच य किरियाओ, समिति—इदिय—महव्वयाइंच । छज्जीय निकाया । छच्च लेगाओ, सत्त भया, अट्ट य मया, नन चय य वंभचेर य गुत्ती । दसप्पकारे य समण धम्मै । एकारस य उदासकाणं, । वारस य भिक्खु पडिमा । किरियठाणा १३, य भूयगामा, १४, परमा धम्मिया १५, गाहासोलस या असंजम १७, अवंभ—१८, णाय—१९, असमाहिठाणा, २०, सवला, २१, परिसहा, २२, सूयगड २३, उक्कण—देव—२४, भावण २५, उद्देस—२६, गुण—२७, पकप्प—२८, पावसुत—२९, मोहणिउजे, ३०, सिद्धातिगुणा ३१, य, जोगसंगहे, ३२, तिच्चीसा ३३, आसातणा, । सुरिदां आदिं एक्कातिथं करेत्ता एककुत्तरियाए वडिहण (डूढी) तीसातो जाय उ भवे, तिकाहिका विरती पण्णिहीसु, अविरती सु य एवमादिसु वहुसु ठाणेषु जिणपसत्थेसु अविहहेसु सासयभावेसु अवट्ठि एसु संकं वंख निराकरेत्ता सदहो, सासणं भगवतो अणियाणं अगार वे अलुद्धे अमूढ मण वयण काय गुत्ते ॥ सूत्र १ । २८ ॥

आया-“हे जन्तू । अपरिग्रहसंप्रतिष्ठति भ्रमण्य आरम्भपरिग्रहाद्विरतो, विरतः क्रोध
मान माया लोभात् । एकोऽसंयमः, द्वौ च रागद्वेषी, त्रीणि च पृथक् गौरवाणि ।
तिस्रो गुणयः, तिस्रश्च विराधनाः । चत्वारः कृपायाः, ध्यान-संज्ञा-विक्रपास्तथा
भवन्ति चत्वारः । पञ्च च क्रियाः समितीश्रिय-महाप्रतानि च । षड् जीवनिष्ठायाः
षड् खेरयाः । सप्तमयानि, अष्टौ च महाः सवः चैव ब्रह्मगुणयः । दशमकाराश्च भ्रमण्य
धर्माः । एकादश बोधासकानाम् । द्वादश च मिथुप्रतिष्ठाः । त्रिंशत्पर्यायानि च ।
भूतमामा, परमाथ भिक्षा, गाथा योद्धराकानि । असंयमाऽऽज्य-ज्ञाताऽसमाधि
स्थानानि । शब्दाः परोपहाः सूत्रज्ञाताऽऽभयतानि । वेद्य-भावतो-देश-गुण्य-अकल्प-
पापभुत-मोहनीयानि । सिद्धातिगुणाः च योग संग्रहाः । त्रयस्त्रिंशद्दशारातनाः ।
सुत्रेन्द्रादिका एकादिकां कृत्वा एकोत्तरिका वा द्वादश त्रिंशदायद् भवेत् त्रिंशदधिका ।
विरति प्रकृतिषु कश्चिदस्ति चैदमारिषु, दृष्टुं यथा पुं जिनमरातेषु अविद्येषु
शास्त्रतमावेपु अवशिष्टेषु शब्दाकारा निराकृत्य भद्रते, शासनं मन्मथोऽनिहानोऽगौ
खोऽनुभवोऽमूढा मनोयपत कायगुणः । सू० १ । २८॥

अर्थ-“(जन्तू) हे जन्तू (अपरिग्रह संप्रतिष्ठे) मूर्च्छां रहित और इन्द्रिय च
कृपाव के संवरण वाला, फिर प्रकृत्या आदि गुण युक्त तथा (आरम्भ-परिग्रहात्)
आरम्भ-द्विसा व बाह्य आरम्भन्तर परिग्रह से (विरते) अलग है (समये विरते
कोह माण माया लोभा) और ओ साधु क्रोध मान माया एवं लोभ से निवृत्त है ।
(एगो असंयमे) अविरति रूप असंयम एक है (दो चैव राग दोषा) और राग
द्वेष रूप दो ही चत्वन हैं (तिस्रि य बंध गारवा) और तीन दृढ और दोन गारव
हैं (च) और (गुप्तीभो तिस्रि) तीन गुप्तिषो (तिस्रि य विराहायाधो) और
तीन विराधनाये है (चत्वारि कसाया) चार कृपाय-श्लेष आदि (माण्य-सभा)
ध्यान, संज्ञा (विरहातहा य दृष्टि चरुते) और वेमी ही विक्रपाये चार चार हैं
(पंच य क्रियाधो) कायिकी आदि पांच क्रियाय (समिति-इन्द्रिय-महाव्ययाई)
और समितिषां इन्द्रिय व महाप्रत भी पांच ही हैं (ष) और (छत्रजीवनिष्ठाया)
शुद्धी काय आदि जीव निष्ठाया छः हैं (षड् चोत्साधो) खेरयाये भी छः हैं (सप्त
मया) सात भय (अष्ट य मया) और आठ मह स्वान (नव चैव य ब्रमणेरे च
शुक्ती) फिर नव ही ब्रह्मचर्यव्रत की गुप्तिषां हैं (दसणकारे य सप्तसुधमे) और दश
धकार का भयखर्भ (एकादश य कथासकाम्) फिर इग्यारह भावकों की पक्षिमा

और (चारस य भिक्खुपडिमा) चारह साधुकी पडिमा-अभिग्रह विशेष हैं (किरिय ठाणा) क्रिया स्थान तेरह हैं, फिर (भूयगामा) जीवों के १४ भेद (परमाधम्मिया) परमाधार्मिक (गाहासोलसया) सूत्र कृताङ्ग प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन (असंजम-अवंभ-णाय-असमाहिठाणा, सबला) १७ प्रकार के असंयम, अब्रह्म-१८ प्रकार का मैयुन, ज्ञात-ज्ञाताप्रथमश्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन, असमाधि-२० असमाधि स्थान, शबल दोष-२१ प्रकार के शबल दोष है (परीसहा) परीषह-क्षुधा आदि २२ परीषह (सूयगड्ज्मयण-देव-भावरण-उद्देश-गुण-पकप्प-पावसुत-मोहणिज्जे) सूत्र कृताध्ययन सूत्रकृताङ्ग के २३ अध्ययन, देव-२४ प्रकार के देव, भावना-पाच महात्रतों की पच्चीस भावनार्यें, उद्देश-२६ उद्देशन काल, गुण-मुनिवर के २७ गुण, प्रकल्प-२८ आचारप्रकल्प, पापश्रुत-२९ पापश्रुत और मोहनीय-३० मोहनीय स्थान (सिद्धातिगुणा) सिद्धातिगुण-सिद्धों के ३१ अतिशय गुण (य) और (जोग संगहे) योग समग्र-बत्तीस योगसंग्रह (तित्तीसा आसातणा) और तैंतीस अशातनार्यें, (सुरिंदा आदि, एकातिर्यं करेत्ता एक्कुत्तरियाए तड्डिए) सुरेन्द्र आदि को एक आदि रख्या युक्त करके फिर उत्तरोत्तर एक एक की वृद्धि से (तीसा तो जाव उ भवेत्तिकाहिका) यावत् तीन अधिक तीस याने तैंतीस-होते हैं, इन सब में तथा (विरती पण्णिसु अविरती सु) विरति-प्राणातिपातादि से विरति तथा चित्त की विशिष्ट-एकाग्रता में व अविरति और (एव मादिसु बहूसु ठाणेसु) इस प्रकार के बहुत से स्थानों में जो (जिण-पसत्थेसु अवितहेसु सासय-भावेसु अवट्टिए सु) तीर्थङ्करों के शासित, सत्य और शाश्वत-नित्यभाव अवस्थित-सदा समान रहने वाले हैं, उनमें (सक कख निरा करेत्ता) शङ्का-संशय और अन्यमत ग्रहण रूप काक्षा को हटाकर (भगवतो सासण सहहते) वह साधु भगवान के शासन की श्रद्धा करता है (अणियाणे) ऋद्धि प्रार्थनादि निदान रहित (अगारवे) ऋद्धि आदि तीन गारव रहित (अलुद्धे) लोभ रहित (अमूढ-मण-वयण-काय-गुत्ते) मूर्खता शून्य और मन वचन व शरीर से गुप्त है ॥ १।२८ ॥

भावा०-अपरिग्रह के कारण और संवर युक्त साधु आरम्भ परिग्रह से निवृत्त तथा क्रोध, मान, माया, व लोभ से अलग रहता है, एक प्रकार का असंयम राग द्वेष रूप दो बन्धन और मनोदण्ड आदि तीन दण्ड, ऋद्धि, रस, एवं सातारूप तीन गारव और मनोगुप्ति वगैरह तीन गुप्ति तथा ज्ञान विराधना आदि तीन विराधना, क्रोध

आदि चार कपाय, चार प्यान, चार संज्ञा तथा चार ही विक्रया होती हैं, कायिकी आदि पांच क्रियायें, ईर्ष्यादि पांच समिति और भोत्रेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रियां व अहिंसा आदि पांच महाव्रत हैं और पृथ्वी आदि छः जीव समूह और कृष्णनील आदि छः सरमायें यावत् तैंतीस अशातनार्थ वचीस या चौगुठ वेवेन्द्र हैं (विरोध परिचय टिप्पण में देखें) एक आदि संज्ञा को प्रथम करके एक एक की आत्मी बुद्धि स यावत् तैंतीस होवे हैं ऐस अन्ध भी चौतीस आदि क बहुत स स्थान हैं, जिन प्रदर्शित सत्य शास्त्र और नित्य एक रूप रहने वाले उन भावों में तथा विरति आदि में गुठ सवा आदि से शंका कटा को दूर कर वह प्रभु क शासन पर पूर्ण भ्रष्टा करता है, निदान, गारव और लोभादि रहित मुनि मन वचन शरीर स गुप्त होता है ॥ १ । २८ ॥

अपरिग्रह जती साधु का स्वरूप कहा अब प्रस्तुत अध्यायन के विषय मूल अपरिग्रह को कहते हैं—

मूल—“ खो सो वीर यर-वयण-विरति-पवित्यर-बहु विहृष्यकारो सम्मत्त-विमुद्र मूलो धितिकंदो विख्यवेतितो निग्गत-तिलोकर-विपुल अस निविद्ध-पीण-यवर-सुआतखषो, पंचमहध्वज-विसालसालो, भादशतयं सज्जाय-सुमजोग-नाख पद्म-परंकरपरो, बहुगुणसुसुमसमिद्धो, सीछ-सुगधो अणयहव-फलो, पुखोय मोकखवर बीजसारो, । भदरगिरि सिद्धर धूलिका इव इमस्त मोकखवर-सुक्तिमगस्त सिद्धरभूमो संवर वर पादपो चरिमं संवरदारं । अत्य न कप्यह गामागर-नगर-खेठ-कम्बड-मंडय-दोण-सुह-पद्मसासमगपं च किंचि अप्य व बहु व अणु व पूसव तस थावर. काय-द्वज्जायं मखसायि परिषेत्तु । य हिरण्य-सुवयण-खेठ वस्यु, न दामी-दास-मयक-पेस-हय-गय-गवलर्गं वा (प,) न आस्य-खुग्ग गयणासणाइ, ख ध्वज-न कुडिया, न उवासदा, न पेडुण-बीषण-तासिपंत्तका, य पावि अय-उउप-तंय-सीसक-कंन-रपठ-जातरूव-मयि-सुत्ता धार पुठक-संख-दंत-मखि-सिंग-सेल-फायवर-चेल पत्तार्ई मद गिहार्ई परम्म अज्जोवधाय-सोमज्जण्णार्ई परियद्धेउ, गुणयमो न

याचि पुष्प-फल-कंद-मूलादियाहं सणसत्तरसाहं सन्वधनाहं तिहिवि जो-
 गेहि परिघेतुं । ओसह-भेसजभोयणद्वयाए संजए णं । किं कारणं ! अप-
 रिमितणाणदंसणधरेहिं सील-गुण-विणाय-तव-संजम नायकेहिं तित्थय-
 रेहिं सन्वजगजीव-वच्छलेहिं तिलोयमहिएहिं जिणवरिंदेहिं एसजोणी जंग
 माणं दिट्ठान कप्पइ जोणिसमुच्छेदोचि, तेण वज्जंति समणसीहा । जंपिय
 ओदण-कुम्मासगंज-तप्पण-मंथु-भुज्जिय-पलल-सूप-सक्कुलि-वेढिम-वर
 सरक-चुन्न-कोसगपिंड-सिहरिणि-वट्ट-मोयग-खीर-दहि-सप्पि-नवनीत
 तेल्ल-गुल-खंड-मच्छंडिय-मधु-मज्ज-मंस-खज्जक-वंजण विधिमादिकं,
 पणीयं उवस्सए, परघरे व रन्ने न कप्पति तंपि सन्निहिं काउं सुविहियाणं
 जंपि य उदिट्ठ-ठविय रचियग-पज्जवजातं, पक्किण-पाउकरण-पाभिच्चं,
 मीसकजायं, कीयकडपाहुडं च दाणइ-पुन्नपगडं, समण-वणीमगद्वयाए
 व कयं, पच्छाकम्मं पुरेकम्मं, निच्च कम्मं, मक्खियं, अतिरित्तं, मोहरं चेव
 सयग्गहमाहडं, मट्टिउवलित्तं, अच्छेज्जं चेव अणीसट्ठं जंतं तिहीसु जन्नेसु
 ऊसवेसु य अंतो व चहिं व होज्ज-समणद्वयाए ठवियं, हिंसा सो वज्ज-
 संपउत्तं न कप्पति तंपि य परिघेतुं ।

छाया-“योऽसौ वीरवर-वचन-विरति-प्रविस्तर-बहुविधप्रकारः सम्यक्त्वं-
 विशुद्धमूलो घृतिकन्दो विनय-वेदिक स्त्रैलोक्य-निर्गत-विपुलयशो निबिड-पीन-प्रवर
 सुजातस्कन्धः पञ्चमहाव्रत-विशालशालो भावना-त्वगन्तर्ध्यान-शुभयोग-ज्ञान
 पल्लव-वराङ्कुरधरो बहुगुण-कुसुमसमृद्धः शीलसुगन्धि-अनास्रव फलः पुनश्च मोक्षवर
 बीजसारो, मन्दरगिरि-शिखर चूलिक इवाम्य मोक्षवर-मुक्तिमार्गस्य शिखरभूतः
 संवर वरपादपः चरमं संवरद्वारम् । यत्र न कल्पते प्रामाकर-नगर-खेड-कर्बट-मडम्ब
 द्रोणमुख-पट्टनाऽऽश्रमगतश्च किञ्चिदप्यल्पंवा घट्टुवा, अणुवा स्थूलंवा, व्रस स्थावर
 काय द्रव्यजातं मनसापि परिग्रहीतुम् । न हिरण्य सुवर्ण क्षेत्रवस्तु, न दासी-दास
 भूतक-प्रेष्य-हय-गज-नावेलकश्च, न यान-युग्य-शयनादि, न छत्रकं, न कुण्डिका,
 नोपानहौ, न मयूरपिच्छ-न्यजन-तालवृन्तकं न चाप्ययस्त्रपुक-ताम्र-सीसक-कांस्य

रजस-आतरूप-मणि-मुक्ताऽऽधार पुटक-रत्न-वृत्त-मणि-→ झ-शैल-काशपद-वेत-
 नमं पात्राणि महाहाणि परस्याभ्युपपाठ-ज्ञानजननानि परिकल्पितुं गुणपत ।
 न चापि पुष्प-फल-कन्द-मूलादिकानि मन-सप्त-रश्मिकानि सर्पधाम्पानि, त्रिमि-
 रपि योगैः परिमहीतुम् । औषध-भेषज-भोजनार्थं संयतेन (यतस्य) । किं कारणम् ?
 अपरिमित-ज्ञानधरान् धरे शील-गुण-विमय-रूपं संयमनायके स्तीयकरः सर्व-
 जगद्गीयपत्सहीद्विलोकमहितैः जिनपरद्रै । ग्यायोनिभङ्गमानाष्टा, ११ न। कल्पते
 योनिस्समुद्भेद इति तत्रवर्जयन्ति ममयासिहा । यदपि च धोदन कुस्माप-गंज-
 (भाग्य विशेष)-तर्पण-(सक्तु)-मन्थु-(धरादिभूय)-भक्ति-तिल-पुष्पपिठ
 सूप-शोण्डुषी-भट्टिम-भर सरक-वृण-कोराकपिरुड शिकरिखी-पतक-(पनेतीमन)
 मोदक-कीर-दधि-सर्पिनबनीत-तेल-गुड-खण्ड-मत्स्यविद्यका-मधु-मय-मान-
 साद्यक-उपखन-विष्यादिके-प्रणीतमुपाभय परगृह्णरय्यथा न कल्पते तदपि सभि-
 धीकृत् सुभिक्षितानाम् । यदपिचोद्विष्ट-स्थापित-रभितक-पर्यवजातं प्रधीर्गप्रावुष्ट-
 रण्डपभिर्यं, भिन्नकषातं, क्रीतक-प्रामुतज्ज, ज्ञानाभ-गुण्यप्रकृतं, ममय-यनीप-
 कार्यं वाक्यत, पञ्चास्कर्म, पुर कम, नित्यवम, अक्षिप्तम्, अठिरिक्त, मौल्य-
 र्थव्यम्राहम् आहृतम्, अचिकोपलितम्, आच्छेद्य चैव, अनिसृष्ट यत्तम् िधितु
 वद्वं पु लसवपु आन्तर्वां वद्वियां भवेच्छमगार्थं स्थापित-दिसा सावध-संभ्रमुक्त न
 कल्पते तदपि परिमहीतुम् ।

— T T T —

अन्व० (जो) अपरिमह (वीरवर-वयण-विरति-पवित्र-वेदुभिर्होषकोर)
 श्रीमहापीर के बचन से की हुई परिमह-निष्पत्ति के विस्तार से जो दृष्ट अनेक प्रकार
 का है (सम्मत्त-विमुद्गमूलो) सम्यक्त्व रूप निर्वाप मूल वाला (पितृकषा) विष्ट,
 की स्मृत्यता ही अिसका कम्ब (विशयवदितो) विनय रूप चारों ओर वेदिका
 वाला (निमात-विलोकक-विपुल-अस-निभिद्ध-पीय-पवर-सुजात लंघो) सीनो
 लोक में फैला हुआ विस्तीर्ण यश रूप सधन मोटा और लम्बाई कुछ बड़े स्तम्भ,
 धाजा (पंच महत्त्व-विसाक्तताता) पंच म्हाप्रत रूपी विशाल शाखा-डाल वाला
 (मावख-तयंत-गकाय-सुमजोग-नायपह्लव-बरकर बरो) अनित्यता आदि भावना
 रूप स्वभा और धर्म ध्यान व शुभ योग तथा ज्ञान रूप प्रधान पहाव के अक्षरों को
 धारण करने वाला (बहुगुण-कृद्मसमितो) बहुत से उत्तर गुण रूप पूछो से समुद्-
 भर पुर (सील-सुगंधो) शील की सुगंध वाला [इस लोकक फलो की अपेक्षा रहित सत्य

ति ही जहां सुगन्ध है।] (अणुएहवफलो) अनाखव रूप फल वाला (पुणो य) और
 कर 'मोक्खवर-वीजमारो) मोक्ष रूप उत्तम बीज के सार वाला (संदर गिरि-सिहर
 लिका इव) मेरु पर्वत के शिखर पर चूलिका की तरह जो (इमस्स मोक्खवर
 त्तिमग्गस्स) इम कर्म चय रूप प्रधान मोक्ष के निर्लोभता रूप मार्ग का (सिहर
 य्थो) शिखर रूप है (संवर वर पादपो) अपरिग्रह रूप उत्तम संवर वृत्त (सो)
 ष्ह (चरिम सवरदारं) अन्तिम सवरद्वार है (जत्थ) जहा (गामा गर-नगर-खेड
 ळवड-मडव-दोणमुह-पट्टणासमगयं) ग्राम, आकर, नगर, खेड, कर्वट, मडंव,
 दोणमुख, पत्तन और आश्रम में पड़ा हुआ, (किंचि) कोई पदार्थ (अप्प व वहु व)
 मूल्य से अल्प हो या बहुत (अणुं व थूलव) प्रमाण से छोटा हो या बड़ा (तस
 थावर-काय-द्वय जायं) त्रस-शख आदि, स्थावर-रत्न आदि काय के द्रव्य समूह
 को (न कप्पड मणसायि परिवेत्तु) मन से भी ग्रहण करना नहीं कल्पता (न हिरण्य
 सुवण्ण-खेत्त-वत्थु) चांदी सोना क्षेत्र और धास्तु-गृह भी ग्रहण करना नहीं
 कल्पता (न दासी-दास-भयक-पेस-हय-गय-गवेलगच) दासी, दास, भृत्य-नियत
 वृत्ति पाने वाला नेवक, प्रेक्ष्य सदेश ले जाने वाला दास, घोडा, हाथी और बैल आदि
 ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है (न जाण-जुग्ग-सयणाढ ण छत्तक) यान-रथ
 आदि, युग-डोली, शयन आदि और छत्र का ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है
 (न कुडिशा न उवाणहा) न कमण्डलु, न जूता (न पेहुण-वीयण-तालियंटका)
 पेहुण-मोरपिच्छी, वास आदि का बीजना और तालवृन्त-तालपत्र के पखे इनका
 ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है (न यावि अय-तउय-तव-सीसक कस-रयत-जात
 रुव-मणि-मुत्ताऽऽधारपुडक-संख-दत्त-मणि-सिंग-सेल-कायवर चेल चम्म पत्ताइं
 महरिहाइ) और लोह, त्रपु-बग, ताम्र, सीसा, कास्य, चांदी, सोना, मणि और
 मोती का आधार-शुक्ति पुट, शख, दन्तमणि-प्रधान दात, शृङ्ग-सीग, पाषाण,
 उत्तम काच, बस्त्र और चर्मपात्र इन सबको भी नहीं ग्रहण करना (परस्स अज्झोव
 वाय-लोभजण्णहाइ परिअट्ठेउं) ग्रहण करने में चित्त की एकाग्रता और लोभ को
 उत्पन्न करने वाले दूसरे के अधिक मूल्यवाले पदार्थों को बढ़ाना या उनका वचाव
 करना (गुणवत्थो न) अपरिग्रहरूप गुण वाले को 'योग्य नहीं' (यावि पुण्फ-फल
 कद्-मूलादियाइ) और पुष्प, फल, कन्द, मूल आदि तथा (सण-सत्तरसाइ) सन
 जिनमें सत्तरवा है ऐसे (सव्वधन्नाइ) सब धान्यों को भी (सजए) साधु (ओसह

मैसत्र-भोययद्दुयाप) औपध, भोयम्, और भोजन के लिये (तिद्विजोमदि परि
केतु) मन वचन और कायरूप तीनों योगोंसे पर्य नहीं करे ।

(किं कार्या) नहीं लेने में क्या कार्य है ?

वचर-(अपरिमित-शाण-इसका परिधि) अपरिमित ज्ञान तथा इरान को
धारण करने वाले (मीलन्य-विषय-तय-संज्ञम-नायकेहि) शील-चित्त शान्ति,
गुण आदि, वितन, और तप समय की वृत्ति करने वाले (सव्यजगत्कीव
व्यजगत्की) जगत् मरक जीवों के वत्सल- (तिलोय-मदिपरिधि) त्रिलोयी
से पूजित (सित्यवरदि) श्री श्रीराम (जिह्यपरिधि) जितेन्द्र देवने (अंगमाष्ट)
मस जीवों की (पञ्चोष्ठी) यह पुष्प फलरूप-मोनि-उत्पत्ति-रत्नान (विद्या) केवल
ज्ञान से रक्षा है (न कल्प्योक्ति-समुद्भवोक्ति) मोनिओं का समुद्भेद विनारा
करना योग्य नहीं है । (तेष रश्मि समणसीहा) इसलिये भेद मुनि पुष्प आदि
का वर्जन करते हैं (अपि य ओ य-कुम्भास-गंध-तण्डुल-संयु-मुञ्जिय-पलक-सु-
सकृद्वलि वेदिम-वर सरक-पुत्र-कोसग-पड-सिहरिमि-वट-मोयग-और-वहि-स
पि-नवनोत-तेह-गुण-जड-मच्छदिक-सधु- मञ्ज-संस- वृजक-वञ्जण विधिमा-
दिकं गयीं) और जो भी ओदन-कूर कुम्भास-उष्ण वा गाढे बवाले हुए हुए मूत्र
आदि गज-रक प्रकार का धाम्य, तण्डु-सजु-सधु मंधू-बोर आदि का धूर्य,
मुक्ति, नूत्रे हुए पानी आदि पलक-तिरके फूलों का पिष्ट, सूत-हात, राष्ठी-
तिल पाण्डी वेदिम-जदेवी आदि, परसरक और धूर्य कोरा-साधपदार्थ
विरोध पित्त-गुण आदि के पित्त, सिद्धि गि रही में राक्षर आदि बेकर बना हुआ
शिकारण वट-वडा, मोदक-कट्टर वृष, वही, भी, मकलन, तैल, गुण, जड,
गन्धकी-मिसरी मधु, मध मांस और कशोकवृष्टी आदि साध तथा अनेक प्रकार
के शाक आदि प्रयोज्य-जाया हुआ (उवरसप) वराभय में (परपरे व) अथवा
धम्य धर्म में वा (रने) अटवी में हो (तं) उसका भी (सुविदिगार्य) क्रियापात्र
साधुओं को (सभिदि फाट) सञ्चय करना (न कल्पती) नहीं कल्पता (अपि य)
और जो भी (पविट्ट-उदिय- भियग-पञ्चव ज्ञात) पविट्ट-साधुमात्र के लिये बनाया
हुआ स्थापित-साधु के लिये रकटा हुआ, और रचित-साधु के लिये तपाकर
बनाये हुए मोदक व दि पर्यवजात अन्तःस्तर को पाये हुए जैसे बाबल और वही
शिकार बना हुआ कर्वा आदि (पकिण-पाकनय-पामिण) प्रकीय-गिरात

हुए दिया गया या बिखरा हुआ, प्रादुर्भरण-प्रकाश करके दिया गया और अप-मित्य-साधु के लिये उधार लिया हुआ, (मीसकजायं) मिश्रजात-साधु व श्रावक दोनों के लिये सम्मिलित बनाया हुआ (कीयकड-पाहुडं) क्रीतकृत-साधु के लिये खरीदा हुआ और प्राभृत-अग्नि में वलितरीके डाला हुआ या अग्नि से निकाला हुआ (च) और (दानदृ-पुत्रपगड) दान के लिये तथा पुण्य के लिये बनाया गया (समण-वर्षीमगदृयाएवकयं) पाच प्रकारके श्रमण तथा घनीपक-भिखारी के प्रयोजन से किया गया (पच्छाकम्मं) दानके बाद जहां हाथ आदि धोये जाय या अन्य आरम्भ हो वह पञ्चात्वर्म (पुरे कम्म) हाथ धोने आदि आरम्भ करके ओ दिया जाय वह पुरं कर्म (नितिकम्मं) सदाव्रत की तरह जहां सदा साधुओं को आहार आदि दिया जाय अथवा नियमितरूपसे सदा एक घर से आहार लिया जाय वैसा (सक्खियं) सच्चित्तपानी आदि से भरे हुए हाथ या पात्र से दिया गया (अतिरित्तं) प्रमाण से अधिक (मोहरं चैव) और वाचालता से-अधिक बोलकर मिलाया हुआ (सयग्गहमाहड) स्वयं अपने आप ग्रहण किया हुआ, और अपने गांव या घर आदि से सामने लाया हुआ (मट्टि उवलित्त) मिट्टी आदि से लिपटा हुआ (अच्छेज्जं चैव) और ऐसे ही आच्छेद्य-निर्बल से छोनकर दिया गया (अग्गीसट्ठं) अनिसृष्ट-अनेकों के हिस्से की वस्तु सबकी अनुमति के बिना ही गई हो (जं तं तिहिसु) जो आहार मदन त्रयोदशी आदि तिया विशेष में (जन्ने सु ऊसवेसु य) यज्ञ और महोत्सवों में (अंतो व वहिं ष ढोज्ज समणदृयाए ठवियं) उपाश्रय के भीतर या बाहर साधुओं को देने के लिये रक्खा हो (हिंसा-सावज्ज-सप-उत्त) हिंसारूप दोष से युक्त (तं पिय परिचेत्तुं न कप्पती) उस आहार को भी लेना नहीं कल्पता है ।

मूल-“ अहकेरिसयं पुणाह कप्पति ? जंतं एक्कारस-पिंडवायसुद्धं, किरण-हणण-पयण-कय-कारियाणुभोयण-नव कोडीहिं सुपरिसुद्धं, दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं, उग्गम-उपायणेसणाए सुद्धं, ववगय-चुय-चविय-चत्तेदहं च फासुयं ववगय-संजोग मयिगालं, विगय धूमं, छट्ठाण निमिच्चं, छक्काय परिरक्खणट्ठा हणि हणि फासुकेण भिद्वेण चट्टियव्वं । जंपिय समणस्स सुविहियस्स उरोगायंके बहुपकारंमि समुप्पन्ने वाताहिक-

पित्त-सिम-अतिरिच कुविय तद् सभिः तातजाते य उदयपक्षे उज्जल-बल-
 विउल-तिउल-कक्कड-पगाड-दुक्खे असुम-कडुय फरुमे वंसफल विषागे
 महम्मय जीवियंत करणे सव्वसररीर-परितावण करे न कप्पति सारिस वि
 तद् अप्पणो परस्स वा ओसह मेसज्जं, मघ-पाणं च तपि संनिहिकयं ।
 जपि य समणस्स सुविहिपस्स तु पडिग्गह धारिस्स मयति मायण-मंडोवहि
 उवगरणं, पडिग्गहा, पादबंधणं, पादकम्मरिया, पादठवणं च, पडिग्गहं
 तिन्नेव, रयधायं च, गोच्छओ, तिन्नेव, य पच्छाका, रयोहरण-धोलु
 पडुक्क-सुद्धरुतकमादीयं ण्य पि य संजमस्स उववृद्धगट्टयाणं याया-यव-दंग
 ममग-मीय-परिरक्खण्डयाणं उवगरणं रागणेगरहियं परिहरियण्यं
 गणजण गिच्छं पडिन्नहण-पप्फोडग-पमज्जयाणं अहाय राभा य अप्पपक्षे
 ण हाइ मततं निक्खिदियय्यं च गिण्डियण्यं च मायण, मंडोवहि
 उवगरणं एव स मज्जत विमुच्च निस्संगि निप्परिग्गह्खं निम्ममं
 निन्द-बंधणे मच्च-पाव-विरत वासी चंदण-ममाणकप्पं मम-
 तिण-मणि-मुत्ता-सट्ठ-फंडणं समे य माणागमाग-ग्गाण, समिय
 रत, ममित रागदाम, समिणं समितीगु, मम्मदिट्ठी मम-ज
 मच्चपाण-भूतसु मह ममण गुप धारते उ-जुत्त संवत । ससाह सरणं
 मच्च भूपाणं मच्च जगवच्छल मममारुक्कं य ममारंतद्वित्ते य रासार-सुह
 दिन्ने स त मरमाणुवारत, पारग य मच्चमि ममयाग पवपम मापाहि
 अट्ठिं अट्ठमम गरीं दिमादव, अट्ठमय महग, मममय सुत्तल य मवति
 गुण दूक्ख निप्पिमम अम्मिगर वाहिरंमि मया, तथापहाणंमि य सुट्ठज्जुत्तं,
 गह दौ य दिगनिरा, इगियाममित मामाममित णमणागमित पापाण
 मं-मण-निक्खमग्गा ममित उणार-पामयग-जाल-मिपाण उल्ल-परिद्धा
 वणिग्गा माधन मग्गुण वग्गुण वायगुण, मुग्गिण्णि गुणवर्मवारी,

चाई, लज्जू, धन्ने, तवस्सी खंतिखमे, जितिदिए, सोधिए, अणियाणे, अव-
हिल्लेस्से, असमे, अकिंचणे, छिन्नगंथे, निरुवलेवे । सुविमल-वरकंस भा-
यणं १, व मुक्तोए, संखेविव २, निरंजणे, विगय, -राग-दोसमोहे,
कुम्मो ३, इव इंदिएसु गुत्ते, जच्च-४, कंचणगंथ जायरूवे, पोक्खरप-
त्तं ५, व निरुवलेवे, चंदो ६, इव सोमताए (भावयाए,) स्रोव्व ७, दित्तेए,
अचले जह मंदरे =, गिरिवरे, अक्खोभे सागरो व्व, यिमिए, पुढवीव
सव्व १०, फास सहे, तवसा ११, च्चिय भासरासि छन्निव्व जाततेए,
जलियहु १२ यासणो वि व तेयसा जलंते, गोसीस चंदणं पिव सीयले
सुगंधे य, हरयो १३ विव समिय भावे, उग्गोसिय सुनिम्मलं व आयंस १४
मंडल्लतलं व पागड भावेण सुद्धभावे, सौडीरे कुंजरोव्व १५, व सभेव्व १६ जाय
थामे, सीहे १७ वाजहा मिगाहिवे होति दुप्पधरिसे, सारय १८ सलिलं व
सुद्ध हियए, भारंडे १९ चेव अप्पमत्ते, खग्गि दिसाणं २० व एगजाते,
खाणुं चेव २१ उड्ढकाए, सुन्ना २२ गारेव्व अप्पडिकम्मि, सुन्नागारावण-
स्मतो २३ निवाय-सरण-प्पदीप-ज्झाणमिव निप्पकपे, जहा २४ सुरो चेव
एग धारे, जहा अही चेव २५ एगदिट्ठी, आगासं २६ चेव निरालंबे,
विहगे २७ विव सव्वओ विप्पमुक्के, कय पर निल्लये जहा चेव २८ उरए,
अप्पडिवद्धे अनिलोव्व २९, जीवोव्व ३० अप्पडिहयगती । गामे गामे एगरायं,
नगरे नगरे य पंचरायं दूइज्जं ते य, जितिदिए, जित परीसहे, निब्भओ,
विऊ सच्चिताचित्त-मीसकेहिं दव्वेहिं विरायंगते, संचयातो विरए, मुत्ते,
लहुके, निरव कंखे, जीविय-मरणासविप्पमुक्के, निस्संधि, निव्वणं चरिंत्तं
धीरे काएण फासयंते सततं अज्झप्पभाणजुत्ते निहुए एगे चरेज्ज धम्मं । २।२८

छाया०-“अथवीदृश पुन. वल्पते ? इत्तदेकादशपरिण्डपात् शुद्ध क्रयण-हनन-
पचन-कृत-कारिताऽनुमोदन-नवकोटिभि सुपरिशुद्ध, दशभिर्वैपैर्विप्रमुक्तम्, उद्गमो-
त्पादनैषणया शुद्धम्, व्यपगत-च्युत-च्चावित्त-त्यक्त देह च प्राशुकम्, व्यपगत

संबोगमनद्वारम्, विगत ब्रह्म, पट्ट्यान्तक निमित्तम् पट्ट्याय परिरक्षणाभम्, अह
 न्यहनि प्रागुक्तन मेष्येण वर्तितकथम् । यद्यपि च भ्रमणस्य सुबिहितस्य तु रोगावष्टे
 बहुप्रकारे समुपन्ने वाताधिष्ठितश्लेष्मशोथतिरिक्तक्षुरिते तथा सन्निपातजाव-
 योद्वप्राप्ते वाग्भक्त-बल-विदुल-कफर-प्रगाढतु लो, अश्लमकतुक परये, चरह फल
 यिपाके महामये जीवितान्तकरणे, सर्वशरीर-परित्तापनकरे, न कल्पते ताहरोऽपि
 तयाऽऽत्मन परस्व या औषधभैषज्यं भक्त पानञ्च तद्यपि सन्निधीकृतम् । यद्यपि च
 भ्रमणस्य सुबिहितस्य तु पठ्मह-भारिणा भवति भाजन मयद्योपभ्युपकरणम्, पठ्मह
 पात्रब-धनञ्च, पात्रफेसरिका, पात्रस्थापनं, पट्ट्यानि-श्रीयेयव, रज्ज्वाण्यञ्च, गो
 ष्टकं, त्रय एव च मञ्जादा, रजोहरण-श्लेष्मपट्टक-मुक्तान्तकविन्दम् । पठ्महपि च
 संयमस्योपहृ इणार्थाय वाताऽऽतपर्वश-मराङ्ग-शीत-परिरक्षणाभम् सपकरम् राग
 द्वेपयद्विर्त परिहर्तकथम् । संयतेन नित्यं प्रसुपेकण-प्रस्फोटन-प्रमार्जनायामहनि च
 रात्रीयाऽप्रमत्तेन मयति सततं निष्प्रेम्भम् मदीतकथञ्च, भाजनमयद्योपभ्युपकरणम् ।
 एवं च संयतो विमुच्ये निस्सङ्गो निष्पठिमहर्षिनिर्ममो निःस्नेह वचन सर्वपाप
 विरतो वासी-चन्दन-समानकल्प-समण्य-मणि-मुक्ता-श्लेष्म कान्चन समञ्च माना
 उपमानश शमितरजस्क शमितरागश प,ममित समितिपु सभ्यगृष्टिः, समञ्च
 प सभ्यमणिपुस्तु सद्भिन्नमञ्च,भुतचारण चतुः संयत मुमापु शरणं सर्वमृतानां,
 सर्वजगत्सत्तः, मरुभापनञ्च संसाराऽन्तरिचठञ्च, समुच्चिन्नसंसार सतत मरुतपा
 रागः, पातञ्च मयर्षा संशयानां, प्रवचनमातृभिरष्टामिष्टममिष्टविमापञ्चोऽष्टमान
 मवन स्व समङ्कतमञ्च मवति, मुच्य दुःखनिर्विस्तान् आभ्यन्तर बाह्ये सदा तप
 चपधान च मुष्टगुणः, चाण्डादाऽञ्च द्वितिरिक्त, ईर्ष्यामिता भापासमित, एषणा
 शमित, आदान मण्डाऽमत्र-निष्पण्णासमितः, चचार-प्रम्रपण-रज-शिपय-मञ्च-
 परिक्षापनिष्ठा शमिता मनोगुमा वचनगुमा कावगुमा, गुणत्रिवो गुमत्रप्रपाटी, स्वागी
 लग्नुधन्यस्यपस्यी, छानित्तमो, त्रितत्रिवः, शाधिताऽनिद नोऽवदिल्लैरयोऽममा कि
 च्चनरिद्धमप्रया, निदपलेप । सुविमल-वर १५ भाजनमिय मुक्तगोव १, रज्ज् इव
 निरुन्नो विगतराग शच मोह १, इयद्विद्वेषु गुणो ३ अतपकाञ्चन मिय जात
 क्वा ४, पुष्टरपत्रमिष मितानप ४, चतु इव शीघ्रमाचनवा, ६, सर्वेषु शीत
 तत्रा ७, अयतो यवा मग्गो गिरिवत् ८, उद्योग सागर ६, इव निमित्त, वृष्ठी
 च सर्वं वराह १०, वपनापि च भ्रमणशिक्षण इव जात तेजा ११, चञ्चिद्व

ताशनइव तेजसाज्वलन् १२, गोशीर्षचन्दन इव शीतलः सुगन्धश्च, हृदइव समितभाव
 उद्घृष्टसुनिर्मलमिव आदर्शमण्डल तलमिव प्रकटभावेन शुद्धभाव, शौण्डीरः कुञ्जर
 इव, वृषभइव जातस्थामा, सिंहोवा यथा मृगाधिपो भवति दुष्प्रधर्षः, शारद सलिल
 मिव शुद्धहृदयः, भारण्ड इवाऽप्रमत्तः, खड्गविषाणमिवैकजातः, स्थाणुरिवोर्ध्व-
 कायः, शून्याऽऽगारमिवाऽप्रतिकर्मा, शून्यागाराऽऽसन्निवात-शरण-प्रदीपध्यानमिव
 निष्प्रकम्प, यथा लुरश्चैरुधारः, यथाऽहिश्चैवैकदृष्टिः, आकाशमिव निरवलम्बः,
 विहगइव सर्वतो विप्रमुक्तः, कृतपर निलयो यथाचैवोरगः, अप्रतिबद्धोऽनिल इव,
 जीव इवाऽप्रतिहतगति । ग्रामे ग्रामे-एकरात्रम्, नगरे नगरे च पञ्चरात्रम् दूयमानः-
 विहरंश्च, जितेन्द्रियो जितपरीषहो निर्भयः विद्वान् सचित्ताऽचित्तमिश्रकैर्द्रव्यैर्विरागं
 गत, सञ्चयाद्विरतो, मुक्तो लघुको निरवकांचः, जीवितमरणाऽऽशाविप्रमुक्तः, निस्स-
 न्धिर्निव्रणं चरिष्य धीरः कायेन स्पृशन् सततमध्यात्मध्यानयुक्तो निभृत एकश्च-
 रेद्धर्मम् ।

अन्व०“(अहकेरिसयं पुणाइ कप्पति ?) तव फिर कैसा ओदन आदि पदार्थ
 लेना कल्पता है ?

उत्तर-‘ जं तं) जो वह ओदन आदि पदार्थ (एकारसपिडवायसुद्धं) इग्यारह
 पिंडपात से शुद्ध आचाराङ्ग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में प्रथम अध्ययनके एकादश उद्देशों
 में कहे हुए ढोषों से रहित (किण्ण-हण्ण-पयण-कय-कारियाणुमोयण-नवकोडो
 हिं सुपरिसुद्ध) खरीदना, हिंसा करना, और पकाने रूप क्रिया से कृत, कारित और
 अनुमोदन के द्वारा बनी हुई नवमोटिओं से पूर्ण शुद्ध हो (दसहिय दोसेहिं विप्प-
 मुक्क) और एषणा के दश दोषों से रहित (उगम उप्पायणोसणाए सुद्ध) उद्गम
 और उत्पादनरूप एषणा-गवेषणा व ग्रहणषणा रूप एषणा से शुद्ध (ववगय-चुय-
 चविय-चत्तदेह) सामान्यरूप से अचेतन बने हुए, जीवन क्रिया से भ्रष्ट, आयुक्त्य
 के कारण जीवन क्रियाओं से गिराया गया और शरीर की वृद्धि रहित (फासुयं)
 अतएव प्रासुक-निर्जीव बना हुआ (ववगय-संजोगमणिगालं) सयोग और भगार
 रूप माडलिक दोष से दूर तथा (विगयधूमं) उत्तम आहार के प्रशंसारूप धूम दोष
 से रहित (छट्टणनिमित्तं) छ कारणों के निमित्त वाला । छकाय परिरेक्खणट्टा)
 छ काय के जीवों की रक्षा के लिये (हण्णि हण्णि फासुएण भिक्खेण वट्टियन्व) प्रति
 दिन निर्दोष भिक्षा में निर्वाह करना चाहिए (जपिय) और जो भी (समणस्स-

सुविहितम्) सुविहित मायु क (रोगार्थके बहुष्यकारिणि) अनेक प्रकार के रोग या आतङ्क (समुपपन्ने) उत्पन्न होने पर (वाताहिक-पित्त-सिम-अतिरिक्त-कुबिम) वात की अधिकता व पित्त कफ का अतिशय प्रकोप (तह) तथा (समिवात जैसे बड्ढपत्ते)समिपात त्रिदोष उत्पन्न हुआ हो (सज्जलवत्त विच्छन्न कक्षत्र पगाड-दुक्ते) अथवा सुख रहित बसवाम् कष्ट से मोगने भोग्य बिस्तीर्य या मन बचन आदि तीनों योगों को ठोकने वाले अत्यन्त कठोर दुःख क (उद्यपत्ते) उद्य प्राप्त होने पर (असुम कहुय-पठसे) असुम या कटु द्रव्य की तरह असुख अनिष्ट कठोर स्पर्श रूप तथा (बंडफलविषागे) दुःखरूप हाठख फल बाला (महम्मये) अस्पन्त मयङ्कर (जीविर्बस करण) जीवन के अन्त करने वाले और (सञ्चसरीर-परिता पण्डरे) सब शरीर को परिताप करने वाले (तारिसिनि) जैसे रोगादि के प्रसङ्ग में भी (अप्पखो परसखा) अपन या पर केलिये (तह) तथा (ओसह-मेसम्भ) औषध मैपय / मज पाख्य) और आहार पानी (सं पि संनिहिक्य) वह सब भी सचय करके रखना (न कल्पना) नहीं कल्पता-योग्य नहीं है । (जंपिय / और जो भी (पडिगह भारिस्त सुविहितस समय्यस्त) पात्रपारी सुविहित-क्रिपापात्र मायु के पास (भाय्यमंडवहितवगरख्यं पात्र, मिहा के भांड और सामान्य उपत्रि तथा मकारख रखने क उपकरण (मवठि) हात हैं, जैसे-(पडिमहो) पात्र । पात्र बंधयं) पात्र बधन, (पादकेसरिया) पात्र केसरिका-पौधने का वस्त्र (पाधठवर्ण्य) और पात्र स्थापन-सिस पर पात्र रखने औय (पडलाई) पत्त-पात्र डहन के तीन वस्त्र (रयत्ताख्यं) और रजसाख-पात्र लपटने का वस्त्र (गोपद्मो गा छक पात्र वस्त्र आदि प्रमार्जन करन क लिये पूजनी (तिन्नयय पच्छाका और तीन ही प्रच्छाद-ओहने के बग्न । रयोहरण-बोलापट्टक-मुदुखंतक मापीय) रजोहरण-आपा, बोलापट्टक-पहनन का वस्त्र और मुस्तानस्तक-मुत्वविकिआ आदि (पर्य पिय) यह सब भी (संजमस्त उबमूहणदुपाय) संयम के उपरुदख-शुद्धि के लिये हैं (वायायय-स-मसग-सीय-परिरञ्जणदुपाय) बात-प्रतिभूत वायु सूर्य की ताप, डंस-मच्छर और शोस स सरक्षय करने क लिय (पवगरण्यं) रजो हरण आदि उप करण को (राग-शोस रहियं) राग छेप रहित होकर (संजपयं) आयु का (सिक्च) सदा (परिहरियम्) धारण करता थादिय (पडिसहख-पच्छदण-पमअणाय) प्रतिनश्ना-आत्मो न द्यना, प्रकटन-माहना और

प्रमार्जन रूप क्रिया में (अहोयरात्रोय) दिन और रात (अप्पमत्तेण सततं) निरन्तर प्रमाद रहित (भायण-भंडोवहि-उवगरणं) भाजन भाण्ड और उपधिरूप उपकरण (निक्खिधियव्वं) नीचे रखना (च) और (गिण्हियव्वं) ग्रहण करना योग्य (होइ) होता है (एवं) इस प्रकार (सेसजते) वह संयमी (विमुत्ते निसंगे) धनादि रहित, निस्सङ्ग-मोह रहित (निप्परिग्गहरूई) परिग्रहरुचि से दूर (निम्ममे) ममता रहित (निन्नेहववणे) स्नेह और बंधन से रहित (मव्व पाव धिरत्ते) सब पापों से निवृत्त (वासी-चट्ण-समाण कप्पे) वासी-कुल्हाडी मारने वाले और चन्दन का लेप करने वाले-दोनो पर समभाव रखने वाला (सम-तिण-मणि मुत्ता-लेट्ठु-कांचणे) तृण और मणि, मोती तथा पत्थर व सुवर्ण में समबुद्धि रखने वाला (समेय माण वमाणणाए) और मान अपमान की क्रिया में भी सम हर्ष त्रिपाद रहित (समिथरत्ते) उपशान्त पापरजवाला अथवा विषय रति के उपशम वाला या शान्त वेग वाला (समित राग दोसे समिए समितिसु) उशान्त राग द्रोप वाला व पाच समितियों में सम्यक् प्रवृत्ति वाला (सम्मट्ठिटी) सम्यग् दृष्टि (समेय जे मव्व-पाण-भूतंसु) और जो समस्त त्रस स्थावर जीवों में समान भाव रखता है (से हसमणे) वही श्रमण (सुयधारतं) श्रुत धारक (उज्जुत्ते) ऋजु-निष्कपट या आलस्य रहित (सजते) व सयसो है (ससाहू सरण सव्व भूयाणं) वह सुसाधु सर्वभूत-छकाय जीवोंका शरण-रक्तक है (सव्व जग-वच्छले) सब जगत् का वत्सल-हितैपी है (सव्व भासके) सत्यवक्ता है (सप्पारतट्ठिते) ससार के अन्त में स्थित (य) और (ससारसमुच्छिन्ने) भव परम्परा रूप ससार का जिसने उच्छेद कर दिया है, ऐसा (सतत मरणानुपारते, सदा मरण के पार पाने वाला (पारगे य सव्वेसि ससयाण) और सब सशयों का पारगामी (पवयण-मायाहिं अट्ठहिं) आठ प्रवचनमाता-पाच समिति तीन गुप्ति रूप में (अट्ठ कम्म-गठी-विमोयके) आठ कर्मों की ग्रन्थि-गाठ को छुड़ाने वाला (अट्ठमय-महणे) आठ मदों को नाश करने वाला (ससमय कुसले) अपने सिद्धान्त में निपुण (भवति) होता है (सुख-दुक्ख-निव्विसेसे)-सुख दुःख में विशेषता रहित अर्थात् हर्ष शोक रहित (अडिभतर-उहिरमिसया तवोवहाणं मिय सुट्ठुज्जुत्ते) आभ्यन्तर और बाह्य तप रूप गुण की रक्षा करने वाले-उपधान में सदा अच्छी तरह से उद्यम

करने वाला (शक्ति कृति य) समावान् और जितेन्द्रिय (हियनिभते) स्वपर का वि-
 कारी (ईरिया-समित) ईया समिति युक्त (भासा समित) भाषा समिति-निवे-
 वचन-बोलने वाला, (पसयासमिते) एषया समिति युक्त (आयाय-मङ्गल-
 निष्कलेषणा समिते) आवान् भोड मात्र निरुपस्था समिति वाला (एवार पासप-
 सेत-सिपाय-ब्रह्म-परिद्वारविषया समित) मलमूत्र, श्लेष्म, संपान-नाक का म-
 अङ्ग-वेह का मज आदि पच्छिने की समिति वाला (मणुगुरो बयगुरो कायगुरं
 मनो गुप्त, वचन गुप्त और काय गुप्त-शरीर के संयम वाला (गुप्तिविप) :
 इन्द्रिय-विषयो से इन्द्रिय का रक्षक करने वाला (गुप्त-वर्मपारी) ब्रह्मपर्व-
 गुप्ति से युक्त (भार्गवम्) त्यागी-सर्वसग का त्याग करने वाला वा दानी रज्जु
 समान सरल (धन्त तयस्वी) धन्य, तपस्वी-प्रशाम्य तपोयुक्त (कृतिभमे) क-
 द्वारा सहन वाला (कृतिविप) जितेन्द्रिय (साधिप) गुणों से शांभित या इ-
 हुभा (अधियाणे) निदान रहित (अबदिल्लेस्त) जिसकी पिच्छगुप्ति संयम
 वहिर्मूत नहीं है (असमे अकिचण) ममता से दूर व धन से रहित (क्षिप्रगये
 स्नेह बंधन को काटने वाला (निरुवसवे) कर्म के उपलेप रहित बाने कर्म का
 नहीं करने वाला (सुविमल-वर कंसभावयं व मुक्कतोये) स्वप्न निर्मल लक्ष-
 कांस्य भाजन की तरह स्नेहरूप अलस दूर (संलेविप निरञ्जये) रङ्ग की ल-
 निर्मल-रागादि मल रहित (विगत्य-राग-दोस माह) राग द्वेष और मोह से ।
 (कुम्भा इव इधिपगुरो) दूर्म-रक्षण की तरह इन्द्रियों के विषय में शुभ-संय-
 वाला (अव-कंधखर्ग व जायस्त्रे) जाति सम्पन्न सुवर्ण की तरह जातरूप-रागा-
 हुभाव रहित अपने स्वरूप को पाया हुभा (पोक्कर पत्तं व निरुवसेवे) पद्म
 की तरह मोग के लेप रहित (परो इव सोमभावयाए) सौम्य भाव से अन्त्रके सम-
 (सूर्योत्प विस्तपए) सूर्य के जैसे तपस्या के तेज वाला (अबल जह मंवे गिरिबरे
 मन्दर-मेरु पर्वत के समान अबल (अबल्लोम्मे सागरोम्ब विमिप) क्षाम रवि
 सागर के जैसे स्तिमितभावों की तरह से दूर (पुङ्गी व सक्क फाससहे) पूढी ।
 तरह अनुकूल प्रतिफल सब स्पर्शों को सहने वाला (तपसा विप मासरासिर्वा
 ब्राह्मतेप) और तपस्या से भय की डेर से डरी हुई अग्नि के जैसा यज्ञे की
 भस्म से डरी हुई अग्नि भीतर अलठी और बाहर से मुझीसी दिखती है, वैसे तपस
 का शरीर बाहर से प्रीका किन्तु अन्तस्तेज ध धीम रहता है (अक्षिय-हुयाधर

धिव तेजसा जलते) जलती हुई अग्नि के जैसे ज्ञानरूप तेजसे जलता हुआ (गोसीस चद्रुं धिव धियते सुगवे) गोशीर्ष चन्दन की तरह शीतल-मानसिक तापरहित और शीलरूप सुगन्ध वाला (हरयोधिव समिधभावे) हृद की तरह समभाव वाला वायु के अभाव में जैसे तालाव का पानी समरूप में रहता है, वैसे निन्दा सत्कार में समभावयुक्त (उन्वोसिय-सुनिम्मलं व आयंस-मडण तलं ष) अच्छा घिमा हुआ होने से अत्यन्त निर्मल दर्पण के तल की तरह (पागड भावेण सुद्वभावे) प्रकट भाव-निष्कपट भावसे शुद्ध हृदयवाला (सोडरे कुंजरोव्व) कुञ्जर-हाथी की तरह परीपह सैन्य के लिये शूर (वसमेव्व जायथामे) वृषभ के समान जात स्थाम-स्वीकार किये हुए व्रतभार के निर्वाह में समर्थ (सीहे वा जहा मिगाहिवे) मृगपति सिद्ध के जैसे (दुप्पधरिसे होति) परीपहन्प मृगों के लिये जो दुर्द्धर्प होता है (सार य सजिलं व सुद्वहियए) शतकाल के पानी की तरह शुद्ध हृदय वाला (भारंडे चैव आपमत्ते) और भारंड पत्नी के समान प्रमाद रहित (खग्गि-विसाण व एगजाते) खड्ग-गैडा के सींग की तरह एकभूत-रागादि के सशान रहित (खाणुं चे व उड्ड काए) म्याणु-खूटे की तरह कायोत्सर्ग में शरीर को स्थिर खड़ा रखने वाला (सुन्ना मारेव्व अप्पडिक्कम्मे) शून्य घरकी तरह देह की सम्भाल नहीं करने वाला (सुन्ना गारावणास्तो) शून्य घर या सूती दुकान में वर्तमान-रहा हुआ (निवाय-सरण-प्पदीपण्णामिव निप्पकपे) वायु रहित घरमें शेष की वत्ती की तरह दिव्य आदि उपसर्ग में भी शुभ ध्यानरूप कोष्टकमें अकम्प-निश्चल चित्त वृत्ति वाला (जहा खुो चैव एगधारे) छुर-छूरे के जैसे विधिमार्गरूप एक धार वाला (जहा अही चैव एगदिट्ठो) फिर सर्प के जैसे मोक्ष साधन रूप एक दृष्टि वाला (आगासं चैव निरवत्तवे) आकाश की तरह बाह्य आलंबन रहित (विहगे धिव सब्बत्रो विप्प मुक्के) विहग-पत्नी की तरह सबसे विप्रमुक्त (कय-पर-निलये जहा चैव उरए) जैसे सर्प दूसरे के बनाये घरमें रहता है वैसे साधु परगृह में रहने वाला (अप्पडि षड्धे अनिलोव्व, जीवोव्व अप्पडिहयगति) वायु की तरह प्रतिबन्ध रहित और जीव की तरह अप्रतिहतगति-रुकावट रहित गति-वाला (गामे गामे एगरायं) गांव गाव में एकरात (य) और (नगरे नगरे पचराय) नगर नगर में पाचरात' (दूह-

१-गांव मे एक रात्रि और नगर मे पंच रात्रि का पारमाण्य पडिमधारी साधु की अपेक्षा है ।-टीका०

व्यक्ति य) विचरता-भ्रमण करता-हुआ और (जितित्तिव) जितेन्द्रिय (जित परी सहे) परीपहों को जीतने वाला (निम्नमो) निर्मय (विऊ) विद्वान् (सचित्ता चित्त मीसकेहिन्दुधेदि) सचित अचित्त य विम-श्रुओं म (विरायगत) विराग प्राप्त (संवयाओ विरय) अतपय ममह से दूर (मुत्ते) मुक्त की तरह बन्धन रहित (सद्दुके) गौरय रहित होने से शयु-इच्छा (निगवकम्मे) आकांक्षा रहित (जीविक मरणास-विष्पमुक्के) जीवन मरण की आशा म दूर, तथा (धीरे) धीर (निस्संधि निद्वयश्च चरित्तं) सन्धि आदि परिणाम के विच्छेद रहित, निर्दोष अत्रि को (कायण फासयति) शरीर से पालन करता हुआ (अम्मण्य ष्णायजुत्ते) अन्त्या म ध्यान-शुभ विचार से मुक्त तथा (निहुए) उपशाठ कपाय पाला मायु (णो) पकाकी रागादि रहित होकर (मत्त) सदा (घम्म योच) धर्म या आचरण करे।

भाव- 'सूत्र में अपरिमित को ब्रह्म की उपमा दी गई है जो तीक्ष्ण की आभा तुल्य की गई निरुसिक विस्तार से बहुत प्रकार का है। ब्रह्म के साथ अपरिमित की समता करने हुए उसके अज्ञों का परिचय दिया है। जैन-अपरिमित-ब्रह्म का सम्पत्त्व ही निर्दोष मूल है और जेय रूप कन्व, विनय ही पसुरस वेदिका और त्रिकोकी में फैला हुआ विमल परा ही बड़ा स्कन्ध है, महाप्रत ही पांच शाखाओं और भावना रूप छाल है। धम ध्यान शुभ याग तथा ज्ञान रूप पञ्जाङ्गुर और विविध गुण ही अपरिमित ब्रह्म के फूल हैं। शीत उसकी सुगन्धि और अनाभव ही फल है। कर्म बन्ध से मुक्ति इसके बीजों का सार है। इस प्रकार मेरु की बृलिका के समान यह मोक्ष मार्ग का शिखर भूत अपरिमित अन्तिम संवरदार है। अपरिमितप्रथ की यह मर्गाह है कि प्राप्त आदि मे रहा हुआ कार्य भी पदार्थ बोद्धा या बहुत, छोटा या बड़ा रूप मात्र मन से भी ग्रहण करना बोध्य नहीं है। ऐसे पाँची सोना व वासी दास आदि निर्जीव या सजीव ब्रह्मों को तथा लोह आदि साधु ध्व विविध प्रकार के पात्र जो अधिक मूल्य वास्तु और दूसरे के चित्त की आसक्ति एवं लोभ को उत्पन्न करने वाले हैं। उनका सम्भय करना पाप्य नहीं है और पुण्य फल आदि वनस्पति तथा १० प्रकार के घास्या का मो औषध औषध और माजम के लिये साधु की सम्पत्त करना योग्य नहीं है। क्योंकि अनन्त ज्ञानी तीर्थङ्कर देव ने ज्ञान बल से इस पुण्य आदि सम्पत्तको ब्रह्म जीवाकी उत्पत्तिका स्थान कहा है और किसी यानिका विनाश

करना ठीक नहीं है। इसलिये प्रयान मानु इसका वर्जन करते हैं। फिर जो भी औदन आदि निर्जाव द्रव्य उपाश्रय में लाये गये या गृहस्थ के घर या जगल में रखे हैं, क्रिया पात्र साधु को उन द्रव्यो का भी सञ्चय नहीं करना चाहिए। फिर जो आहार आदि उद्दिष्ट, स्थापित तथा मोदकादि रूप से साधु के लिये बनाया गया है, नीचे गिरना हुआ या साधु के लिये अन्धेरे से बाहर लाया हुआ एव श्रमण या भिखारी के लिये बनाया गया है। उधार लाया हुआ, मिश्र, क्रीतकृत, प्राभृत, और दान पुण्य के लिये निकाला हुआ, तथा जो पश्चात्कर्म आदि अन्य दोषों से युक्त है। वह आहार तिथि, यज्ञ तथा उत्सव के प्रसङ्गों में उपाश्रय के भीतर या बाहर साधु के लिए रक्खा हो तो हिंसा रूप दोष वाले उस आहारादि को त्रती साधु ग्रहण नहीं करे। तब फिर कैसे आहार आदि को ग्रहण करना योग्य है, इसको दिखाते हैं—'जो पिण्डैषणा के ११ उद्देशों से शुद्ध और खरीदना १, खरीदवाना २, एवं खरीदने वाले को अनुमोदन करना ३, ऐसे हिंसा करना ४, कराना ५, व करने वाले का अनुमोदन करना ६, पकाना ७, दूसरे से पकवाना ८, और पकाते को अच्छा जानना ९, इन नव कोटिओं से शुद्ध हो। एषणा के दश दोषों से रहित तथा जो उद्गम आदि एषणा से शुद्ध है। चेतनता से रहित और प्रासुक तथा सयोग आदि मङ्गल दोष से जो रहित है, प्रतिदिन वैसी प्रासुक भिक्षा का ग्रहण करना चाहिए। वह भी केवल विवेचना आदि छ कारणों से जीव रक्षा के लिए ग्रहण करे। फिर क्रिया पात्र साधु को अनेक प्रकार के वात आदि से होने वाले रोगातङ्क उत्पन्न हो जाय तो भी अपने व परके लिये औषध भण्ड तथा भक्त पान रात्रि में पास रखना नहीं कल्पता।

फिर पात्र धारी साधु को भाजन आदि उपकरण होते, वे भी सहेतुक होते हैं। उपकरण और उनके धारण करने की विधि बताते हैं। जैसे—पात्र १, पात्र बन्ध २, पात्र पोंछने का वस्त्र ३, पात्र स्थापन—मण्डल ४, पटल तीन ५, रजस्माण ६ और गोच्छक—पूजनी ७, प्रच्छादन के वस्त्र ८, रजो हरण ९, चोल पट्टक १०, और मुख वस्त्रिका आदि उपकरण भी सगम की रक्षा के लिये तथा वातादि षष्ठ से देह के संरक्षण के लिये राग द्वेष रहित धारण करना चाहिए, और रात दिन सदा प्रति लेखन आदि क्रिया में अप्रमत्त होकर निरन्तर भाजनादि को रखना एवं ग्रहण करना योग्य है। इस प्रकार जो सयमी विमुक्त आदि १४ विशेषण युक्त है वही साधु श्रुत

धारक अत्रु प संयमी इ । सुसाधु आदि अनेक विशेषण युक्त वाक्य यह धर्म रूप से
 रहित होता है । साधु की ११ उपमायं जैसे-१ निर्मल कासी के भाजन की तरह स्नेह
 जल से अक्षित, २ शङ्ख के जैसे उज्यल बाने राग द्वीप आदि रंग रहित, ३ पूर्व-
 कच्छप की तरह गुप्तेन्द्रिय, ४ क्तम सोना जैसे शुद्ध स्वरूप वाक्ता, ५ पद्म पत्र की
 तरह काम रुच मङ्ग के द्वेष रहित, ६ चन्द्र जैसे सौम्य, ७ सूर्य जैसे तेजस्वी, ८ मेघ
 पर्वत जैसे अचल, ९ अक्षोभ्य सागर के समान विचारों की चंचलता रहित, १०
 धूम्र के समान सबके स्पर्श को सहने वाला, ११ मत्स्य से डरी हुई आग के समान
 बाहरी शरीर से फीका व भीतर से तेजस्वी, १२ आम्बहयमान बहि जैसे तेजस्वी
 १३ गोशीर्ष चन्द्र के जैसे शीतल व शील की सुवास वाक्ता, १४ आतिमान् गज
 क समान परीपह सहने में शूर, १५ हृद जैसे सम स्वभाव वाला, १६ स्वच्छ रूप
 जैसे प्रकट शुद्ध स्वभाव वाला, १७ घोरी पैल के जैसे छाये हुए कार्य मार का
 निर्बाह करने वाला, १८ सिंह के जैसे दूसरे से परामर्श नहीं पाने वाला, १९ शर
 रकाल के पानी के समान निर्मल, २० मारुत पक्षी जैसे सदा अक्रि रहता है जैसे
 प्रमाद रहित, २१ गौडे के सींग की तरह एक-राग द्वेष रहित, २२ स्याणु-सूटे के जैसे
 ऊचे-सीधे ध्यान में लड़े, २३ शून्य घर क जैसे शोभा संस्कार रहित, २४ निर्वान्त
 पर के शोषक के जैसे ध्यान में अकम्प, २५ छुरे के जैसे विधि रूप एक धार वाक्ता
 २६ सर्प के जैसे माद मार्ग रूप एकदशवाला, २७ आकारा के जैसे बाहरी
 आलम्बन रहित, २८ पक्षी के जैसे संसृष्ट रहित वा सर्वत्र गति वाला, २९ सर्प क जैसे
 पर पर में रहने वाला, ३० धातु के जैसे प्रतिबन्ध रहित, ३१ जीव के जैसे निर्वाप
 सर्वत्र गति वाला, इन इच्छीस उपमाओं से कुछ साधु प्रति प्राय में एक रात और
 मगर में पाँच रात क प्रमाण से वास करते हुए भ्रमण करता है । अतिश्रिय, अति
 परीपह, निर्मल वाचन जीवन की आशा व मरण भय से दूर मुनि निर्दोष अत्रि की
 शरीर सं पालन करता हुआ निरन्तर आत्म ध्यान से कुछ स्थिरमति होकर राग
 द्वेष रहित धर्म का आचरण करे ।

मूल-“इमं च परिग्गह-धरमण-परिरक्तण्डुपाण पावपणं भगवया
 सुहृदियं अचहियं, पेयामाविकं, भागनेसिमई, मुद्धं, नवाउयं अहुडिलं
 अणुतर सन्वदुस्यपायास विघोसमणं, तत्सइमा पधभाबयाधो परिमसु

वयस्स होंति परिग्गह वैरमण-रक्खण्डुयाए । पढमं-सोईदिएण सोच्चा
सदाइं मणुन्नभद्दाइं, किंते !, वरमुरय-मुइंग-पणाव-दद्दुर-कच्छभि-
वीणा-विपंची-वल्लयि-वट्ठीसक-सुधोसनंदि-सूसर-परिवादिणि-वंसतूणक
पव्वक-तंती-तल-ताल-तुडिय-निग्घोसगीयवाइयाइं, नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल
मुट्टिक-वेलंबक-कहक-पवक-लासग-आइक्खक-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंब
वीणिय-तालायर-पकरणाणि य बहूणि, महुरसर-गीत-सुस्सरातिं, कंची
मेहला-कलावपत्तरक-पहेरक-पायजालग-घंटिय- खिंखिणि-रयणोरुजा-
लिय-छुदिय-नेउर-चलण-मालिय-कणग-नियल-जाल-भूसणसदाणि,
लीलाचंक्रममाणालीरियाइं, तरुणीजणहसिय-भणिय-कलरिभित-भंजु-
लाइं, गुणवयणाणि व बहूणि महुरजणभासियाइं, अन्नेसु य एवमादिएसु
सद्देसु मणुन्नभद्देसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, न गिज्झि-
यव्वं, न मुज्झियव्वं, न विनिग्घायं आवज्जियव्वं, न लुभियव्वं, न तुसि-
यव्वं, न हसियव्वं, न सइं च मइं च तत्थकुज्जा । पुणारवि सोइ दियेण
सोच्चासदाइं अमणुन्न-पावकाइं, किंते ? अवकोस-फरुस-खिसण-अवमा-
णाण-तज्जण-निव्वंछण-दित्तवयण-तासण-उवकूजिय-रुन्न-रडिय-कंदिय
निग्घूडरसिय-कलुणविलवियाइं, अन्नेसु य एवमादिएसु सद्देसु अमणुन्न
पावएसु न तेसु समणेण खसियव्वं, न हीलियव्वं, न निंदियव्वं, न खिसि-
यव्वं, न छिंदियव्वं, न भिदियव्वं, न वहेयव्वं न दुगुंछावत्तियाएलव्वा
उप्पाएउं । एवं सोत्तिदिय-भावणा भावितो भवति अंतरप्पा मणुन्नाऽम-
णुन्न-सुब्धि-दुब्भिरागदोस-पणिहियप्पा साहू, मण-वयण-कायगुत्ते
संबुडे पणिहित्तिदिए चरेज्ज धम्मं ॥ १ ॥

छाया-“इदञ्च परिग्रह विरमण-परिरक्षणार्थं प्रवचन भगवता सुकथितमात्महितं
प्रेत्यभाविकम्, आगमिष्यद्भद्र, शुद्धं, न्यायोपेतमकुटिलमनुत्तरं सर्वदु खपापानां
व्युपशमनं, तम्येमा. पञ्चभावनाश्चरमस्य व्रतस्य भवन्ति परिग्रह-विरमण रक्षणार्थम् ।

प्रथम-भात्रेन्द्रियेषु भुत्वा राष्ट्रान् मनोहमद्रकाम । कांस्तान् ?-वर मुरज-सुरज-
 पण्ड-वृद्ध-र-कण्ठमी-योग्या-विपक्षी-वज्रकी-बद्धीसक-सुषोप-नन्दी-सूसर परि
 वादिनी-यंश तूय ह-पत्रक-तन्त्री-तल्ल-ताल्ल-तुयं निर्घोष-गीतवाद्यम्, नट-नतक-
 बल्ल-मल्ल-मौष्टिक-विहम्बक-कयक-प्लवक-लासकाऽऽचक्षक-(आकप्रामक)-
 लंल-मंल-तूयइल्ल-तुम्बिबीणिक-तालाऽऽधर-प्रकरणाणि च बहूनि, मधुरस्वरगीत
 सुस्वराणि काञ्ची-मसज्जाकलाप-प्रतरक-प्रहेरक-पावजालक-पण्डिका-किङ्किणी-
 रलोहजालिका सुत्रिका-नूपुर-चतनमात्रिका-कनक-निगड आलक-गुणशाम्भाम,
 लीलापट्टम्यमाणोदीरितान् ०रुणीजन-इसित-मखित-कञ्जिभित-मञ्जुलाम, गुण
 यजनानि च यदृनि मधुरजन भाषितानि, अन्येषु चैवमादिषु राष्ट्रानु मनोहकानु न
 तनु भ्रमणेन सन्निवृत्यम्, न रत्नकम्, न गर्दितकम्, न मूर्च्छितकम्, न निनि
 पतमापत्तकम्, न लोभितकम्, न तोष्टकम्, न हसितकम्, न स्तुतिमतिश्च
 तत्र कुर्वात् । पुनरपि भोत्रेन्द्रियेषु भुत्वा राष्ट्रान् मनोहमद्रकाम, कांस्तान् ?-
 आकोरा-परुप-क्षिसयाऽवमानन-तर्जन-निभस्सन-शीतवचन प्रस्तनोऽङ्कित-रहि
 ताऽऽरटित-कन्दित-निषुष्ट-रसित-कण्ठ-विलापिताम, अन्येषु चैवमादिकेषु राष्ट्र
 प्वमनाक्षपापकेषु न तेषु भ्रमणन रोपितकम्, न हीलितकम्, न निन्दितकम्, न स्तिसि
 तकम्, न स्रस्तकम् न सेतकम्, न इन्तकम्, न जुगुप्सा-पृष्टिका कम्भोरपादिसुम् । एवं
 भात्रेन्द्रियमावना-भाषितो भवत्यन्तरात्मा मनोह्याऽमनाह-सुरमि-दुरमि-रागद्वेष
 प्रसिद्धितात्मा साधुर्मनो-वचन-कायगुण संपूत प्रसिद्धितन्द्रियरचरेदमम् ॥ १ ॥

अम्ब०-“(च) और (परिमाहवेरमख-परिरकण्ठदुपाण) परिमह विरमण
 प्रत फी रक्षा के लिये (भगवथा) प्रसु महावीर मे (इम पावयण) यह प्रयचन
 (मुकहिय) अक्षी तरह कडा है (अस्तदिय, वेरुवा भाषिक) जो आ-मदितकारी
 व परलोक में शुभ का कारण है (भागमति मह) भविष्य में कस्याय कारक
 (सुद) शुद्ध (नेमाउय) म्यायपुल (अकुदिल) कुदिलता रहित (अगुत्तर) सर्ष
 भेष्ट और (सखदुकर-पाषाय) सब दुःख पर्य पापों का (विभोसमण) उप
 शमन करन वाला है (तम्भ चरिमस वयस्म) उस अम्भिम अपरिमह द्रत की
 (इमा पंग भावना) ये पाप भावनाये (परिमाहवेरमख-रकरणदुपाण) परिमह
 विरमण प्रत का रक्षा के लिये (होति) हैं ।

क्रम-(प्रथम) प्रथम भाषना-(मो इदिल्ल) भात्रेन्द्रिय से (मगुममहाह)

“मनोज्ञता के कारण सुन्दर (सद्दाइं) शब्दों को (सोषा) सुनकर, (किते ?) कौन से वे शब्द हैं ?

उत्तर—(घर मुरय- मुडंग- पणव- ददुदुर- कच्छभि- धीणा- विपंची-वह्लधि-
वह्लीसक- सुधोसनदि- सूसर- परिवादिणि-वंस-तूणक पचक-तंती-ताल-तुडिग-
निगोस गीयवाइयाइं) प्रधान मुरज-मर्दल मृदङ्ग, पणव-छोटा पडह, ददुदुर-चर्म
से बंधे हुए मुख वाले कलस जैसा वाद्य विशेष, कच्छभि-वाद्य विशेष, धीणा,
विपंची और वह्लकी-एक प्रकार की धीणा, वह्लीसक-एक प्रकार का वाद्य,
सुधोषा-घण्टा, नन्दी-वारह प्रकार के तुर्य^१ का निर्घोष, सुसर परिवादिनी-धीणा
घश-वासरी, तूणक और पर्वक-वाद्य का एक प्रकार, तन्त्री-धीणा विशेष,
तल-हस्त तल, ताल-काम्य ताल इन सब वाद्यों के निर्घोष तथा सामान्य
गीत और वाद्य को (य) और (नड-नट्टक-जह्ल-मह्ल-मुट्टिक-बेत्तक-कहक
पदक-लासग-आइक्खरु-लख-मख-तूण इह्ल-तुंब धीणिय-तालायर पकरणानि)
नट, नर्तक, जह्ल-वास या डोरी पर खेलने वाले, मह्ल, मौष्टिक मह्ल, विटम्बक-
विट्टूपक, कथा करने वाला, प्लवक-उछलने वाला, रास गाने वाले तथा पूर्वोक्त अर्थ
वाले, लख, मख, तूण इह्ल, तुंबवीणिक और तालचर इनसे किये नाटक आदि
प्रकरणों को तथा (बहुणि मडुर-सर-गीत सुस्सरालिं) बहुत से मुर ध्वनि वाले
गायकों के सुम्बर गीतों को ‘सुनकर’ फिर (कंची-मेहला-कला वपत्तरक-पहेरक
पाय जालक-घटिय-खिखिणि-रयणोरुजालिय-छुदिय-नेउर-चरण म त्रिय-करण
नियल-जाल भूसण-सद्दाणि) काची-कमर का भूषण कटोरा, मेखता-उसी का
एक भेद, कलापक-गरदन का आभरण, प्रतरक और प्रहेरक-आभरण विशेष, पाद
जालक-पाव के नूपुर आदि आभरण, घण्टिका-घुघल, खिखिनी छोटी घुघुरी
वाला भूषण, रत्नोरुजालक-रत्न सम्बन्धी जवा के आभरण, लुट्टिहा-एक प्रकार
का आभरण नेउर-नेपुर, चरण सलिका तथा कनक निगड-पैर-के आभरण
विशेष, और जाल भूषण इन सबके शब्दों को जो (लील चक्रम् माणारू
दीरियाइं) लीला से चलती हुई स्त्रियों के गमन से उत्पन्न हुए हैं, (तरुणी

१ तूर्य के बारह प्रकार—(१) भंभा, (२) मृदग, (३) मार्दल (४) हुड्डुङ्ग,
(५) तिलिमा, (६) करड, ७) कंसाज (८) काहल, (९) धीणा, (१०) वण,
(११) शम्भ, (१२) पणवक (

अथ- इमिय- भणिय- कलरिमित- मंजुशार्ह) तन्वी क्षियों के हास्य बचन, तथा त्वर के भोजना युक्त मधुर व सुन्दर शब्दों को (गुणवययाधि व वदुधि मधुरअण-भासियाई) अथवा मधुर जन-प्रेमी अर्थों से बोले हुए बहुत से स्तुति वचनों को (अन्तसु व प्यमादिप्लु सरेसु मणुम-मरणसु) और अन्य इस प्रकार के मनोहरता से शुभ रूप जो विशिष्ट शब्द हैं (म वेसु समण्य सक्षियम्बं) उन शब्दों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए (न रक्षियम्बं) राग नहीं करना चाहिए (न गिम्भियम्बं) गृष्टि-नहीं मिलने वाले शुभ शब्दों को आकांक्षा नहीं करनी चाहिए (न मुग्भियम्बं) न बेभाम होकर मोह करना चाहिए, (न विनिग्यायं आवक्षियम्बं) न उसके क्षिये अपना व परफा नाश करना चाहिए (न लुभियम्बं) न लोभ करना चाहिए (न तुक्षियम्बं) प्राप्ति होने पर प्रसन्न भी नहीं होना चाहिए (न हसियम्बं) न विन्मय से हास्य करना चाहिए (न सईष मईष सत्थइजा) और न वहाँ-उन शब्दों में-स्तुति या मति अर्थात् स्मरण या उनका विचार भी नहीं करना चाहिए (पुणरुवि) फिर भी शब्द गत विचार को कहते हैं (सोइवियस अमणुम पावकाई सदाई सोक्खा) श्रोत्र इन्द्रिय से अमनोह और बुरे शब्दों को सुनकर [रोष आदि नहीं करना] (दिते ?) कौन से वे अमनाह शब्द हैं ?

अथ- (अकोस-फरुस-सिसख-अवमाण्य- तज्जस- निर्भंससु- दिववण- तामस-अकूजिय-रुम-रक्षिय-कंक्षिय-निगुठ रक्षिय-अरुण-विलधिपाई) आक्रोश मरजा आदि प्रकार की गाली, पठप वचन-मूर्ख आदि कहना, खिसन-निम्न, अपमान और तर्जना-भय सूचक शब्द, निर्मर्त्सना-सामने से हट जा इत्यादि निरस्कार वचन शीघ्र-क्रोध युक्त, त्रासकारी, अकूचित-अठपठ खोर की ध्वनि, रोने के शब्द रन्धित-रुद्धे के शब्द, अन्दन-बियोग यौग्य का आकन्दन निघु छ-निर्घोष रूप, रक्षित-जानवर के समान पीत्कार, करुणा कृपम करन वाले और विलाप रूप, (अन्तसु व प्यमादिप्लु सरेसु अमणुम पावप्लु) और इस प्रकार के अन्य अमनाह आ शब्द हैं (म वेसु समण्येण रक्षियम्बं) उन शब्दों में साधु को रोष नहीं करना चाहिए (न हीक्षियम्बं) हीतना नहीं करनी चाहिए (न निक्षियम्बं) मित्रा नहीं करनी चाहिए (न तिभियम्बं) लोफ समझ घनको पुरा नहीं कहना चाहिए (न क्षियम्बं) अमनोह शब्द के कारण इन्द्र का देहन नहीं करना चाहिए

(नभिमिदियव्वं) न उसका भेदन-दो भाग करना चाहिए (न घहेयव्वं) न घध-हनन-करना चाहिए (न दुगुंछा वत्तियाए लब्भा उप्पाएउं) अपने या दूसरे के हृदय में जुगुप्सा उत्पन्न करनी भी योग्य नहीं है (एवं) इस प्रकार (सोइंदिय भावणा भावितो) श्रोत्र इन्द्रिय की भावना से युक्त (अंतरप्पा) अन्त-करण वाला (मणुत्ताऽमणुत्ताऽ सुद्धि-दुद्धि-राग-दोस-पण्हियप्पा) मनोह्व और अमनोह्व रूप वाले शुभाऽशुभ शब्दों में राग द्वेष के प्रणिधान-संवर-वाला-साधु (मण-वयण-कायगुत्ते) मन वाणी और काय से गुप्त (संवुडे) सवरवान् (पण्हित्तिदिए) गुप्त इन्द्रिय वाला होकर (चरेज्ज धम्म) धर्म का आचरण करे ॥ १ ॥

मूल-“वितियं-चक्खिदिण्ण पासिय रूवाणि मणुत्ताइं भइकाइं, सच्चित्ताऽचित्त-मीसकाइं, कट्ठे पोत्थे य, चित्तकम्मे, लेप्पकम्मे, सेले य, दंतकम्मे य, पंचहिं वएणेहिं अरोगे संठाण संठियाइं, गंथिम वेदिम-पूरिम-संघातिमाणि य मल्लाइं बहुविहाणि य अहियं नयण-मणसुहकराइं, वण संडे पव्वते य गामागरनगराणि य खुद्धिं यपुक्खरिण्णि-वावी-दीहियगुंजा लिय- सरसर पंतिय-साग-विल पंतिय-खादिय-नदी-सर-तलाग-वप्पिणी-फुल्लुप्पल-पउम-परिमंडियाभिरामे, अरोगे- सउणगण- मिहुणविचरिए, वर मंडव-विविह-भवण-तोरण-चेतिय-देवकुल-सभ-प्पवा वसह-सुकय सयणासण-सीय-रह-सयड-जाण-जुग्ग-संदण-नर नारिणो य, सोम पडिरूवदरिसण्णजे, अलंकितविभूसिते, पुव्वकयतवप्पभाव-सोहग्ग संपउत्ते, नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-गुट्टिय-बेलंबग-कहक-पवग-लासग-आइ कखग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुं ववीणिय-तालायर पकरणाणि य बहुणि सुकरणाणि, अन्नेसु य एवमादिएसु रूवेसु मणुत्तभइएसु न तेसु समणेण सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, जाव न सइंच महंच तत्थकुज्जा । पुणरवि चक्खिदिण्ण पासियरूवाइं अमणुत्तपावकाइं, किते ?-गंडि-कोठिक-कुण्हि-उदरि कण्हल्ल-पइल्ल-कुज्ज-पंगुल-नामण-अधिज्जग-एगचक्खु-विण्हिय-सप्पि-

सन्नग-बाहिरोग-पीलियं, विगयाशि य मयक कलेवराणि, सकिमिण कुहियं
 च दध्यरासि, अन्नेसु य एवमादिपसु अमणुभ पावतेषु न तेषु समखेख रू-
 सियध्वं, जाव न द्रुगु छावसिपाधि स्रम्मा उप्पातेउ । एवं चदिखदिय
 भावशा-भाधितो भवति अंतरप्पा जाव चरेज्ज धम्मं ॥ २ ॥

सतियं धाधिदिपण अग्वाइय-गंधाति मणुभ महगाइ, किते ?-अलप
 पलप-सरस-पुष्प-फल-पाख-भोयण-कुट्ट-तगर-पण चोय-दमखक -अरुप-
 एलारस-पिककमसि-गोसीस-मरसचदश-फप्पूर-सर्वग-अगर-दु कुम-
 कफकोल उसीर-सेय चंदण-सुगध-सारंग-शुधि-वर धूववासे, उउय पिठि-
 म खिहारिम-गधिपसु अन्नेसु य एवमादिपसु गंधेषु मणुभ-भरपसु-न तेषु
 समखेण सज्जियध्वं, जाव न सतिं च मइ च तत्पडुज्जा । पुणरवि धाधिदि-
 पण अग्वातिय गंधाशि अमणुभ पायकाइ । किते ! अहिमड अस्तमड
 इत्थिमड-गोमड-विग सुखग-सिपाल-मणुय-मज्जार-सीइ दीधिय-मय-
 कुहिय-विशद-किविख बहुदुरमि-गंधेषु अन्नेसु य एवमादिपसु गंधेषु अम-
 णुभ-पायपसु न तेषु समखेख रूसियध्वं, जाव पशि द्विय-पधिदिप धरेज्ज
 धम्मं ॥ ३ ॥

अउरय जिन्मिदिपण साइय रसाधि उ मणुभमहकाइ, किते !-उग्गा-
 डिम विदिह-याण भापण-भुलकय-स्रठ कप तेह प्रयकय-भक्खनु बहुविहेसु
 लयणरस-मंजुसेसु महु-मंस-बहुप्पगार मज्जिय-निट्ठाखग दालियंय सईप
 दद-दहि-सरय मज्ज-वर वारुणी-सीहु-काविसायख-सायट्टारम-बहुप्पगारेसु
 भायणसु य मणुभ-दध-गंध-रम फास-बहु दध्व-संमितसु अन्नेसु य एवमा-
 दिपसु रमसु, मणुभ-भरपसु न तेषु समखेण सज्जियध्वं, जाव न सइ च मइ
 च मइ पज्जा । पुणरवि जिन्मिदिपण साधिय रसाति अमणुभमहगाइ,
 किते !-अरम दिरम-मीय-मुक्ख भिज्जप्य-राग-भोयगाइ, दुग्गीण वादप

हृदय-पूङ्गव-अमणुज-विण्टु-पङ्कज-बहुदुर्लभगंधियाइ', तित्त-कडुय-कसाय-
अविल रस-लिडनीरसाइ', अन्नेसु य एवमाइरसु रसेसु अमणुज-पावएसु न
तेसु ससणेण रूसियव्वं, जावचरेज्जधम्मं ॥ ४ ॥

छाया-“द्वितीयं चलुरिन्द्रियेण दृष्ट्वा रूपाणि मनोज्ञानि भद्रकाणि सचित्ताऽ
चित्त-मिश्रकाणि काष्ठे पुस्ते च चित्रवर्मणि, लेप्यवर्मणि, शैले च दन्तवर्मणि पञ्च
भिर्वर्णैस्नेरु सत्यान्-सस्थितानि, अन्धिम-वेष्टिमूरिम-सघातिमानि च माल्यानि
वटुनिधानि, चाधिकं नयनमन सुखकराणि वनखण्डान् पर्यतांश्च ग्रामाऽऽकर-नग-
राणि च, लुट्टिका-पुष्करणी-वापी-दीर्घिका-गुञ्जालिका-सरः-सर पत्तिका-सागर
विल पत्तिका-सातिका-नदी-सरस्तटाक-वप्रिणी-फुजोत्पल- पद्मपरिमण्डिताऽभि
र माणि, अनेक-शकुनगण-मिथुन विरचितान्, वरमण्डप-विविध-भवन-तोरण
चैत्य-देवकुल-सभा-प्रपाऽवसथ-शयनाऽऽसन शिबिका-रथ-शकट-यान-युग्य-स्य-
न्दन-नरनारीगणाश्च दर्शनीयान्, अलकृत-विभूषितान्, पूर्षकृत-तप-प्रभाव-सौ-
भाग्य-सम्प्रप्तान्, नट-नर्तक-जल्ल-मल्ल-मौष्टिक-विडम्बक-कथक-प्लवक-लासका
ऽऽख्यायक-लख-मंख-तूणइल्ल-तुम्बवीणिक-तालाचर-प्रकरणानि च बहूनि सुक-
रणानि, अन्देपु चैवमादिकेषु रूपेषु मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सञ्जितव्यं, न
रत्तव्यं, यावन्न स्मृतिश्च मतिश्च तत्र कुर्यात् । पुनरपि चलुरिन्द्रियेण दृष्ट्वा रूपाणि-
अमनोज्ञपापकानि, कानिनानि ?-गण्डि-कुष्ठि-कुण्डुदरि-कचुल्ल-कण्डूतिमच्छ-ली
पद-कुठज-पगु वामनान्यकैरुचलु-दिनिहतात्-सर्पिशल्यक- व्याधिरोगपीडितानि,
विकृतानि च मृतक कलेवराणि, सङ्गमि-कुथित-द्रव्यराशिम् अन्देपु चैवमादिकेष्व
मनोज्ञपापकेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, यावन्नजुगुसावृत्तिरपि लभ्योत्पादयितुम् ।
एव चलुरिन्द्रिय भावना-भावितो भवत्यन्तरात्मा यावच्चरेद्धर्मम् ।

तृतीयं-घ्राणेन्द्रियेणाघ्रायगन्धान् मनोज्ञभद्रकान्, कास्तान् ?-जलज-स्थलज-
सरस पुष्प-फल-पान-भोजन-कुष्ठ-तगर-पत्र- त्वक्-दमनक- मरुकैलारस-पक्कमा-
सी-गोशीर्ष-सरस चन्दन-कर्पूर-लवङ्गागरु-कुङ्कुम-बद्धोलौशीर-श्वेत चन्दन-
सुगन्ध-सारङ्ग-युक्ति-वर धूपवासान् ऋतुज-पिण्डिम-निर्हारिम-गान्धिकेषु अन्देपु
चैवमादिकेषु गन्धेषु मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सञ्जितव्यं, यावन्न स्मृतिं च मतिं च
तत्र कुर्यात् । पुनरपि घ्राणेन्द्रियेण आघ्राय गन्धान् अमनोज्ञ पापकान्, कास्तान् ?
१ अहिमृताऽधमृत्-इरितमृत्-गोमृत्-वृक-शुनक-श्रगाल-मनुज-माजार-सिह-द्वीपिक

मृग-कृषि-विनष्ट-कृमि-बहुदुरभिगन्धेषु अन्येषु चैवमादिकेषु गन्धेषु भ्रमनोद्भवेषु
केषु न तेषु भ्रमणेन रोपितव्यं, यावत् प्रणिहित-परुषेन्द्रियस्वरुद्रमम् ॥ ३ ॥

चतुर्थ-शिङ्गेन्द्रियेषु स्वादयित्वा रसांस्तु मनोद्भवमद्रकाम्, फास्ताम् ?-अथवा
हिम-विधिभ-पान भोजन-गुडकृत-सदककृत-तैलपूत-कृतमप्येषु बहुविधेषु, लवण
रससंयुक्तेषु मधु-मांस-बहुप्रकार-मम्मिक्त-निष्ठानक-वालिफाम्, सेन्धाम्, दुग्ध
दधि-सरक-मघ-यर पाठली-सीसु-कापिशायन-शाकाष्टादरा-बहुप्रकारेषु-भोज
नेषु च, मनोद्भवेषु-गंध रस-स्पर्श बहुद्रव्य सृष्टेषु, अन्येषु चैव मादिकेषु
रसेषु मनोद्भवमद्रकेषु न तेषु भ्रमणेन सञ्चितव्यं, यावत् न स्मृतं च मति च तत्र
कुर्वन् । पुनरपि शिङ्गेन्द्रियेषु स्वादयित्वा रसाम् मनोद्भवमद्रकाम्, फास्ताम् ? अरस
विरस-शीत-ठण्ड-निर्याप्यपान-भोजनानि, होपाम्-व्यापम-कुपित-भूतिकामनोद्भव
विनष्टप्रसूत-बहुदुरभिगन्धेषु, तिक्त-कटुक-कषायाम्, रस-किन्त्रनीरसान्, अन्येषु
चैवमादिकेषु रसेषु भ्रमनोद्भवेषु न तेषु भ्रमणेन रोपितव्यं यावत्परुषेन्द्रियम् ॥ ४ ॥

अन्य० (वित्तियं) वृक्षी भाषना-बहुविधेषु संवर रूप अस्ते-(चन्द्रिदि
एषु) बहु इन्द्रिय से , मणुसाई) मनोद्भव (मद्रकाई) सुन्दर-शुभ (सविताडि
च-मीसकाई) सविच, अविच तथा मित्र द्रव्य-सम्बन्धी (रुवाधि) रूपो को
(पासिय) द्रव्यकर, जो रूप-(कट्टे , पोत्व) काष्ठ के पटिया पर, पत्र पर (य)
और (विचकम्म) विचकम्म में (सप्तकम्म) गोवर मिट्टी आदि के सप्त से बनाये
हुए सप्तकम्म में (सप्त य) पत्थर पर और (इंतकम्म) हाँत की कोरणी में (पंच
दि पच्यदि अथग संठाण संठियाइ) पाँचपक्ष से युक्त च अगठ प्रकार के आकार
यस्त (गंधिम) गूँधकर माला की तरह बनाए हुए (बह्मि-पूरिम-सपाठिमाधि)
पटिम-यहन म बनाये हुए, पूरिम-विपही आदि भरकर बनाये गये, तथा संभा
ठिम-पूत आदि को एक दूर से मित्राकर इनके समूह से बनाये हुए (य) और
(मन्नाधि बहुविधाधि य) बहुत प्रकार के मांस-माला सम्बन्धी रूप, और (अ
दियं नयण-मणु-गुहकराइ) नत्र व मनको अधिक गुराका १ (यणगडि) बनईक
(पच्यत) पर्यंत और (गामागर-नपराधि) मांस, आकर तथा मगरों को (य)
दिए (मुदिप-मुष्परिधि-बापो-नीदिय-मु जालिय-सर- सारपनिय-सागर-विज
पतिय-रादिय-मणी-सर- कलाग- बगियणी- पुन्दुपन-यम्म-परिमदियाभिरासे)
चुडिका-उडाइ, पुण्डरीकी-कमठमुक बागी, बागी-पौडोसु पावको, हाँपि हा-हाम्बी,

गुंजालिका-वक्रसारणी, सर. सरः पक्ति-परस्पर पानी के सम्बन्ध वाले अनेक सरोवरो की पक्ति, सागर-समुद्र, विलपक्ति-कूपश्रेणि या लोह आदि की खान में खांदे हुए खड्डों की श्रेणि, खातिका-खाई, नदी, सर-त्रिना खोदे सहज बना हुआ जलाशय, तडाग-तालाव, और वशिष्णी-कैदार-पानी की क्यारी विकसित नीलोत्पल तथा सामान्य कमलों से मण्डित एवं जो रमणीय हैं (अयोग-सउण गण-मिहुण-विचरिण) अनेक प्रकार के पक्षि समूह के मिथुन-जोडे की गमना-गमन क्रिया से युक्त (वरसंडव-विधिह भवण-तोरण-चेतिय-देवकुल-सभ-प्पचा-घसह-सुकय-सयणासण-सीय-रह-सयड-जाण-जुग-सदण-नर-नारिगणे) उत्तम मण्डप, अनेक प्रकार के भव्य भवन, तोरण, चैत्य-चितास्थान पर वने हुए स्मारक, देवकुल-देवालय, सभा-लोकों के बैठने का स्थान, प्रपा-प्याऊ, आवसथ-परिव्राजकों का आश्रम, सजाए हुए शयन-पलंग आदि, आसन-सिंहासन आदि, शिविका-ऊपर से ढकी हुई पालखी, रथ, गाडी, यान और युग्म-कुछ विशेषता वाले वाहन, स्यन्दन-घुघल्दार रथ या सांग्रामिकरथ, और स्त्री पुरुषों का समूह (सोम-पडिरुव दरिसणिज्जे) जो सौम्य-प्रत्येक दर्शक के अनुकूल रूपवाले और दर्शनीय हैं (अलकित-विभूसिते) भूषणों से अलंकृत और घन आदि से विभूषित हैं; पुत्रकय-तवप्पभाव-सोहग्ग-सपउत्ते) पूर्व जन्म में की हुई तपस्या के प्रभाव से प्राप्त सौभाग्य वाले (नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्टिय-वेत्तवग-रुहक-पवग-लासग-आइक्खग-लख-मंख-तूण इल्ल-तुव वीणिय-ताला-र-पकरणाणि य) और नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, धिदूपक, कथा वाचक, प्लवक, रास कथक, वार्ता कहने वाला, चित्र पट लेकर घूमने वाला, वास पर नाचने वाला, तथा तूण इल्ल, तुंबवी-णिक और तालचर इनके विविध प्रयोग (बहूणि सुकरणाणि) बहुत से सुन्दर कार्यों को, देखकर आसक्त नहीं होना चाहिए । अन्नेसु य एवमादिणसु ख्वेसु मणुञ्ज भइणसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे मनोज्ञ व भद्ररूपों में (न तेसु समणेणसज्जियव्व) साधु को उन पूर्वोक्त शब्दों में तल्लीन नहीं होना चाहिए (नरज्जियव्व न राग करना चाहिए (जाव न सइंच, मइच तत्थ कुञ्जा) यावत् स्मृति और मति-विचार भी उनमें नहीं करना चाहिए (पुण्णरवि) फिर भी चक्षुरिन्द्रिय विषय को कहते हैं- (चर्किखदिण) चक्षु इन्द्रिय से (अमणुञ्ज-पावकाइ) अमनोज्ञ व पापकारी (पा मिय रूवाइ) रूपों को देखकर रोष आदि नहीं करना, (किते ? कौन से वे अम-

नोक्ष रूप हैं ? (गण्डि-डोडिक-कुक्षि-वृद्धि-कण्डुल-पल्ल-कुत्र-पंगुल-वामस्य
 अंधिलग-प्राचकल्लु-विण्णिय-सपि-सल्लग-वाहिरोग-पीतियं) नात पित्त कफ
 और सभिपात से होने वाले गंडोगे वाक्ला-गंडमासायुक्त, कुष्ठ-अठारह प्रकार के
 कुष्ठ रोग वाक्ला, कुक्षि-गर्म होय से जिसका एक हाथ और एक पैर छोटा है, वृद्धी
 बजोरर मुक्त कण्डुल-सुबली के रोग वाक्ला, पल्ल-रसीपद् रोग वाक्ला, कुत्र-कूबड
 पंगुल-पंगु-चरुने में असमर्थ, वामन अत्यन्त छांट शरीर वाक्ला, अंधक-बन्मान्य,
 एक चक्षु-काया, विनिहत चक्षु अन्म के बाद किमी प्रकार के आघात से अन्धा
 या काया बना हा, सर्पि शक्यक पीठ के बलपर ससर के या लकड़ी के सहारे चलने
 वाला, अथवा निराप की तरह दुष्ट मह से धरा हुआ तथा शूद्रारि शन्यवाक्ला
 और व्याधि एवं रोग से पीडित, "नमें से किसी को विग्राहिय मन्कक्षेयराण्णि)
 और विकृत-विगडे हुए मृतक क कजेयों को (सन्निभिय कुर्विय च द्धरराधि)-
 कीडों से युक्त और सबे हुए द्रव्य राशि को देखकर (अन्नासु य प्यमारिण्णु धम
 ण्णु पापतायत्तेसु) और इस प्रकार के अन्ध अमनोह प पापकारी और हैं (न
 तेसु समण्य स्वमिदर्थ्यं) उन सब अमनोह रूपों में नाथु को उठ नहीं होता च हिर
 (आव न दुर्गुण्यतिग वि कम्मा उपावेत्तं यावत् स्वपर की दुग्गुदावुत्ति-पृथा
 भी चत्पन्न करता योग्य नहीं है। एवं चन्निहिय भापया मापितो) इत प्रकार
 चष्ट इन्द्रिय की भावना से युक्त (अंतरणा) अटकरण वाला मुनि (मगठि)
 होता है, आव चरेज धम्म) यावत् गुण होकर धर्म का भाषण करे ॥ २ ॥

(ततियं) तीसरी भावना—प्राणत्रिय संवर रूप, जैसे- चालिरियण अग्घा
 इय गंधाति मणुम-महागार् प्राण इन्द्रिय से बनाह य शुभ गंधों का सूचकर
 (न्ति ?) च सुगम्य कीतसे हैं ?

चत्तर-(अज्जद-धत्तप-सरस पुप्फ फल-पाण्य मोरय्य पुट्ट-तगर-पत्त-चौर
 वमण-क महर-एत्तारस-पिकक गंसि गोपीस-सरस चंदय-इप्पूर-त्तर्ग-धगर
 कुट्टम-इकडोस-वसीर-सेय चण्य सुगंध-सारंग-जुशिपर-भूययासे) अज एवं
 रक्ष में चत्तम होने वाले सरस फूल, फल पान तथा भाजन कुत्र-अप्यत्तुत्त, तगर,
 पत्र-समाजपत्र आन-सुगम्यी तथा धम्मन-उत्त पिशाप, मठ-मठमा, एत्तारस
 दहायपी का रम शिक्रमंसी-पका हुआ मांती नामक गम्य द्रव्य, गार्थीय नामक
 धरस चन्दन चन्द, लयग-लूग अगर सुधुम चरोड-माक्लाकार सुगंधि च पल

उशीर-नीरणी घनस्पति के मूल, श्वेत चन्दन, श्री खण्ड, अथवा श्वेद-सुगन्धि रस और मलयगिरी, तथा सुगन्धि युक्त प्रधान अङ्गो के योग घाला उत्तम धूप वाम (उज्य- पिडिम- णिहारिमि- गंधिण्डु) जो ऋतु के अनुकूल-पिएडमय और वायु से उडने वाले गन्ध से सुगन्धि युक्त है (अन्नेसुय एवमादिसु गंधेसु मणुन्नभदण्डु) और इस प्रकार के अन्य मनोज्ञ तथा भद्र गंधों में (न तेसु समणेण सज्जियव्वं) इनमे साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए (जाव सत्तिच भद्वं च तत्थ कुज्जा) यावत् वहां-उन सुगन्धिओं मे स्मृति वा विचार भी नहीं करना चाहिये (पुणरवि) फिर भी घ्राणेन्द्रिय के विषय को कहते हैं-(घ्राणिद्विण्ण अन्घातिय गधाणि अमणुन्न-पावकाइं) घ्राणेन्द्रिय से अमनोज्ञ और बुरे गन्धद्रव्यों को सू घकर (किते ?) कौन से वे दुर्गन्धिद्रव्य ? ।

उत्तर-(अहिमड- अरसमड- हत्थिमड- गोमड- विग-सुणग-सियाल-मणुय-मज्जार-सीह-दीविय-मय-कुहिय-विणट्ट-किविण-वहुदुरभिगधेसु) सर्प का कलेवर घोड़े का कनेवर, हाथी का मृत्क, गौ का कलेवर, वृक, व्याघ्र, कुत्ता, शृगाल, मनुष्य, मार्जार-बिल्ली, सिंह और चित्ता, इन सबके कलेवर जो सडे हुए, पूर्व आकार से नष्ट तथा कीड़े युक्त हैं और अत्यन्त दुर्गन्धि वाले हैं (अन्नेसुय एवमादिसु गंधेसु अमणुन्न पावण्डु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अमनोज्ञ गंधों मे (न तेसु समणेण रुमियव्व उन अशुभ गन्धों मे साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए । (जाव पण्हिय-पचिद्विण चरेज्ज धम्म) यावत् पाचो इन्द्रियों से संश्रम युक्त मुनि धर्म का आचरण करे ॥ ३ ॥

(चउत्थं) चौथी भावना-रसनेन्द्रिय सवर रूप, जैसे-जिर्विभद्विण्ण साइय रसाणि उ मणुन्न-भदकाइं) जिह्वा इन्द्रिय से मनोज्ञ व सुन्दर रसो का आस्वाद करके 'आसक्त नहीं होना' (किते ?) वे मनोज्ञ रस कौन से हैं ?

उत्तर-(उग्गाहिम- विविह- पाण- भोयण- गुतकय- खडकय- तेह्ल-घय-कय भक्खेसु) घी व तेल आदि मे डुबा कर पकाये गये पकान्न-खाजे आदि, अनेक प्रकार के पानक-द्राक्षापान आदि और भोजन, गुड़ या सक्कर के बनाये हुए, तेल अथवा घी के बने हुए मालपूत्रा आदि पदार्थों में (बहुविहेसु लदण रस-सजुत्तेसु) जो अनेक प्रकार के लवण रस से संयुक्त हैं । (महु-मस-बहुप्पागार-मज्जिय-निट्टाणग-दालियंब-सेहंब-दुद्ध-दहि-सरय-मज्ज-वर वारुणी-सीहुका-विसायण-

सापट्टारस बहुष्पगारेसु) मधु, मांस अनेक प्रकार की मक्खिका, तिष्ठानक-अधिक मूत्र्य स बना हुआ, शक्तिराम्भ-सूत्री वास, सैम्भाम्भ-पदार्थ समिभय स लठे निचे गये रायता आवि, वृष, वही, सरक, गुड़ और घातकी से बना हुआ मय, उत्तम बाठणी और सीधु का तथा पीशायन-एक प्रकार की महिरा, तथा अठारह प्रकार क शाक वालं घेने अनेक प्रकार के (मणुभ-बभ-गंध-रस-फास-बहुदृश्य-संमितेसु भोयएसु) मनोह्य पर्य मन्ध, रस और स्पर्श मुक्त अनेक द्रव्यों से बने हुए भोजनों में (अन्नेसु य एवमादिषु रसेसु मणुभ मदसु) और इस प्रकार के अन्य उसे मनोह्य सुन्दर रसों में (नतसु समभेय्य सन्धियस्य) इन शुभ रसों में साधु को आसक्ति नहीं करनी चाहिए (जाव न सईच मईच तस्य कुञ्जा) यावत् स्मृति व बुद्धि भी जैसे भाजन में नहीं करना (पुणरपि) फिर भी विद्या इन्द्रिय के निषय को कहते हैं- (जिष्मिदिष्य सायिय रसाति अमणुभ-पावगाई) विद्वेन्द्रिय से अम मोक्ष व मुरे रसों का आस्वाद करक (किते ?) व अणुभ कौन से ?

उत्तर-(अरस-विरस-सिय-तुवक्ष-खिञ्जप-पाण भोयगाई) रस से रहित-हिंग आवि स असस्कृत-विरस पुगना हाने स विरस, शीत ठंडे, लूले और नियरि करन में असमय पान भोजन को (वासीण-या प्र बुहिय-भूय अमणुभ दिण्ड पस्य वहु बुभिमगंधियाई) रात के वासी, व्यापन-रग बरक्ष हुए, सबे हुए तथा अपवित्र हान से जो अमनोह्य व अत्यन्त विद्वत वरा को प्राप्त हैं, अथवा उनसे उत्पन्न बहुत दुर्गन्ध वाले हैं (विच-कडुय-कसाय-अपिल रस, विञ्जनीरसाई) टीठा, कटु-कडुभा, कपायला लट्टा, सिन्द्र-शेबाल रहित पुराने जल की तरह और नीरस पदार्थों को (अन्नेसु य एवमादिषु रसेसु अमणुभ-पावसु) और इस प्रकार क अन्य उसे अणुभ रसों में (न तेसु समणय्य सन्धियस्य) इन अणुभ रसों में साधु को रुच नहीं होता चाहिए (जाव परेव चम्म) यावत् इन्द्रियों से मुक्त होकर धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ४ ॥

मूल-' पंचमगं-फार्मिदिष्य फासिय फासाइ मणुभमदफाई, किते?- दग-मंडय-हार-सप चंदय-सीपल-धिमलजल-विचिह कुसुम-सत्यर-ओसीर-मुचितय-धुणाल-दोसिणा-पेहय-उक्तेदग-सासिपंट- वीयखग-वलिपगुह-मीपसे य पपसे, गिम्हफाले सुइफासागि य बहुचि सपयाधि

आसणाणि य पाउरणगुणेषु सिसिर काले अंगार-पतावणा य आयव-
निद्र-मउय-सीय-उसिण-लहुया यजे उदु सुहफासा, अंगसुह निव्युहकरा
ते, अन्नेसु य एवमादितेसु फासेसु मणुन्न भइएसु न-तेसु समणेण सज्जियव्वं,
न रज्जियव्वं, न गिज्झियव्वं, न मुज्झियव्वं, न विण्णियव्वं आवज्जियव्वं,
न लुभियव्वं, न, अज्झोव वज्जियव्वं, न तूसियव्वं, न हसियव्वं, न सत्तिच
मत्तिच तत्थकुज्जा । पुणरवि-फासिदिण्य फासिय फासार्ति अमणुन्न पाव
काडं, किंते?-अणेगवध-बंध-तालणंकण-अतिभारारोवणए, अंग भंजण-
सूहेनख-प्पवेस-गायपच्छणण- लक्खारस-खार-तेल्ल- कलकलांत-तउअ-
सीसक-काललोह-सिंचण-हडिबंधण-रज्जुनिगल-संकल-हत्थंडुय-कुंभि
पाक-दहण-सीहपुच्छण-उव्वंधण-सुलभेय-गयचलण-मलण- करचरण-
कन्न-नासोड्ड-सीसछेयण-जिब्भंच्छण-वसण-नयण-हियय-दंत- भंजण-
जोत्त-लय-कसप्पहार-पाद-परिह-जाणु-पत्थरनिवाय- पीलण- कवि-
कञ्चु-अगणि-विच्छुयडक-वायातव-दंस-मसक निवाते, दृढुणिसेज्जदुनि
सीहिय-दुब्भि-कक्खड-गुरु-सीय-उसिण-लुक्खेसु, बहुविहेसु अन्नेसु य एव-
माइएसु फासेसु अमणुन्न पावकेसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, न हीलियव्वं,
न निदियव्वं, न गरहियव्वं, न खिसियव्वं, न खिदियव्वं, न भिदियव्वं, न
वहेयव्वं, न दुंगुंछावचियं च लब्भा. उप्पाएउं । एवं फासिदिय भावणा
भावितो भवति अतरप्पा मणुन्नामणुन्न-सुब्भि-दुब्भि-राग-दोस-पणिहियप्पा
साहू, मण-वयण-कायगुत्ते संबुडे पणिहित्तिदिए चरिज्ज धम्मं ॥ ५ ॥

एवमियं संवरस्त दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहि
पंचहि वि. कारणेहि मण-वय-काय-परिकिख एहि निच्चं आमरणंतं च एस्स.
जोगो नेयव्वो, धितिमया मतिमया अणासन्नो अकलुसो अच्छिदो अपरिस्सावी
असंक्रिलिद्धो सुद्धो सव्व-जिणमणुन्नातो । एवं पंचमं संवरदारं फासियं

स्वामनोद्भाऽमनोद्भ-सुरभि-दुरभि रागद्वेष-प्रणिहित्वात्मा साधुर्मनोवचन-कायगुप्तः
 संवृत. प्रणिहितश्चरेद्धर्मम् । एषमिदं संवरस्य द्वारं सम्पद् संवृतं भवति सुप्रणिहित-
 म् । एभिः पञ्चभिरपिकारणैर्मनो-वचन-काय परिरक्षितै र्निर्त्यमामरणान्तं चैष
 योगो नेतव्यो, धृतिमता मतिमताऽनासन्नवोऽकलुपोऽच्छिद्रोऽपरिस्त्रावी असकिलष्टः
 शुद्धः सर्वजिनैरनुज्ञातः । एवं पञ्चमं संवरद्वारं स्पष्टं, पालितं, शोधितं, तीर्णं कीर्तितं
 मनुपालितमाज्ञयाऽऽराधितं, भवति । एवं ज्ञाते मुनिना भगवता प्रज्ञप्तं प्ररूपितं
 प्रसिद्धं सिद्धं सिद्धवर शासनमिदमाज्ञप्तं, सुदेशितं, प्रशस्तं, पञ्चमं द्वारं समाप्तमित्यहं
 ब्रवीमि । एतानि व्रतानि पञ्चापि सुव्रत-महाव्रतानि हेतुशत-विचित्र-पुष्कलानि
 कथितानि अर्हच्छासने पञ्चसमासेन संवराः, विस्तरेणु पञ्चविंशत् समित-सहित-
 संवृतः, सदा यतना-घटना-सुविशुद्ध-दर्शनः, एतेनाऽनुचर्यः संयतश्चरमशरीरघरो
 भविष्यतीति । सू० १ । २६

अन्व०—“(पंचमगं) पांचवी भावना-स्पर्श-इन्द्रिय-संवररूप-(फासिदिएण
 फासिय फासाइं मणुन्नभइकाइं) स्पर्श इन्द्रिय से मनोद्भ व सुन्दर स्पर्शों को छूकर,
 (किते ?) वे मनोद्भ स्पर्श कौनसे हैं ?

उत्तर—(दगमडव-हार-सेयचंदण-सीयल-विमलजल-धिविह कुसुम-सत्थर-ओ
 सीर-मुत्तिय-मुणाल-दोसिणा-पेहुण-उक्खेवग-तालियंट- विदणग-जणियसुहसीय
 लेय पवणे) उदक मडप-जलमडप, करने वाले मण्डप, उदकहार, श्वेतचन्दन-श्री
 खण्ड, शीतल और निर्मल पानी, अनेक प्रकार के फूलों के विस्तर, ओशीर-धीरण
 का मूल, मोती, पद्मनाल, चन्द्र की चादनी, मोर पिच्छी का उत्क्षेप, तल्लग्न-पंखा
 और बीजना, इनसे की गई सुखकारी और शीतल हवा को (गिम्ह काले) ग्रीष्म
 कालमें (सुहफासाणि य बहूणि सयणाणि आसणाणिय) तथा सुख दायक स्पर्श
 वाले बहुत से शयन-शय्या और आसनों को फिर (पाउरण-गुणे य सिसिरकाले)
 प्रावरण गुण वाले वस्त्रादि को शीतकाल में (अगार-पतावणा य) और अग्नि से
 देह को तपाना (आयव-निद्ध-मउय-सीय-उसिण-लहुया य) धूप, स्निग्ध-तेल
 आदि पदार्थ, कोमल और ठंडे, गर्म तथा हल्के (जे उदुसुहफासा) जो ऋतु के
 अनुकूल सुखस्पर्श (अगसुह-निव्वुइकरा) शरीर सुख और मनको स्वस्थ करने
 वाले हैं (ते) वे स्पर्श (अन्नेसु य एषमादितेसु फासेसु मणुन्न भइएसु) और इस
 प्रकार के अन्य ऐसे मनोद्भ व शुभ स्पर्शों में (न तेसु समणेण सज्जियठ्वं) उन शुभ

स्पर्शों में साधु को आसक्ति नहीं करनी चाहिए, (न रुचियर्ष्यं) राग नहीं करना चाहिए (न निगिम्हयर्ष्य) गृद्धि-अप्राप्त की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए, (न मुग्धियर्ष्यं) न वे मान होकर मोह करना चाहिए, (न भियिग्भाव्यं आयन्निग्रयर्ष्यं) न स्व पर का नारा ही करना चाहिए (न लुभियर्ष्यं) न लोभ करना चाहिए (न अम्भोय पञ्चियर्ष्यं) तरजीब बिना जाता नहीं होना चाहिए (न तूषियर्ष्यं) न स्वमें सन्तुष्ट होना चाहिए (न हसियर्ष्यं) न हसना चाहिए (न सति ष मति ष तत्वकुञ्जा) स्मृति और वहाँ-उस विषयमें-विचार भी नहीं करना चाहिए (पुणरवि) फिर भी स्वर्गेन्द्रिय के विषय को कहते हैं—(फासिदिपय फासिय फासति अमणुज पावकार्य) स्वर्ग इन्द्रिय से अमनोह व अरुम स्वर्शों को बूझ (किते ?) वे अरुम स्वर्श कौनसे ?

ब्रह्मर—(अयग-वप-वध-ताक्यं क्य-अठिमारावेषण) अनक प्रकार का वध-नारा, डोरी आदि का बन्धन साहन-वपेटा आदि का प्रहार देना, अहून-उपी हुई राजाका आदि से निरान करना, और अथिक भार साहना (अगर्भजन-सूती-नस-त्वेष गाय पञ्चरुय-सकवारस-कार-तेक-कलकलंत-टप्य-सीसक-कार कोह-विषय-इडिर्षयण-रञ्जु निगळ-संकळ-इत्थुंजु य-कुमिपाक-इहय-सीह पुञ्जण-डर्षयण-सूठमे-गय अलय-मलय-कर-वरय कस-नासोट्ट-सीस वेवय विधर्मदय-वसण-नयय हिय-ईत मंडय-ओत्त-लय-कसप्पहार-पाह परिह-खाणु-परवर-निवाय-पीलण-कवि कच्छु-अगणि-विष्णुय डक-वायातव-ईस मसग-निवाते) अग ठोकना शरीर में सुई या फल भोकना मात्र का मचयन बाने हीन होना, काल का रस चार रस तथा अस्मत् अपने के कारय कल कल करते हुए सीसा या काले कोह से रह को सीधना पान ठपे हुए ताकाररा आदि शरीर पर डालना, काष्ठ के कोड़े में बांधना डोरी के निगड़ बन्धनों स समटना और इस्थान्दुक से बांधना, कुम्भि में पकाना अग्नि से अठाना, पूङ्ग ठोकना, बांधकर ऊपर से लटकाना झूल से पिरोना हाथी के पैर नीचे डवाना, अथवा मठना, हाम, पैर, काम, नाक, ओष्ठ और शिर में ब्रेह करना, जिह्वा को लीच कर निकालना, अरुह कोरा, नेत्र इहय और दाँत या आँत को मोड़ना, पा ठोकना गाड़ीमें सूएसे जोड़ना, बेंत या चाबुक का प्रहार करना, पादपर्यि-पैर की पड़ी, घुटना तथा पत्थर को अङ्ग पर गिराना, पीडन-पत्र में पीडना, कपिकण्ठ-वन्दर जैसे अरुमठ सूत्रली होना,

या खुजली करने वाले फल का छूना, और अग्नि आदि का स्पर्श, त्रिच्छू का डंक और वायु, धूप तथा डास मच्छरों का अङ्ग पर गिरना (दुष्ट-शिरुज्ज-रुनिसी हिय-दुद्धिभ-कम्बुद-गुरु-सीय एसिण-लुक्खेसु) दुष्ट निपद्या-दुरे आसन और अयोग्य स्वाव्यायभूमिमे तथा अशुभ गन्ध युक्त, कर्कश गुरु भारी और ठड़े, घण व रुष्ट (बहु बिहेसु) बहुत प्रकार के स्पर्शों में (अन्नेसुय एव माइएसु फाभेसु अमणुज्ज-पावकेसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अमनोज्ञ स्पर्शों में (न तेसु समरणेण रुसियव्व) उन अशुभ स्पर्शों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए न हीलियव्वं न निदियव्वं न गरुहियव्वं) न हीलना करनी चाहिए, न निन्दा करनी चाहिए, तथा न लोक समज्ञ गर्हा करनी चाहिए, (न खिसियव्वं, न छिदियव्वं, न भिदियव्वं, न वहेयव्वं) खिसना नहीं करना चाहिए, अशुभ स्पर्श वाले द्रव्य का छेदन नहीं करना चाहिए, न उसका भेदन-दो भाग ही करना चाहिए, स्व पर का इनन नहीं करना चाहिए (न दुगुंछावत्तिं च लब्भा उप्पाएउं) और स्व पर की घृणा वृत्ति भी उत्पन्न करना योग्य नहीं है (एष फासिदिय भावणा भावितो) इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय सवर की भावना से युक्त (अंतरप्पा) अन्त करण वाला (मणुत्तामणुज्ज-सुठिभ-दुद्धिभ-राग दोस-पणि हियप्पा) मनोज्ञ व अमनोज्ञ-गन्धयुक्त, अच्छे या बुरे स्पर्शों से राग द्वेष का सतरण करने वाला (साहू साधु मण-वयण-कायसुत्तो) मन वचन एव काय से गुप्त (भवति) होता है। (सजुडे पणिहिदिये) सवर युक्त सयतेन्द्रिय मुनि (चरिज्जधम्मं) धर्म का आचरण करे ॥ ५ ॥

(एवमिण सवरस्स दारं सम्म संवरियं सुप्पणिहिय होइ) इस प्रकार यह सवर का पंचमद्वार सम्यक् सवरण किया गया सुरक्षित होता है (इमेहिं पंचहि विकार-रोहिं मण-वय-काय-परिक्खिण्हिं) मन वचन और काय के द्वारा सुरक्षित इन पांचों कारणों से (निच्च आमरणंतं) सदा और मरण पर्यन्त (एसजोगो) यह प्रवृत्ति (धितिमया मतिमया) धृतिमान् और बुद्धिमान् को (नेयव्वो) ले चलना योग्य है याने पालने योग्य है (अणासवो अकलुभो अचिद्धो अपस्सावी असकिलिट्ठो सुद्धो सव्वज्जिण मणुत्तातो) आसन्न रहित, निर्मल, मिथ्यात्व आदि छिद्र रहित, अत-एव अपरिस्नावी, सक्लेश रहित, शुद्ध तथा सर्व तीर्थङ्करोंसे अनुज्ञात है (एवं पंचम) इस प्रकार पांचवा (सवरद्वारं) संवरद्वार (फासियं, पालियं, सोहियं, तीरियं, दिट्ठियं, अणुपालियं, आणाए आराहियं भवति) शरीर से स्पर्श किया हुआ, पालन किया

दुःखा, अविचार इत्याकर शुद्ध चिन्ता दुःखा, पूर्ण किया दुःखा, यथन से कीर्तन किया दुःखा, अनुपालित और हीर्षकृतों की आशा के अनुसार धाराधित होता है (एवं नाप-मुग्धिता भगवत्या पन्नविष्यं) इस प्रकार-पूर्वोक्त रीति से ज्ञात मुनि भगवान् महावीर ने कहा है (पश्यविष्यं) प्रस्यण-भुक्ति स समझाया है (पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धपर सास्यमिच्छं) प्रसिद्ध, सिद्ध और अर्हत रूप भवस्य सिद्धों का उत्तम शासन यह (आपविष्यं) कहा गया है (सुसिद्धं) हीर्षकृतों से अच्छी तरह उपदिष्ट और (पस्यं पञ्चम संवरहारं समत्तं, विबन्धि) प्रशस्त है सुधर्माचार्य-पञ्चम संवरधार पूर्ण दुःखा जेसा मैं करता हूँ ॥

उपसंहार—(पञ्चाति वयाई पञ्चविंशति) पापों संवर रूप व्रत (सुकृत्यं महेतव्यं) हे सुव्रत ! महा व्रत हैं (हेतु सय-विधित्त-पुण्यकार्यं) निर्दोष या विधित्त सौकर्यों हेतुओं से विस्तीर्ण (अरिहत सास्यं) अर्हत्त्वों के शासन में (कहियाई) बड़े गम्य हैं (पञ्च समासेण संवरा) रूप से पांच संवर हैं । (विस्वरेण्यं) विस्तार से तो (पयवीसति) प्रत्येक व्रत की भावनाओं को मिश्राकर पचीस होते हैं, (समिय-सहिय-समुद्धे) समिधियों से समित, पूर्वोक्त पचीस भावनाओं से सहित या ज्ञान धरान से पुक्त और सुविहित कपाय आदि के संवर वाला, जो (सवा जयण-पडण-सुविदुद्धसख) सदा प्राप्त संयम योग में बल और अप्राप्त में प्रयत्न रूप घटना से अच्छी तरह निर्मल भद्रा वाला है (पय अणुचरिय-सद्यत चरम सरीर धरे भविरसतीति) इन पांच संवरों का आचरण करके वह साधु चरम शरीरी होगा अर्थात् संसार में फिर से शरीर धारण नहीं करेगा ॥ १२३ ॥

भाव- परिच्छ विरमण्य व्रत की रक्षा के लिये भगवान् महावीर ने यह उत्तम प्रवचन कहा है, जो आत्महितकारी पापान् सत्र दुःखा और पापों का उपशमन करने वाला है । इस अपरिमहरूप अन्तिम व्रत की रक्षा के लिये ये पांच भावनायें हाती हैं, जैसे-

प्रथम भावना बोधेन्द्रिय संवररूप जिसमें कहा गया है कि प्रपान मुख्य आदि वाय और मधुगीत को तथा मठ आदि के क्षेत्र प्रयोगों को एवं शिवों के मन्त्रीर मेयता आदि के मधुर ध्वनि को अचरण से सुनकर इनमें व इस प्रकार के अन्य इष्ट वाप्यों में साधुको आसक्त नहीं होना चाहिये । राग, शृद्धि, मूर्च्छा और इसके लिये स्वपर का प्राण नहीं करना चाहिये । इनमें आम, मानसिक सुशी तथा हास्य भी

नहीं करना, और न मनसे उसका स्मरण और विचार ही करना चाहिये। ऐसे अप्रिय शब्दों को सुनकर द्वेष नहीं करे, जैसे गाली व रोने आदि के शब्द जो द्वेष व कष्टजनक हैं, ऐसे अन्य भी अमनोज्ञ-बुरे शब्दों में साधु को रोष नहीं करना चाहिए, और न उन शब्दों की हीलना, निन्दा व खिसना करनी चाहिए। छेदन, भेदन व वधभी नहीं करे और उन शब्दों के ऊपर स्व पर की घृणा भी, उत्पन्न नहीं करे। इस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय सबरयुक्त अन्तःकरण वाला अच्छे बुरे शब्दों में राग द्वेष रहित तीनों गुणियों से गुप्त होता है। संवरवान्, जितेन्द्रिय मुनि इस प्रकार अपरिग्रह धर्मका आचरण करे।

दूसरी भावनामें-चक्षु-इन्द्रियसे सुन्दर सचित्त अचित्त और मिश्र इन तीनों रूपों को देखकर राग नहीं करना चाहिए। जो रूप काष्ठपर, वस्त्रपर तथा लेप्यकर्म या पत्थर व दांत की कोरणा में बनाये गए हैं, तथा पाच रंग से अनेक प्रकार के आकारमें बने हुए और गाठ देकर तथा चिपडी आदि भरकर बनाए गए, अनेक प्रकार के माल्य और नेत्र व मनको प्रसन्न करने वाले हैं। वनखण्ड, पर्वत और ग्राम आदि अनेक स्थानों को जो जल एव वनस्पति के लता मण्डप आदि से सुशोभित तथा पक्षी समूह से सुसेवित हैं। ऐसे उत्तम प्रासाद आदि भव्य भवन और शयन, आसन और वाहन आदि को, तथा प्राप्त संचित तपस्या से सौभाग्यशाली स्त्री पुरुषों को तथा नट आदि के विविध खेल व प्रयोगों को और इस प्रकार के अन्य सुन्दर रूपों को देखकर मुनि को उनमें आसक्त नहीं होना चाहिए। यावत् मनमें भी उस विषय का विचार नहीं रखना चाहिए। शुभ रूपों की तरह अशुभ रूपों को देखकर द्वेष भी नहीं करना चाहिए। जैसे गलगण्ड आदि अनेक रोगग्रस्त को व मरे हुए क्लेवरोको जो सड़ गया हो, जिसमें कीड़े पड़े हों ऐसे पदार्थों को देखकर मुनि को रोष नहीं करना चाहिए। यावत् दूसरी भावनासे युक्त होकर धर्मका आचरण करना चाहिए।

तीसरी भावनामें-नाकसे सुगन्धित पदार्थों को सूँघकर हर्ष नहीं करना चाहिए। जैसे-जल-एव थलके अनेक प्रकार के फूल, जिनके परिमल हवासे दूर दूर तक फैल रहे हैं, ऐसे अन्य सुरभि वाले पदार्थों में भी मुनिको आसक्त नहीं होना चाहिए। यावत् उस विषय में विचार भी नहीं करना चाहिए। ऐसे सर्प आदि इग्यारह क्लेवर जो सड़े हुए व अत्यन्त दुर्गन्ध वाले हैं। वैसी दुर्गन्ध को सूँघकर उनमें मुनि को द्वेष भी नहीं करना चाहिए, यावत् धर्मका आचरण करना चाहिए।

पौडी भावनामें-रसनेन्द्रिय से अनेक रसों को बलकर राग होव नहीं करना चाहिए। जैसे पी आदि में जुवाकर बनाये गए विविध पान मात्रा तथा मजुर अनेक भक्षण पदार्थ जो लवण आदि रसों से संयुक्त हैं इस प्रकार अन्धे वर्णरस गन्ध व स्वरा वाले द्रव्यों से बने हुए भोजन में एवं अन्य सुन्दर रसों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए, और मनमें विचार भी नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार नीरस, रुद्ध तथा विकृत धरा को प्राप्त ऐसे अन्य अशुभ पान भोजनों में साधु को रोष भी नहीं करना चाहिये, वास्तु धर्म का आचरण करना चाहिये।

पाँचवी भावना में-स्वरा इन्द्रियों से विविध स्वराओं को सूत्र मुनि हर्ष नहीं करे। जैसे-मीम काष्ठ में फुरारे के मण्डप आदि से शीतल व सुलक्षणी वायु को तथा सुलक्षणी स्वरा वाले शान आसन आदि को पाकर तथा शीत काष्ठ में दुराले आदि प्रावरण सोगड़ी का सेक, तथा सूर्य किरण के ताप आदि। वेने धिक्ने व क्रोमज शत्रु के अनुकूल सुलक्षणी जो शरीर व मन को प्रसन्न करने वाले हैं, इन शब्द स्वराओं में साधु आसक्ति नहीं करे, वास्तु धर्मका विचार भी नहीं करे। फिर विरोधी स्वराओं को सूत्र मुनि रोष भी नहीं करे, वे विरोधी स्वरा इस प्रकार हैं-अनेक प्रकार के वष, बन्दन लाइन व अतिमार और अहों का मङ्ग, सुई मोकना आदि, तथा अपोग्य आसन वगैरह के स्वरा होने वाले पठीपदों में साधु को रुद्ध नहीं होना चाहिए, वास्तु किसी के मन में उनके लिये घृणा भी उत्पन्न नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार स्वरोन्द्रिय संवर की भावना से युक्त अन्तःकरण बाला अन्ध सुदे स्वराओं में राग होव रुद्धित व गुण होता है। इस प्रकार संयतन्द्रिय मुनि को अनुकूल प्रतिकूल स्वरा मात्र में समभाव रखने हुए धर्म का आचरण करना चाहिए ॥ ५ ॥

इस गच्छ संवर का बह पद्यमशर सम्बन्ध संवर्ण किया हुआ सुवर्णित हाता। इन पाँच भावनाओं के साथ हीनों योग से धीर मेरावी साधु को यह प्रवृत्ति तथा जीवन पर्यन्त रखनी चाहिए। क्योंकि यह संवर धर्म धर्मके कारणों का रोझने वाला एवं गह लाभद्वों में अनुमान है। विधि पूरक यह पद्यम संवरद्वार देह में करता गया गहन अनुकूल रूप से पावन किया गया लोचद्वों की आत्मा से आराधित हाता है। येना साधु मुनि महातीर ने कहा व देव दूत व गम हावा है। यह प्रमित्त गिद्ध आदि विगहन पद्य अपरिमह समाप्त हाता है। प्रथम संवर ॥ ५ ॥

निगमन-हे सुव्रत ? ये पांचों महाव्रत निर्गोप या विचित्र सैकड़ों हेतुओं से विस्तार वाले अर्हत्-शासन में बड़े गये हैं। संक्षेप से संवर पांच और विस्तार से भावनाओं को मिलाकर पचीस होते हैं। भावना रूप समिति वाला और ज्ञान दर्शन सहित जो सवरवान् मुनि सदा प्राप्त संयम योग में यतना और अप्राप्त में घटना करने से विशुद्ध श्रद्धा वाला है, वह इन पांच संवरों का पालन करके इस देह से समार घन्धन का छेदन कर मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ २६ ॥

मूल-“पण्ड्यावागरणे णं एगो सुयक्खंघो, दस अज्जयणा, एकसरगा, दमसु चेव दिवसेसु उदिसिज्जंति, एगंतरेसु आयंविलेसु निरुद्धेसु, आउत्तभत्त पाणण्यं । अंगं जहा आयारस्स । सू० १ । ३० ॥

पण्ड्यावागरणं दसतं अंगं सुत्तओ समत्तम् । ग्रन्थमानं १३००

छाया-प्रभवाकरणे एक. श्रुतस्कन्धो, दशाऽध्ययनानि, -एकसरकाणि, दशसुचैव दिवसेषु-उद्दिश्यन्ते, -एकान्तरेषु-आयविलेषु निरुद्धेषु आयुक्तानभोजनेनाऽऽङ्गं यथाऽऽचारस्य । सू० १ । ३०।

॥ इति प्रभवाकरणाऽऽख्यं दशमाङ्गं छायातः समाप्तम् ॥

सूत्र परिचय और वाचना विधि-

ग्रन्थ- (पण्ड्यावागरणे) प्रश्न व्याकरण नामक सूत्रमें एगो सुयक्खंघो) एक श्रुत स्कन्ध (दस अज्जयणा) दश अध्ययन (एक सरगा) समान शैली वाले हैं (दस सु चेव दिवसेसु) और दश ही दिनों में (एगंतरेसु आयंविलेसु निरुद्धेषु) एकान्तर आयंविलयुक्त दिनों में (आउत्त-भत्त-पाणण्यं) उपयुक्त आहार पानी वाले साधु से (उदिसिज्जंति) इसके उद्देश किये जाते हैं । (अंगं जहा आयारस्स) अङ्ग जैसे आचाराङ्ग का वर्णन है, विशेष वैसा समझना चाहिये ॥ सू० १ । ३० ॥

इति प्रश्न व्याकरणाख्य दशमाङ्गं समाप्तम् । ग्रन्थामं १३०० ।

भाव-अन्त में सूत्र का परिचय और वाचन की विधि कही गई है। प्रथम व्याकरण सूत्रके एक ही द्रुतस्कन्ध तथा एकसरके द्वारा अध्ययन हैं। इसकी वाचना सन वासु साधु की एकान्तर आध्यात्मिक युक्त तपस्या सं द्वारा दिनों में वाचना को पूर्ण करना चाहिए। आचारार्य जैसे शेष ऋषि का वर्णन समझना चाहिए ॥ १ ॥ ३८ ॥

इति श्री प्रथम व्याकरण सूत्रस्य भाषा व्याख्या समाप्ता ।

—प्रत्यान्त मङ्गलरूपा टीकाकारोक्तिः—

प्रथम व्याकरणमिषानमनघं सूत्रं गमीरार्थकं
 भद्रेयाऽऽर्तु-विद्यपुङ्गवगवी ह्यङ्गनीनोपमम् ।
 मक्तपाऽर्त्तु मति शक्ति युक्ति निवहाद्रिक्तोऽप्यर्थाप्यभ्रमं
 सन्त्वस्मात्परमेष्ठिनो मयि सदा पञ्चानुकम्पाश्रिता ।

⊗ समाप्तं पंचमं संतरदात्म् ⊗

⊗ ग्रन्थार्थं मान्वाथार्थं पात्रार्थम् ⊗

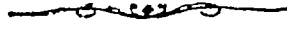


श्री प्रश्नव्याकरणसूत्रस्य

परिशिष्टम्

विशिष्टपद, टिप्पणानि

प्रश्न व्याकरण सूत्रगत पारिभाषिक शब्दानां विशेषनाम्नां च सूची



अ

शब्द		अर्थ
अकारको	- -	अकर्ता
अकिरिया	- -	अक्रिया
अकिच्च	- -	हिंसा का श्वां नाम
अगर	- -	सुगन्धित द्रव्य विशेष
अगम्भ गामी	- -	ताडकी वहन आदि मे गमन करने वाला
अगार	- -	घर
अगुत्ती	- -	अगुप्ति-परिग्रह का रक्षवा भेद
अचक्खुसे	- -	आंख से नहीं दिखने वाले
अच्छभल्ल	- -	रिच्छ-भालू
अज्झप्पज्झाण	- -	अध्यात्मध्यान
अंजणक सेल	- -	अजनक पर्वत
अट्टालग	- -	अट्टालिका
अट्ट	- -	आर्त
अट्ट विह	- -	आठ प्रकार
अट्टालग	- -	अटारी
अट्टि	- -	हड्डी
अंडज	- -	अण्डे से पैदा होने वाले
अणबल	- -	कर्जदार
अणत्थको	- -	अन्तर्य करने वाला परिग्रह का रक्षवा भेद
अणत्थो	- -	” ” ” ”
अणज्जा	- -	अचार्य

शब्द	अर्थ
आयतण - -	आयतन-अहिंसा के ४७वां नाम
आयासो - -	खेद का कारण, परिग्रह का २४वां नाम
आयाण भंड निक्खेवणा समिते-आदान भाड मात्र निचेपना समिति थाला	
आउय कम्मस्सुवह्वो	हिंसा का १२वां नाम
आरव - -	अरब देश
आराम - -	बगीचा
आवण - -	दुकान
आवत्त - -	एक खुर थाला जीव
आवसह - -	परिव्राजको का आश्रम
आसम - -	आश्रम
आसत्ती - -	आसक्ति
आसालिया - -	जीव विशेष

इ

इक्कहं - -	इक्क जाति का घास
इक्खुगार - -	इषुकार पर्वत
इट्टकाउ - -	ईंटे
इट्ठिठ - -	अट्ठि
इंद केतु - -	इन्द्र केतु
इंदिय - -	इन्द्रियां

ई

ईरियासमिते - -	ईर्या समिति मे युक्त
----------------	----------------------

उ

उखल - -	ऊखल
उच्छु - -	इच्छु-सांठा
उट्ट - -	ऊट
उट्टपत्ती - -	चन्द्रमा

शब्द	क	अर्थ
फफोल	- -	फल विशेष,
कखुर	- -	उस्तरा-केश काटने का अस्त्र
ककच	- -	करवल-लकड़ी चीरने का अस्त्र
कच्छभ	- -	कछुआ
कच्छभि	- -	घाघ-वाजा विशेष
कच्छुल्ल	- -	खुजली के रोग वाला
कठिणगं	- -	कठिण तृण विशेष
कडुय	- -	कडुआ
कडग मद्दणं	- -	कटक मर्दन-हिंसा का १५वां नाम
कणग	- -	सोना
कणग नियल	- -	सोने का बना गहना विशेष
कणक	- -	एक प्रकार का घाण
कण्ण	- -	कान
कन्दु	- -	लोही भुंजने का एक पात्र
कन्नालियं	- -	कन्या के सम्बन्धी भूठ
कप्पणि	- -	कैची
कपिजलक	- -	कपिजल पत्ती
कप्पूर	- -	कपूर
कमल	- -	कमल
कमडलु	- -	कुण्डी, कमण्डलु
कम्म	- -	रसायन शाला
करक	- -	करक पत्ती
करणाणि	- -	इन्द्रिया
करभ	- -	ऊंट
करयल	- -	करतल
करयथ	- -	करघत

शब्द		अर्थ
उत्पाय	- -	उत्पात पर्वत
उद्	- -	उद्देश
उद्दि	- -	उद्देश
उद्दृष्टा	- -	हिंसा का ६वां नाम
उद्देश	- -	उद्देश
उद्दिष्ट	- -	भूमि को फोड़कर उत्पन्न होने वाला जीव
उद्दिष्ट	- -	उद्दिष्ट-भाषने का एक प्रकार
उद्दिष्ट	- -	उद्दिष्टता-हिंसा का २ रा नाम
उद्दिष्ट	- -	पेट के बल से चलने वाला सर्प विशेष
उद्दिष्ट	- -	उद्दिष्ट करने वाला उद्दिष्ट
उद्दिष्ट	- -	उद्दिष्टनमस्कार
उद्दिष्ट	- -	उद्दिष्ट, परिग्रह का अतुल्य नाम
उद्दिष्ट	- -	एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने वाले जीव
उद्दिष्ट	- -	उद्दिष्टक
उद्दिष्ट	- -	उद्दिष्ट
उद्दिष्ट	- -	उद्दिष्ट-भाव की उत्पत्ति अर्थात् हिंसा का ४२वां नाम
उद्दिष्ट	- -	उद्दिष्ट-सुगन्धित द्रव्य
उद्दिष्ट	- -	उद्दिष्ट
		ए
उद्दिष्ट	- -	काया
उद्दिष्ट	- -	एक इन्द्रिय वाला जीव
उद्दिष्ट	- -	सूग पकवान के लिये हिरणी लेकर फिरने वाला
उद्दिष्ट	- -	इलायची का रस
उद्दिष्ट समिते	- -	उद्दिष्ट समिति पुस्तक
		ओ
उद्दिष्ट	- -	बाबल-भात,
उद्दिष्ट	- -	ओपप,

शब्द		अर्थ
कीच	-	कीच, पत्ती
कुक्कड	-	मुर्गा
कुकूलाऽनल	-	कोयले की आग
कुज	-	कूघड
कुडित	-	कुटिल-टेढा
कुणी	-	कर से हीन
कुद्धा	-	क्रोधी
कुम्भास	-	उड्ड
कुरर	-	कुर पत्ती
कुरग	-	हिरण
कुलल	-	कुलल पत्ती
कुलक्ख	-	कुलत्त पत्ती की एक जाति
कुलिंगी	-	कुलीथी
कुलिय	-	खुला
कुली कोस	-	कुटी क्रोश पत्ती
कुवित साला	-	तृण आदि रखने का घर
कुस	-	कुश-तृण विशेष
कुसधयण	-	कमजोर, अस्थिर
कुस्तिया	-	खराब आकार वाले
कुहण	-	कुहण देश
कूर्च	-	कूची बनाने का तृण
कूडमाणी	-	भूठा माप करने वाले
कूरकम्मा	-	कूर कर्म करने वाले
कूव	-	कूआ
केकय	-	केकय देश
केवल नाणी	-	केवल ज्ञानी
केवलीण ठाय	-	केवलियों का स्थान अहिंसा का ३६वां नाम
केसरिमुहविप्फारगा	-	सिंह का मह फाड़ने वाले

शब्द	अर्थ
कलाप	मुनार
कलिकरुद्र	कलाह की पत्नी, परिग्रह का १६वाँ नाम
कलाण	कल्याणकारी-अहिंसा का २६वाँ नाम
कलाप	गरुड का आभरण
कपट	कपट
कचह	क्षराम नगर
कवाड	कपाट केवाड
कविल	कविल पक्षी
कवोप	कमूतर
कम	कमल का पाशुप
कमाप	कपायसा
कहक	कमा करने वाला
काउरु	काकाउरु-एक प्रकार का माँप
काक	कौआ
काण्डा	काण
कादम्बक	हम विशेष
कायबर	उत्तम काय
कायगुप्ते	कायगुप्त
कारुण्य	कारुण्य पक्षी
कादम्बा	छापे-शिल्ली
काशोदधि	काशोदधि समुद्र
किन्तो	कीर्ति अहिंसा का ३ वाँ नाम
किन्नर	किन्नर देव का विशेष
किन्नरी	किन्नर देव की स्त्रियाँ
किमिष	कृमि-बाँधे
किरिका	प्रशांत कार्य
किरिकाण्ड	किरिका ग्याल

शब्द		अर्थ
		ख
खग	- -	पत्ती
खग्गा	- -	खड्ड-गेंडा
खग्गा	- -	खड्ड-तलवार
खचर	- -	आकाश में चलने वाले जीव
खर	- -	गया
खस	- -	खस देश
खाडहिल	- -	गिलहरी-टिलोडी
खातिय	- -	खाई
खासिय	- -	खासिक देश
खिल भूमि	- -	बिना जोती हुई भूमि
खील	- -	खीले
खुज्जा	- -	कूजडा
खुहिय	- -	तलाई
खुधो	- -	छुद्र
खुरो	- -	छुरा
खुल्लप	- -	खुल्लक कौड़ी का जीव
खेड	- -	खेडा-छोटा गाव
खडरक्ख	- -	चूंगी लेने वाला अथवा कोतवाल
खंड	- -	खाड-शक्कर
खती	- -	ज्ञान्ति अहिंसा का १३ वा नाम
खिखिणो	- -	पायल आभूषण विशेष
		ग
गंडि	- -	गड माला
गथ	- -	हाथी
गयकुल	- -	गज कुल
गय	- -	गदा अन्न विशेष

राष्ट्र		कोश
काश्मिर	- -	कोकिल
काकेशिय	- -	लोमड़ी
कोट्टागार	- -	कोठार
कोडिक	- -	कुष्ठ रोगी
कोणाल्प	- -	कोणाल्प पक्षी
कोराल	- -	कुदाली
कोरंग	- -	कोरंग पक्षी
कोल	- -	कोल गृहे के समान जीव
कोल सुणक	- -	बड़ा सुधर
कोसिकार कीडा	- -	रेराम के कीड़े,
कक	- -	कंक पक्षी
कचयक	- -	काञ्चनक पर्वत
कंचणा	- -	कंचना, एक नदी
कची	- -	काञ्ची-कन्धोत
कुंदिया	- -	कुंदी कमबडु,
कती	- -	कान्ति-बमक, अहिंसा का ६ ठा नाम
कंद मूलाइ	- -	कन्द मूल
कस	- -	कास्य कासी क पात्र
किमरा	- -	नोकर
कुंजुम	- -	कुंजुम
कुंध	- -	क्रीच पक्षी
कुंटा	- -	राराय हाथ पाला
कुंटाज	- -	कुंटाकाकार पर्वत
कुंत	- -	भाला अथ शिशोप
कोकण	- -	कोकण देरा,
कोत	- -	मासे
कोष	- -	क्रीच देरा

शब्द		अर्थ
गंध	- -	कपूर
गंध हारग	- -	गन्धहारक देश
घ		
घघ	- -	घी,
घायणा	- -	हिंसा क छट्टा भेद,
घीरोली	- -	घरमें रहने वाली गोह,
घटिथ	- -	घंटिका-घुंघुर्तु ।
च		
चडरंग	- -	चकोरपत्नी
चडरिद्रिण	- -	चार इन्द्रिय वाला जीव
चकवाग	- -	चक्रवाक
चक्र	- -	चक्र चक्रव्यूह
चक्रवट्टी	- -	चक्रवर्ती
चकखुसे	- -	चाजुप-आंख से देखने योग्य
चटुल	- -	चचल
चढ सालिय	- -	चन्द्रशाला, महल के ऊपर की शाला
चमर	- -	चमरी गाय
चम्म	- -	चमडा
चम्मट्टिल	- -	चमगादर
चम्म पात्र	- -	चर्म पात्र
चम्मेट्ट	- -	चमडे से मढा पत्थर
चय	- -	वस्तुओं की ढेडी परिग्रहो का शरा भेद
चरिया	- -	नगर और कोट के मध्य का मार्ग
चलण मालिय	- -	भूपण विशेष
चवल	- -	चपल
चाडुथार	- -	खुशामदी
चारणर	- -	चारणर मङ्ग

शब्द		कोश
गरुडबृह	- -	गरुड-बृह
गरुड	- -	गरुड पक्षी
गवय	- -	रोम नीली गौ
गवाक्षिप्त	- -	गाय सम्बन्धी झूठ
गबलाग	- -	चकरी
गागर	- -	पडा
गात्र	- -	गौ
गाङ्गा	- -	हिंसा का एक नाम
गाहा	- -	प्राह-जल अन्तु
गुप्ती	- -	गुप्ति
गुण्याय विराहयति	- -	गुणों की विराहना हिंसा का ३० वाँ नाम
गुरुतप्पञ्चो	- -	गुरु पत्नीगामी
गुल	- -	गुल
गोचर	- -	गोपुर-नगर का मुख्य द्वार
गोक्षय्य	- -	रोस्तुर वाता बीपाया जानवर
गोप्यञ्चो	- -	पूजनी
गौड	- -	गौड बेरा
गोण	- -	गाय बैल
गोयस	- -	बिना फण का साँप
गोष	- -	गाथा
गामड	- -	गाम का बन्नेवर
गोमिया	- -	गाम रखने वाला गवाक्षिप्त
गोहा	- -	गाथा
गोसीस सरस चरन	- -	गोशीर्ष नामका शीतल अन्तु
गंज	- -	एक प्रकारका धान्य
गंडूलप	- -	गिंडोला अन्तु
गणि भेत्त	- -	गण्ट काटन वाला

शब्द		अर्थ
छविच्छेत्रो	- -	हिंसा का २१वां नाम
छीरल	- -	बाहुओं से चलने वाला जीव
छुट्टिय	- -	आभरण विशेष
	ज	
जग	- -	यकृत-पेट के दाहिनी तरफ रहने वाली मांस ग्रन्थि
जगवय	- -	देश
जतनं	- -	यजन अभयदान अहिंसा का ४८ वां नाम
जन्नो	- -	यज्ञ, अहिंसा का ४६ वां नाम
जम पुरिस	- -	यम पुरुष
जमकवर	- -	यमकवर पर्वत
जराउय	- -	जरायुज जड के साथ उत्पन्न होने वाला
जरासिंध माण महणा	-	जरासन्ध राजा के मान को मथने वाला
जलयर	- -	जलचर
जलगए	- -	जल में रहने वाले कीड़े आदि
जलमए	- -	जल के जीव
जल्ल	- -	जल्लदेश या डोडी पर खेलने वाला
जलूय	- -	जलूका
जवण	- -	यवन लोग
जवा	- -	जौ-जव
जाण	- -	यान
जाण साला	- -	यान शाला, वाहन आदि रखने का घर
जातरूव	- -	सोना
जाल	- -	ज्वाला
जालक	- -	जालियां
जाहक	- -	काटे से ढका हुआ शरीर वाला जन्तु
जिणेहिं	- -	जिनेन्द्र देव
जीव निकाया	- -	जीव निकाय

शब्द	अर्थ
भारक	घन्वी खाना
भार	गुप्त वृत्त
भारिचमोह	भारिच को रोकने वाली माह कर्म की प्रकृति
भाव	धनुष
बास	भारा पक्षी
बिडिग	बिडी
बिच	बिचकूट पर्वत
बिचमभा	बिच समा
बिति	मिति आदि का बनाना
बिह्लाग	लीन
बिह्लास	बाधा या दो खुर बाधा पशु बिरोध
बीण	बीन देरा
बिजाप	बिलात देशभासी
बुझकोसग	बूर्ख कारा- भाय बिरोध
बूलिया	बूलिका
बेतिष	बैत्य
बल	बल
बोनय	बास आहिंसा का श्रद्धा भद्र
भारिचन्द्ररथ	भोरी क्रमा
भोलाग	पदच का प्रथम मुखन
भाल पट्टक	भोल पट्टा-साधु के पहनने का वस्त्र
भंगे ?	भूज भी बाली या बाघ बिरोध
भंडा	भ्यत
भवनरु	बीड़ी
भुंगुया	भुंगुक

६

भगत - - - - - बहर की एक शक्ति

शब्द		अर्थ	
एहसां	- -	सौभाग्य ज्ञान	--
एहाखणि	- -	स्नायु	
एिग्घणो	- -	धृणा रहित	--
एिस्सेणि	- -	निस्सरणी	--
एिस्ससो	- -	नृशंस कूर	
एोउर	- -	नेपुर	--
एांबर	- -	अम्बर कपडे	--
		त	--
तउय	- -	त्रपु	--
तक्करा	- -	चोर	--
तएहा	- -	तृष्णा परिग्रह का २७वां भेद	--
तत	- -	धीणा	
तप्पण	- -	सत्तू	
तय	- -	त्वघा	
तय ताल	- -	वाद्य विशेष	
तरच्छ	- -	जंगली पशु	
तलाग	- -	तालाब	
तव	- -	तप	
तस	- -	त्रस जीव	
तारा	- -	तारा	
तालयंट	- -	ताल पत्र के पंखे	
तित्त	- -	तीतारस	
तित्ती	- -	दमि अहिंसा का १०वां नाम	
तित्तिय	- -	तित्तिक देश	
तित्तिर	- -	तीतर पक्षी	
तिमि	- -	बडे मत्स्य	
तिमिगिल	- -	बहुत बडे मत्स्य	

शब्द		अर्थ
जुप	- -	पुग
बीबिपत करखो	- -	बिंसा का २२ वाँ नाम
बीवजीबक	- -	बकोर पक्षी
बूर्कुरा	- -	झुझारी
बोग संगदे	- -	बोग संमह
बोखी	- -	बोनि-बन्म स्थान
बत	- -	बन्त्र
बतुग	- -	पानी से पैदा होने वाला दुग विशेष
		भ
भस	- -	बल अशु
भाप	- -	भान
		ठ
ठिति	- -	स्थिति, अहिंसा का २०वाँ मंत्र
		ड
डध	- -	डाभ दुग विशेष
डोव	- -	डोब जाति
डोबिलाग	- -	डोबिलाग देश
		ड
डेयियालग	- -	डेयियालग पक्षी
डिक	- -	डंक पक्षी
		ण
खउक	- -	मकुल
खफक	- -	नक (मकार)
खग	- -	पर्वत
खगर	- -	मगर
णह	- -	महा

शब्द	अर्थ
दधिसुह	दधिसुख पर्वत
दसविहं	दश प्रकार का
दाढि	दाढ
दाण	दान
दामिणी	ढोडी
दार	दरवाजा,
दालियंब	खट्टीदाल,
दीविया	चीता,
दीविय	दीमक पत्ती
दीहिया	घावडी,
दुकयं	दुष्कृत.
दुद्ध	दुग्ध
दुरप्पा	दुष्ट आत्मा
दुरित नाग दृप्प सहणा	पाप रूप गज के दुर्ब को मथने वाले
दुवातस विहा	घारह प्रकार के
दुस्सील	दुश्शील
दुहण	दुधन-वृत्तों को गिराने वाला सुदूर द्रुहना
देवकुल	देव मन्दिर
देवई	देवकी रानी
दोण मुह	जल मार्ग और स्थल मार्ग दोनों से जाने योग्य नगर
दोणि	छोटी नौका
दतट्टा	दात के लिए
दंतमणि	प्रधान दात
दसण	सामान्य बोध श्रद्धागुण
	ध
धणित	अत्यर्थ
धत्तरिदुग	धार्तराष्ट्र-इंस विशेष

शब्द		अर्थ
ठिरिय	- -	तिर्यञ्ज
ठिल	- -	ठिल धान्य
ठिवायया	- -	हिंसा का १०वाँ नाम
ठिहि	- -	ठिषि
ठूयक	- -	बाघ विरोध
ठेन्द्रिय	- -	तीन इन्द्रिय वाले जीव
ठेञ्ज	- -	ठेज
ठोमर	- -	थाय
ठोरय	- -	ठोरय
ठठी	- -	छन्नी बॉया
ठंष	- -	ठाम्र
		थ
थलपर	- -	स्थलपर
थावरकाय	- -	थावर काय
थूम	- -	स्थूप
		द
दईवतप्पमावधो	- -	माग्य के प्रभाव से
दगतुड	- -	दग तुंड पत्नी
दहर	- -	बाघ विरोध
दम्म पुफ	- -	एक प्रकार का सर्प
दमा	- -	दमा अहिंसा का ११वाँ भेद
दरदुड	- -	कुम्भ जला दुग्धा
दम्पसारो	- -	दम्पसार नामा परिग्रह का १ वाँ भेद
दबिज	- -	दबिज
दद	- -	दद
ददपति	- -	ददपति पद्य दद आदि
ददि	- -	ददी

शब्द		अर्थ
नेरइय	- -	नरक-के जीव
नेहुर	- -	नेहर देश
नेह	- -	सौंद
नंगल	- -	धूल
नन्दमाणग	- -	नन्दमातक पत्नी
नंदा	- -	सप्तर्द्धि दाप्रक अर्द्धिसा का २५वां नाम
नदि	- -	घाघ विशेष
नंदिमुह	- -	नन्दि-सूत्र पत्नी
		प
पइल	- -	श्लीमद-फीलपांव
पउमावई	- -	पद्मावती रानी
पएणीमारा	- -	विशेष रूपसे िरिनिओंको मारनेके लिये फिरने वाली
पकल्प	- -	प्रकल्प-अध्ययन विशेष
प्रकाश	- -	सरस भोजन
पकणिय	- -	पकणिक देश
पच्चक्राणं	- -	प्रत्याख्यान
पच्छाया	- -	ढकने का वस्त्र
पज्जत्त	- -	पर्याप्त
पट्टिस	- -	प्रहरण विशेष
पडगार	- -	जुलाहा
पउम	- -	पद्म-व्यूह
पेहुण	- -	मोर पिच्छी
पोक्कण	- -	पोक्कण देश
पोक्करणी	- -	पुक्करिणी की छोटी घाघडी
पोत घाया	- -	पतिओं के धच्चे को मारने वाली
पोतत्र	- -	पोतज-हाथी वगैरह
पोय सत्या	- -	नौका के व्याप

शब्द	अर्थ
अमरि	माडी
अमय	भैसा आदि के पेट में हवा भरना
अिती	पृति अहिंसा का स्वर्णनाम
	न
अक	नाक
अककत	अकत
अगर गोपिय	अगर रकक
अकक	अकक
अक	अक
अकय	अक
अकनीत	अकसन
अक	अक
अकक	लोहे की पॉय
अकिकिओ	अकिकिप
अकक	अकिकों का अकिकस अकिक
अकक	लोहे की अकिकी
अकिकुओ	अकिकु
अकिकी	अकिक
अकिकयणा	अकिक का स्वर्णनाम
अकिककवारिकीओ	अकिकिक पाकी
अकिकककतर	अकिक ककक, अकिक का अकिक नाम
अकिकककय	अकिक करना, अकिक बनाना
अकिककक	अकिक-अकिक, अकिकों का अकिक नाम
अकिककुर	अकिक अकिक का अकिक नाम
अकिकक	अकिक, अकिक का अकिक अकिक
अकिक	अकिक-अकिक
अकिक	अकिक

शब्द		अर्थ
परिष्पव	- -	पारिप्लव
परीसहा	- -	परिपह-कष्ट
परियार	- -	तलवार की म्यान
पक्षज	- -	पल्लव-छोटा-तालाब
पलाल	- -	पलाल-पोश्नाल
पलित्त	- -	प्रदीप्त
पषक	- -	उछलने कूदने घाला
पवयण साया	- -	प्रवचन मार्ती
पवत्रक	- -	घाघ विशेष
पचा	- -	प्याऊ
पधित्ता	- -	पधित्रा अहिंसा का १७वां नाम
पधित्यो	- -	धन का धिन्तार परिग्रह का २०वां भेद
पञ्जीसग	- -	घाघ विशेष
पसय	- -	दो खुर घाला जानवर
पहेरक	- -	भूषण विशेष
पाइक्क	- -	पैदल
पागार	- -	कोट
पाठीण	- -	एक जाति का मत्स्य
पाणवहो	- -	प्राणवध हिंसा का ११वां नाम
पादकेसरिया	- -	पोंछने का घस
पादजालक	- -	पाँव नू पुर
पाद बंधणं	- -	पात्र बन्धन
पायट्टवण	- -	पात्र ठवणी जिस पर पात्र रक्खा जाय
पारस	- -	फारस देश
पारिष्पव	- -	पारिप्लव जन्तु
पारेयय	- -	कयूतर
पाव कोबो	- -	हिंसा का १६वां नाम

शब्द	कोश
पोसाहार्य	वौषधी का
पंगुजा	पंगु
पिंगलकच्छरा	पिंगलाक्ष पक्षी
पिंगुल	पिंगुल पक्षी
पिंडो	पिंड परिग्रह का १२वां भेद
पुंडरीक	पुंडरीक पक्षी
पडिमाहो	पात्र
पडिलोह्य	प्रति श्लेष्मना
पडिपथो	-प्रतिदग्ध बाह्य पदार्थों में स्नेहमन्त्र होना परिग्रह का १२वां भेद
पण्य	बाध विरोध
पण्य	पण्य वेरा
पत्तरक	मूष्य विरोध
पत्तम सरीर	मत्पेठ शरीर
पमासा	प्रमासा अतिशय क्षीति वाली अर्हिसा का १५वां भाग
पमोषो	प्रमाह अर्हिसा का २२वां भाग
परहार सेष्यो	पर की गमन
पवापह	प्रजापति
परमथ संकामकारणो	र्हिसा का १८ वां भाग
परम क्रियुसेस सहिषं	परम क्रुष्य श्लेष्मना बाधा
परमा धम्मिया	परमा धार्मिक देव
परसु	परसु हृत्वावा
परा	दुष्ट विरोध
परिमाहो	परिग्रह का १९वां भेद
परिचारणा	कर्मिचार में सहायक
परितापण धय्यधो	र्हिसा का २६वां भाग
परिचय	परिचय
पि ट्टापणिया-समिति	- यज्ञ मंत्र आदि परमो की अमिति

शब्द		अर्थ
घलदेवा	- -	घलदेव
वहलीय	- -	वाहलीकदेशवासी-
वहिरा	- -	वहरे
घादर	- -	वादर नामक-कर्म
विल्लज	- -	विल्वल देश
बुद्धी	- -	बुद्धि अहिंसों का १६वां नाम
बेंदिए	- -	दो इन्द्रिय बाला
बेलंबक	- -	विडम्बक
बोही	- -	बोधि अहिंसा का १६वां नाम
बंजुल	- -	बजुल पत्नी
बंभचेर	- -	ब्रह्मचर्य

भ

भट्ट भज्जणायि	- -	भाड में चना के जैसे भूजना
भडग	- -	भडक जाति
भडा	- -	सैनिक
भक्तपाणं	- -	आहार पानी
भदा	- -	भद्रा कल्याणकारी, अहिंसा का २३वां नाम
भसर	- -	भंवर
भयक	- -	नौकर
भयंकरो	- -	हिंसा का २३वां नाम
भहं	- -	भरत क्षेत्र
भल्ल	- -	माली
भवण	- -	भवन
भाइल्लका	- -	सेवक
भायण	- -	पात्र
भारो	- -	भार आत्मा विशेष भारी करने वाला, परिग्रह का १७वां भव

शब्द	अर्थ
पावसुठ	पाप सुठ
पायतोमो	दिसा का २०वां नाम
पासाव	प्रासाव
पिकठमंठी	पिकठ-हुआ मंठी नाग का दूध
पिण्ड	धूल
पित्त	शरीर का एक दोष
पिट्टक	पीटा
पियरो	पिता आदि
पिसुख	सुगन्ध कोर
पिपीलिव	पपीहा पी पी करने वाला पत्नी
पीछण	पीसना
पोककरिखी	कमल बासी पावडी
पुरवर	मधान नगर
पुडी	पुष्टि अदिसा का २३वां नाम
पुरिसकारो	पुरुपार्य
पुशुप	पुलक एक प्रकार का माद
पुतिव	पुष्टि देश
पूया	अदिसा का २२वां नाम
फ	
फकक	विस्तार-करी आदि
फकिहा	परिषा आतक
फसुप	मासुक निर्जीव
फिरिफस	फुफस-वेद का मीठरी भाग
ब	
बक	बयुका
बकाका	बायुकी

शब्द			अर्थ
मञ्जार	-	-	विल्ली
मञ्जिय	-	-	मञ्जिका
मणगुत्ते	-	-	मनो गुप्त
मणपञ्जवनाणी	-	-	मन.पर्यव ज्ञानी
मणि	-	-	चन्द्र कान्त आदि
मणुय	-	-	मनुष्य
मत्थुलिंग	-	-	मस्तुलिंग
मधुकरी	-	-	ध्रमरी
मयणसाल	-	-	मैना
मधु	-	-	शहद
मया	-	-	मद
मयूर	-	-	मोर
मरहट्ट	-	-	महाराष्ट्र देश
मरुय	-	-	मरुआ
मरुगा	-	-	मरुक देश
मलय	-	-	मलय देश
मल्ल	-	-	पहलवान
मसग	-	-	मशक
मह्वया	-	-	महाव्रत
महाकुंभि	-	-	बड़ी कुभी
महा सउणि पूतना रिपु	-	-	महा शुकनि और पूतना के शत्रु
महार्दि	-	-	अपरिमित याचना वाला, पहिग्रह का १४वां भेद
महिच्छा	-	-	तीव्र इच्छा वाला
महिस	-	-	भैमा
महुकोसए	-	-	मधु के छत्ते
महुघाय	-	-	मधु लेने वाला

शब्द	अर्थ
भायख	भायना
भायिभी	भायित सुसंस्कार वाला
भास	भाष पड़ी
भासा समिठे	भाषा समिति वाला
मिक्खु पडिमा	साधु श्री पडिमा
मिगारग	मिगारक पड़ी
मिगार	मारी
भुञ्जि	भूजे हुए भानो
भूमि घर	सल घर
भूय गामा	सीपों के समूह
भेयसिद्धपग	दिसा का एक नाम
भेसत्र	भेवरय
भोमात्रिर्	भूमि सम्बन्धी कृत्
मंडोषगरय	मिटों के भाँड
मिडिपाळ	मिडिपाळ
मइय	मटिक क्षेत्र जोड़ने के बार बेजा फोड़ने का मोटा काष्ठ
मइजि	फय्य वाले सप
मगर	मगर मच्छ
मच्छरूपी	मच्छरी पकड़ने वाला
मच्छरि	मच्छरी लोग
मच्छि	मच्छर दिसा का ११वाँ नाम
मच्छई	मिनी
मय	मय
मयय	मयय

शब्द	अर्थ
मूका	गूंगा
मूढा	मूर्ख
मूयक	एक प्रकार का तृण
मूलकम्प	गर्भ पात आदि मूल कर्म
मेथ	मेढ-वातु
मेत	मेढ देश
मेर	मंज के तन्तु
मेहला	मेखला
मोक्खो	मोक्ष
मेहुण	मैथुन
मोगगर	मुद्गर
मोयग	मोटक
मोस	मिथ्या
मोहणिज्जो	मोहनीय
मौलि	मुकली सर्प
मौस्टिक	मुष्टि प्रमाण पत्थर
मगल	मङ्गलकारी, अहिंसा का ३०वां नाम
मडवाण	मण्डपों के
मडव	मण्डप
मथु	बोर आदि का चूर्ण
मदर	मेरु पर्वत
मदुक्क	मेढक
मदुय	मन्दुक-जल
मंमणा	तूतली धोलने वाला
मस	मांस
मिजा	मज्जा
मुगुस	मंगुस

शब्द	अर्थ
महुर	महुर वेश
महारग	बड़ा सर्प
माइ	मन्त्रि
माया	मान
मागुस्तीतर	मनुष्योत्तर पर्वत
माया	माया कपट
माया भासो	माया मृपा
मारया	हिंसा का उर्वा नाम
माकम	माकल बामु
माखव	माखव वेश
मास	मास वेश
मिष्यदिष्टी	मिष्या दृष्टि बाला
मिय	मृग
मुईग	मृदक
मुगुम	मगूम-मुझ परिसर्प अशु
मुट्टिष	मौष्टिक वेश
मुट्टिय	मौष्टिक नक्ष
मुष	मासी
मुदा	मोह
मुन्दुर	अग्नि क कण
मुख	भर्तल
मुक द	मुसंड दरा
मुमथ	मूसल
मुमापारी	मूठ बोलन बाला
मुमुदि	प्रहरण विशाप भुराई
मुदग्यनक	मुग वस्त्रिका
मदी	मार्ती मदिता-सम्पन्न, अदिसा का १२वां मई

शब्द		अर्थ
रोहिणी	- -	रोहिणी
		ल
लउढ	- -	लक्षुट-छोटा ढंडा
लद्धी	- -	लविध अहिंसा का २७वां नाम
लघण	- -	लघण समुद्र
लषंग	- -	लौंग
लावक	- -	लवे
लासग	- -	रास गाने वाले
ल्हासिय	- -	ल्हासिक देश
लुद्धा	- -	लोभ
लेट्टु	- -	पत्थर
लेण	- -	पहाड में बना घर
लेरसाओ	- -	लेश्या
लोह सकल	- -	लोह की वेडी
लोह पजर	- -	लोह के पंजे
लोहप्पा	- -	लोभात्मा, परिग्रह का १३वां भेद
लछण	- -	लाछन चिह्न बनाना
लुपणा	- -	हिंसा का २६वां नाम

व

वह जोगस	- -	वचन का व्यापार,
वहर	- -	वज्र
वउस	- -	वक्रुशदेश,
वक्कय	- -	वल्कल
वगुली	- -	वागुल
वज्ज रिसह नाराय संघयणा	- -	वज्र ऋषभनाराच चंहनन,
वज्जो	- -	हिंसाका २५ वां नाम.
वट्टक	- -	वत्सक

शब्द	अर्थ
	र
रक्ता	- - रक्त, अहिंसा का ३३वाँ नाम
रक्त सुभद्रा	- - रक्त सुभद्रा
रतिकर	- - रतिकर पर्वत
रती	- - रति प्रेम
रतीय	- - सन्तोष, अहिंसा का ७वाँ नाम
रयण	- - रत्न
रयय	- - रानी
रयत्ताय	- - रत्नों से रचक
रय्योठजाक्रिय	- - रत्नों का भूषण
रयोहरय	- - रत्नोहरण
रवि	- - सूर्य
रह	- - रह
राफ्दस	- - राजदस
रापा	- - रामा
रिदुवसम	- - अरिष्ट नामक वेल
रिदि	- - अरि अहिंसा का २०वाँ नाम
रिसभो	- - अरि
ठक्लमूल	- - वृक्ष मूल
ठक्कवर	- - मरुत्तकार वृक्ष गिरि
ठपियी	- - ठक्किसी
ठहा	- - रौद्र
ठहिर महिमा	- - ठक्किसी
ठय	- - रूप
ठय	- - रूप वेश
ठेम	- - रोम वेश, बाल
ठहिय	- - रोहित पशुविरोध

शब्द		अर्थ
वामण	- -	छोटेशरीर वाला
वायर	- -	वादर-स्थूल
वायस	- -	कौवा
वालरञ्जुय	- -	वालकी रस्सी
वावि	- -	कमल रहित या गोल वावडी
वासहर	- -	वर्षधर हिमवान आदि
वासि	- -	वसूला
वासुदेवा	- -	वासुदेव
वाहण	- -	गाडी आदि
वाहा	- -	व्याध
विकप्प	- -	एक तरह का महल
विकहा	- -	विकथा
विग	- -	भेडिया व्याघ्र
विग्घ	- -	व्याघ्र
विचित्त	- -	विचित्र कूट पर्वत
विच्छुय	- -	विच्छू
विडंग	- -	कबूतरों का घर
विण्णसु	- -	हिंसा का २७वा नाम
विण्णुमयं	- -	विण्णुमय
वितत	- -	ढोल
विततपक्खि	- -	वितत पत्ती
विद्धि	- -	वृद्धि, अहिंसा का २१वा नाम
विपची	- -	वीणा
विभूती	- -	विभूति, अहिंसा का ३२वा नाम
विमुत्ती	- -	विमुक्ति, अहिंसा का १२वां नाम
विमल	- -	विमल, अहिंसा का ५५वां नाम
वियल	- -	वीजना

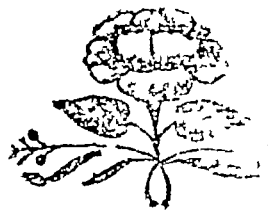
शब्द		अर्थ
सगड	- -	शकट-गाड़ी
सण	- -	आसन
सण्फ	- -	नखयुक्त पैर वाले
सतग्घि	- -	तोप
सत्ति	- -	शक्ति त्रिशूल
सत्ती	- -	शक्ति, अस्त्र भेद अहिंसा का ४र्थ नाम
सद्दूल	- -	शादूल सिंह
सद्दल	- -	भाता
सञ्जी	- -	सञ्जी
सपरिग्रह	- -	परिग्रह के साथ
सपि	- -	घी
सवर	- -	शवर भिन्न जाति
सभा	- -	सभा
समणधम्म	- -	श्रमण धर्म
सम चउरंससठाण	- -	सम चतुरस्र चारो कोण बराबर
समय	- -	मिद्वान्त
सम्मत्त विसुद्ध मूलो	- -	सम्यक्त्व रूप विशुद्ध मूल वाला
सम्मदिट्ठी	- -	सम्यग्दृष्टि
सम्मत्ताराहणा	- -	सम्यक्त्व की आराधना, अहिंसा का १४वां नाम
समाहि	- -	समाधि-समता, अहिंसा का ३रा नाम
समिई	- -	समिति, अहिंसा का ३८वा नाम
समिद्धि	- -	समृद्धि, अहिंसा का १६वा नाम
सागपत्त	- -	शाकपत्र
साण	- -	श्वान-कुत्ता
सामलिपोंड	- -	शाल्मली वृक्ष के फल
सामली	- -	नरक का शाल्मली वृक्ष
सारस	- -	सारस पक्षी

शब्द	अर्थ
दियम्भ	- - व्याघ्र के बच्चे
दिरतीय	- - हिंसा रूप पाप से बिरत
दिरल्ल	- - दिरल्ल-मकड़ी
दिराहणाओ	- - बिराधना
दिलवलि कारकायां	- दूसरे को ब्यामोह में डालने के लिये विस्वर बोलन वाक्ता
दिसंभ बाह्यो	- - विश्वासघाती
दिसिद्ध दिडदो	- - विशिष्ट दृष्टि अहिंसा का २८वां नाम
दिसुसी	- - विशुद्धि, अहिंसा का २६वां नाम
दिसाय	- - हाथी का हात
दिवार	- - मठ
दिवंग	- - पक्षी
दिवसग पास हत्था	- - संडास और जाल हाथ में रखन वाक्ता
धीसासो	- - विश्वास, अहिंसा का २१वां भेद
धीही	- - धीही बाबल -
धडिम	- - पश्चिम-असवी
धेठिय	- - धेरिका पशुतरा
धेदको	- - भोक्ता
धेसर	- - पक्षी विरोध
धोरमय्य	- - हिंसा का १६वां नाम
धंगुल	- - एक प्रकार का पक्षी
धंस	- - धंसुदी
स	
सग्य	- - शकुन पक्षी
मक	- - शकदेश या जाति
मकरा	- - शूलि
सकडुलि	- - तिल पापड़ी
महं	- - मायावी

शब्द		अर्थ
सुदश	- -	श्रुतज्ञान, अहिंसा का ६वा नाम
सुदश विज्जुमतीए	- -	सुरूपविद्युन्मती
सुवर्ण गुलिया	- -	सुवर्ण गुलिका
सुसाण	- -	श्मशान
सुदुम	- -	सूक्ष्म
सुई	- -	सूची-मूई
सूकरे	- -	सूअर
सूतो	- -	शुचि-अहिंसा का ५६वा नाम
सूप	- -	दाल
सूप	- -	सूपडा
सूलक	- -	चुगलखोर
सूअगढ	- -	सूअ कृताङ्ग
सूलिय	- -	शूली
सूसर परिवादिणी	- -	वीणा
सेण	- -	श्येन-बाजपत्नी
सेणावती	- -	सेनापति
सेतु	- -	पुल
सेल	- -	पापाण
सेल्लक	- -	शल्यक जन्तु
सेह	- -	शरीर पर काटे वाला जन्तु
सेहव	- -	रायता आदि
सोणिय	- -	रक्त
सोय	- -	शोक
सोयरिया	- -	सूअरों के द्वारा शिकार करने वाला
सोलहविह	- -	सोलह प्रकार का
सकम	- -	उतरने का मार्ग
सकरो	- -	घस्तुओं का परस्पर मिलाना, परिग्रह का ७ वा भेद

शब्द		अर्थ
शाली	- -	शाली धान्य विशेष
साधारण शरीर	- -	साधारण शरीर
सिद्धातिगुणा	- -	सिद्धों के गुण
सिद्धावासो	- -	मांसवास अहिंसा का ३०वां नाम
सिष्पकला	- -	शिष्पकला
सियाल	- -	शृगाल
सिरियंशुलग	- -	श्रीयन्त्रक
सिक्कण	- -	प्रपाक
सिब	- -	शिव-उपश्रव रहित अहिंसा का ३७वां नाम
सिस्मा	- -	शिष्य
सिहर	- -	शिम्बर
सिहरिणि	- -	बही और शक्कर से बना
सीमागार	- -	एक प्रकार का माद
सीया	- -	बड़ी पालकी सीता
सील	- -	शील अहिंसा का ३६वां नाम
सील परिपरो	- -	शील परिमद अहिंसा का ४१वां नाम
सीमक	- -	सीसा
सीह	- -	सिंह
सीहल	- -	सिंहल देश
सु मुह	- -	सूफीमुख-तीखी शीघ्र वाक्ता पक्षी
सुधाम	- -	घंटा
सुक	- -	तोता
सुक्य	- -	सुकुठ
सुगुग	- -	इत्ता
सूय	- -	ताना
सुपनाणी	- -	धु. जमी
सूप	- -	सूप

शब्द		अर्थ
हृत्थदुय	- -	हस्तान्दुक एक प्रकार का बन्धन
हय	- -	घोड़ा
हय पुंडरिय	- -	हृदय पुण्डरीक पत्ती
हरिणमा	- -	चाण्डाल
हल	- -	हल
हस्त	- -	हास्य
हितयंत	- -	हृदय और आंत
हिरण्य	- -	चांदी
हुरध्म	- -	भेद आदि उन्नत वाले जीव
हृत्थियं	- -	शीघ्र
हूण	- -	हूण जाति
हंस	- -	हंस
हिसविहंसा	- -	हिसा का पृथा नाम
हुंड	- -	वेढोल शरीर-कुरूप



शब्द		अर्थ
संज्ञ	-	-
संज्ञ	-	राज्ञ
सचयो	-	-
संज्ञो	-	-
संज्ञो	-	संज्ञ, अहिंसा का ४ वां नाम
सहास तोंड	-	-
सहास	-	-
सहास	-	संज्ञास की आकृति की तरह मुह वाला जीव
सहास	-	-
सहास	-	बाह्य पदार्थों का अधिक परिचय, परिग्रह का २०वां भेद
सहि अक्ष	-	-
सहास	-	ज्ञात अज्ञान वासा
संपाठपापको	-	-
संपाठ	-	-
संपाठ	-	भूत आदि पाप को करने वाला, परिग्रह का १८ वां भेद
सपुत्र	-	-
सपुत्र	-	मन्युत्र
संख्य	-	-
संख्य	-	पुत्र तथा देव रथ
संखर	-	-
संखर	-	सोमर
संमारो	-	-
संमारो	-	संमार जो अक्षयी तरह से धारण किया वाप परिग्रह का ६ठा भेद
संमुच्छिन्न	-	-
संमुच्छिन्न	-	संमुच्छिन्न विना गम के उत्पन्न होने वाला जीव
संखरो	-	-
संखरो	-	संखर, अहिंसा का ४२ नाम
संखरसंज्ञो	-	-
संखर	-	हिंसा का एक नाम
संज्ञेय	-	-
संज्ञेय	-	पसीने से पैदा होने वाला
संज्ञेय	-	-
संज्ञेय	-	संज्ञेय-मोहवरा शरीर आदि की रक्षा करना परिग्रह का १६वां भेद
सिंग	-	-
सिंग	-	सिंग
संज्ञेय	-	-
संज्ञेय	-	जलधर अन्तु विरोध
हृदि	-	-
हृदि	-	काष्ठ का ढोड़ा
हृदि	-	-
हृदि	-	दायी
हृदि	-	-
हृदि	-	दायी का कसकर

को कर्मबन्ध का हेतु बनाते हैं। ज्ञानी के लिये वे ही पदार्थ कर्म निर्जरा के हेतु है। अतएव पदार्थों को आस्रव नहीं कहा गया।

सब आस्रवों का आधार योग है। इस योग प्रवृत्ति से होने वाला आस्रव शुभ अशुभ भेद से दो प्रकार का है। पुण्य बन्ध के कारण पुण्यास्रव और पाप बन्ध के हेतु पापास्रव कहाते हैं। अशुभयोग के निरोध की अपेक्षा शुभयोग को संवर भी कहा है, किन्तु परमार्थ दृष्टिसे योगमात्र ही आस्रव है। अतः शुभ प्रवृत्ति भी शुभास्रव कहाती है। कर्मबन्ध का हेतु होने से आस्रव त्याज्य है। फिर भी शुभास्रव एकान्तरूप से हेय नहीं है। तीर्थङ्कर नाम कर्म के बन्ध हेतु २० बोल अपेक्षासे शुभास्रव होकर भी उपादेय है, क्योंकि तीर्थङ्कर पद संवर निर्जरा का प्रचार करने वाला पद है। अतः जिस पुण्य प्रकृति से उसका लाभ हो वह भी उपादेय है। यदि ऐसा नहीं माना जाय तो मुनिश्रौं की देशना, उपासकों की उपासना और सेवाव्रत आदि सारी प्रवृत्तियां त्यागने योग्य हो जायगीं किन्तु ऐसा नहीं है।

समुद्र पार जाने वाले यात्री को जैसे गाड़ी छोड़कर समुद्र में जहाज ग्राह्य होती है और पार पहुँच जाने पर जहाज भी छोड़ दी जाती है। वैसे संसार सागर पार होने वाले साधक के लिये साधनावस्था में पाप छोड़कर पुण्य उपादेय हो जाता है, क्योंकि शुभानुबन्धी पुण्य उनको साधना के अभिमुख करता और उसमें सहायक होता है। हा, जब साधना पूर्ण हो जाती है तब सिद्धावस्था के लिये पाप की तरह पुण्यास्रव भी त्यागने योग्य हो जाता है, किन्तु प्रथम से ही उसको त्याज्य ममभ लेना उचित नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत शास्त्र में केवल सांपरायिक आस्रव का ही वर्णन किया है। ऐर्यापथिक या शुभास्रव का नहीं, क्योंकि शुभास्रव न वैसा आत्मा के लिये अहितकर है और न इसका छूटना ही कठिन है, जैसाकि साम्परायिक आस्रव का। अतएव हिंसा, भ्रूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूपसे पाच आस्रवों का यहा वर्णन किया गया है। ये आस्रव दुर्गति के कारण होने से सर्वथा हेय हैं।

२. संवर—

जीव रूप तालाब में कर्म प्रवाह को जिन कारणों से रोका जाय वह संवर है। आस्रव की तरह इसके भी द्रव्य भाव रूप से दो भेद है। नौका या तालाब के जल मार्ग को रोकना द्रव्य संवर और ममिति गुप्तियों के द्वारा कर्मास्रव को रोकना भाग्य संवर है।

प्रश्नव्याकरण सूत्रस्य विशिष्टाद टिप्पणानि

१ अग्रहय, संवर—

आसय और संवर प्रमथ्याकरण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। प्रथम सूत्र में आसय तथा संवर पर कहन की प्रतिज्ञा की गई है। अतएव टिप्पण में भी प्रथम स्थान इन्हीं दो को दिया जाता है। आसय का अर्थ है कि जिसके द्वारा आत्मा में कर्म प्रवेश करे, अथवा जिसके द्वारा कर्म का उपार्जन हो वह आसय है। जैसे सरोवर में प्रवाह रूप से पानी का आगमन होता है और जल के आन से सरोवर लवालाव भर जाता है वैसे ही आत्मरूप सरोवरमें जिस मार्गसे कर्म प्रवाह आता है, वह मार्ग एव कर्मों का आना आसय है। इसके मुख्य भेद दो हैं। द्रव्यासय और और सावासय। नौका में छिद्र के द्वारा जल का प्रविष्ट होना द्रव्यासय और इन्द्रिय आदि से जीव में कर्म का आना सावासय है। यहां केवल कर्मान्त्र से अभिप्राय है। कर्मान्त्र के द्वंद्व सिद्धांत, अद्वैत, प्रमाद, कर्माय और वाग्य वेस पांच हैं। इनमें योग सबका आधार है, जो तीन प्रकारका है। समीयोग, वाग्ययोग, और काय योग। मानसिक प्रवृत्ति को मनोयोग, वाचिक को वचन योग तथा क्रियात्मक प्रवृत्ति को काय योग कहते हैं। योग के साथ जब कर्माय क्रोम आदि भाव का सम्बन्ध होता है तब उसे साम्प्रदायिक आसय कहते हैं और कर्माय रहित केवल योग प्रवृत्ति को पर्यायिक आसय कहते हैं। इन दोनों में साम्प्रदायिक आसय के २ इन्द्रिय ४ कर्माय २ अन्त, २५ क्रिया और ३ योग मिलकर ४९ भेद होते हैं। प्रकारान्तर से आसयके २०० भी होते हैं। इन्द्रिय और मनमें विकार पैदा करने वाले बाह्य पदार्थ संसार में अगणित हैं परन्तु वे सब कर्म पन्थमें मियत हतु नहीं हैं। क्योंकि बन्ध या निर्बन्ध में हतु बनाया आत्मा के अधीन है। अज्ञानी जिन अक्षय्यतादि पदार्थों

को कर्मबन्ध का हेतु बनाते हैं। ज्ञानी के लिये वे ही पदार्थ कर्म निर्जरा के हेतु है। अतएव पदार्थों को आस्रव नहीं कहा गया।

सब आस्रवों का आधार योग है। इस योग प्रवृत्ति से होने वाला आस्रव शुभ अशुभ भेद से दो प्रकार का है। पुण्य बन्ध के कारण पुण्यास्रव और पाप बन्ध के हेतु पापास्रव कहाते हैं। अशुभयोग के निरोध की अपेक्षा शुभयोग को संवर भी कहा है, किन्तु परमार्थ दृष्टिसे योगमात्र ही आस्रव है। अतः शुभ प्रवृत्ति भी शुभास्रव कहाती है। कर्मबन्ध का हेतु होने से आस्रव त्याज्य है। फिर भी शुभास्रव एकान्तरूप से हेय नहीं है। तीर्थङ्कर नाम कर्म के बन्ध हेतु २० बोल अपेक्षासे शुभास्रव होकर भी उपादेय है, क्योंकि तीर्थङ्कर पद संवर निर्जरा का प्रचार करने वाला पद है। अतः जिस पुण्य प्रकृति से उसका लाभ हो वह भी उपादेय है। यदि ऐसा नहीं माना जाय तो मुनिओं की देशना, उपासकों की उपासना और सेवाव्रत आदि सारी प्रवृत्तियां त्यागने योग्य हो जायगीं किन्तु ऐसा नहीं है।

समुद्र पार जाने वाले यात्री को जैसे गाड़ी छोड़कर समुद्र में जहाज ग्राह्य होती है और पार पहुँच जाने पर जहाज भी छोड़ दी जाती है। वैसे संसार सागर पार होने वाले साधक के लिये साधनावस्था में पाप छोड़कर पुण्य उपादेय हो जाता है, क्योंकि शुभानुबन्धी पुण्य उनको साधना के अभिमुख करता और उसमें सहायक होता है। हा, जब साधना पूर्ण हो जाती है तब सिद्धावस्था के लिये पाप की तरह पुण्यास्रव भी त्यागने योग्य हो जाता है, किन्तु प्रथम से ही उसको त्याज्य समझ लेना उचित नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत शास्त्र में केवल सांपरायिक आस्रव का ही वर्णन किया है। ऐर्यापथिक या शुभास्रव का नहीं, क्योंकि शुभास्रव न वैसा आत्मा के लिये अहितकर है और न इसका छूटना ही कठिन है, जैसाकि साम्परायिक आस्रव का। अतएव हिंसा, भ्रूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूपसे पाच आस्रवों का यहा वर्णन किया गया है। ये आस्रव दुर्गति के कारण होने से सर्वथा हेय हैं।

२. संवर—

जीव रूप तालाब में कर्म प्रवाह को जिन कारणों से रोका जाय वह संवर है। आस्रव की तरह इसके भी द्रव्य भाव रूप से दो भेद है। नौका या तालाब के जल मार्ग को रोकना द्रव्य संवर और ममिति गुप्तियों के द्वारा कर्मास्रव को रोकना भाग संवर है।

प्रश्नव्याकरण सूत्रस्य विशिष्टपद टिप्पणानि

१ अयहय, संवर—

आसन्न और संवर प्रभवाकरय का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। प्रथम सूत्र में आसन्न तथा संवर पर कहने की प्रतिष्ठा की गई है। अतएव टिप्पण में भी प्रथम स्थान इन्हीं दो को दिया जाता है। आसन्न का अर्थ है कि जिसके द्वारा आत्मा में कर्म प्रवेश करते, अथवा जिसके द्वारा कर्म का उपार्जन हो वह आसन्न है। जैसे सरोवर में प्रवाह रूप से पानी का आगमन होता है और-जल के जाने से सरोवर लघासन्न भर जाता है वैसे ही आत्मरूप सरोवरमें जिस मार्गसे कर्म प्रवाह आता है, वह मार्ग एवं कर्मों का आना आसन्न है। इसके मुख्य भेद दो हैं। द्रव्यासन्न और भावासन्न। नौका में छिद्र के द्वारा जल का प्रविष्ट होना द्रव्यासन्न और इन्द्रिय आदि से 'जीव' में कर्म का आना भावासन्न है। यहां केवल कर्मासन्न से अभिप्राय है। कर्मागमन के हेतु मिथ्यात्व, अभिरति, प्रमाद, कषाय और पाप ऐसे पांच हैं। इनमें योग सदा आहार है, जो तीन प्रकारका है। मनोयोग, ध्याग्योग, और काय योग। मानसिक प्रवृत्ति को मनोयोग, वाचिक को वचन योग तथा कायिक प्रवृत्ति को काय योग कहते हैं। योग के साथ जब कषाय क्रोध आदि माघ का सम्बन्ध होता है तब उस साम्परायिक आसन्न कहते हैं और कषाय रहित केवल योग प्रवृत्ति को पर्यायिक आसन्न कहते हैं। इन दोनों में साम्परायिक आसन्न के ५ इन्द्रिय ४ कषाय, ५ अग्रत, २५ क्रिया और ३ योग मिलकर ४९ भेद होते हैं। प्रकारान्तर से आसन्नके ७७ भेद भी होते हैं। इन्द्रिय और मनमें विकार पैदा करके पाल पाद्य पदार्थ संसार में अगणित हैं परन्तु व सच कर्म बन्धनमें नियत हेतु नहीं हैं। क्योंकि बाध या निर्बला में हेतु बनाना आरामा के अर्थात् हैं। अज्ञानी मिन अकूपन्तादि पदार्थों

उसके शरीर को कुछ भी क्षति नहीं पहुँचाई, फिर भी जब तक उसका जीवन है वह अन्यत्र रहकर भी आपसे बदला लेना चाहेगा। उसका हृदय वैर को नहीं भूल सकेगा, क्योंकि आपने उसका आश्रय छुड़ाया है। असमर्थ होकर भी जैसे जर्मन ब्रिटिश के साथ वैर नहीं भूला वैसे ही जिस प्राणी के प्राणों का अपहरण किया गया है वह जन्मान्तर में जाने पर भी अपने प्राण घातक के साथ वैरानुबन्ध नहीं भूलता। दूर वसे हुए भी शरणार्थियों की तरह उसका हृदय वैर से कलुषित रहता है। प्राण छूटने पर भी उसके आश्रित जीने वाले प्राणी अमर रहते हैं। इसलिये कहा है कि--“पञ्चेन्द्रियाणित्रिविधं बलञ्च, उच्छ्वास निश्वासासम्थान्यदायुः प्राणा दर्शते भगवद्भिरुक्ता--स्तेषां वियोगी करणं तु हिंसा ॥ पाच इन्द्रियां, ३ बल आस और आयु रूप दश प्राणों का जीव से वियोग करना ही हिंसा है। इसलिये हिंसा को प्राणवध कहा गया।

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि दूसरो को कष्ट पहुँचाना हिंसा नहीं है। प्राण नाश का कारण होने से दुःख या क्लेश पहुँचाना भी वध कहा गया है। जैसे कि--‘तप्पज्जाय विणासो, दुक्खुप्पातो य सक्किलेसो य। एस व्हो जिण भणिओ वज्जेयव्वो पयत्तेण ॥ शरीर पर्याय का नाश और दुःख एव संक्लेश उत्पन्न करना इसको तीर्थङ्करो ने वध कहा है जो प्रयत्न पूर्वक त्यागना चाहिए।

प्राणवध भी व्यवहार दृष्टया प्राणवध को कहते हैं।

४. हिंस्राके कारण—

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग रूपसे हिंसा के प्रमुख दो कारण हैं। उनमें अन्तरङ्ग कारण क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, वैदिक अनुष्ठान अर्थ, धर्म, काम और जीत-रूढि पालन के लिये हिंसा की जाती है।

बहिरङ्ग कारण—

चमडा १ चरवी २ मास ३ मेद ४ रक्त ५ यक्षुत् ६ फिफफस-फेफडा ७ मस्तुलुंग-कपाल का भेजा ८, हृदय ९, आत १० पित्त ११ फोफस १२ दात १३, अस्थि १४ मज्जा १५, नख १६ नेत्र १७, कान १८ स्नायु-नसें १९, नाक २० धमनी-नाडी २१ सींग २२, दाढ २३, पिच्छ या पूछ २४, विप २५, विपाण-हाथी दात २६ और चाल २७ इनके लिये गो महिप आदि पञ्चेन्द्रिय जीवों की हिंसा होती है। मधु-आदि के लिये चतुरिन्द्रिय भ्रमर आदि की, शरीर और उपकरण शुद्धि के लिये

कर्म निर्गोप के उपाय तरीक 'संघर के ५७ मेव होते हैं—“बैसे-५ समिति ३ गुमि, १ यतिघर्म, १२ भावना, २२ परीपद् और ५ चारित्र कुल ५७। शुभाशुभ कर्माश्रय को रोकने के कारण संघम या चारित्र को भी संघर कहत हैं। आश्रय की विपरीत सारी प्रवृत्ति संघर का कारण है। इसक मुख्य मेव सम्बन्ध, व्रत, अप्रमाद, अकृपाय और अयोग रूप से पाँच हैं। मिथ्यात्व आदि पाँच हेतुओं से होत वाला कर्माश्रय बाड़ी घेर के लिये कल्पना कीजिए कि १११११ का है। जब मिथ्यात्व का द्वार बन्द कर दिया जाय, तब ११११ बाँकी रहत हैं। दस हजार का कर्ज कमहो गया। एम अव्रत का दूसरा द्वार बन्द कर देने पर एक हजार कम हो गया, और प्रमाद एवं कृपाय के संवरण कर देने पर तो बाँग निमित्तक एक उपमा अितना ही कर्ज बाँकी रहता है। अतएव जो प्राणी मिथ्यात्व का द्वार बन्द कर चुके हैं, उनके लिये पहाँ हिंसा असत्य आदि त्याग रूप पाँच संवर कह गये हैं।

इन पाँच संवरों के द्वारा अव्रत रूप दूसरा द्वार बन्द हो जाता है, और प्रमाद कृपाय एवं योग के संकुचित हो जाने से उनके द्वारा होने वाला आश्रय भी अस्य हो जाता है। आश्रय घटने से आत्मा कर्मभार से हल्की रहती है। अतएव ये पाँच संवर उपाय हैं।

३ प्राणवध—

हिंसा का एक प्रसिद्ध नाम प्राणवध है, जिसको प्रकारान्तर से प्राणतिपात भी कहत हैं। प्राणवध का अर्थ है—प्राणों का नारा-अत्याज् अपन २ कायाभिष्टान में सुषटित दस प्राण का विघटित करना। लोक व्यवहार में जिसे जीव हिंसा कहते हैं उसको यहाँ प्राणवध का नाम स कहा गया है। कारण यह है कि आत्मा अल्प दान स हिंसा से मारी नहीं जा सकती क्यल इसके प्राणों का नारा किया जा सकता है।

पाठक मोपेगे कि हिंसा एसा शरल नाम न कर प्राणवध एसा क्यों लिया ? यदि एषटना क लिये लिखना या तब भी जीव हिंसा लिखत ? क्योंकि प्राण तो मारे जात नहीं फिर प्राणवध कैसा ?

उत्तर यह है कि बान्धव स आत्मा अमर है। यदि बही मर जाय तब तो भूत पादियों क कथनानुसार पुण्य पाप और परलाफ का भी अभाव हो जायगा। एषान्न क रूप स नाशिन कि आपन हिंसा गुरुय का पर न बाहर कर दिया है,

उसके शरीर को कुछ भी क्षति नहीं पहुँचाई, फिर भी जब तक उसका जीवन है वह अन्यत्र रहकर भी आपसे बदला लेना चाहेगा। उसका हृदय वैर को नहीं भूल सकेगा, क्योंकि आपने उसका आश्रय छुड़ाया है। असमर्थ होकर भी जैसे जर्मन ब्रिटिश के साथ वैर नहीं भूला वैसे ही जिस प्राणी के प्राणों का अपहरण किया गया है वह जन्मान्तर में जाने पर भी अपने प्राण घातक के साथ वैरानुबन्ध नहीं भूलता। दूर वसे हुए भी शरणार्थियों की तरह उसका हृदय वैर से कलुषित रहता है। प्राण छूटने पर भी उसके आश्रित जीने वाले प्राणी अमर रहते हैं। इसलिये कहा है कि—“पञ्चेन्द्रियाणित्रिविधं बलञ्च, उच्छ्वास निश्चाम्मथान्यदायुः प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता—स्तेषा वियोगी करणं तु हिंसा ॥ पाच इन्द्रिया, ३ बलश्वास और आयु रूप दश प्राणों का जीव से वियोग करना ही हिंसा है। इसलिये हिंसा को प्राणवध कहा गया।

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि दूसरो को कष्ट पहुँचाना हिंसा नहीं है। प्राण नाश का कारण होने से दुःख या क्लेश पहुँचाना भी वध कहा गया है। जैसे कि—‘तप्पज्जाय भिणासो, दुक्खुपातो य सक्किलेसो य। एस वहो जिण भण्णियो वज्जेयव्वो पयत्तेण ॥ शरीर पर्याय का नाश और दुःख एवं सक्केश उत्पन्न करना इसको तीर्थङ्करों ने वध कहा है जो प्रयत्न पूर्वक त्यागना चाहिए।

प्राणवध भी व्यवहार दृष्ट्या प्राणवध को कहते हैं।

४. हिंसाके कारण—

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग रूपसे हिंसा के प्रमुख दो कारण हैं। उनमें अन्तरङ्ग कारण क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति अरति, शोक, वैदिक अनुष्ठान अर्थ, धर्म, काम और जीत-रूढि पालन के लिये हिंसा की जाती है।

बहिरङ्ग कारण—

चमडा १ चरवी २ मास ३ मेद् ४ रक्त ५ यक्ष्म ६ फिफस-फेफडा ७ मस्तुलुंग-कपाल का भेजा ८, हृदय ९, आंत १० पित्त ११ फोफस १२ दात १३, अस्थि १४ मज्जा १५, नख १६ नेत्र १७, कान १८ स्नायु-नसें १९, नाक २० धमनी-नाडी २१ सींग २२, दाढ़ २३, पिच्छ या पूछ २४, विप २५, विपाण-हाथी दात २६ और बाल २७ इनके लिये गो महिष आदि पञ्चेन्द्रिय जीवों की हिंसा होती है। मधु-आदि के लिये चतुरिन्द्रिय अमर आदि की, शरीर और उपकरण शुद्धि के लिये

तेह्मिन्व जीवों की और पर ब्रह्म की सफाई रंगाई तथा रेशम आदि के लिये व निर्य जीवों की हिंसा होती है।

इसके उपरान्त व्यावर जीवों की हिंसा के सैकड़ों कारण प्रयुक्त हैं खेती, बेबछ, पौध आदि पृथ्वीकाय की हिंसाके कारण बताए गए हैं। इस प्रकार धर्म आदि धर्म या अनर्थ से अत्रुष लोग हिंसा करते हैं। यह भाग एवं देवोपासना में की जाने वाली हिंसा को भी कमबन्ध का कारण कहा है। जैसे कि परतैर्यिक ने भी कहा-
हिंसाजन्यश्च पापश्च जमते नात्र संशयः अर्थात् धर्म के नाम पर भी की गई हिंसा पाप पैदा करती है। वधकर्ता हिंसा के पहले पापको पाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस कारण की सत्य्य विद्वानों ने जोर तोर से समर्पण किया है। जैसेकि,—
देवोपहार इपाजेन यज्ञ इराजेन वेडपवा। प्रमि अन्तून् गठपूणा, चार्त्त उ यान्ति दुगठिम् ॥ वेदान्ती भी कहते हैं—
“अपे तमसि मज्जाम पशुमिये पजामहे। हिंसा नाम मयेदमो—नमूतो न भविष्यति।

इपासन भी कहा है—
“प्राधिपातासु यो धर्म—भीइते गूढ मानस। स वाङ्मति सुपावृत्ति, कृष्णाऽहिमुत्त कोटरात् ॥

इत्यादि सहस्रों प्रमाण मनु स्मृति आदि ग्रन्थों के दिय जा सकते हैं, जो विस्तार भय न नहीं दिये गए हैं।

५ प्रमाद—

असक कारण जोक कर्तव्य का नाम भूल, उसे प्रमाद कहते हैं। कोपहार अमरमिह न प्रमाद के लिये अनवधानता पर का प्रमाण किया है। जैसे कि—
प्रमाणानवधानता—इत्यमट, इत्य और माव भेद स प्रमाद वा प्रकार का है। बोध का शुभभता क लिये आपायों न प्रमाद क ४ एवं ८ म् भी किये हैं। जैसे मय १ नियम शब्दादि २ कपाय ३ गिद्रा और विपधा ४। ५ य प्रमाद क पांच प्रकार हैं। आठ भद्र में प्रथम अज्ञान, दूसरा संशय, ३ रा मिथ्या ज्ञान, ४ राग, ५ द्वेष, ६ मति भ्रम, ७ धम में अनापार और ८ मन वचन एवं काय की अग्रम प्रवृत्ति, पर आठवां प्रमाद है। कहा भी है—

अज्ञान १ रागमो २ भव, मिष्टानार्त्तु हृदय य। रागा रागो ५ मदर्पसो ६, अग्रमिय अनापार। अण्यगताण जोगार्त्तु पमाभा होइ अदृष्टा ॥

कुलकोटि—

जीवों की जाति विशेष को कुल कोटि कहते हैं। पञ्चेन्द्रिय की ५७ लाख कुल कोटि हैं।

जैसे कि— पृथ्वी काय की १२ लाख कुल कोटि,
 अप्काय की ७ लाख,
 सेच काय की ३ लाख,
 वायु काय की ७ लाख,
 वनस्पति काय की २२ लाख,
 वेङ्गन्द्रिय की ७ लाख कुल कोटि,
 तेहन्द्रिय की ८ लाख,
 चौरिन्द्रिय जीवों की ६ लाख कुल कोटि है।

पञ्चेन्द्रिय जीवों में, जलचर की १२ ॥ साढे बारह लाख कुलकोटि खेचर पक्षियों की १२ लाख कुलकोटि। चतुष्पाद-हाथी घोड़े आदि की १० ल कुलकोटि। उर-परिसर्प-छाती के बल से ससरने वाले सर्प आदि की १० ल कुलकोटि। मनुष्य पञ्चेन्द्रिय की १२ लाख कुलकोटि मुजा से चलने-वाले च आदि की ६ लाख कुल कोटि ॥ देवों की २६ लाख कुलकोटि। नारक जीवों २५ लाख कुलकोटि है। इन सब संख्याओं को मिलाकर एक करोड सता लाख पचास हजार कुल कोटियाँ होती हैं।

जैसे कि कहा गया है—“ एगिदिण्णु पंचसु, वारस सत्त तिगसत्त अट्टवी य। विगलेसु सत्त अडनव जल खह चउप्पय उरग भूयमे ॥ १ ॥ अट्ट-तेरस वा दस दस नवगं नराभरे नरण। वारस ज्जव्वीस. पण्णवीस ह्णुंति कुल कोट्टी ख्वाडं ॥ २ ॥

६. सृषावादी—

हिंसा की तरह सृषावाद भी पाप बन्ध का एक बड़ा कारण है। इसके दो वालों की कोई स्वतन्त्र जाति नहीं होती। उच्च से उच्च कुल में जन्मा हुआ भी भूठ बोलता है तो वह सृषावादी है। सूत्र में असत्य पूर्ण व्यवहार और सिद्धान्तों की अपेक्षा सृषावादियों के दो वर्ग किये गये हैं। एक लोक व्यवहार

आजीविका निमित्त या मोह वशा भूट बालने पालत और दूसर सैद्धान्तिक अगत में हत्नों का मिथ्या स्वरूप बताने वाले ।

प्रथम प्रकार के मिथ्यावादी इस प्रकार हैं— श्लोच, लोभ, मय, और हान्य व भूट के मूलकारण हैं । श्लोच वृष का और लोभ राग का अंश है, और राग वृष मोह के प्रधान अङ्ग हैं । अतएव मोह अज्ञानादि सारे हेतु इनमें समाविष्ट हो जाते हैं । अर्थ, धर्म और काम को इन्हीं श्लोच लोभ रूप वा भागों में अन्तर्हित समझना चाहिए ।

श्लोच लोभादि वृत्ति वाले लोगों को गिनात हैं—१ अर्मयमी २ अधिरती, ३ कपट से कुटिला और पञ्चल भाव वाले, ४ साक्षी, ५ चोर, ६ चारभट, ६ खंडरक्षक, ८ चूगी लने वाले, ९ जीतने वाला जुधारी, १० धरोहर दाने की इच्छा भाल, ११ अज्ञाना के लिये मीठे बोलने वाले, १२ कुलीबिक—धप माय धारी, १३ बधिक पाणिज्य करने वाले १४ फूटगुल फूटमाना—सोटा ठोल माप करने वाले, १५ नरुभा सिक्क स जीन वाले या फूट धम स जीयिका करन वाले, १६ पटकार पुनकर, १७ सुषर्षकार—सुतार १८ काठक—फारीगर, १९ बद्धक ठग, २० चारिक—चोर की शोज निकालने वाले, २१ बाटुकार सुरामव करने वाले, २२ नगर गुप्तक—कोत पाल, ३ परिचारक—सैधुन कर्म में बलाही करने वाले २४ दुष्टवादी—असत्य पद लेने वाले, २५ सुषक—धुगलखोर २६ अणुबल भयिता—बल स अणु लने वाले—कर्मवार, २७ पूर्व कारिक बचन कप—वोगां धाल के पहले ही अनुमान करके कहने वाले २८ साहसि—बिना सोचे बोलने वाले, २९ रुधु—रुधु इहय वाले, ३० दुर्वन, ३१ गौरविक—अदि आदि के गारव वाले, ३२ असत्य की स्थापना में चित्त वाले, ३३ एव हन्व—बकापन में ऊचे धमिप्राय वाले, ३४ निरहुरा धचन वाले ३५ निवम रहित या स्वजन रहित, ३६ इच्छानुसार बोलने वाले, अथवा स्वच्छा से अपने को सिद्ध कहने वाले, मिथ्यक मन्सरी आदि व लौकिक मृपावादी हैं ।

लोकोत्तर मृपावाकियों का परिषय दिया जाता है -

७ नास्तिक वादी—

नास्तिकवाद् मे अस्त्याश की अधिकता है, अत प्रथम नास्तिकवादी को कहा गया है । एष्ट अगत से मित्र ओ आत्मा परमात्मा और धम अधर्म आदि हत्नों को पही मानव काको नास्तिक कहते हैं, त्रैम कि—“नास्तिकीय परसोको वा इत्येवं

मतिर्यस्य स नास्तिकः ।” जो जीव और परलोक को नहीं मानता है वह नास्तिक है। लोकायतिक या सद् भूत भी जीवादि पदार्थों को नहीं मानने से वामलोक घादी कहाते हैं। दिखते वाले भौतिक जगत् के अतिरिक्त ये परलोक को नहीं मानते। न पञ्च भूतों से पृथक् आत्मा नाम का पदार्थ ही मानते हैं। जैसा कि, उन्होने कहा है—

एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रिय गोचरः ।

भद्रे ? वृक पदं पश्य, यद्वदन्त्यविपश्चितः ॥ १ ॥

पित्र, खाद च चारु लोचने ? यदतीतं वरगात्रि ? तन्न ते ।

नहि भीरु ? गतं निवर्तते, समुद्रयमात्रमिदं कलेवरम् । २ ।

भाव यह है कि जितना प्रत्यक्ष दिग्गता है, उतना ही यहलोक है इससे भिन्न जो स्वर्ग नरक आदि कहे जाते हैं वे सब मात्र प्रलोभन या भय के लिये ही हैं। उनमें कुछभी तत्त्व नहीं है। इसलिये ये लोग खाना, पीना और मौज मनाना ही जीवन का सार समझते हैं। इन नास्तिकोंका -यद् सिद्धान्त है—“ यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋण कृ-वा घृतपिवेत् । भस्मीभूतस्य-भूतस्य पुनरागमन कुत’ ॥ अर्थात्-जबतक जीवो, सुखसे जीवो ऋण लेकर भो घी पीवो, देह भस्मीभूत होने पर फिर मिलने का कहा है ? । और भी इन का कहना है—” स्वागमार्थेऽपि मास्थाऽस्मिन्, तीर्थिणा विचिकित्सव । ततमाचरताऽऽनन्द स्वच्छन्दं यं यमिच्छथ ॥ । अपने आगम रूप अर्थ में संशयात्मा बनकर स्थिर न रहो। उसी आचरण को करो जो कि तुम करना चाहते हो। इस प्रकार स्वच्छन्द आचरण को करो, आगम के विधि निषेध में न पडो ।

ये नास्तिक वादी अपने पक्ष की सिद्धि में कहते हैं कि प्रत्यक्ष आदि किसी प्रमाण से आत्मा की सिद्धि नहीं होती और न परलोक की सत्ता ही साबित होती है। जिसका प्रत्यक्ष नहीं उसका अनुमान भी नहीं होता । अतः पञ्चभूत का बना यह जगत् ही सत्य है। पञ्चभूत-पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश-से पृथक् आत्मा कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है

उनका कहना है कि पञ्चभूतों में प्रत्यक्ष नहीं दिखने वाली भी चेतना शक्ति-’ किरवादिभ्यो मदशक्ति वत् जैसे गुड महुआ आदि के मिलने पर सादकता आती

है, जैसे-ही पञ्चमूर्तों के सम्मिलित होन पर प्रकट होजाती है। शरीर ही प्राण वायु संयुक्त सभी क्रियाओं को करते दिखाई देता है। हिंसा, मूठ, चोरी और पर वार गमन में कोई पाप नहीं है।

कहा जाता है कि ब्रह्मपति ने अपने पुत्र की रक्षा के लिये अब मृत्युञ्जय, मन्त्र और मजीवनी का साधन कर के भी सफलता प्राप्त नहीं की। तब पुत्र वियोग से विकल उनके हृदयने पुत्र्य पाप और अप तप आदि को मूठा भागित किया। जैसे कि उसने कहा है-

अग्नि होत्र त्रयीदण्डं, त्रिदण्डं भस्म पुण्ड्रकम् ।

प्रश्ना पौरुषहीनानां, जीवो ब्रह्मपति जीविकाम् ॥

भाव यह है कि-

अग्नि होत्र-निषमपूर्वक हवन करना, त्रयी शक्य यजु, साम इन तीनों वेदोंका साङ्ग अभ्यसन करना, दृष्टी यादिव्यष्टी बनना, भस्म लगाना, और मुद्रा अङ्कित करना ये सब बुद्धि और पुठुपार्थ से हीन लोगों की जीविका-जीवन साधन की योजना मात्र है और कुछ इन में सार नहीं है, ऐसा ब्रह्मपति कहता है। ब्रह्मपति से प्रचारित होने के कारण इस मत को ब्राह्मण्य मत भी कहते हैं। कश्चित्तक रूप से तो आत्म नास्तिक पद का प्रचार इजारे मनुष्यों में मिलेगा। पश्चिमी-साम्यवाद की वायुने सर्वत्र यह प्रचार कर रक्खा है कि भूलवाद और दृष्टजगतम भिन्न आत्मा परमात्मा तथा परमात्म नास्त्य में नहीं है। नैतिक नियमों का पालन भी ये लोग समाज व्यवस्था के लिये ही करते हैं।

आज के प्रचलित बड़ा पर्य और धाम मार्ग इसी नास्तिक मत के रूपान्तर हैं अथवा इसी के मयष्टर परिणाम हैं। नास्तिक दर्शनों से इसकी प्राप्त सर्वथा भिन्न है। इन नास्तिकों की दुःखवां ध्यानकर "साधरा विपरीतारपेद् राक्षसा एव केवलम्" यह संकृतोक्ति याद आती है। ये लोग अधिष्ठता से साधर हैं। ये शिव को देव मानते। हमारी शक्तूजा ही उपासना है। इस शक्य पूजा में पर-मायी उपस्थित होते हैं। इनका बदना है अथ्य मत म निर्वाण शीटिका गति से ब्रह्मपितृ होता है किन्तु धाम मार्ग से यह निर्वाण गदइ गति स अवरय प्राप्त होता है। इसके पाँच प्रकार शीष्टपद माने गए हैं।

जैसे--“मग्रं मातं च मीनञ्च, मुद्रा मैथुनमेव च ।

एते पञ्च मकारा स्युर्मोक्षदाहि युगे युगे ॥ १ ॥ (काली तन्त्र)

इनके अनेकों तन्त्र ग्रन्थ हैं । वाम मार्ग की साधना—इसके साधक गण किम रीति से करते थे ? ऐसा परिचय जिन्हे प्राप्त करना हो, वे वाणभट्टकृत 'कादम्बरी' में चन्द्रा पीड़ के कैलास गमन प्रकरण को पढ़ें ।

स्थानुभूति से सिद्ध योग शक्ति निष्णातो के वचनों से प्रमाणित विश्व प्रसिद्ध ऐसे आत्म तत्त्व एव धर्माधर्म का निषेध करने से ये मृषावादी कहे गये हैं ।

८. पञ्चस्कन्ध—

कुछ लोग पञ्चस्कन्ध को ही सब कुछ मानते हैं, उनके विचारानुसार पञ्चस्कन्ध से भिन्न आत्मा कोई स्वतन्त्र वातु है ही नहीं । पञ्चस्कन्ध—“विज्ञान १, वेदना २, संज्ञा ३, संस्कार ४, और रूप ५ ये पाचस्कन्ध ही सब कुछ हैं । जैसेकि रूप स्कन्ध में पृथ्वी आदि सभी धातु सारे रस आदि आजाते हैं, वेदना स्कन्ध में सुख दुःख आदि वेदनायें तथा विज्ञान स्कन्ध में रूपरसादि विज्ञानों का समावेश हो जाता है, संज्ञास्कन्ध में—ग्रहणात्मक बोध आता है और संस्कार स्कन्धमें पुण्य पाप आदि अच्छे बुरे विचार आते हैं, इस प्रकार जगत् के पदार्थ मात्र इनमें श्रुतनिहित होते हैं, इनसे भिन्न आत्मा नामका कोई छटा तत्त्व नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष या अनुमान में से किली भी प्रमाण द्वारा उसकी सिद्धि नहीं होती । पञ्चस्कन्ध-भी क्षण योगी है अर्थात् क्षणमात्र स्थायी-क्षणिक-है, इस मत को मानने वाले बौद्ध हैं ।

कुछ बौद्धाचार्य शरीर को चतुर्द्धातुक मानते हैं । उनके सिद्धान्तानुसार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार धातुओं से यह शरीर बना है और कायरूप से इनकी परिणति को ही जीव नाम से कहा जाता है । जैसे कि कहा है—“चतुर्द्धातुक मिदं शरीरं न तद्व्यतिरिक्तं आत्मास्तीति—चतुर्द्धातुक इस शरीर के अतिरिक्त आत्मा कोई तत्त्व नहीं है ।

समय पाकर इन बौद्धों के चार भेद होगये—वैभाषिक १, सौत्रान्तिक २, योगाचार ३, और माध्यमिक ४ । त्रिपिटक के मतानुसार वैभाषिक सभी तत्त्वों को प्रमाण्य मानते पदार्थ मात्र को क्षणिक तथा आत्मसन्तान परम्परा का छेद अर्थात्-आत्मा

का भिन्न जाना है उनके यहाँ मत्त माना गया है। परन्तु अंत अनुमान को प्रमाण मानते हैं। सात्र न्तिह-वयस अनुमान को ही प्रमाण मानते हैं। पाग चर सम्प्रदाय में अद्वैत की तरह समार का सभी यस्तुर्णिध्या मानकर केवल मात्मज्ञान का ही सत्य माना है। वह ज्ञान सृष्टिक अवश्य है। माध्यमिक-मध्यम सम्प्रदाय के बौद्ध जगत् के पक्ष मात्र को शून्य मानते हैं। शून्य न सत् है न असत्, न सद्भव है न अतिव्यपत्तीय है। शून्य इन सभी विद्युत्तों से पूर्यत्तर है। अत्मा आदि सभी पक्षय कल्पित अतएव भ्रमरूय है। कुछ बौद्धाचार्यों ने अत्मा और कर्म आदि का माना है किन्तु भी अधिकांश बौद्ध अनारप्रवादी हैं। बौद्ध भिन्न शक्त न वा अपन अनारप्रवादी विचारों का स्पष्ट उद्घरण किया है। यद्यपि सत्य, धर्म और अहिंसा का बौद्धाचार्यों ने भी उपदेश किया है किन्तु भी सृष्टिक बाद इनका सब माय्य है। बौद्ध का दृष्टि से संसार के सभी पक्षय कल्पित हैं। प्रथमकथ का काय दूसरे कथ में नहीं रहता। जैसे कि वे कहते हैं—“यत् सत् तत् सृष्टिकम्” ‘सृष्टिका सब सत्कारा’ आदि। अत्मा आदि मूल मूल तत्वों का नहीं मानने पर्यंत सबका सृष्टिक मानने से यह स्यावादी है। सबका सृष्टिक मानने से संसार का कोई भी कर्म नहीं है सफगा काय कारण व्यवस्था वा रहेगी ही नहीं, क्योंकि पृथक्पृथक् का भूषिण्ड जब पद बनने के उत्तर कथमें रहेगा ही नहीं तब बर् मृत्तिपद पर पड़े का कारण कैसे होगा? विषय इसका सबका सृष्टिक स्य यो मान ज्ञान पर देगे चार गुण रूप वा समय स्वर में समरण न जाना पक्षिन्तु इराजा जाता है कि मनुष्य का बर्त्तकाल की वात वृद्ध बर्था में भी पक्ष रहता है। अत्मा वा गुणना चार वक्त गुण का उपरोक्त कथन भाषन लाभ का कारण नहीं होगा। पक्षकथ में सृष्टिक भाषन प्रदान चार व्याख्या का इरादा विगत भी नहीं है सफगा। क्योंकि सन बर्त्तन के सृष्टिक कथन चर पक्षरन पक्षर मगन के सृष्टिक मिल है। जब पृथक्पृथक् का कथन उत्तर सृष्टिक में रहेगा ही नहीं तब चर में। वासा इराका सृष्टिक चर चर भी इराका विधान की सृष्टिक में नहीं रहे। इराका वा भाग भी सृष्टिक चर में नहीं रहे। क्योंकि सृष्टिक सृष्टिक सृष्टिक सृष्टिक ही सत्त हा सुनी किन्तु सपक्षान चर भिन्नकर्म गरी सृष्टिक सृष्टिक हा अपन मूल सृष्टिक सृष्टिको इराका विरा है। इराका सन पक्षिन्तु सृष्टिक हा सृष्टिको है बर्त्तक पक्षरों का सृष्टिक सन सृष्टिक है।

अंडकाओ संभूओलोको—

कर्तृत्व वादी कहा करते है कि यह संसार एक अंडे से उत्पन्न हुआ है और भगवान् स्वयम्भूने इस का निर्माण किया है। अंड सृष्टि के मुख्य दो प्रकार हैं। एक बहुत प्राचीन है, जो छान्दोग्योपनिषत् में बताया गया है। दूसरा प्रकार मनुस्मृतिमें दिखलाया है। दोनों की प्रक्रिया भिन्न २ है और दोनों में बड़ा अन्तर है। उपनिषत् में अंड के साथ स्वयम्भू का कोई सम्पर्क नहीं है जबकि मनुस्मृति की सृष्टिमें स्वयम्भू अंडे में प्रवेश करके सृष्टि का निर्माण करते है। “संभूओ अडकाओ लोगो” प्रश्न व्याकरण के इस वचनानुसार प्रथम छान्दोग्योपनिषत् की प्रक्रिया ही उपयुक्त ज्ञात होती है। अतः उपनिषद् के अनुसार प्रथम स्वयम्भूत अडसृष्टि का उल्लेख करके फिर मनुस्मृति की अडसृष्टि बताया जायगी। छान्दोग्योपनिषत् ३, १६ में लिखा है-

असदेवेदमग्र आसीत्—

अर्थ—“सृष्टि से पहले प्रलय कालमें यह जगत् असत् अर्थात् अव्यक्त नाम रूप वाला था। तत्सदासीत्-वह असत् जगत् सन् यानी नाम रूप कार्य की ओर अभिमुख हुआ।

तत्समभवत्-अङ्कुरी भूत बीज के समान कमसे कुछ थोडासा स्थूल बना। तद्वाण्डं निरवर्तत-आगे चल कर वह जगत् अंडे के रूपमें बना। तत्सवत्सरस्य मात्रा-माशयत-” वह एक वर्ष पर्यन्त अण्डरूपमें रहा। तन्निरभिद्यत-वह अण्डा एक वर्ष के पश्चात् फूटा। ते अण्ड कपाले रजत च सुवर्णञ्चाऽभवताम्-अंडे के दोनों कपालों में से एक चांदी का और दूसरा सोने का बना। तद्यद् रजतं सेयं पृथिवी -उनमें जो चांदी का था उसकी पृथ्वी बनी। यत्सुवर्णं सा यौ -जो कपाल सोनेका था उसका ऊर्ध्वलोक स्वर्ग बना। यज्जरायु ते पर्वता -जो गर्भका घेष्टन था उसके पर्वत बने यदुल्व स मेघो नीहार -जो सूक्ष्म गर्भ परिवेष्टन था वह मेघ और तुषार बना। या धमनय , तानद्य -जोधमनिया थीं वे नदिया बन गईं। यद् वास्तेयमुदक स समुद्र-जो मुत्राशय का जल था उसका समुद्र बना। अथ यत्तद् जायत सोऽसावादित्यः-अन्तर अंडे में से जो गर्भ रूप में पैदा हुआ वह आदित्य बना।

यह ऋद्धि की आभूत वृत्त स्वतन्त्र सृष्टि है। इसमें स्वयम्भू-ईश्वर या विष्णु आदि का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। जहां तक वैदिक साहित्य से हमारा परिचय हुआ है यह इस रंग रंग का धर्यन छान्दोग्योपनिषद् में उपलब्ध है।

सपञ्चुणा सर्वेषु निम्निभ्यो—

महर्षि मनु की अष्ट सृष्टि

आसीदिद तमोभूतमप्रज्ञावमलक्षणम् ।
 अप्रवर्द्धमधिज्ञेयं, प्रसुप्तभिषु सर्वतः । ५ ।
 सतु स्वर्गभूर्मगवानव्यक्तो व्यञ्जयभिदम् ।
 महाभूतादि वृषांजा प्रावुरासीत्तमोत्तुदः । ६ ।
 योऽमावतीन्द्रिय ग्राह्य, सृष्टमोऽव्यक्त सनातनः ।
 सर्वभूतमयोऽचिन्त्य, स एव स्वयमुत्सवमौ । ७ ।
 सोऽमिध्याय शरीरात्स्वात्मिसृष्टुर्विविधा प्रजाः ।
 अप एव ससर्जादी, तासु धीजमवासृजत् । ८ ।
 तदण्डममवर्द्धमं, सहस्रांशुममप्रमम् ।
 तस्मिन्नङ्गे स्वर्गं प्रदा, सर्वलोक पितामहः । ९ ।
 आपो नारा इति प्राक्ता, आपो धे नरघनय ।
 ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृत । १० ।
 यत्तत्कारणमप्यक्त, नित्य सदसदात्मकम् ।
 तद्विसृष्टं न पुरुषा लोके प्रमेति कीर्त्यते । ११ ।
 तस्मिन्नण्डे न भगवानुपित्वा परियत्तरम् ।
 स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा । १२ ।
 ताभ्यां न शकस्ताभ्यां च, दिवं भूमिं च निर्ममे ।
 मस्य प्याम दिग्भाषादपां ग्यानं च शाश्वतम् । १३ ।

अर्थात्--पहले यह संसार अंधकार रूप था, न किसी से जाना जाता और न कोई इसका लक्षण था, तर्क से परे और चारो ओर से गाढ़ निद्रावान् की तरह अज्ञेय था ॥ ५ ॥

तब अव्यक्त रहे हुए भगवान् स्वयंभू पञ्च महाभूतों को प्रकट करते हुए स्वयं प्रकट हुए ॥ ६ ॥

जो यह अतीन्द्रिय, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन और सर्वान्तर्यामी अचिन्त्य परमात्मा है, वही स्वयं (इस प्रकार) प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

उसने ध्यान करके अपने शरीर से अनेक प्रकार के जीवों को बनाने की इच्छा से सर्व प्रथम जल का निर्माण किया और उसमें बीज डाल दिया ॥ ८ ॥

वह बीज सूर्य के समान प्रभाववाला सुवर्णमय अंड बन गया । उससे सब लोक के पितामह ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुए ॥ ९ ॥

नर-परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण जलको नार कहते हैं, वह नार इसका पूर्व घर (आयन) है इसलिये इसको नारायण कहते हैं ॥ १० ॥

जो सबका कारण है, अव्यक्त और नित्य है तथा सत् व असत् रूप वाला है, उससे उत्पन्न वह पुरुष लोक में ब्रह्मा कहाता है ॥ ११ ॥

एक वर्ष तक उस अंड में रहकर उस भगवान् ने स्वयं ही अपने ध्यान से उस अंड के दो टुकड़े कर दिये ॥ १२ ॥

उन दो टुकड़ों से उसने स्वर्ग और पृथ्वी का निर्माण किया । मध्य भाग में आकाश, आठ दिशाएं और जल का शाश्वत स्थान निर्माण किया ॥ १३ ॥

इसमें बताया गया है कि पहले भगवान् स्वयंभू प्रकट हुए और जगत बनाने की इच्छा से अपने शरीर से जल पैदा किया, उसमें बीज डालने से वह अंडाकार बन गया ।

ब्रह्मा या नारायण ने अंडे में प्रकट होकर उसको फोड़ दिया, जिससे यह सारा संसार प्रकट हुआ ।

पथावङ्गा इस्सरेण य कयंति—

प्रजापति-ब्रह्मा ने स्वयं तपस्या करके मनु के द्वारा संसार का निर्माण किया ।
जैसा कि मनुस्मृति में कहा है—

—“द्विधा कृत्वात्मनो देह—मर्देन पुरुषोऽभवत् ।

अर्देन नारी तस्यां स, विराजमसृजत्प्रभु । ३२ ।

प्रभा ने अपन देह क हा टुकड़ें किए । एक टुकड़ का पुरुष बनाया और दूसरे भागे टुकड़ की स्त्री बनाइ । फिर स्त्री में विराट् पुरुष का निर्माण किया ।

मनु अ० १ श्लो० ३२

तपस्तप्त्वाऽसृजत् यं तु, स स्वयं पुरुषो विराट् ।

त मां विष्ठाऽस्य सर्वस्य, स्रष्टारं द्विजसवमा ॥

जम विराट् पुरुष ने तप करके जिसका निर्माण किया वह मैं हूँ अर्थात् वही मैं मनु हूँ व भेष्ट द्विजों ? निम्नांक समग्र सृष्टि का निमाता मुझे समझ ।

मनु अ० १ श्लो० ३३

अहं प्रजा सिसृक्षुस्तु, तपस्तप्त्वा सुदुधरम् ।

पतीन् प्रजानामसृज महर्षी—नादितो दग् । म० अ० १ श्लोक ३४ ।

मनु कहत हैं कि तुच्छर तप करके प्रजा सर्जन करन की इच्छा म मैंने प्रारम्भ में दग् महर्षि प्रजापतिजों का उत्पन्न किया ।

मरीचिमथ्यङ्गिर्मा पुनस्त्यं पुलह क्रतुम् ।

प्रचेतमं वशिष्टं च, सृगु नारदेष च । म० अ० १ । ३५ ।

इहा प्रजापतिजों के नाम य हैं—(१) मरीचि (२) अग्नि (३) अन्निरत् (४) पुलस्त्य (५) पुलह (६) क्रतु (७) मन्वतस् (८) वशिष्ठ (९) सृगु और (१०) नारद ॥

एत मनुस्तु मत्तान्पान्—असृजद्भूरितजम ।

दयान् देवनिकायां महर्षी धामिर्ताजस । १ । ३५ ।

अथ—इन प्रजापतिजों ने बहुत उजरबी दूमर मात मनुजों का, दपों का, दपों क स्थान स्वगादिकों का तथा अपरिमित तज वाल महर्षिजों को उत्पन्न किया ।

१० ईश्वर मष्टि

यथा चन्द्रमर्मा घाता, यथा पूर्वमच्छपयत्—

दिपं च पृथिवीं चान्तरिमवषा म्य । अगु १० । १६० । ३५

अर्थ--यथा पूर्व-पूर्व के समान विधाता ने सूर्य चन्द्र, आकाश, पृथ्वी इन दोनों के मध्यवर्ती भुवन और वाद् में सब से ऊपर स्वर्लोक को बनाया।

न्याय दर्शन में निम्न प्रकार से कहा है--

—“ईश्वरः कारणं पुरुष कर्मा फल्यदर्शनात्—न्या० सू० ४।१।१६ ॥

अर्थ--मनुष्य का प्रयत्न न जावे इसलिये कर्म फल प्रदाता के रूप में ईश्वर को कारण मानना आवश्यक है।

—‘ न पुरुष कर्माभावे फलाऽनिष्पत्तेः । न्या० सू० । ४ । १ । २० ॥

अर्थ--वादी कहता है--यह बात अर्थात् कर्म फलदाता के रूप में ईश्वर की सत्ता की बात नहीं है। क्योंकि पुरुष कर्त्क कर्म के अभाव में फल प्राप्ति नहीं होती है इसलिये फल प्राप्ति में कर्म कारण है किन्तु ईश्वर नहीं।

ईश्वर वादी का कथन--

—“तत्कारितत्वादहेतुः—न्या० सू० ४।१।२१।

वह कर्म भी तो ईश्वर प्रेरित ही होता है। इसलिये कर्त्तवीन कर्म और कर्माधीन फल मानना हेत्वाभास है, सद्धेतु नहीं।

पुनश्च--

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ।

यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म । ५ ।

तै० उप० भृगुवल्ली अनु० १ ।

अर्थ-- जिससे ये प्राणी उत्पन्न होते हैं और जिसी से जीवित रहते हैं। अन्त में सदा के लिये जाते हुए, जिसमे सम्यक् प्रवेश करते हैं, उसी को जानो वही ब्रह्म है।

इस उपरोक्त अल्प उद्धरणों से उपनिषद् श्रुति, स्मृति एव न्याय सूत्रों से सृष्टि के विषय में विचार प्रस्तुत विद्ये गये। इनसे भिन्न भी वेद और पुराणों की प्रतिपाद्य विविध प्रकार की मृष्टियाँ हैं।

जैसे प्रजापति सृष्टि, आत्म सृष्टि, प्रस्वेद सृष्टि, परस्पर सृष्टि और अङ्कारसृष्टि, आदि इसका परिचय अणु भाष्य में है। इन विषयों को विशेषतया जानने के लिये भारत भूषण शतावधानीजी श्री रत्नचन्द्रजी महाराज कृत मृष्टिवाद और ईश्वर पठें।

कर्तृत्व भावियों की विचारणा भ्रान्त और रुचि के अनुसार कल्पित हैं। मुक्ति शून्य हो जाने से ये सारी धारणाएँ मूर्खी हैं।

इनकी असत्यता के लिये देखिए श्रीकृष्ण के उद्गार—

प्रकृतिं पुरुषञ्चैव, विद्वानादी उमावपि,
विकारीभ्य गुणारवैव, विदि प्रकृतिं सम्भवान् ।
कार्यं कारणं कर्तृत्वे, हेतु प्रकृतिरुच्यते ।

पुरुष सुखदुःखानां मोक्तृत्वे हेतुरुच्यते । गी० १३ । १६ । २० ।

अर्थात्—प्रकृति और पुरुष ये दोनों अनादि हैं। विकार १६ और गुण २४ अथवा ३ इसी प्रकृति से उत्पन्न समझे। कार्य एवं कारण के कर्तृत्व में प्रकृति ही कारण कही जाती है। सुख और दुःखों को भोगने के लिये पुरुष हेतु है। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष की अनादिता में सारा संसार अनादि सिद्ध होता है।

११ “विष्णुमय जगत्”—

इंशर को सबव्यापक माननेवाले कहते हैं कि—

जले विष्णु स्यल विष्णु विष्णु पर्वत मस्तके ।
ज्वाला मालाकुले विष्णु, सर्ष विष्णुमयं जगत् ॥१
अहं च पृथिवी पार्य ! वाप्यग्नि जलमप्यहम् ।
वनस्पतिगतमाऽह, सर्षभूतगतोऽप्यहम् ।

अर्थात् जल में स्यल में पर्वत के मस्तक पर और ज्वालामुक्त अग्नि में विष्णु है। सब जगत् विष्णुमय है। हे अशुन ! मैं पृथ्वी हूँ और आमु अग्नि जल भी मैं ही हूँ। वनस्पति में और सब मृता में भी मैं रहा हुआ हूँ। इस प्रकार इंशर को सब में व्याप्त मानना वाधित है। यदि ‘व्याप्नोतीति विष्णु’ इस व्युत्पत्ति से आत्मा को विष्णु मान कर कहा जाय तो सत्य ही सकता है, किन्तु दुःखमय जगत् को सविज्ञानरूप विष्णुमय मानना अनुभव विरुद्ध है। इसलिये जब चेतन-जगत् को एकान्त विष्णुमय कहनेवाले मृपावादी हैं।

“एक आत्मा अकारकः—

अद्वैतवादी कहते हैं कि—“एक एव हि मूर्तात्मा, भूते भूते व्यवस्थित । एक भा बहुधा चैव, हरयत् जल पन्त्रभवत् ॥ अर्थात्—प्रत्येक प्राणी में एक ही आत्मा

रही हुई है, वह जल मे चन्द्रविम्ब की तरह एक और अनेक रूप से दिखाई देती है वारतव मे वह एक और अकारक है। आत्मा मे शुभाशुभ कर्म का कर्तृत्व नहीं है। वह मात्र भोक्ता है।

उनकी दृष्टि से आत्मा का स्वरूप निम्न प्रकार है—

अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः

अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्म आत्मा कापिल दर्शने ॥पद्दर्शन

अर्थात् कपिल दर्शन मे आत्मा अमूर्त, चेतन, भोक्ता, नित्य सर्वव्यापी और अक्रिय है। अकर्ता सत्व, रज, तम गुणो से रहित और अति सूक्ष्म है।

उपरोक्त वचन प्रमाण से वाधित है। संसार में कोई सुखी तो कोई दुखी देखा जाता है। सब में एक ही आत्मा हो तो सब की एक ही स्थिति होनी-चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं है। इस तरह आत्मा को कर्म का कर्ता न मान कर मात्र भोक्ता हो मानना विरुद्ध है। क्योंकि कर्तृत्व के बिना भोक्तृत्व नहीं होता। बिना किये भोग मानने पर कृत नाश और अकृताभ्यागम रूप दोषापत्ति हो जायगी जिससे चोरी न करने पर भी साहूकार को दण्ड पाना होगा जोकि अनुभव विरुद्ध है। दूसरी बात भोग भी तो एक क्रिया है। भोगते समय भी भोग क्रिया का कर्ता तो वही जायगा। अतः आत्मा को एकान्त रूप से एक अकारक और भोक्ता कहनेवाले मृषावादी हैं।

सांख्य आचार्य भी इसी विचार सरणि के हैं। जैसे कि—“प्रकृतिः कर्त्री, पुरुषस्तु पुष्कर पलाशवन्निलेपः।

सग्रह नय की दृष्टि से समानता को लक्षित कर के जैनागम में भी ‘एगे आया, आत्मा को एक माना है। किन्तु व्यक्तित्व की दृष्टि से उनकी पृथक् सत्ता वा निषेध नहीं किया गया है। अतएव वह सत्य है। ऐसे निश्चय नय की दृष्टि से शुद्ध आत्मा कर्मों का कर्ता और भोक्ता भी नहीं है, किन्तु अशुद्ध दशावाली यानी माया युक्त आत्मा कर्म का कर्ता और भोक्ता है। एकान्त कथन में अपेक्षा नहीं रहती। अतः वह मिथ्या है।

टीकाकार ने इसका प्रतिवाद निम्न प्रकार से किया है—

तथा—अकारकः—‘सुखहेतूनां पुण्य पापकर्मणामकर्ताऽऽत्मेत्यन्ये वदन्ति, अमूर्तत्वं नित्यत्वाभ्यां कर्तृत्वाऽनुपपत्तेरिति। कुदर्शनता चास्य।

ससार्थात्मनो मूर्त्तत्वेन परिख्यामित्वेन च कर्तृत्वोपपत्ते । अकर्तृत्वे चाऽ
 कृताभ्यागम प्रसंगात् । तथा वेदकथ-प्रकृतिजनितस्य सुकृत दुष्कृतस्य च
 प्रतिबिम्बोदय न्यायेन मोक्ता । अमूर्त्तत्वहि कदाचिदपि वेदकृता न युक्ता
 आकाशम्येषेति कुदर्थनता चास्य । तथा सुकृत दुष्कृतस्य च कर्मण करणा-
 नीन्द्रियाणि कारखानि हेतव सर्षथा सर्षप्रकारै सर्वत्र च देष्टे काले च न
 वस्त्वन्तरं कारखमिति माव करणान्यकादश, तत्र वाक् पाणि पाद पायू
 पस्य लक्ष्यानि पच कर्मेन्द्रियाणि, स्पर्शनादीनि तु पंच बुद्धीन्द्रियाणि
 एकादशं च मन इति । एषां चाऽचेतनावस्थायामकारकत्वात्पुरुषस्यैव कार-
 कत्वेन कुदर्थनत्वमस्य ।

पदाह—“नैन छिदति शक्वाणि, नैन ददति पादक ।

न चैनं फलदयन्त्यापो, न शोपयति मारुत ॥१॥

अच्छेद्योऽवमदाहोऽवमक्लेषोऽशोष्य एव च ।

नित्य सर्वगत स्थायु-रक्षोऽयं सनातन ॥२॥

असञ्चैतत्—‘एकान्त नित्यत्वे हि सुख दु ख वन्व मोक्षाद्यभावप्रसं-
 गात् । तथा निष्क्रियः—सर्व व्यापित्यनाऽवकाशाऽभावात्—गमनाऽऽगम
 नादि क्रियाष्विहित । असञ्चैतत्—देहमात्रोपलम्बमान तद्गुणत्वेन
 तन्निवृत्त्वात् । तथा निर्गुणश्च—सत्परब्रह्ममोक्षस्य गुणत्रय व्यतिरिक्त-
 त्वात् । प्रकृतरेव ज्ञेते गुणा इति । यदाह—‘अकृता निर्गुणो मोक्ता
 आत्मा कापिलदर्शने । इति । असिद्धता चास्य सर्षथा निर्गुणत्वे, चैतन्यं
 पुरुषस्य स्वरूपमित्यभ्युपगमात् । तथा अनुपलेपकः कर्मबन्धन रहित ।
 आह च—‘यस्मात्त बध्यते नापि मुच्यते नापि संसरन् । संसरति बध्यते
 मुच्यते च नानाभया प्रकृतेः । इति । एतादृश्यसत्—मुक्ताऽमुक्तपारषम
 विशेषप्रसंगात् ॥ टी०

१२. अष्टारस कम्मकारणा—

चोर और चोर के १८ प्रसूति स्थान—

चौरः १ चौरापको २ मन्त्री ३ भेदज्ञः ४ काणककयी ॥

अन्नदः ६ स्थानदश्चैव ७ चौरःसप्त विधःस्मृतः ॥ टीका ॥

अर्थान् १ स्वयं चोरी करनेवाला, २ चोरी करानेवाला, ३ चोर को गुप्त सलाह देनेवाला, ४ चोरी के लिये भेद बतानेवाला या चोर के भेद को छिपाने वाला, ५ चोरी का माल खरीदनेवाला, ६ चोर को अन्न देनेवाला, ७ चोर को स्थान देकर रखनेवाला सात प्रकार के ये सब चोर कहे गये हैं ।

१८ चोर के प्रसूति स्थान

भलनं १ कुशलं २ तर्जा ३ राजभागो ५ ४ वलोकनम् ५ ।

अमार्गदर्शनं ६ शय्या ७ पद्मङ्गस्तथैव च ॥ १ ॥

विश्राम ८ पादपतनम् ९ आसनं १० गोपनं ११ तथा ।

खण्डस्य खादनं १२ चैव तथाऽन्यन्माहराजिकम् ।

पत्राऽ १५ ग्नु १६ दक १७ रज्जूनां १८ प्रदानं ज्ञानपूर्वकम् ।

एता प्रसूतयो ज्ञेया अष्टादश मनीषिभि ॥ ३ ॥

१ तुम क्यों डरते हो ? सब कुछ निपट लूंगा इत्यादि वचन से चोर को प्रोत्साहित करने को भलन कहते हैं । २ मिलने पर कुशल वार्ता पूछना । ३ हाथ आदि से चोरी के लिये चोर को सकेत करना, ४ राज्य के महसूल को छिपाना-नहीं देना । ५ चोरी के लिये सन्धि आदि देखना या चोरी करते देखकर चुप रह जाना, ६ खोजनेवालों को चोरों के गलत मार्ग बताना, ७ चोरों को सोने के लिये शय्या आदि देना, ८ चोर के पद चिह्नों को मिटाना, ९ चोर को ढ़घर में विश्राम देना, १० चोर को प्रणाम करना-सत्कार देना, ११ चोर को बैठने को आसन देना । १२ चोर को छिपा कर रखना, १३ चोर को पक्वान्न खिताना, १४ माहराजिक-चोर को आवश्यक पदार्थ गुप्त रूप से पहुँचाना, १५ थकावट मिटाने के लिये चोर को गर्म पानी व तैल आदि देना, १६ अन्न सिम्झाने के लिये चोर को अग्नि देना, १७ पीने के लिये चोर को ठंडा पानी देना, १८ चुरा कर लाये हुए पशुओं को बाधने

के लिये छोरी बना। ये अठारह कर्म करनेवाले भी खोर गिने जाते हैं। इसलिये इन कर्मों को छोरी क प्रकृति स्थान कहते हैं।

१३ अरिहंता—

राग द्वेष आदि विकारों को चीतकर त्रिन्होंने चीतरागता प्राप्त की है, केवल ज्ञान, विशिष्ट ज्ञान निम्नियों को अरिहंत कहते हैं। शब्दार्थ के अनुसार सामान्य केवली भी अरिहन्त होते हैं। किन्तु यहाँ उनसे अभिप्राय नहीं है। तीर्थङ्कर न स कर्म को भोगने वाले घर्मोत्थम पुरुषों में यहाँ प्रयोजन है। वे सुरेन्द्र व नरेन्द्र के पूजनीय एवं अष्ट महाप्रातिहार्य के धारक होते हैं। उनका जन्म माता पिताओं का ही नहीं किन्तु त्रिकोटी क संज्ञी मात्र को प्रभोद उत्पन्न करता है। वे जन्म काल से ही तीन ज्ञान का संकर धात हैं। वीक्षा मह्य करने पर चौथा मन पर्याय ज्ञान उत्पन्न होता है। फिर भी अब तक कैवल्य प्राप्त नहीं होता। तब तक उपवेश नहीं देते। तपस्या के द्वारा अज्ञान और-माह को अब सबका क्षय कर लते तब चीतराग दशा को पाकर ही कल्याण मार्ग का उपवेश देते हैं। और अतुर्बिध तीर्थ, की स्थापना करते हैं।

जगत के परापर पर्याय मात्र, क ज्ञाता और द्रष्टा होने से व सर्वज्ञ कहते हैं। इनका ज्ञान पर किसी प्रकार का आधरण नहीं रहता। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अब सर्पिणी काल में यहाँ क्रमशः २४ अरिहन्त होते हैं।

विदेह क्षेत्र में न्यूनातिन्यून भी २० तीर्थङ्कर सबदा बिराजमान होते हैं या विहर मान कहलाते हैं, किन्तु भारत भूमि में सत्रा अरिहन्त नहीं होते। गत काल में यहाँ २४ अरिहन्त हा गये हैं। उनका नाम प्रसिद्ध हैं। विशेष जानने के लिये समस्त-याज्ञ आदि शास्त्र देखना चाहिए।

१४ चक्रवर्ती-चक्रवर्ती-

चक्रवर्ती के द्वारा दिग्विजय करनेवाला साधभौम राजा को चक्रवर्ती कहते हैं। व परमगुण रूप समस्त भारत क स्वामी ज्ञान हैं। लौकिक पुरुषों में इनसे बड़ कर पुण्यवर्णनाला दुर्गा नदी ज्ञान। मरुत, परमत्त और महाविद्, विजय—इस सब क्षेत्रों में पूजक २ चक्रवर्ती ज्ञान हैं।

भारत और परमत्त को उपदेश एक उत्सर्पिणी या अक्षमर्पिणी काल में १२ चक्र

वर्ती होते हैं। महाविदेह की तरह यहा सर्वदा इनकी सत्ता नहीं रहती। नव निधान, १४ रत्न और कसेडों ग्रामों के ये अधिपति है। चक्रवर्ती की दो ही गति है। राज्य और कामभोगों को त्याग कर ये दीक्षा ग्रहण करलें तो मोक्ष या देवलोक में जाते हैं। जो दीक्षा ग्रहण नहीं करे तो नरक में जाते हैं, किन्तु कुछ कर्म अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल के बाद तो वे भी मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। अभी गत काल में यहां १२ चक्रवर्ती हो गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं--

१ भरत, २ सगर, ३ मघवा, ४ सनत्कुमार, ५ शान्तिनाथ, ६ कुंथुनाथ, ७ अरनाथ, ८ सुभूम, ९ महापद्म, १० हरिषेण, ११ जय, १२ ब्रह्मदत्त। (समवायाग)

१५. चौदह रत्न

अपनी जाति के सर्व भ्रष्ट पदार्थ को रत्न कहने की रीति है। पार्थिव रत्न की तरह ये भी चौदह हैं। इनमें ७ पञ्चेन्द्रिय रत्न हैं और सात एकेन्द्रिय रत्न हैं।

जैसे--(१) सेनापति रूपरत्न, (२) गाथापति रत्न, (३) पुरोहित रत्न, (४) अश्व रत्न, (५) वर्द्धकि रत्न, (६) गज रत्न, (७) स्त्री रत्न, (८) चक्र रत्न, (९) छत्र रत्न, (१०) चर्म रत्न, (११) मणि रत्न, (१२) कागणि रत्न, (१३) खड्ग रत्न, (१४) दण्ड रत्न। प्रत्येक रत्न की हजार २ देव सेवा करते हैं। अतुल पुण्य से ये चक्रवर्ती को प्राप्त होते हैं।

१६. नवनिधि-नवनिधि

विशाल एव अक्षय खजाने को निधि कहते हैं। जो संख्या में नौ प्रकार की है, और (ये निधियां) तपस्या के द्वारा चक्रवर्ती को सिद्ध होती हैं। देवाधिष्ठित होने के कारण पुण्य हीन को सुलभ नहीं होती।

गंगा नदी का आरम्भ इनका मूल स्थान हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं--

नेसपे पंडुयए, पिगलते सन्वरयण महापउमे।

कालेय महाकाले, माणवय महानिही संखे ॥

जैसे--(१) नैसर्प निधि, (२) पाण्डु निधि, (३) पिङ्गल निधि, (४) सर्प रत्न, (५) महापद्म, (६) काल, (७) महा काल, (८) माणवक, (९) शख निधि। विशेष परिचय के लिए स्थानाङ्ग सूत्र के नवमस्थान को देखें।

१७ बलदेवा—

यं त्रिकलरुह के भोक्ता वासुदेव के बड़े भाई होते हैं इनके गर्भ में आन पर माता को चार उत्तम स्वप्न दिखाई दते हैं। अक्षवर्ती की तरह ये भी प्रत्येक उत्तरपिंयी और अपरपिंयी काल में नौ होते हैं। बलदेव वासुदेव का घ्राण प्रेम आधार हाता है। ये सब स्वर्ग या मोक्ष के ही अधिकारी होये हैं। इन्हें अपरपिंयी काल में नौ बलदेव हो गये हैं। उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

(१) अक्षय बलदेव, (२) विजय (३) मद्र, (४) सुप्रम, (५) सुवर्त्मन, (६) आनन्द, (७) मन्दन, (८) पद्म बलदेव (९) वलराम-बलदेव।

१८ वासुदेव—

अपने बलवीर्य से तीन कलरुह का साध्याभ्य भोगन यात्रा कम-वत्सम पुरुष को वासुदेव कहते हैं। इनके जन्मकाल में माताजी सात स्वप्न देखती हैं। इनकी आदि अक्षवर्ती से आधी होती है। १६ हजार राजा इनके अधीन होते हैं। बलदेव की तरह य भी नौ होते हैं। १६ हजार धन इनकी सेवा करते हैं। प्रति वासुदेव का मार कर ये राजा बनते हैं। पूर्व जन्म में निषाण करके ये वासुदेव हाते हैं। इसलिये प्रथम प्रहण नहीं कर पाये हैं भारतवर्ष में इम काल ३ वासुदेव हो गये हैं। उनके नाम निम्न लिखित हैं—

(१) त्रिपुत्र (२) द्विपुत्र (३) स्वयम्भू (४) पुरुषोत्तम (५) पुत्रप सिद्ध (६) पुत्रप पुण्डरीक (७) इन्द्र (८) लक्ष्मण और (९) भीष्मपुत्र।

१९ लक्ष्मण वंशज—

लक्ष्मण यज्ञज्ञ और गुणों से उत्तम होने पर ही उत्तम पुरुष कहते हैं। यह लक्ष्मण आदि शरीर के अंगों पर रचिष्ठ आदि या गुण विन्द् होते उनको लक्ष्मण कहते हैं। तिल और मप यज्ञज्ञ कहलाते हैं चैर्व। श्रीवार्ध गाम्भीर्य आदि गुण हैं। प्रकाशान्तर से मान अमान और प्रमाय से मुक्त होना लक्ष्मण कहा गया है।

जैमिनि—“माणुन्माणुप्यमाणादि लक्ष्मणस्य वंशजं तु मत्समाहं।

मूज च लक्ष्मणं, वंशजं तु पन्था ममुपपश्यं ॥

अथानु—मान, अमान और प्रमाय आदि लक्ष्मण तथा मप, तिल यज्ञज्ञ

कहाते है । अथवा सहज जन्म से होने वाले को लक्षण और पीठे होने वाले को व्यञ्जन कहते हैं ।

माणुम्माण प्पमाण—

मनुष्य की श्रेष्ठता समझने के लिये तीन बातें बताई गई हैं । मान, उन्मान और प्रमाण । इन तीनों से जो परिपूर्ण हो वह श्रेष्ठ समझा जाता है । इनको स्वरूप निम्न प्रकार है—जिस पुरुष की परीक्षा करनी हो उसको जलसे भरे हुए कुण्ड में बिठाया जाय । जब उस कुण्ड में से एक द्रौण प्रमाण पानी बाहर निकल जाय, तब उस पुरुष को मानोपेत समझना चाहिए । दूसरी बात उन्मान—पुरुषो को तुला में बैठा कर तोला जाय यदि वह तुलने में अर्द्धभार प्रमाण हो तो उन्मान युक्त समझना चाहिए । तीसरी परीक्षा प्रमाण से है डोरी से नापने पर जो मनुष्य अपनी अङ्गुल से १८८ अङ्गुल ऊँचा हो तो उसे प्रमाणोपेत कहा गया है ।

जैसे कि—“जलदोण १ अर्द्धभारं २, समुहाडं समूसिओवजो शवउ ।

माणुम्माणप्पमाणं, तिविहं खलुलक्खणं एयं ॥

इसी मानोन्मान प्रमाण- सम्पन्नता को लक्षण भी कहा गया है ।

दशार

१ समुद्र विजय २ अक्षोभ ३ स्तिमित ४ सागर ५ हिमवन्त ६ अचल ७ धरण ८ पूरण ९ अभिचन्द और १० वसुदेव । ये दश दशार कहल ते हैं* ।

२०. बहत्तर कलायें

कल्यते—सख्यायते वैशिष्ट्य मनया सा कला—जिसके द्वारा क्रिया में विशिष्टता—सुन्दरता—समझी जावे उसको कला कहते हैं । पुरुष की बहत्तर कलायें—कही गयी हैं । विभिन्न शास्त्रों में उसके विभिन्न नाम मिलते हैं । इसके समाधान में समवायाङ्ग के वृत्तिकार अभयदेव सूरी लिखते हैं कि—बहुतराणि च सूत्रे तन्नामान्युपलभ्यन्ते, तत्र च कासाचित् कासुचिदन्तर्भावोऽवगन्तव्य इति ।”

१ लेखन कला २ गणितकला ३ रूप निर्माणकला ४ नाट्यकला ५ गीत—गान कला ६ वाद्यकला ७ स्वर तान ८ पुष्कर—मृदंग आदि संगीत ज्ञान ९ समताल ज्ञान १० ध्रुतज्ञान ११ जनवाद १२ पर काव्य—आशु कवित्वकला १३ अष्टपद ज्ञान

* मैथुन मूलक कथा कथा परिशिष्ट में देखें ।

१४ एक सूत्रिका १५ पाकज्ञान १६ पान विधि १७ वस्त्र विधि १८ शयन विधि
 १९ आर्या २० प्रहेलिका २१ मागविका २२ गायत्रि २३ रसोक्त निर्माण २४ गन्ध बुक्ति
 २५ मधुसिक्त २६ आमरणात्रय ७ तक्षणी परिक्रम २८ स्त्री लक्षण २९ पुत्रपलक्षण
 ३० ह्य (अथ) लक्षण ३१ गज लक्षण ३२ गोण (गोमातीय) लक्षण ३३ कुट्ट
 लक्षण ३४ मंडा लक्षण ३५ बक लक्षण ३६ अत्र लक्षण ३७ बृहत् लक्षण ३८ अक्षि
 लक्षण ३९ मणि लक्षण ४० काठणी लक्षण ४१ चम लक्षण ४२ चन्द्र लक्षण
 ४३ रवि-चर्चा ४४ राहुचर्चा ४५ मरुचर्चा ४६ सौभाग्यकर ४७ दुर्भाग्यकर ४८ विद्या
 गत ४९ मन्त्र गत ५० रहस्यगत ५१ समा संचार ५२ व्यूर ५३ प्रतिव्यूह ५४ रत्नभा
 वार निवेश ५५ नगरमान ५६ वस्तुमान ५७ वास्तु निवेश ५८ नगर निवेश ५९ श्यु
 शास्त्र ६० चक्रप्रवाद ६१ अथ शिष्टा ६२ हस्ती शिष्टा ६३ अनुवेद ६४ हिरयवपाक
 ६५ सुवर्णपाक ६६ मणिपाक ६७ धातुपाक ६८ मुद्य (वाहुमुद्य, क्वातुमुद्य, मुष्टिमुद्य,
 मल्ल मुद्य, महामुद्य) ६९ सूय खंड वट्टुखेन, नाक्षी का खेस, चर्म खेस ७० पत्र
 खेदन, फट खेदन, ७१ संजीवन निर्जीवकरण ७२ राहुनशन ।

(पंचम अक्षर सा बायांग ७९ पृ ७८)

समिति के समवायंग में टीकाकार लिखते हैं कि कला विभाग श्री कक शास्त्री
 से जानना चाहिये। यद्यपि हिंदू कलाओं से सम्बद्ध पत्रपत्र के वृत्तरे बहुरकार
 में ७९ कलाओं का उल्लेख कुछ मित्र प्रकार से मिलता है तथापि अथ की दृष्टि से
 दोनों का एक दूसरे में अन्तर्भाव हो जाता है ।

२१ महिला-गुण

१ नृत्य कला २ औचित्य कला ३ विप्रलसा ४ व पित्र ५ मन्त्र ६ तत्र ७ ज्ञान
 ८ विज्ञान ९ बृहत् १० अक्षत मन ११ गीतगान १२ ताक्षमान १३ मेघवृष्टि १४ कला
 कृष्टि १५ आराम, रापण-बगीचा उमाना १६ आकार गपन १७ अर्म विचार
 १८ शकुन विचार १९ क्रिया कल्पन २० संकृत मपण २१ प्रसाद नीति २२ अर्म
 नीति २३ वाणी वृत्त २४ सुवर्ण सिद्धि २५ सुरमि मैत्र २६ झोला सभारण २७ गज
 मुरग परोक्षण २८ स्त्री पुत्र लक्षण २९ सुवर्ण-रत्न भद्र ३० अष्ट दश ज्ञिपि ज्ञान
 ३१ तरक लक्ष्मि ३२ वस्तु सिद्धि ३३ वंश क्रिया ३४ काम क्रिया ३५ अन्वय ३६ सार
 परिचय ३७ अज्ञान पग ३८ चूर्णवग ३९ हतजापन ४० बचन पटन ४१ माय
 विद्य ४२ वायुगव विधि ४३ सुवर्णगहन ४४ ताक्षि अयहन ४५ कज कपन ४६ पुत्र

प्रथम ४७ वक्रोक्ति जल्पन ४८ काव्य शक्ति ८६ स्फार वेश ५० सफल भाषा विशेष
२१ अविधान ज्ञान ५२ आभरण परधान २३ नृत्योपचार ५४ गृहाचार ५५ शाठ्य
वरण ५६ परनिराकरण ५७ धान्यरन्धन ५८ केश बन्धन ५९ वीणादिनाद ६०
वित्तगृहावाद ६१ अङ्गविचार ६२ लोकव्यवहार ६३ अन्तार्त्तारिका ६४ प्रश्नप्रहेलिका ।

(कल्पसूत्र ६ चतुर्थसूत्रगत २१०)

२२. नवकोटि

अहिंसा व्रत की शुद्धि के लिये साधु साध्वी नवकोटि विशुद्ध भिक्षा ग्रहण करते हैं । जैसे—१ हिंसा करना नहीं, २ कराना नहीं, ३ करते हुए का अनुमोदन करना नहीं, ४ स्वयं भोजन पकाना नहीं, ५ पकवाना नहीं, ६ पकानेवाले का अनुमोदन भी करना नहीं, ७ खरीदना नहीं, ८ खरीदवाना नहीं, ९ और खरीदनेवाले का अनुमोदन करना नहीं ।

उपरोक्त नवकोटिया मन, वचन और काय रूप तीनों योग से समझनी चाहिए ।

२३. एपणा के दश दोष—

आहार आदि ग्रहण करने को ग्रहणैपणा अथवा एपणा कहते हैं इसके दश दोष हैं । जैसे कि—‘सकियाम्बिखय-निम्बिखत्त-पिहिय साहरिय-दायगुम्मी से । अपरिणय सित्त-छद्धिय, एसण दोसा,इस हवति ॥१॥

(१) संबिय-आधा बर्म आदि दापों की शङ्कावाले आहार आदि को लेना शङ्कित दोष है । (२) मक्खिय-सचित्त वस्तु से रपर्युक्त भरे हुए हाथ या चम्मच आदि से दिये गये आहार आदि को लेना मक्षित दोष है—मक्षित के दो भेद हैं, सचित्त मक्षित और अचित्त मक्षित । पृथ्वी, जल और वनस्पति की अपेक्षा सचित्त मक्षित के तीन प्रकार हैं । सचित्त मट्टी से हाथ आदि भर जाना पृथ्वीकाय मक्षित है । अप काय में पुर कर्म है—दान के पहले साधु के निमित्त हाथ आदि सचित्त पानी से धोना पुर कर्म है । दान देकर यदि धोया जाय तो पञ्चात्कर्म है । देते समय हाथ आदि थोड़े से गीले हों तो निग्घ दोष है । जल का सम्बन्ध हाथ आदि पर स्पष्ट दिखे तो वह उद्काद्र दोष है । हाथ आदि में यदि कुछ समय पहले काटे हुए फल या पत्ती आदि का अंश लगा हो तो वनस्पतिकाय मक्षित है । अचित्त मक्षित दो तरह का है । गर्हित और अगर्हित । हाथ आदि में कोई घृणित वस्तु लगी हो तो

वह गर्हित है। घृत, दुग्ध आदि लगा हो तो वह अगर्हित है। सञ्चित सञ्चित साधु फं निये सर्वथा अक्षयनीय है। अञ्चित सञ्चित में केवल 'पृथित' वस्तुवाका गर्हित अक्षयनीय है, किन्तु घृतादि(से सू) अगर्हित नहीं।

(३) निक्षिप्त—सञ्चित पर रक्खी हुई वस्तु लेना निक्षिप्त होय है, सञ्चित के पृथ्वी आदि छ' प्रकार हैं।

(४) पिहित—वेने योग्य वस्तु सञ्चित के द्वारा उकी हो तो उस लेना पिहित होय है।

(५) साहरिय—असूजती—संपट्टेवाली—वस्तु निकालकर उस वरतन से दिया हुआ आहार लेना साहरिय होय है।

(६) दायक—दायक आदि अयोग्य दाता से आहार आदि लेना दायक होय है। घर के मालिक स्वयं बालक से दिकावे तो होय नहीं।

(७) उन्मी से—सञ्चित या मित्र के साथ मिली हुआ आहार लेना उन्मीत्र होय है।

(८) अपगिद्यत—जिसमें पूरा शक परिच्छित नहीं हुआ हो उन्मी वस्तु लेना अपगिद्यत होय है।

(९) तित्त—तरकाल की क्षिति हुई भूमि से लेना तित्त होय है। पक्कन मार्गे शार में दूध—बही आदि लेनेवाली वस्तु लेन में तित्त होय माना है। किन्तु यह ठोक नहीं लगता। प्राचीन उवाहरण और परम्परा से वह वाचित ठहरता है, अतः प्रथम अर्थ ही ठीक है।

(१०) छत्रिय—जो अंश रूप से नीचे गिर रहा हो, उन्मा आहार लेना छत्रिय होय है। इसमें जीय हिंसा का भय है।

य इस दाय साधु और गृहस्थ दोनों के निमित्त से लगत हैं।

दायक दाय ४ प्रकार के कह गये हैं जिसमें बाल, बृद्ध, उग्रत, अन्ध गुर्बिली बालपरसा आदि प्रमुक्त हैं।

२४ उगमुप्रायणसणामुद्धं

उद्गम, उत्पादन और पपला दोषां न रहित शुद्ध मिष्टा ही मुनि को ग्रहण ग्रहण करनी चाहिये। यहाँ तीन प्रकार के दाय कह गये हैं जो उद्गम, उत्पादन पपला के नाम से समझे जाते हैं। इनका गवपला और ग्रहणपला के दोष भी

हते हैं। उत्पत्ति स्थान मे गृहस्थो के द्वारा लगने वाले दोष उद्गम कहाते है। जो प्रकार के है, जैसे कि—

आहाकस्मुदेसिय पूईकस्मे य मीसजाए य ।

उवणा पाहुडियाए, पाओयर कीय पामिन्वे ॥ १ ॥

परियट्टिए अभिहडे, अटिमन्न मालोहडे इय ।

अच्छिज्जे अणिसिद्धे, अज्भोयरए य सोलसमे ॥ २ ॥

(१) आधाकर्म--किसी एक खास साधु के निमित्त से पट्काय का आरम्भ करके राचित्त या अचित्त वस्तु को सिम्हाना आधाकर्म कहलाता है। यह दोष चार प्रकार से लगता है। प्रति सेवन -आधा कर्मी आहार का सेवन करना। प्रति-व्रण--आधा कर्मी आहार के लिये निमन्त्रण स्वीकार करना। संवसन-आधाकर्मी भोगने वालो के साथ वसना। अनुमोदन-आधाकर्मी भोगने वालो की प्रशसा करना, यह आधाकर्म दोष है।

(२) औद्देशिक--समस्त याचको के लिये तैयार किये गये आहार को औद्देशिक कहते हैं। इसके दो भेद है। ओष और विभाग। इनमे अपने लिये होती हुई सोई मे भिक्षुओं के लिये भी और अतिक मिलाना ओष है। विवाह आदि उत्सव में याचको के लिये अलग निकाल कर रखना विभाग है। (यह उद्दिष्ट, कृत और कर्म के भेद से तीन प्रकार का है। फिर प्रत्येक के उद्देश, समुद्देश आदेश और समादेश इस तरह चार २ भेद हैं।) किसी साधुके लिये बनाया गया। आहार अगर वही साधु ले तो आधा कर्म। दूसरा ले तो औद्देशिक है। आधा कर्म पहले से ही किसी खास निमित्त से बनाया जाता है किन्तु औद्देशिक पहले या बाद में साधारण दान के लिये कल्पित किया जाता है।

(३) पूतिकर्म--शुद्ध आहार मे आधाकर्मादि अशुद्ध-आहार का अश मिलना पूतिकर्म है। पूतिकर्म दोष से दूषित आहार ही नहीं किन्तु वह पात्र भी सयमी के लिये अकल्पनीय है।

(४) मिश्र जात--अपने और साधु उभय के लिये पकाया हुआ आहार मिश्र जात है। यावर्द्धिक, पाखडि मिश्र और साधु मिश्र ये मिश्रजात के तीन भेद हैं। अपने और सभी याचको के लिए बना हुआ आहार यावर्द्धिक है। स्व के निमित्त

और साधु सन्धासिद्धों के निमित्त बना हुआ पात्रादि मित्र है तथा कवल अपने किये और साधु के किये बनाया हुआ आहार साधु मित्र है।

(५) स्थापन—साधु को देने के लिये आहार को अलग रख देना स्थापना शेष है।

(६) प्राशुतिका—साधु को सरस आहार पहराने के लिये जीमनवार के समय की भाँगे पीछे करना प्राशुति का शेष है।

(७) प्रादुष्करण—अग्ने में रखी हुई आहार की वस्तु लाने के लिये उजासा करना। अथवा अग्ने में से प्रकाश में लाना प्रादुष्करण शेष है।

(८) श्रित—साधुओं के लिये आहार खरीद कर लाना श्रित शेष है।

(९) प्रामित्य (पामित्ये)—साधु के लिये उधार लिया हुआ आहार लाना प्रामित्य शेष है।

(१०) परिचर्तित—साधु के लिये अवल बवल करके लिये हुए आहार में परिचर्तित शेष होता है।

(११) अभिहृत—साधु लिये गृहस्थ द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान में लाए हुए आहार में अभिहृत शेष है।

(१२) उधिभ्र—साधु को भी आवि देने के लिये कुपी आदि का मुल खोल देना उधिभ्र शेष है।

(१३) माक्षापहृत—सुविधा से हाथ नहीं आ सके ऐसे ऊँच नीचे स्थान से निखरणी आदि साधनों के द्वारा उतारकर देना माक्षापहृत शेष है। इसमें ऊपर नीचे, वाम, दक्षिण इन चार स्थानों के ज्ञान में माक्षापहृत चार प्रकार का है। इन चारों में प्रत्येक के अल्प्य, उत्कृष्ट और मध्यम रूप तीन २ भेद हैं। एही उठाकर हीके आदि से उतारके देना अल्प्य और निखरणी पर से लाकर देना उत्कृष्ट है। शेष मध्यम माक्षापहृत समझे।

(१४) आच्छेद्य—दुर्बलों से या आभितों से बल प्रयोग पूर्वक लेकर साधुओं को देना आच्छेद्य-शेष है। इसका तीन भेद हैं। स्वामिनिषयक, प्रमुविषयक, और गतनिषयक। समस्त भ्राम का मालिक स्वामी तथा अपने पर का मालिक प्रमु कहा जाता है। चार और छुट्टों को गतन कहते हैं। इनमें कोई किसी से कुछ चीज पर साधुओं को तो क्रमशः तीन द्राप रगध हैं।

(१५) अनिसृष्ट--किसी वस्तु के एक से अधिक मालिक होने पर सब की इच्छा बिना देना अनिसृष्ट दोष है।

(१६) अध्यवपूरक--साधुओं का आगमन सुन कर अपने लिये होती रसोई में अधिक सामग्री मिला देना अध्यवपूरक दोष है।

उपरोक्त उद्गम के १६ दोषों का निमित्त दाता होता है।

२५. गवेषणा उत्पादना के १६ दोष—

धाई दूई निमित्ते, आजीव वणीमगे तिगिच्छाय ।

कोहे माणे माया, लोभे य हवंति दस एए ॥ १ ॥

पूर्व्व पच्छा संथव, विज्जा मंते य चुएण जोगेय ।

उप्पायणाइ दोसा, सोलसमे मूलकम्मं य ॥ २ ॥

(१) धात्री--धाई माता के जैसे कार्यों को स्वयं करके अथवा धाई माता को नौकरी दिला कर आहार लाभ करना धात्री दोष है।

(२) दूती--दूती कर्म--गुप्त या प्रकट सन्देश पहुंचाकर आहार पाना दूती दोष है।

(३) निमित्त--शास्त्र से या कल्पना से शुभ अशुभ निमित्त बता कर आहार लाभ करना निमित्त दोष है।

(४) आजीव--प्रकट या अप्रकट रीति से अपनी जाति एवं कुल का परिचय देकर आहार लाभ करना आजीव दोष है।

(५) वनीपक--जैन, बौद्ध, वैष्णव आदि में जहा जिसका आदर हो, वहां वैसा बन कर अथवा अपनी दीनता दिखाकर आहार लाभ करना वनीपक दोष है।

(६) चिक्कित्सा--वैद्यवृत्ति से आहार पाना चिक्कित्सा दोष है।

(७) क्रोध--क्रोध कर के अथवा गृहस्थ को शाप आदि का भय दिखाकर आहार लाभ करना क्रोध दोष है।

(८) मान--अभिमान से अपने को प्रतापी, तेजस्वी, बहुश्रुत बताते हुए प्रभाव जमाकर आहार लाभ करना मान दोष है।

(९) माया--वञ्चना या छल आदि से आहार लाभ करना माया है।

(१०) लोभ--आहार में लोभ करना, आहार के लिये जाते समय लालच से

निश्चय कर क आना कि आज ता अमुक वस्तु ही खार्गे उस वस्तु क न मिलन पर उसके बिये मटकना यह लोम दाप ह ।

(११) प्राक पश्चात् संस्तव—आहार वन के पहले या पीछे होनेवाले क शुभ को गाना अर्थात् प्रसादा करना यह प्राकपश्चात्संस्तव श्लोक ह ।

(१२) विद्या—देवी जिसकी अपिष्ठात्री हा और जप या हवन स जो सिद्ध हो, वह विद्या कही जाती है, उस विद्या के प्रयोग से आहार लाभ करना विद्यापिण्ड श्लोक है ।

(१३) मन्त्र—पुरुष प्रधान अक्षर रचना, जिसके जप मात्र से सिद्धि सुलभ हो, उस मन्त्र कहते हैं । मन्त्र क प्रयोग से आहार लेना मन्त्रपिण्ड रूप श्लोक है ।

(१४) पूर्ण—अष्टम्य करनेवाले मुखे आदि के प्रयोग से जो आहार लाभ किया जाय, उसे पूर्णपिण्ड श्लोक कहते हैं ।

(१५) योग—पैर में जप आदि सिद्धियाँ दिखाकर जो आहार लाभ किया जाय, उसे योग पिण्डश्लोक कहते हैं ।

(१६) मूल कम—गमन्तन्म, गर्माधान गर्मापात आदि भय भ्रमण के हेतु मूल साधन कम मूल कर्म कहे जाते । इसके द्वारा आहार लाभ करना मूल कम श्लोक है ।

उत्पादना के १६ श्लोक साधु को लगते हैं इनका निमित्त माधु ही होता है ।

२६ दश विध सत्य—

—“अथर्व १ समय २ इच्छा ३ सामे ४ रूपे ५ पशुष्व मन्त्रेषु ६ ।
व्यवहार माय ७ न, जोगा ८ य वसमे अथर्वमन्त्रेषु १० ॥ १ ॥

—जनपद समय स्थापना नामरूप प्रतीतसत्यञ्च

व्यवहार माय योगाश्च दशम भौषम्य सत्यञ्च ॥ १ ॥

जो वस्तु जिस रूप में हो उसी रूप से उस कहना यह सत्य का स्वरूप है ।
ब्रह्मा भी ब्रह्मा क भेद से यह सत्य पर प्रहार का होता है ।

जैसे कि (१) जन पद सत्य किसी देश में जल को पिच्छ माता को भाई और पिता को भाई कहते हैं यह उस देश के लिये सत्य है । इस जनपद सत्य कहते हैं ।

(२) समय सत्य या सम्मत सत्य—जैसे पशुष्व कीषण से पैदा होनेवाली वस्तु, जैसे कि मेंढक, शीप शैवाल आदि है किन्तु पशुष्व से कबल कमल ज़िबा जाता है, यह

सम्मत सत्य हैं। (३) स्थापना सत्य--रूप से मिले या न मिले किन्तु किसी भी पदार्थ में किसी जीव अजीव का संकेत करना जैसे शतरंज की मोहरों में हाथी घोड़ा आदि कहना यह स्थापना से सत्य है। (४) नाम सत्य--जैसे किसी निर्धन को लक्ष्मीधर कहना कमजोर को भी महावीर कहना नाम सत्य है। (५) रूप सत्य--गुण न होने पर भी वेपमात्र से असाधु को साधु कहना यह रूप सत्य है। (६) प्रतीत-सत्य-अर्थात् अपेक्षा से सत्य जैसे हाथ की अंगुलि को एक की अपेक्षा बड़ी दूसरी की अपेक्षा छोटी कहना यह प्रतीत सत्य है। (७) व्यवहार सत्य--जैसे चल कर पहुँची है गाड़ी, किन्तु लोक कहते हैं कि गाँव आ गया यह व्यवहार सत्य है। (८) भाव सत्य--गुणों की विविधता में भी एक को प्रधान मान कर कहना जैसे शुक्र में लाल वर्ण होने पर भी उसे हरा कहना भाव सत्य है। (९) योग सत्य--व्यक्ति कोई और है, किन्तु दण्ड छत्र पगड़ी आदि में किसी के सयोग होने से उसे दण्डी, छत्री आदि नाम से पुकारना योग सत्य है। (१०) उपमा सत्य--जैसे तुलनात्मक दृष्टि से किसी का कोई अवयव जिसमें मिलता हो उसे उसी नाम से पुकारना जैसे नाक ऊँची हों तो गरुड, गरदन लम्बा हो तो ऊँट, आख बड़ी रहो तो कमल-नयन आदि कहना यह उपमा सत्य है।

२७. द्वादश भाषा—

बोलनेवाला या लिखनेवाला जिसके द्वारा अपने भाव समझाये जाय, उसको बोली या भाषा कहते हैं। इनमें कोई २ विद्वान् भेद कहते हैं जैसे कि साहित्यादि से अपुष्ट बोली है और साहित्य से परिपूर्ण भाषा है। जो कुछ हो, किन्तु यहाँ भारत की प्रसिद्ध भाषाओं से मतलब है। यों शास्त्रों में १ सत्य भाषा, २ मृगभाषा, ३ मिश्र और ४ व्यवहार भाषा, ऐसे चार प्रकार करके इनमें तीन को दश दश प्रकार की बतार्डे है और व्यवहार भाषा को १२ प्रकार की कही है। लेकिन यहाँ प्राचीन समय की आर्य भाषा की गणना है, जो संस्कृत, प्राकृत, सौरसेनी, मागधी, पँशाची और अपभ्रंश, ये छ भाषायें गद्य तथा पद्य भेद से बारह प्रकार की गिनी गई है। १८ देशों की भाषा इनसे भिन्न प्रकार की हैं।

२८. सोलह वचन

उच्यतेऽनेन इति वचनम्--वाणी के प्रयोग को वचन कहते हैं। जैसे (१) एक

वचन—जैसे—अणि, जिन, द्रव्यम् आदि। इसके द्वारा एक ही पदार्थ का वचन होता है। (२) द्विवचन—यह द्विवचन दो सख्याओं में वस्तु का वचन करता है। जैसे—पुरुषौ।

(३) बहुवचन—बहुत के लिये कहा गया वचन बहुवचन है जैसे—नमो अस्माकं, सिद्धा, इत्यादि।

(४) स्त्री वचन—यह स्त्रीलिंगवाची पद को कहता है। जैसे नदी, बाणी आदि।

(५) पुरुष वचन—पुंलिंग को कहनेवाला पद पुरुष वचन है जैसे—अथ त्रिनीडर्ष यंभोकः।

(६) नपु संक वचन—गगनं मरुद्वलम् आदि नपु संकलिंगवाली वस्तु जिस वचन से कहा जाय।

(७) अध्यात्मवचन—बिना इच्छा के सहसा मन की बात निकल आना अध्यात्म वचन है।

(८) अपनीय वचन—प्रशंसा वचन जैसे यह साधु क्रिया पात्र है।

(९) अपनीत वचन—जिसके द्वारा वस्तु के दोष प्रकट किये जाय जैसे—यह शिष्ट मवती है।

१) अपनीतापनीत वचन—प्रशंसा के साथ निन्दा करना जैसे—मुनिराज व्यसयन्ती अच्छे हैं किन्तु क्रिया में शिथिल हैं।

(११) अपनीतोपनीत वचन—धुराई बता कर मलाई कहना। जैसे यह मुनि विद्वान् तो नहीं किन्तु क्रियापात्र हैं।

(१२) अतीत वचन—जिसके द्वारा भूतकाल की बात कही जाय। जैसे मगवान महावीर हीपावली को मोक्ष पधारें से।

(१३) प्रत्युत्पन्न वचन—इसके द्वारा वर्तमान काल की बात कही जाती है जैसे—बन्धामि यन्त्र करता हूँ।

(१४) अनागत वचन—यह भविष्य काल की बात कहता है। जैसे कृष्ण १०वें तीर्थहर हाग।

(१५) प्रत्यक्ष वचन—जिसके द्वारा समझ की बात कही जाय। जैसे पर लोगो, अथ पुरुष।

(१६) परोक्ष वचन—परोक्ष की बात कहना परोक्ष वचन है जैसे वह विवेह मे जन्म लेगा ।

उपरोक्त सौलह वचनों से वस्तु का यथार्थ कथन किया जाता है । उपयोग पूर्वक इन वचनों का प्रयोग करने वाले मुनि उपदेश देने में अविकारी माने गये हैं ।

देखिए आचाराङ्ग सूत्र ।

२६. उपधि उवगरणं—

उप-सामीप्येन संयम द्धाति-पोपयति चेत्युपधि —अर्थात् संयम की साधना मे सहायक होनेवाले पदार्थों को उपधि या उपकरण कहते हैं । कर्म-शरीर और बाह्य भाण्डोपकरण तथा सचित्त अचित्त और मिश्र रूप तीन प्रकार की उपधि मे से यहां बाह्य भाण्ड उपकरण रूप अचित्त उपधि से ही प्रयोजन है । अचित्त उपकरण भौ औधिक और औपग्रहिक दो प्रकार के होते है । सामान्य रूप से सब के उपयोगी उपकरणों को औधिक और समय विशेष व व्यक्ति विशेष के लिये काम आनेवाले को औपग्रहिक कहते हैं । यहां स्थविर कल्पी की दृष्टि से औधिक उपकरण गिनाये हैं । जैसे -१ पात्र, २ पात्र घन्वन-भोली, ३ पात्र केसरिका-कम्बल का टुकडा, ४ पात्र स्थापन-पात्र रखने का कपडा, ५-६-७ तीन पटल-पात्र ढकने के वस्त्र, ८ रजसाण-पात्र मे लपेटने का वस्त्र जिसको आज रस्तान कहते हैं, ९ गोच्छक-पूजनी, १०-११-१२ प्रच्छादक-ओढने के तीन वस्त्र जिनमे दो सूती और एक ऊनी, १३ रजोहरण, १४ चोलपट्टक धोती के स्थान पर बाधन का वस्त्र, १५ मुखानन्तक-मुखवस्त्रिका आदि ।

जिन कल्पी के लिये औधिक-उपकरणों का ही विधान मिलता है अधिक से अधिक उनके लिये १२ उपकरण बताये गये हैं । जैसे कि--१ पत्तं २ पत्ता बंधो ३ पायट्टवणच ४ केसरिया ५ पडलाह ६ रयत्ताण ७ गोच्छओ ८-९-१० पायनि-जोगे तिन्नेवय पन्द्धागा ११ रयहरण चैवहोई १२ मुहपत्ति । एसो दुवात्मविहो, उवहो जिणमपियाणतु ॥२॥

कम से कम भी रजोहरण मुहपत्ती तो विशेष प्रकार के जिन कल्पी को भी रखना ही चाहिए । कहा भी है--

जिण कपिया उदुविधा, पाखीपाता पडिग्गहधराय ।

.पाउरण मपाउरणा, एवकेका ते भवे दुविधा ॥

दुर्गतिग चतुर्लङ्कं, पयार्गं खव दस एगदसर्गं ।

एते ऋद्द विगप्या, जिख कप्ये होंति उवहिस्स ॥

जिन कल्पी मुनि दो प्रकार के हैं, करपात्री और पात्रघारी । सबस एव अथस ऐसे प्रत्येक कं दो दो प्रकार होते हैं । ओ करपात्री हैं उनके रजोहरण मुखसञ्चिका रूप अथस्य दो उपधि हैं । पात्र महीं रख कर भी ओ वस्रघारी हैं उनके ३ ४ या ५ उपधि हाती हैं । पात्रघारी जिन कल्पी क वस्र रहित ६ प्रकार की उपधि होती हैं । वस्रघारी जिन कल्पी क छहृष्ट १२ प्रकार की उपधि होती हैं ।

स्वविरकल्पी साधुओं क लिये उपरोक्त १२ क अतिरिक्त एक प्रतिमह और बोल पट्ट ऐसे औरह उपकरण बसाए हैं । आरिंकाओं क लिये ११ उपकरण विशेष हैं जैसे—अथमहानन्तक १ पट्ट २ अर्धोठक ३ चलनिका ४ अथ्यन्तर निवसनी ५ वहि निवसनी ६ कन्नुक ७ औपकसिकी ८ एक कसिकी ९ सपाठी और स्कंधकरणी १० ११ सब मिल कर पचीस बहे गये हैं ।

औपमहिक महिक उपकरण यष्टि आदि ओ वृद्धावस्था आदि कारण से त्रिष आत हैं, ये अनेक प्रकार के हैं । नखशोघनी हन्तशाघनी आदि । जैसे कि कहा है—

हंढए लष्टिया वेव, चम्मए चम्मकोमए ।

चम्मञ्छरस्यपट्टे पिल्लिमिली धारएगुरु ॥

अथान् दएह, लाठी, चम चमकोरा, चम्मखेहन, पिल्लिमिली गुरु धारण करत हैं ।

फिर—थेराण थेरभूमि पत्तार्ण पत्पति दृष्टपवा १ मंढपया २ छतगया ३ मत्त गंवा ४ लष्टियापया ५ भिसिया ६ वेतवा ७ अष्टधिति मिद्रियावा ८ चम्मएवा ९ चम्म कोमवा १० चम्मपलिञ्छरस्यपया ११ अरिगद्वि एयासि उवत्ता गाहापति कुत्त मत्तापया पायापया ५ त्रिसिस्तपया निबिन्धमित्तपया ।

पतमान म ओ पुस्तक पट्टी लखनी आदि रक्ते आत हैं व भी ज्ञानहरण की रक्षा में साधन ज्ञान से औरमहिक उपकरण हैं ।

३० वैयावच—

मया माय का वैयावच दइत हैं । अर्थान् चम साधना क लिये विधि पूर्वक चमरान व चम्पादि प्रदान करता गइ वै गवच का भाव है । जैता कि—

वैयावच्चं वावडभावो इहधम्म साहगन्निभित्तं ।

अन्नाडमाण विहिणा सस्पायण संस भावाओ ।'

सेवनीय की अपेक्षा सेवा-वैयावच्च के भी दस प्रकार हैं। जेमें कि-आयरिय १, उवज्जाण २, धेर ३, तवर्णा ४, गिलाण ५, सेहाण ६, माहम्मिय ७, कुन ८, गण ९, सघ १० नगरं तमिह कायव्व ।

अर्थान्--१ आचार्य, २ उपाध्याय, ३ स्थविर, ४ तपस्वी, ५ ग्लान-रोगी, ६ शिष्य, ७ स्वधर्मो, ८ पुत्र, ९ गण-अनेक कुल, १० सघ-गण समूह। इनकी योग्य सेवा करनी चाहिये।

शास्त्र में नामान्य और विशेषरूप में अत्यन्त बाल आदि वैयावृत्त्य के क्षेत्र बताये हैं। आगे लिखा है कि धिना किम्मी मतलब के निर्जरार्थी मुनि दस प्रकार की वैयावच्च को बहुत तरह से करे। यद्वा 'गण सघ चेइयट्टे य निज्जरट्टी' पद दिया गया है। टीका गार अर्थ करते हुए लिखते हैं कि 'गण-कुल समुदाय, कोटिकादिक सघ स्तत्मसुदाय रूप चत्थानि-जिन प्रतिमा एतासा योऽर्थ प्रयोजनं स तथा। तत्र च निर्जरार्थं वर्मन्त्यकाम'। अर्थान् गण, सघ और जिन प्रतिमा के प्रयोजन पर निर्जरार्थी सेवा करे। ऐसा अर्थ किया है। लेकिन 'चेइयट्टे य निज्जरट्टी' इसमें चेइयट्टे य और निज्जरट्टी ऐसे तीन पद हैं, परन्तु उपरोक्त अर्थ से केवल दो पदों का ही बोध होता है, तीसरे का नहीं। अत्र 'पानादि से उपष्टभ करने रूप वैयावच्च का अर्थ भी प्रतिमा के साथ घटित नहीं होता। इसलिये इसके वास्तविक अर्थ की गवेषणा करनी आवश्यक है। चित्तसंज्ञाने वातु से अत्यन्त में चेतित रूप बनता है और जिसका प्राकृतिक रूप 'चेइय' होता है। जिसका अर्थ है ज्ञान। हरिभद्रसूरि ने चित्त से भी 'चित्तेत्य भाव कर्म वा' इस अर्थ में उच्यते करके चैत्य बनाया है। जैसे कि वे लिखते हैं--'चित्तम-अन्त करण तन्य भावे कमणि वाष्य-विकृते चैत्यं भवति, तत्रार्हता प्रतिमा-प्रशस्त समाधि चित्तोत्पादनादर्हन्-चैत्वानि भवन्ते'।

(आश्व० हरीभद्री वृ० पृ० प० ५८७)

अन्य टीकाकारों ने भी 'चित्ताल्हादकत्वाच्चैत्यम्' माना है। इस प्रकार प्रसो-दभाव या चित्त में हर्ष उत्पन्न करनेवाले साधु, ज्ञान और प्रतिमा आदि में चैत्य शब्द का अर्थ घटित हो सकता है। यद्वा पर भी बहुतसे आचार्य 'चेइयट्टे' आदि पदों का अर्थ ज्ञान के लिये निर्जरार्थी ऐसा करते हैं, किन्तु प्रीति भी चित्त का भाव

है इसलिये कुछ गण और सभ के प्रीत्यर्थ निर्जराधी पसा अर्घ करना अधिक संगत होगा। इसलिये यहाँ प्रसन्नता क लिये ऐसा अर्थ किया है। क्योंकि चैत्य की पैयावृत्ति अन्य किसी भी मूल शास्त्र में उपलब्ध नहीं होती। द्वाविध पैयावृत्त में भी चैत्य का स्थान नहीं है। अतः प्रमायित होता है कि चैत्य मूर्ति की पैयावृत्ति मानना मौलिकता से बाहर है। (६५ पृ० का०)

३१ उग्रह

रहन के लिये गृहपति से स्थान आवि की अनुमति होने को अग्रह कहते हैं। जैसे वसति स्थान भी अग्रह कहाता है। अनुमति लाने रूप अग्रह पाँच प्रकार का है। जैसे—१ इन्द्राग्रह २ राजाग्रह ३ गाथापति-अग्रह ४ सागारिक अग्रह ५ स्वर्गी अग्रह।

प्रतिदिन मुनि इसीलिये अनुष्ठा लेते हैं कि उनका अग्रयत्रत विष्टुय बना रहे। इनमें ऊपर ऊपर का अग्रह नीचे वाले से बाधित हाता है। जैसे—कभी दश में वहाँ के राजा की अनुमति के अभाव में इन्द्र का अग्रह काम नहीं दगा जैसे ही राजा की अनुमति के स्थान में गाथापति और गथापति की अनुमति वहाँ आव सक है वहाँ शय्यावर, तथा शय्यावर के अधीन बस्तु के लिये स्वर्गी साधु की अनुमति काय साधक नहीं होगी।

३२ उपाश्रय

उपाश्रयते-सेव्यते संयमाब्धमपालनाय, शीतादित्राणाद्यवात्रनेयं स उपाश्रयं अर्थात् वहाँ आत्मा और संयम करे रक्षा हो वैस स्थान का उपाश्रय कहते हैं। साधु के लिये निम्नोक्त उपाश्रय प्रशस्त कहे गये हैं। १ वेद्यकुल-देहरा, २ सभा ३ प्रपा-प्याऊ, ४ आवसथ मठ, ५ वृष्टमूल, ६ आराम-पगीषा, ७ कन्दरा ८ आकर-स्थान ९ पहाड़ी गुहा, १० कर्म-कषराला ११ उषान-कृष्णवाही १२ यानराला-रक्षाला १३ कुप्यराला-त्रिराखा रत्न का घर, १४ मयडप १५ शून्य घर १६ शराम १७ लयन-पवन में कारा दुम्ना घर आर १८ दुष्कान श्म प्रकार अन्य भी प्रसम्भा घर जीव रक्षित सहज पन हुए निर्दोष स्थान मुनियों के लिये प्रदण्ड करन योग्य है।

३३ विगई—

विगृहीत विदा करन बाल पशुओं का विगई कर्त है। प सब नों है किन्तु वहाँ गिनाय दुः पशाय दरा है।

जैसे कि-१ क्षीर, २ दही, ३ सर्पि-घृत, ४ नवनीत, ५ तेल, ६ गुड-खोंड, ७ मत्स्यगुडी-मिश्री, ८ मधु, ९ मद्य और १० मास, इनमे नवनीत, मधु मद्य और मास सर्वथा वर्जनीय है।

नोट—तीन दंड से लेकर ३३ आशातना तक के बोलों का परिचय श्रमणावश्यक सूत्र को टिप्पणी में दिया है। अतः जिज्ञासु पाठक उनको सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल (ज धरुर) से प्रकाशित श्रमणावश्यक सूत्र में देखें।

३४. प्रवचन माता

द्वादशांग रूप प्रवचन को माता के समान रक्षण करने वाली प्रवृत्तियाँ प्रवचन माता कहती हैं जो आठ हैं। जैसे— १ ईर्यासमिति २ भाषा समिति ३ एपणा समिति ४ आदान निक्षेपणा समिति ५ परिष्ठापनिका समिति ६ मनोगुप्ति ७ वाग्गुप्ति ८ कायगुप्ति। कल्याणमार्ग की सध्वना में इनकी जानकारी अत्यावश्यक मानी गई है। ज्योपराम की विचित्रता से किसी साधक को विशिष्ट श्रुत का ज्ञान नहीं हो तो भी दशना-अष्ट प्रवचन माता का ज्ञान तो हाना ही चाहिये।

विशेष परिचय के लिये उत्तराध्यायन का २४वाँ अध्याय देखें।

३५. अष्ट कर्मग्रन्थि—

१ ज्ञानावरणीय २ दशनावरणीय ३ वेदनीय ४ माहनीय ५ प्रायु ६ नाम ७ गोत्र और ८ अन्तराय ।

इन आठ कर्मों की आत्मा से सध्वन्धित वर्गणा ही ग्रन्थि कहाती है। इनमें ४ घातो कर्म हैं, जिनमें मोह प्रधान है। मोह कर्म के मन्द होने पर ही यह ग्रन्थि शिथिल पड़ती है। जैसेकि कहा है—

गंठिति सुदुग्भेओ, कक्खड-घण-रूढगूढ गंठिक्व ।

जीवस्स कम्मजणिओ, घणारागदोस परिणामो ॥



कथा-विभाग

सीता निमित्तक संग्राम कथा—

मिथिला नगरी के राजा जनक को विदेहा नामक भायाँ और भामरदत्त नामक पुत्र तथा जानकी सीता नाम की पुत्री थी। विद्याधरों ने द्वायिष्ठित एक धनुष को स्वयंवर मण्डप में लाकर रखा था। तथा सीता ने भी प्रतिज्ञा की कि जो इस धनुष को ताड़गा मैं उसी को परण करूंगी। जनक आकाश बिहारी और स्वर्गीय देव समूह भी इस प्रसंग में कुतूहल दर्शन को आये हुए थे। विविध भूपतियों के राज प्रवर्तन के पश्चात् अयोध्यापति महाराज वरारथ के पुत्र राम और लक्ष्मण ने सब के मनोरथ भंग कर दिया और देखते ही देखते राम ने धनुष को गुण महित छोड़ दिया, फिर क्या था, पत्नी समय साधुवाद के संग सीता राम के साथ ब्याही गई।

महाराजा वरारथ पुत्र हो चुके थे, अतएव बृद्धावस्था के कारण राम को राज्य देकर उन्होंने सन्यास ग्रहण करना चाहा। किन्तु भरत की माँ कैकेयी ने ब्रह्म पूर्वक राजा का पूर्व प्रतिज्ञान हो वरदानों की याद दिला कर उन्हें अपने वश में कर लिये। पितृवधन को पावन करने के लिये श्रीराम ने सद्दर्प बनवास स्वीकार किया और राज्य भंग के लिये छोड़ दिया। लक्ष्मण और सीता भी राम के पतविहार में साथ थे। (दण्डकारण्य में विहार करते हुए लक्ष्मण ने एक आकाशरथ क्षत्रजल देखा, क्षत्रियोचित स्वभाव से उन्होंने खड़ा लेकर कुतूहल से बरा लाल पर मारा। सहसा उसके बीच में अम्बुनखा का बटा और रामण का भागितेय शम्भुक नाम का विद्याधर जो बिद्या साधन कर रहा था कट गया। पश्चात्ताप करते हुए लक्ष्मण ने इस दुषटना का धर्यान राम को सुनाया। इधर अम्बुनखा को पुत्र की मृत्यु से बड़ा श्रम हुआ। वह खोज करत राम की बुटिया के पास आया। राम लक्ष्मण के रूप को देख कर मोहित हो गई। उसने राम और लक्ष्मण के सम्मुख अपनी माँग प्रस्तुत की। किन्तु उस दोनों ने अम्बुनखा को याचना स्वीकार नहीं की। फलतः शरदूषण को उसने अपने रग में ग कर सारा पटना निबोहन कर दी। शरदूषण चला लेने का लक्ष्मण से कुछ करन जाता आया। इधर परम्परा से रामण का भी आपत मात्स्य की मृत्यु की खबर प्राप्त हुई। आकाश मार्ग से आत हुआ धन में अनिष्ट

सुन्दरी सीता के रूप को देख कर वह सारा हाल भूल गया। काम की विकलता से उसने कुल की मर्यादा और सहज विवेक को छोड़ कर सीता के हरण का निश्चय किया। विद्या के प्रभाव से वह इच्छानुसार रूप बना सकता था। इसलिये लक्ष्मण के सग्राम स्थल में राम को छलने के लिये उसने सहनाद किया। आवाज सुन कर जब राम उधर दौड़े, तब रावण मायामृग के छल में अकेली सीता को हरण कर अपनी नगरी ले चला। मार्ग में राम के प्रीत्यर्थ उससे जटायु ने युद्ध किया। उसको पक्षहीन कर दिया गया। रावण के द्वारा सीता को वश में करने का हर प्रकार से प्रयत्न किया गया। लेकिन वह अनुकूल न हुई। पीछे राम ने सीता को गवेपणा करनी आरम्भ की। रत्नजटो के मुख में हनुमान ने सीता का कुशल समझ कर राम को निवेदन किया। राम भी भाई लक्ष्मण और हनुमान, सुग्रीव, भामण्डल आदि विद्याधरो के साथ समुद्र बाध लका गये। वहा रावण के साथ सीता के लिए युद्ध किया। रावण को सकुल नाश कर अपने पक्ष में स्थित उसके भाई विभीषण को लका का राज्य देकर सीता के साथ अपनी नगरी लौट आये। यह सीता निमित्तक युद्ध का सक्षिप्त परिचय है।

२—“द्रौपदी के लिये संग्राम”

कपिलपुर में द्रुपद नाम का राजा था। उसकी राणी का नाम चुल्लनी था। उसके पुत्र का नाम शृष्टार्जुन और पुत्री का नाम द्रौपदी था।

समय पाकर स्वयंवर विधि से युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डवों के साथ द्रौपदी का विवाह हुआ।

पूर्वकृत निदान कर्मके कारण पांच पाण्डवोंकी पत्नी होने परभी वह सती कहलायी। पाण्डु महाराज अपने अन्त-पुरमें बैठहुए एकदिन महारानी कुन्तीऔर पाण्डवों के साथ गोष्ठी कर रहे थे। इस बीच में वहा नारद ऋषि आकाश मार्ग से उतर आए। सपरिवार पाण्डु राज ने उनका उचित सत्कार किया। किन्तु द्रौपदी ने मिथ्यादृष्टि तथा वेपमात्र का ऋषि समझ कर उनका सम्मान नहीं किया। इस पर नारद बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने अपना चमत्कार दिखाना चाहा। किसी समय वे धातकी खड के पूर्व भरत में अमरकका नामक राजधानी के राजा पद्मनाभ की सभा में जा पहुँचे। राजा ने ऋषि का अभ्युत्थान आदि सत्कार किया और बोला कि ऋषिवर ? आप विविध स्थानों में घूमते हो। क्या मेरे अन्त पुर जैसा अन्य

किसी क वहाँ श्री वर्ग का सौन्दर्य सार देखा है ? अर्थात् न उत्तर दिया-राजम् । आप कृपमण्डक सी बात कर रहे हैं । इतिनापुर के राजा पारुष श्री पुत्र वधू क सामन तुम्हारी रानिवा सौन्दर्य भावि प्रसन्नोचित गुणों में नगरव हैं । उसके परराज्य के वरार मी तुम्हारी रानिवा नहीं हो सकती हैं ।

यह सुनकर श्रौपरी के प्रति पद्मनाम का अनुराग बढ़ गया और पूर्वमाहृतिक देव की सहायता से वह साती हुई श्रौपरी का हाथ अपने बगीचे में रखवा लिया । आशुत क्षण पर श्रौपरी ने देखा कि एक राजा कामुक बनकर सामन खड़ा है, और कुछ कह रहा है । उसकी प्रयत्न काम वृत्ति देखकर वह बोली कि राजम् ? मैं अपने पर स प्रथक् हाकर दुखी हूँ । मुझ कम से कम छ मास का भयकारा मिलना चाहिए । राजा ने स्वीकार किया । अर्थात् श्रौपरी ने बले की उपम्या और पारुष में आशुतिल की प्रतिज्ञा कर ली ।

अर्थात् इतिनापुर में श्रौपरी के नहीं मिलने से समाटा छा गया । इन्दीवी ने द्वारिका जाकर श्रीकृष्ण का सब निवृत्त किया । कृष्ण ने गवेपथा आरम्भ की । एक दिन नारद से माहृत हुआ कि पद्मनाम के महल में श्रौपरी के सामन आकृति कर पड़ी थी । कृष्ण ने उतकी मारी बात समझी । ये पण्डितों को साथ लेकर श्रौपरी का हाथ क लिय पत्र पढ़ और समुद्रतट पर जाकर समुद्र के अभिपति सुनियतरेव का आराधन किया । अर्थात् द्वारा मार्ग मिलनेपर श्रीकृष्ण पापों पाण्डितों का लेकर रथ सहित अमरकका के वाग में जा पहुँचे । पद्मनाम को उतलाने के लिये कृष्ण ने पहल दाकक सारथि का भजा । पद्मनाम ने उत का तिरस्कार कर युद्ध के लिये मरी बजबा दी । विशाल सैन्य और शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो उसने पाण्डितों के साथ भयङ्कर युद्ध किया, पण्डित काग पररा कर श्रीकृष्ण के परण में व्यथित हुए । तब स्वयं भी कृष्ण युद्ध के लिये चल पड़े । अर्थात् शीघ्र पूका । अर्थात् मन्व का दुर्नीमारा भाग छूटा । गाण्डीय धनुष पर प्रयत्ना बजाकर टपार करन ही दूसरा भाग भी सैदान छान दिया । अब मात्र एक निहाइ बल शीघ्र वया ता पद्मनाम प्राण भय से मगर से प्रथरा कर गया । सब श्रीकृष्ण ने मरसिंह का रूप धारण कर भूमि पर पैर मारा तब नगर कोट फँसु आर राजमण्डल तट पर धरा कर भूमि पर गिर पड़े । राजा मर्मागत हाकर श्रौपरी के परण में शरण स्वी से आ गिरा । श्रौपरी के दिग्गम हुए गया से अब पद्मनाम ने कृष्ण के पात उमा मांकी आर श्रौपरी को

लौटा दी। तब कृष्ण ने भी उसे जीवन दान देकर मुक्त कर दिया। द्रौपदी को साथ लेकर पाण्डव अपनी नगरी चले आये।

यह द्रौपदी के लिये युद्ध की सचित्र कथा है।

३ “रुक्मिणी के लिए संग्राम”

कुण्डनपुर नगरी के नृपति भीष्मक को रुक्मिण नाम का पुत्र था, तथा रुक्मिणी नाम की कन्या थी। प्रसंगवश किसी समय नारदजी कृष्ण की महाराणी सत्यभामा के घर द्वारिका आये। कार्यान्तर में व्यग्र (लगी) रहने के कारण सत्यभामा ने ऋषि का समुचित स्त्कार नहीं किया। इस पर सहज क्रोधी नारद अत्यन्त क्रुद्ध हो गए और कुण्डनपुर आकर रुक्मिणी को कहने लगे कि तुम वृष्ण की प्रियतमा बनो तभी तुम्हारे जीवन की साथकता है। नारद ने कृष्ण का वर्णन इस प्रकार से किया कि रुक्मिणी का अनुराग, कृष्ण के प्रति सहज ही जग गया। साथ ही रुक्मिणी का चित्र द्वारिका लाकर कृष्ण को दिखाया। जिससे कृष्ण का अनुराग भी रुक्मिणी के प्रति जग गया।

कृष्ण ने रुक्मिणी के लिये याचना की, किन्तु उसके भाई रुक्मिण ने स्वीकार नहीं किया। उल्टे महावली शिशुपाल को आमन्त्रित कर उसके साथ अपनी बहन के व्याह की तैयारी करने लगा। रुक्मिणी ने किसी तरह यह संवाद कृष्ण को भिजवाया। खबर पाकर बलदेव के सग कृष्ण भी उस नगर में पहुँच गये। इवर रुक्मिणी भी देवपूजन के वहाने मखियों के सग बाहर आई। दोनों के दिल मिले थे ही, फिर क्या था, कृष्ण रुक्मिणी को रथपर बैठाकर द्वारिका के लिए चल पडे। दूतियों के द्वारा समाचार पाकर अभिमानी रुक्मिण ने कृष्ण से युद्ध करना चाहा, शिशुपाल ने भी विशाल सैन्य को लेकर साथ दिया। युद्ध में बलदेव के हलमुसल रूप दिव्यास्त्र से दोनों के सैन्य भाग छूटे। रुक्मिण और शिशुपाल ने दीन भाव से अपने प्राण बचाये।

‘ यह रुक्मिणी के लिये युद्ध हुआ।’

४ पद्मावती के लिये संग्राम—

अरिष्ट नगर में महाराज हिरण्यनाभ नामक राजा राज्य करते थे ये बलराम के माना थे। उनकी पुत्री का नाम पद्मावती था। बड़ी हाने पर राजाने उसके लिये

स्वयंवर का आयोजन दिया। निमंत्रण पाकर वड़े २ राजा और राम केराव के साथ कई राजकुमार भी उस स्वयंवर में उपस्थित हुए। हिरण्यनाभ की भाव सुवा (भतीजी) का सम्बन्ध यक्षराम के साथ पहले ही कर दिया था। पद्मावती के लिये स्वयंवर में उपस्थित सभी राजा अभिलाषी थे, किन्तु उसन कृष्ण के गले में वरमाळा बांध दी। छट्ट होकर सभी राजाओं न युद्ध में कृष्ण को जीतकर पद्मावती के ग पाहा। परिणाम स्वरूप कृष्ण के साथ राजाओं का संघर्ष समाप्त हुआ। कृष्ण मुद्रत भरमें सभी का हरा दिया। पद्मावती का लेकर अपनी राजधानी गए।

यह पद्मावती के लिये संभ्रम का सक्षिप्त वणन हुआ।

५ तारा निमित्तक युद्ध—

किण्डिकापुर में आदिश्वर्य नामक विद्याधर के दा लहके थे, एक का नाम वासि और दूसरे का नाम सुमीव था। आदिश्वर्य के पुत्र वासिने अपना राज्य सुमीव का कर स्वयं दीक्षा धारण करली। राज्य का स्वामी सुमीव बना। उसकी स्त्री का नाम तारा था। वह बड़ी सुन्दरी थी। किसी समय तारा की स्थावि से दीवा हुआ साहसगति नामक विद्याधर न सुमीव का रूप बनाकर उसके अन्तःपुर में प्रवेश किया। तारा ने विन्हीं से जानकर मन्त्रि मण्डल का भ्रमण करवाया। उसन अपनी काम सिद्धि के लिये ध्यान वाले सुमीव को नकली करकर ठगवा दिया। वे साथ दानों सुमीव के रूप को देखकर आश्चर्य में पड़ गए। ठीक निष्प मही हान सं वनों का पर से बहर निकाल दिये। वे ईप्यावरा सडा रुगे लडा म दानों घराघर रहे। तब हृविमन्त्रगरी अमत्य सुमीव अर भर सुनाव द नों न हनुमान नामक विद्याधर रामा के पास जाकर निवेदन किया वह आया और दानों का घराघर मही समझ सकन के कारण बिना कुद्र उपकार किये ही अपा पर साट गया।

जब सङ्घर्ष के द्वारा पाला लडा जीत लेने पर श्रीराम बही पर राज्य सम्हा लने श्रगे तब इन बात का जानकर श्रीराम के घरलों में प्रार्थना की गई। तत्काल सङ्घर्ष सहित राम-विशिष्टापुर आये। उधर सुमीव न मुद्रा पर वाल मारा जिसका सुनकर वह मून्ना सुमीव रथान्द हारण रसिक बना हुआ बछा आया। उन दानों में काद अन्तर मही देवन स रामचन्द्र तदर्थ भाषते राङ्गे रहे। मत्य सुमीव का मदावना मही दे मफ। जब मत्य सुमीव दूसरे ने दुभी किया गया।

तब राम के पास आकर उसने निवेदन किया कि देव ! आपके देखते भी मुझको कष्ट मिल रहा है तो मुझे कौन बचाएगा ? रामने कहा कि तुम अपना चिन्ह बता कर फिर युद्ध करो। वैसा करने पर भूठे सुग्रीव को रामने शर प्रहार से मार दिया। सत्य सुग्रीव बहुत दिनों तक तारा के सथ सौंसारिक सुख का अनुभव करता रहा। रामचन्द्र के द्वारा युद्ध में कृत्रिम सुग्रीव के मारे जान पर तारा और सुग्रीव का संकट टल गया। वे रामका उपकार मानने लगे।

(यह तारा निर्मितकर युद्ध का संचित वर्णन है)

६ रक्त सुभद्रा के लिये संग्राम—

सुभद्रा कृष्ण वासुदेव की बहन थी। वह पाण्डुपुत्र अर्जुन पर कामानुरक्त थी इसलिये उसका नाम रक्त सुभद्रा पडा। वह एक दिन अर्जुन के समाप आई। कृष्ण ने उसको लौटाने के लिये बलराम को भेजा। किन्तु सुभद्रा पर अनुरक्त हुए अर्जुन ने रण रसिवता से बलराम को हराकर सुभद्रा के साथ शादी करली। पोछे अभिमन्यु नामका बालक पैदा हुआ।

यह रक्त सुभद्रा के लिये संग्राम का संचित वर्णन हुआ।

७ सुवर्ण-गुलिका के लिये संग्राम

सिन्धु सौवीर देश के नृपति उदायन की राजमहिषी का नाम प्रभावती था। देवदत्ता नामकी उसको एक दासी थी। किसी समय देवदत्ता को दिव्य प्रभाव वाली गुलिकार्यें प्राप्त हुईं, जो अद्भुत चमत्कार से भरी थी। उसके खाने से कुरूप सुन्दर तथा मूक वाचाल बन जाते थे। कल्पतरु के समान वह अभिलषित फल देने वाली थी। गोली में से एक खाकर देवदत्ता स्वर्णवर्ण देह वाली हो गई। इससे लोग उसको स्वर्ण-गुलिका कहने लगे। देह की सुन्दरता पाकर वह चिन्ता करने लगी कि अब मैं किससे व्याह करूंगी, क्योंकि उदायन मेरे पिता तुल्य हैं और शेष लोग गुण की कमीके कारण मेरे योग्य हैं ही नहीं। इस तरह केवल उज्जयिनीपति राजा चण्डप्रद्योतन ही उसके मनमुताधिक जचे। उनको ध्यानमें रखउसने फिर दूसरी गोली खाई। इधर गोली के चमत्कार से चण्डप्रद्योतन को भी सुवर्णगुलिका की कार्यवाही ज्ञात हुई। वे हाथी पर चढ रात में सुवर्णगुलिका के द्वार पर चले आये। बुताकर उमको अपने साथ चलने को कहा। (कुञ्ज शर्तो पर) वह भी राजी हो गई और चण्ड

प्रद्योतन क साथ उज्जयिनी बली गई। प्रातःकाल उद्यायन को पता चला कि सुवर्ष गुलिका का किसी ने अपहरण कर लिया और विशेष शोच स यह भी हाठ हुआ कि मारा खेल परब प्रद्योतन राजा का है। इससे उद्यायन बड़ा क्रुद्ध हुआ, और अन्य बली इस राजाओं के संग यह उज्जयिनी पर बढ़ आया। परबप्रद्योतन के द्वारा दासी को नहीं लौटाने पर इतनों में मस्कर युद्ध हुआ। धनुर्वेद के प्रभाव से परबप्रद्योतन क हाथी पर चोटकर उद्यायन राजा ने परबप्रद्योतन को अपने बरा कर लिया। जब उद्यायन विजय मिलाकर अपने देश की ओर पीछे जाने लगा तब पशुपण्य पर्व क दिन निकल आ गया। अतः वराणसपुर-मन्सौर के पास उमन मैम्य सहित अपना पडाव किया। संवत्सरो के पहल दिन सैन्य को बुलाकर आदेश दिया कि इसो कल महापव है। अतएव किसी भी जीव को कष्ट नहीं पहुँचाना। फिर समाह्य स कहन लग-—कल संवत्सरी महापर्व होने से मैं हा दिन भर पीपपत्रन की आराधना करन वाला हूँ किन्तु यह परबप्रद्योतन ओ अभी मरे बंधन में है, फिर भी राजा होने स इसको भाजन में कोई कष्ट नहीं होने दना। इसकी इच्छा क अनुमार भाजन बना देना। कितनी धम की निष्ठा? सुवर्षगुलिका के शिव लङ्गन वाला उद्यायन भूपति पर्वाराधन में शत्रु को भी मित्र समझता है। समापना करन समय उक्तन परबप्रद्योतन की प्रीति क लिये दासी सहित उसे बन्धन मुक्त करना स्वीकार किया और दूसरे दिन परबप्रद्योतन क मस्तक पर मयूरपिच्छ से दासीपति यह नाम अङ्कित कर (विदा किया) टाड़ दिया।

उद्यायन की समापना आदर्श है।

८ रोहिणी के निमित्त संग्राम

अग्निष्टपुर नगर में गधिर नामका राजा राज्य करता था। उसकी सुमित्रा नाम की राणी तथा शिरण्यनाम नाम का पुत्र और शहस्री नामकी एककन्या थी। राजाने पुत्रीक विवाह करनस। स्वयंवर करनकी घोषणाकी। जरागांध और समुद्रविजय आदि विविध राजा स्वयंवर में उपस्थित हुए। गधिर आगन पर बैठकर रोहिणी की प्रतीक्षा करन लग। समय पर शहस्री स्वयंवर मंडप में आई और प्रतिक्रिय में चाह मा के द्वारा राजाओं का परिषय भला हुई आग बड़ी। गुप्त रूप स वसुदेव ने बाणध्वनि द्वारा राजा अन्तः परिषय दिया। प्रियम राजन भी इस भावस वसुदेवके गभने बर बना। राज की। इसस उपस्थित सभी राजा क्रुद्ध हुए। उन्होंने तग बान् बान् न

लड़कर रोहणी को अधीन करना चाहा । वसुदेव भी रोहणी की सहायता से जोरों से लड़ा और सबको परास्त कर रोहणी को ले चला ।

नोट--काञ्चना, अहिन्निका, किन्नरी, सुरूपा और विद्युन्मती की कथाएं अज्ञात हैं । ऐसा टीकाकार का कहना है । फिर भी विद्वानों को गवेषणा करनी चाहिए ।

(अनुवादक)

म्लेच्छ जाति और अनार्य देश

१ आन्ध्र देश २ अरोप ३ अणक ४ आभाषिक ५ अरव ६ उद ७ कुहण
८ कुलात्त ९ केकय १० कोकणक-कोंकण ११ क्रौंच १२ खस १३ खासिक १४ गाय
१५ गौड-वङ्गाल) १६ गंधहारक-गाधार १७ चिलात-विरात १८ चीन १९ चुंचुक
२० चू लेक २१ जल्ल २२ डोबिलक २३ डोत्र २४ तित्तिक २५ द्राविड-द्रविड २६ नेहर
२७ पक्कणि २८ पन्धव २९ पारस ३० पुलिन्द्र-पुलिद्र भोपाल से उत्तर ३१ पोकण
३२ वकुश ३३ वर्धर ३४ वहलीक ३५ विल्वल ३६ भडक ३७ मलय ३८ महुर
३९ महाराष्ट्र ४० मरुक ४१ मालव ४२ माप ४३ मुरंड ४४ मूढ-मौष्टिक ४५ मेद्र
४६ यवन-(यूनान) ४७ रुरु ४८ रोस ४९ रोमन ५० ल्हासिक ५१ शक जाति
५२ शबर जाति ५३ सिंहल-लंका ५४ हूण जाति (चतुर्थ सूत्र)

इस प्रकार म्लेच्छ जाति और देशों को मिला कर ५४ सख्या गिनाए गए हैं ।

महापुरुषों के उत्तम लक्षण

१ सूर्य २ चन्द्र ३ शखवर ४ चक्र ५ स्वस्तिक ६ पताका ७ यव ८ मत्स्य ९ कूर्म
१० रथ ११ योनि १२ भवन १३ विमान १४ तुर्ग १५ तोरण १६ गोपुर-पुरद्वार
१७ मणि १८ रत्न १९ नन्दावर्त नवकोण का स्वस्तिक २० मूसल २१ हत २२ कल्प-
वृत्त २३ सिंह २४ भद्रासन २५ सुरूपि-आभरण २६ स्तूप २७ मुकुट २८ मुक्तावली
२९ कुण्डल ३० गज ३१ वृषभ ३२ द्वीप ३३ मन्दिर अथवा मेरु ३४ गरुड ३५ ध्वजा
३६ इन्द्रकेतु ३७ दर्पण ३८ अष्टापद-पाशा ३९ धनुष ४० बाण ४१ नक्षत्र ४२ मेघ
४३ मेखला-कन्दोरा ४४ वीणा ४५ जुआ ४६ छत्र ४७ माला ४८ दामिनी ४९ कम-
डलु ५० कमल ५१ घंटा ५२ जहाज ५३ सूची ५४ सागर ५५ कुमुद ५६ मगर ५७ हार
५८ पृथ्वी ५९ अंकुश ६० भृंगार ६१ घाघर ६२ नूपुर ६३ नग ६४ नगर ६५ वज्र
६६ किन्नर ६७ मयूर ६८ राजहस ६९ सारस ७० चकोर ७१ चक्रवाक ७२ चामर

७३ स्रुत ७४ पठियसक-बाण ७५ वीणा ७६ सालवृन्त-पखा ७७ अभिषेक ७८ खड्ग
७९ कलश ८० वर्द्धमान-शरावा (तृतीय सूत्र)

(प० अ० द्वा०)

स्त्रियों के वत्तीस लक्षण

१ छत्र २ श्वजा ३ यूप ४ स्तूप ५ दामिनी-डोरी ६ कमण्डल ७ कलस ८ वापी
९ स्यन्तिक १० पताका ११ यव १ मन्स्य १३ फूर्म १४ प्रधान रथ १५ कामद्व १६
अक १७ भाज १८ अकुरा १९ अग्रापद २० सुप्रतिष्ठक २१ देव या मयूर २२ कदमी
का अभिषेक २३ तोरण २४ वृष्णी २५ समुद्र २६ प्रधान भवन २७ प्रधान गिरि २८
द्वय २९ गज ३० यूपम ३१ सिंह ३२ चामर । (प० अ० द्वा०)

देवों के नाम

भवनपति जाति के देव

१ असुर कुमार २ नाग कुमार ३ गरुड कुमार ४ विष्णु कुमार ५ अग्नि कुमार
६ शीप कुमार ७ वृषधि कुमार ८ विष्णु कुमार ९ पवन कुमार १० स्थिति कुमार ।

अन्यतर जाति के देव

१ अग्रपतिक २ पक्षपतिक ३ अग्निपिक ४ भूतवातिक ५ क दित ६ महा
कदित ७ वृष्णाद ८ पतगद्व ९ पिशाच १० भूत ११ यक्ष १२ राक्षस १३ किन्नर
१४ त्रिपुररुप १५ महोरग १६ गन्धर्व । ४, ५, अधम द्वार

ज्योतिष्क देव

१ बृहस्पति २ अन्द्र ३ सूर्य ४ शुक्र ५ शनिभर ६ राहु ७ पूमरुद्र ८ युध ९ मंगल

कल्पों के नाम

१ सौम्य २ दृगान ३ वनस्पुमार ४ मादन्द्र ५ अग्रभोक्त ६ मान्तर ७ महागुण
८ महागार ९ आखत १० प्राखत ११ आखत १२ अखत । (प० अ० द्वा०)

आहार के रूप

१ उदित २ व्यापित ३ रगित ४ पर्यवसान ५ प्रदीप ६ प्रादुर्दृश्य ७ अपमित्य
८ विगमान ९ शीतकृत १० प्राभूत ११ अनारकृत १२ पुण्यार्थ कृत १३ समुत्पार्थ कृत
१४ बनोपार्थ कृत १५ पद्मार्थ कृत १६ पुत्रार्थ कृत १७ मीति कृत १८ शक्ति १९

अतिरिक्त २० वाचालता युक्त २१ आहित २२ स्वयंगृह (स्वगृहीत) २३ मृत्तिकोप-
लित २४ अच्छेद्य २५ अनिसृष्ट २६ अन्तर्वहिर्वा स्थापित २७ हिंसा सावद्य युक्त कृत
कारित ।

ब्रह्मचर्य की ३२ उपमायें—

१ नक्षत्र मण्डल में जैसे चन्द्रमा प्रधान है वैसे व्रतो मे ब्रह्मचर्य व्रत बड़ा और
प्रधान है । २ मणि आदि रत्नों की खानो मे समुद्र के समान । ३ मणियों में वैदूर्य
मणि के समान । ४ आभूषणो मे मुकुट के समान । ५ वस्त्रों में कपास के वस्त्र के
समान । ६ पुष्पों में कमल के समान । ७ चन्द्रनों मे गोशीर्ष चन्द्र के समान ।
८ औषधि स्थानों में हिमवान के समान ९ नदियों में शीतोदा नदी के समान ।
१० समुद्रों मे स्वयंभूरमण के समान । ११ माण्डलिक पर्वतो में रुचक पर्वत के
समान । १२ हाथियों में पेरवत हाथी के समान । १३ जंगली पशुओं में सिंह के
समान । १४ सुपर्णकुमारों में वेणुदेव के समान । १५ नागकुमारों में धरणेन्द्र के
समान । १६ वारह देवलोकों में ब्रह्मदेव लोक के समान । १७ सभाओं में सुधर्म
सभा से समान । १८ स्थितियों में अनुत्तर विमानवासी देवो की स्थिति के समान ।
१९ दानों में अभयदान के समान । २० कम्बलों में रत्न कम्बल के समान ।
२१ शरीर के सहननों में वज्र ऋषभनाराच सहनन के समान । २२ संस्थानों में सम-
चतुरस्र सरान के समान । २३ चार ध्यानो में शुक्ल ध्यान के समान । २४ पाच
ज्ञानों में केवल ज्ञान के समान २५ छह लेश्याओं में शुक्ल लेश्या के समान । २६
मुनियों में तीर्थंकर के समान । २७ क्षेत्रों में महाविदेह क्षेत्र के समान । २८ पर्वतों
में सुमेरु पर्वत के समान २९ वनों में चन्दन वन के समान । ३० वृत्तों में जम्बू
वृत्त के समान । ३१ तुरगपतिओं में राजा के समान । ३२ रथिकों में महारथी के
समान ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतों में बड़ा और प्रधान है ।

ऐतिहासिक पुरुष

राम, केशव, वासुदेव, देवई-देवकी, रुक्मिणी, रक्त सुभद्रा, रोहिणी, पद्मावती
द्रौपदी, सीता, समुद्रविजय, प्रद्युम्नकुमार, प्रदीपकुमार, सभकुमार, अनिरुद्ध कुमार
निसर्ग कुमार, उलमुक कुमार, गज कुमार, सारंगकुमार, सुमुखकुमार, दुर्मुख कुमार,
चारणमल्ल, महाशकुनि, पूतना, कंस, जरासध, केशरीसिंह दत्त नाग-काली नाग,
अरिष्टवृषभ, स्वयंभू, प्रजापति, महावीर, जम्बू कुमार, वसुदेव ।

वाद्य

१ मुरज २ मूर्दंग ३ पणव-पङ्खा ४ वदुर ५ कण्ठमि ६ वीणा ७ विपचि
 ८ कल्लकी पोखा बिरोप ९ यतीसक १० सुभोप-पंटा ११ नंही-बाख प्रकार का धुर्य
 पाण १२ सुस्वरा १३ परिवारिनी १४ बरा-बासुठी १५ तूणक १६ पबक १७ संत्री
 १८ तलताल-हस्तताल १९ त्रुटित ।

किसी वाद्य-कला के आचार्य से इनका परिचय प्राप्त करना चाहिये ।

सुगन्धित द्रव्य—

१ पुष्प २ कोष्ठ ३ सगर ४ पत्र तमाल पत्रादि ५ त्वभा-झाल ६ दमनक ७ मठभा
 ८ पचारस ९ पिठमंस-पका हुआ गंध १ गोशीर्ष-सरस चन्दन ११ कूर १२ लबंगा
 १३ अमर १४ कूडूम १५ कंकोल १६ खीर १७ खेत चन्दन १८ सारंग इत्यादि ।

(पंचम संवर इाट)

जलाशय

१ घुझिका २ पुच्छरणी ३ पापि-चतुष्कोण वावडी ५ दीर्घिका ६ गंजालिका
 ७ मर ८ मरपंक्ति ९ सागर १० बिल कुधा ११ खार्ड १२ मरी १३ उलाव-खोप के
 बनाया हुआ १४ बनिख-जड़, पत्रा ।



प्रश्न व्याकरण सूत्र की पाठान्तर सूची !

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
प णवहं	पाणिवहं	अ
पाणवहो	पाणिवहो	"
मरणवेमणसो	मरणचेव मणसो	"
कोलसुण क	कोलसुणका	"
दीविया	दीविय	"
सरव	सरग	ग०
गोधुदर	गोधुदुर	अ
सुगुस	सुगुसी	"
खाड्डिल	खड्डिला	"
घाउपपय	घाउपिय	ग०
सेताय	सेतीय	अ
चकीव	कीव	"
सउण पिपीलिय	सउण पीविय	ग०
जीवजीवक	जीव जीवग	अ
कवोयक	कवोयकाग	"
वेसर	मेसर	"
सालग (करक)	कर करक	"
दतट्टा	दतट्टी	"
चित्तिवेत्तिय खात्तिय	वेदिखात्तिय	ग०
जलावण	जलग्ग जलावण	अ
केते	किते	"

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
मुरंदा इमडग	मुरंढो उडु भडग	ग०
विस्मल	विस्मल	अ
मदुर	मगर	१
मुष्टिय भारब	मुष्टिय मरहाटा महा अरड	५
मसगा	मसग	१०
रुहिरुत्रियल	रुहिरा किल	११
उस्तासेव	उस्तसित	१२
मुयह ममरामि	मुयमे मरामि	अ
गंहुलय	तहेर वेंदियेसु गहुयल	५
मग्जयगास्य	मग्जय ताजय गास्य	अ
अंधयगा	अंधयगा	५
हीयाहीयमत्ता	हीय वीयसत्ता	अ
भया व नत्व अहियाहि	भयति मुयति नत्व	११
आइटा	आइटा	५
विरयण अलिय	विरयण माया अलिय	अ
पुणम्मवकरं	भव पुणम्मवकरं	११
अउंग विमत्तवल	अउंग समत्तवल	५
गाठपट्टे सप्पहारणुअयकरे	गाठपट्टपहार कर सुअयकरे	११
रिय	रुपिय	११
अयइडु	वायइडु	११
इयतरकेहि	इयतरकेहि	११
कह कहितपहसित	कहकहकरतपहसिम	अ
कास	कस	११
संकाइ मोडयाहि	संकोडय मोडयाहि	अ
नेत्तपहारसय	पंतपहारसत	५
काप्परपहार संभमा	काप्परपहार पायदिवा संभमा	अ
वम्भयाण भीता	वम्भयाण्णोया	अ

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
खरकरसएहिं	खरकर सएहि	
समभिद्दुत्ते	समभिभूए	अ
पुणोविपच्चज्जति	पुणोविपडिवच्चति	व
सायगारवो वहार गहिय कम्मपडि०	सायगारवो असुह्ज्जकवसायहि	
	अपहार कम्म पडिवद्ध०	व
रुहं	रु द	अ
अफलवतकाय	अपच्चतकाय	”
मणसंखेवो	मणसंखोभो	”
चाणूर मूरगा	चूरगा	”
सद्दूलसिह	सद्दूलरिसह	”
सुपइह्ठ अमरसिरिया०	सुपइट्टमयूर'सिरिया	व
लोभकलिकसाय	लोभकलिसगामकसाय	”
भवनवर विमाण	भवन वाणव्वतर विमाण	
चउत्थभत्तिएहि एवं जावछ्ममास भत्तिएहि-	चउत्थभत्तिएहिं छट्ट भत्तिएहि	
	अट्टभत्तिएहिं दसम भत्तिएहिं एवं	
	दुवालस चोइस सोलस अद्धमास	
	दोमास तिमास चउमास पच	
	मास छ्ममास भत्तिएहिं ।	व
पावियाते पावग न किंचिवि	पावियाते पावक अहम्मिय दारुणं	
	निसस वहवध परिकिलेस बहुलं	
	जरामरण परिकिलेस सकिलिट्टं न	
	कयावि वइए पावियाएउ पावगं	
	किंचिवि	अ
अक्खोव्वंजणानु लेवणभूय	अक्खो वजणवणाणु लेवण भूयं	ग
महासमुहमज्जेविमूढा	महासमुहमज्जेचिठति न य	
	निमज्जति मूढा	अ
असिपन्नरगया	असिपजर सत्तिपजरगया	”

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
सुरंटा इमडग	सुरंटा उडु मडग	ग०
बिस्सल्ल	बिस्सल्ल	अ
महुर	ममार	१
सुद्धिय भारव	सुद्धिय मरहाटा मट्टा अ र क	ब
मसगा	मसग	११
उद्धिस्सिपण	उद्धिरा किम	११
उस्सासेठ	उस्ससित्त	११
सुवह ममरामि	सुव्वम मरामि	११
गंहुल्लम	उहेअ वेदिसेसु गंहुल्लम	अ
मग्गळगाहाण	मग्गळ ताळण गाहाण	ब
अंधयगा	अंधयगा	भ
हीयाहीणमत्ता	हीय हीणमत्ता	ब
भण व नरिय अदिवाहि	भणति सुयति नरिय	अ
आइटा	आइटा	११
विरयणं अनिय	विरयणं माया अनिय	ब
पुण्णम्मवफरं	मव पुण्णम्मवफरं	अ
अउरग विमत्तल्ल	अउरग ममत्तल्ल	११
गाडदुठ छापहारगुग्गवफर	गाडदुठपहार फर गुग्गवफरे	ब
इरिय	इरिय	११
अपइट्ट	आणइट्ट	११
इण्णत्तरफदि	इत्थत्तरफदि	११
कद व दिनपहमित्त	कहकइकरत्तपहमित्त	११
कम्म	कम्म	अ
संकाह माटण्णहि	संकाहण माटण्णहि	ब
मत्तपहारणय	पत्तपहारणय	अ
कान्णपहार संभग्ग	कान्णपहार पायदिवा संभग्ग	ब
आअवाग्ग भीता	आअवाण्णयोवा	अ

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
खरफरुसएहिं	खरकर सएहि	
समभिद्दुत्ते	समभिभूए	अ
पुणोविपवञ्जति	पुणोविपडिवञ्जति	व
सायगारवो वहार गहिय कम्मपडि०	सायगारवो असुहञ्भवसायहि	
	अपहार कम्म पडिवद्ध०	व
रुहं	रुद	अ
अफलवतकाय	अपच्चतकाय	”
मणसखेवो	मणसंखोभो	”
चाणूर मूरगा	चूरगा	”
सद्दूलसिह	सद्दूलरिसह	”
सुपहट्ट अमरसिरिया०	सुपइट्टमयूर'सिरिया	व
लोभकलिकसाय	लोभकलिसगामकसाय	”
भवनवर विमाण	भवन वाणव्वतर त्रिमाण	
चउत्थभत्तिएहि एवं जावछम्मास भत्तिएहिं- चउत्थभत्तिएहिं छट्ट भत्तिएहि	अट्टभत्तिएहिं दसम भत्तिएहिं एवं	
	दुवालस चोइस सोलस अद्धमास	
	दोमास तिमास चउमास पच	
	मास छम्मास भत्तिएहिं ।	व
पावियाते पावगं न किंचिवि	पावियाते पावक अहम्मिअ दारुणं	
	निससं वहवध परिकिलेस बहुलं	
	जरामरण परिकिलेस सकिलिट्टं न	
	कयावि वइए पावियाएउ पावगं	
	किंचिवि	अ
अक्खोवजणानु लेवणभूयं	अक्खो वजणवणणु लेवण भूयं	ग
महासमुद्दमज्जेविमूढा	मज्जेचिठति न य	-
	१ मूढा	अ
असिपल्लरगया	र सत्तिपजरगया	”

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
सुपशिष्टिष्यं एष जाव आपविष्यं	सुपशिष्टिष्यं इमेहि पञ्चद्विषि कार यहि मण्यवयस्य काय परिक्रिष्यहि शिष्टं आमरणं सं च भोगो य यम्बो धिर्भयामर्भमवा अयासवो अकलुप्तो अचिद्धो अपरिस्ताई असंकलिष्टो सख्यजिखमण्युप्यथाभो एवं तद्वयं संरक्षारं फ्राष्टियं पाजियं सोष्टियं तीरियं किष्टियं अणुपाक्तियं आणाय आराहिर्भं भवइ एषं यायमुपिष्ठा भगवता पय्यभियं परुभियं पसिद्धं सिद्धवर सासण मिष्य आपमियं	५
सुमासिष्यं	सुसाष्टिय	१
धीर सू	धीर सू	११
सुकयमम्भय	सुकयरकलय अम्भय	५
संनद्योष्मइय	संनद्यद्व्यष्मगिय, संनद्यद्व्योष्मगिय	अ-ब
मभिय जुभिय	मदियमदिय जुभिय १-मदिय जुभिय	ग
वाचसिष्ठ (य) इतिष्य	वाचसिष्ठ न बत्त केस समारवया इय इतिष्य	५
अदिरतिमुष्य एष	अदिरतीमुष्य अणोमुष्य एष	११
बिसुद्ध मूलो	बिसुद्धमूलो	५
अस निदिष्ट पीष्य पवर	असनिधिष्य पीष्य पीवर	११
तव संशम	तवसंवर भंजम०	५
जंगमाय विट्ठा	जगायं विट्ठा	५
इसमसगस्तीय परिरकय्यद्वुपाय	इधमसग सोरसिष्यपरिरकय्य द्वुपाय	५
सोमभाषयाय	सोमभाषयाय	११

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
पयपर निक्षये	पयपर पर निलये	घ
निन्मंभि	निन्मंभि	ग
हृदिय	गुरिय	घ
नरंजयव्यं जाय न सडं	नरंजयव्यं न निक्षयव्यं न गुम्भयव्यं न विणिघायमावञ्जि- यव्य न तुभियव्यं न तुसियव्य न हर्मियव्यं न सडं	घ
अंतरया जाय चरेञ्ज	अंतरया मगुणया मगुन सुदिभ दुदिभ राग दोस परिणहियया मादु मगु चयण कागुत्ते सवुडे परिण- हिन्दिण चरेञ्ज	घ
रुमियव्यं जाय	रुमियव्यं न हिलियव्यं जाय	घ
नमुम्भयव्यं न विणिघायं	न मुम्भयव्यं न हर्मियव्यं न तुभियव्यं न तुमियव्यं न विणि- ग्याय	॥
हिययदंत मजण	हिय यंत दंत भंजण	॥
एरुसरगा	एका रसगा	॥
वसमुचेवदियसेसु	वसदससुचेवदियसेसु	॥



पाठान्तर-सूची

५०	५०	मूल पाठ हस्त०	पाठ मेह आ० मंदिर
६	१६	छट्टेइ २ ता	छट्टेइता
३	१९	उवागच्छइ २	उवागच्छइता
३	२०	करेइ २	करेइता
३	२०	नमंसइ	नमसइता
३	२२	अगम्म	अति अगस्त
३	२७	अञ्ज मुहम्म धरे	अञ्ज मुहुम्मधिरे
८	२७	बिष्णामो	बिसाखो
११	०	विहाणक फए	विहाणरुए
११	१६	का उदर	का ओदर
११	२३	आढामेतीय	आढामती
११	२३	सउण विपीलिय शीविय	सउण शीविय (पीलिय)
११	१८	एवमायी	एवमायी
१०	१६	पुठविमये	पुठवीमय
१२	१६	पुठविमंसिए	पुठवीसंसिये
१०	१	सुइमूद	सूयीमुह
१२	४	पोंडरीय सालग करक	पाडरीय सालग (करक)
१२	१४	वत्थोदर	वत्थोदार
२५	१५	देहिहत्या	देहिहत्या (शीविया)
२६	११	ठिमिम्ममु	तमिम्ममु
६	१९	अमुमपुवग्गविसाई	अमुमर्गपुवग्गविसाई
३४	५	नामिमाय	नामिमाय
३५	१६	इगंता	पार्मता
३६	१	सुव्वर	सुव्वर
३६	१६	विण्णुत्तिगंमग्गो	विण्णुत्तिगंमग्ग (निगयंमग्गीवा पा.)
३०	१८-१९	हाइत्ताणिय व्हरंइगण	हाइत्ताणिय व इगण
३०	१९-१६	निमज्जणाणिय	निमज्जणाणिय व

पृ०	पं०	मूल पाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मंदिर
४६	२४	संपउत्ता (तहेव वेईदिएसु)	निमज्जणाणिय संपउत्ता
४७	४	पुणो २ तर्हि २	पुणे तर्हि
४७	६	भज्जण	मज्जण
४७	१५	मूकाय	मूकाय (अवियजल मूया पा)
४७	१६	विण्हिय सचिल्लया	विण्हिय रूपे (पिस पा)
४७	१६	णारगाओ उव्वट्टिया	णारगाओ उव्वट्ट ति
४७	२२	पारतोइओ	परतोइओ
४८	२	मरणवेमणस्सो	मरणवेमणसो
५३	२०	कूड कवड मवत्थुग	कूड कवड मत्थुगंच
५६	२५	निययी (डी)	निययी
५६	२६	अवहीय	अवहीयं (अवायिअं पा.)
५६	२७	अणुघलेवओत्ति	अणुव (अन्नोअपा) लेवओत्ति
६०	१-२	एयं जदिच्छाएवा	एय वा जदिच्छाएवा
६०	३	किंचि कयकं तत्तं	किंचि कयकतंतं
६०	६	इमो विविस्सभवाइओ	इमोवि विसधायओ
६०	१७	अहरगति गमणं अन्न पि	अहरगति गमणं कारणं अन्नं पि
६०	१८	परमट्ट भेदकमसकं (असत्कं)	परमट्ट भेदकमसकं
६०	२१	अलियाहि सधि सनि०	अलिया हिंसति सनि०
६१	५	साहिति मगराणं	साहिति मगराण (मग्गिणं)
६१	६	घालवीणं	घालवीणं (वायलियाणं पा.)
६१	६	वध वध जायणंच	वधवध जावणंच
६२	२	दुज्जतु	दुज्जतु
६१	२	साहिति य	साहिति
६१	१६	आहेवण आर्वि	आहेव (हिंव पा) ण आर्वि
६१	१८	पावकम्म करणं	पावकम्म करणं
६१	१८	गामघातियाओ	गामघातवाओ
६१	२५	पियय दासि	पियय (खादत, पिबतदत्त पा) दासि

पृ०	पं०	मूल पाठ इत्यन्तः	पाठ मेघ० भा० सहिर
६१	६७	करितु कर्म	करितु (करितु पा) कर्म
६१	६८	वह्नराई चत्तय	वह्नराई (द्विद्यधामसितभूमि वह्नरायि पा) चत्तय
६१	६	उपस्थितं तु	उपस्थितं तु
६२	१०	मुद्गसु नक्षत्रसुसिद्धिः	मुद्गसु सिद्धिः
६२	१२	भूवायकार	भूवायकर
		अक्षिपाया	अक्षियपायो
६२	१-२०	होति	होति
७७	२१	वहिरघनाय	वहिरघनाय
७७	२२	अर्धं विक्रय करणा	अर्धं (कपा) त विक्रयकरणा
७७	२८	अधिद्वार	अधिद्वार
८२	१३	पत्याह मह्यं	पत्याह मह्यं
८४	१०	कूरिकर्ष	कूरिकर्ष (कुसुदुयकर्म पा)
८४	११	तक्षरतण्डित	तक्षरतण्डित
८४	११-१२	इत्यक्षत्तयं, चयं	इत्यक्षत्तयं (क्षत्त पा)
८४	१३	अोशीको	अ (प्र अो, वीको
८६	१७	शोकवन्ध	शोकवन्ध
८७	१	रुपिप्यहि सेन्नेहि सपरिबुद्धा	रुपिप्यहि (सेन्नेहि पा) सपरिबुद्धा
८६	१२	पह्ना हय	पह्ना हय
८६	१-३	मादिबरवन्म गुडिया	मादिबर (गूड पा) वन्मगुडिया
८६	५	सुयत पय	सुयत मति पा) पय
८६	२३	समरभडा भावडिब	समर भडावडिब
८६	२५	पुरफळगावरयं	पुरफळगावरयं
९०	१	कुण्डिकाक्षिय	कुण्डिकाक्षिय
९०	२०	कज्ञोत्त संकुल	कज्ञोत्त संकुलबर्ध
९०	२६	पूर.सुष्कंत गंभीर	पूर.सुष्कंत गंभीर
९०	२६	पुग धुगंत सई	पुग धुगंत सई

पृ०	प०	मूलपाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मंदिर
६१	५	हृत्पदच्छ तरकेहिं	हृत् तरकेहिं -
१०२	६३	भैसणगभयाभिभूया	भैसणगा (गभया पा०) भिभूया
१०३	१	मद् पुण्या	मद्-पुत्रा
१०३	७-८	उरक्खोडी दिन्नगाढ	उरक्खडो दिन्न गाढ
१०३	-२३	तुरिय उग्घाडिया पुरवरे	तुरिय उग्घाडिया पुरवरे
१०४	८-६	वज्जयाण भीता तिल तेलचेव-	वज्जयाण पीया (याण भीता पा०) तिलं तिलं चेव
१०४	२४	निरिक्खिया	नि. रिक्खि (रक्कि) या
१०४	२५	(अलज्जाविया) अलज्जा-अलज्जा	
१०४	२६	चेयण दुग्घट्ट घट्टिया	चेयण दुग्घ ट्टिया
१०५	७	सयणस्स वि	सयण रस विय
११३	२३	कहिं पि,	कहिं चिं
११४	१३-१४	पधावित्त वसण	पधावित्त (वाहिय पा० वसण
११४	१८	अत्ताणा सरण	अत्ताणस्सरण
११४	२४	गमण कुडिल	गमण कडिल
११५	२६-२७	उम्मग्ग निमग्ग	उम्मग्ग निमुग्ग
११५	२८	उब्बुड्ढ निवुड्ढयं	उब्बुड्ढ निवुड्ढय
११६	१-२	अदिण्णा दाणं हरदह	अदिन्नादाणं हरदह
११६	४	समत्त तिवेमि	समत्त तिवेमि
११६	१३	छोभा सिप्प	शाभा सिप्प
११३	२६	संसारावत्त	ससार (रा) वत्त
११५	११	चिर परिगय मणुगय	चिर परिचित मणुगयं
१२३	१६	सेवणाधिकारो	सेवणाधिकारो
१२८	९-१०	उस्सणा तामसेण	उस्सण तामसेण
१२९	५	कोसेज्ज संणी सुत्तक विभूक्षिमंगा	को० सो० सु० (कुंडलपा०) गय
१२६	७	रइत्त मात्तकउग गय	र०मा०क० (कुंडलपा) गय

पृ०	पं	मूल पाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मरिच
१६	१९-२०	अणु मवेत्ता ते वि	अणुमवेत्ता (न्ता) तेवि
१३४	२२	भायरो सपरिभा	मा० सुपरिसा
१३५	५	क्लिम्बुय मुदितेज्या	क्लिम्बुय पमुदित अय
१३५	१२	महुर भक्षिषा अम्बुवग	महुर (मणिषा (महुर परिपुष्ण- सम्भ बयणा पा०) अम्बुवग ।
१३२	१८-१६	खरासिष माण महणातेहिय अविल्ल	अ०ना म०ने(अम्भ पइल पिग' लुअ लहिपा०) अदिरळ
१३६	४-५	विसर्गगुदुभूयामिरामाहि	वि०या भयाभि रामाहि
१६	६-७	हल मुस ३ कृष्ण पाय्यो	ह० मु० (कृष्ण पा०) पायी
१३६	७	पव कज्जल मुकन विमळ	प० मुकंत वि०
१३३	१६	अयोगवास सयसामुर्वतो	अगाग वास सयसामुर्वतो
१३६	१८	अणु मवेत्ता	अणु मवेत्ता (न्ता)
१४२	२४	अणुमविता	अणुमविता (न्ता)
१४२	२७	पायचारियो	पाय चारियो
१४३	२	अणु पुम्भ सुसंहयगुलीया	अणु सुसं (आयपवरं पा) गु
१४३	४	समुमा निसमा	स० निममा
१४१	२	ठरल निखनला	ठरल निख गणला
१०३	२३ २४	सद्वृल सीह	सद्वृल सिह
१४४	४	तबधिअरत्त तलातालु जीहा	तबधिअरत्त तलातालु जीहा
१४४	१४	पयाहिणावत्तमुदसिरया सुबाठ सुविभत्त संग धंगा	पयाहिणावत्त मुदया सु० सु० संगधंग मगा
१४४	१६-१७	सीहस्सरा (ओप)सरामेपसरा	सीहस्सरावग्भ (ओप) सरा मेपसरा
१४४	२३	तिपलिओबमट्टिका	तिपलिओबमट्टिका
१४४	२४-२५	अवितत्ता कामार्थ	अवितित्ता कामार्थ
१४२	१५	सम सदिप लट्ट चुपुय आमेक्षग	सम सदिप लट्ट चुपुय आमेक्षग

पृ०	पं०	मूल पाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मंदिर
१६	४	मच्छ कुम्भ रहवर मकर	म. कु रथवर मकर
१५९	२८	हम्मति, विमुणिया	हम्मति विमुणिया
१६०	२	मारैति एककेकक	मारैति एककमेककं
१६०	५	पावेति अयसत्रिंति	पावेति अ (जस पा.) क्रिंति
१६०	७	परस्स दाराओ	परस्स दारओ
१६५	५	गाणामणिरयण कणग	गाणामणि कणग रयण
१६७	२७	लोहपा, महद्धा	लोहप्पा महइ (द्धी पा.)
१६६	१२	असुर भुयग गरुल विज्जु- जलण	असुर भु० ग० सुवणण विज्जु- जलण
१७५	१७	परिग्गहस्स य अट्टाए	परिग्गहस्सेव य अट्टाए
१७५	१८	सउणरुयावसाणाओ, चउसट्ठि	स० रु० गणियप्प हाणाओ चउ०
१७५	२०	अत्थ सत्थ इसत्थच्छ रुप्पगयं	अत्थइसत्थच्छ रुप्पवाय
१७५	२७	कामगुण अण्हगाय	कामगुण अण्हवगा
१७८	२५	न य अवेतिउत्ता	न अवेतति त्ता
१७८	२५	अत्थिहु मोक्खेत्ति	अत्थिहु मोक्खेत्ति
२८०	११	पचहिं असंवरेहि	पंचहिं असंवरहिं
१८०	११	रयमादिणित्तु अणु समयं	रयमादिणित्तु मणुसमयं
१८०	१२	चउव्विहगति पेरतं	चउविहगइ पज्जतं
१८०	१५	काहेति अणंत ए-	काहेति अणंतए
१८०	१६	सोऊणयजे पमार्यंति	सुणिऊण यजे पमार्यंति
१८०	१६	मिच्छादिट्ठीणरा (यजेणरा अबुद्धीया	मिच्छादिट्ठीय जे नरा अहमा
१८१	१	पंचेवय उज्झिऊणं	पंचेवउज्झिऊणं
१८४	२५	महव्वयाइ लोकहिय- सव्वयाइं	महव्वयाइं (लोकहिसव्वयाइ)
१८५	३	कापुरिस दुरुत्तराइ सप्पु- रिस निसेवियाइं	कापुरिस दुरुत्तराइं (सुपरि- सतीरियाइं पा०) विद्याइ
१८५	४	मग्ग मग्ग पणाय गाहम, सवरदाराइं	मग्ग मग्गप्पणायकाइ (याण गाइं पा०) संवरदाराइ
१८६	८	अस्तासो	अस्तासो
१८६	१२	अडवी मज्जेविसत्थगमण	अ० म० सत्थगमण

पृ०	पं०	मूल पाठ इत्त०	पाठ भद्र आ० मशिर
१८६	१६	सुद दु विट्टा	सुद दु विट्टा (उपलब्धा)
१९०	३ ४	अन्तजीविदि विविक्त जीविदि	अंतजीवीदि विविक्त जीवीदि
१६	५	पश्चिमं ठाड्दि	पश्चिमं ठाड्दि
१६	६	निष्कषयवयसाय पञ्चतक्यमतीया	नि० व० (पणीय पा०) पञ्चतक्य मतीया
१६५	७	न निसग्ग	ननिमिग्ग
१६५	८	निमित्तं कद्द कप्पठत्तं	निमित्तं कद्दप्पठत्तं
१६५	२१	विद्यममणं	विद्यपसमणं
२०१	१६	पागएणं पावगं	अपावण्यं पावकं
२०१	१७	पायियात्तं पावगं	अपावियात्तं पावकं
२०२	१०	अण्णाइल्लं अल्लुद्वे	अण्णाइल्लं अल्लुद्वे
२०७	४	आवाणं निष्कसेवणां समिदं	आवाणं निष्कसेवणां समिदं
२०७	१६	एवं नायं मुणिया	एवं नायं मुणिया
२१२	१४	महासमुद्दमम्भेविमुदां खियावि	महासमुद्दमम्भेविमुदं मज्झतिमुद्दाणियावि
२१३	२-३	परिग्गहीया अस्सि पंजरगया	परिग्गहीया अस्सि पंजरगया
२१३	४	निदत्ति अण्णाहा	निर्यसि अण्णाहा
२१५	१	समयप्पदिन्नं देधिन्द् नरिन्द्	समयप्पदिन्नं (महरिसिं सम पपइत्तं चिन्तं पा) इधिन्द् नरिन्द्
२५	११-१२	आरण्यगण्यं समण्यसिद्धं विग्गं	आरण्यगण्यं समण्यसिद्धं विग्गं
२५	२०	अण्णवज्जं	अण्णवत्तं वज्जं
२१५	६	अन्नत्तं वा एवमाहियस्स	अन्नत्तं वा एवमाहियस्स (एव माहियस्सवा पा)
२५	२४	सुदसियं	सुदसियं
२८०	१६	रत्तमंतरगतं वा किंभी	रत्तं (जलं वज्जगवं जेतं पा) मंतरगतं वा किंभी
२३१	१	नामंइ जं च सुक्यं	ना. (सो) जं च सु
२३१	२	मच्छरितं च	मच्छरितं च
२३८	१	विभोव समणं	विभोव समणं
२३८	१-२	उत्तियस्सं होति	उत्तियस्सं वसस्सं होति
२३८	८	जत्थं पइइती	जत्थं पइइती
२३	१४	सेग्गोवहिस्सं अट्टा	से व अट्टे

२३८	१५	गेण्डिउं जे, ह्णिण	गिण्डेउं जेहणि
२४२	१६	सजएण म्भियं	सजमेणं स०
२४२	२१	साहारण पिडपातलाभे	सा० पिडवाय लाभे
२४२	२२	अदिन्नादाणवयनियमवेर- मणं (धिरमणवय नियमणं)	अदिन्नादाण (धिरमणवय नियमणं वय नियमवेरमण पा.) एव
२४३	१	गुरुसु माहूसु	गुरुसु माहूसु विणओ
२४७	५	जवू । पत्तो	जवु पत्तो
२४७	८	पसत्थ गभीर विमित मज्झ	पसत्थ गभीर अतुच्छवि- मित मज्झ
२४७	२१	तारगाणं वा	तारगाणं व
२४७	२४	हिमवंतो चेव ओसहीणं	हिमवंतोचेव नगाणं ओस- हीण
२४८	२	पवकाण चेव	पवकाण चेव
२४८	५	किमिराउचेव	किमिराओचेव
२४८	१२	एक्कमि वंभचेरे	एकमि वंभचरे गुणे
२४८	१२-१३	आराहिय वयमिणं सव्वं	आ० च० सच्च
२४४	१३	वे लवक जाणिय	वे० जाणिय
२४४	१७	भूणवयकेसलोएय	भूणवयकेसलोय
२४७	२५	चउत्थयस्स होति	चउत्थवयस्स होति
२४८	६-७	जित्तेन्दिए वंभचेर गुत्ते	जित्तिंदिए वंभचेर गुत्ते
२४८	१२	कहाओ सिंगार कलुणाओ	(अ) सिंगार कहाओ कलु- णाओ
२४८	१६	हसित भणित चेट्ठिय विप्पेक्खित्तड	हसित भणित चे० वि० गइ .
२६६	६	छज्जीव निकाया, छच्चलेसाओ	छजीव नि० छच्च० ले०
२६६	११	भिकखु पडिमा	भिकखूण पीडमा
२६६	२२	गय गवेत्तगवा (च)न जाणजुग्ग	गय गवेत्तग कवल जाणजुग्ग
२६६	२५	मणिसिग सेल	मणिसिग सेल (लेस पा०)
२७३	६	आदेण कुम्मासगंज	ओ० कु० गज
२७३	६-७	वेढिम वर सरक चुन्न	वेढिम वसरक चुन्न
२७३	१३	मट्ठि उवलित्त खते दते य हि निरते	मट्ठि ओवलित्त ख० द० य हिय (धित्तिपा) निरते

२७६	२	द्विज गये निरुवलये	द्वि गये (मोप पा०) नि०
२७७	६	हरयो विव समिय भाषे	हरयविव समिय ताषे
२७८	१७-१८	गामे गाम एगरायं नगरे २ य पंधरायं	गामे एक रायं नगरेय पंध रायं
२७९	१८-१९	निजमघो, विड सच्चिन्ता	नि० वि० (सुखो पा०) सच्चिन्ता
२८०	२०	जीविय मरण्यास विप्पमुक्के	जी० मरण्यास मय वि०
२८१	२०	निस्संधि, निष्वरणं	निस्संधि नि०
२९२	१२	गधिम वेदिम	गधिम वेदिम
२९३	१६	पउम परिमडिपामिरामे	पउमसड परिमडिपामिरामे

अभिधान राजेन्द्र में मुद्रित प्रश्न० के पाठान्तर

झीरकसरंघ	झीरक सरंग (अभि को ५ भा पृ ८३४)
सुगुंस	सुगुंसा " "
पीरालिय	परोक्षिय " "
कारुवक कक बलाका	कारुव कक बलाका " "
विहिंग	बडंग
विहंगभिय्यासि	विहंग भय्यासिय
कुसिय संवय	कुसिय संवय
विच्छुय बंडकनिवालो	विच्छुय बंडक निवालो " (१८)
पायाककससस सू० ११	पायाककससससस (अभि को १ भा पृ ५०८)
माइयतवर	पाइय (पासिय) वर— " २६

दूसरा आश्रव का टिप्पण—

‘मणं च मणजीविया—

(१) कुछ बौद्धाचार्य पञ्चस्कन्धोके अतिरिक्त मनको ही जीव तरीके मानते हैं। ये योग रूपादिज्ञान लक्षणों का उपादान मनको मानकर परलोक का स्वीकार करते हैं। सर्वथा साथ नहीं जाने वाले मनको शीव मान लेने से परलोक की सिद्धि नहीं होती, क्योंकि वह मन क्षणान्तर के समान क्षणिक है। मनोमात्र को जीव मानना परलोक की असिद्धि से मूषा है।

हा परलोक में साथ जाने वाले मनमें यदि जीवत्व मान लिया जाय तो किसी तरह यह सत्य हो सकता है।

(२) वायु जीवी-

कुछ आचार्य उच्छ्वास आदि लक्षण वायु को ही जीव मानते हैं, परन्तु वायु के जड़ होने से चैतन्यरूप जीवका उसमें योग नहीं हो सकता। अतः यह कथन भी मूषा है।

(३) नास्तिक का प्रकार-

शरीर सादि और सान्त है, केवल यह भव ही एक भव है, अन्य नहीं। इसमें सर्वथा जन्मान्तर का अभाव मानने से मूषावादिता है।

(४) स्वभाव, काल, या पुरुषार्थ आदि को एकान्त कार्य कर मानना भी इसी प्रकार मूषा समझना चाहिए।

पूज्य श्री हस्तिमल्लमुनि निर्मितच्छायाऽनुवादोपेतं पंचमगणधर श्री सुधर्माचार्य
विरचित सिरि परहावागरणसुत्त समाप्तिमगात्।

